आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसूरिग्रथितः

आख्यानकमणिकोशः

श्रीमदाम्रदेवसूरिसन्दृब्धया वृत्त्या समलङ्कृतः ।

भाग - १

संशोधकः पुनःसम्पादकश्च :
मुनिपुण्यविजयः

पुनःसंपादन - संस्कृत छाया :
मुनि पार्श्वरत्नसागरः

आचार्य ओमकारसूरि ज्ञानमंदिर ग्रंथावली क्रमांक-७९

आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसरिग्रथितः

आख्यानकमणिकोशः

श्रीमदाम्रदेवसूरिसन्दृब्धया वृत्त्या समलङ्कृतः ।

भाग - १

संशोधकः पुनःसम्पादकश्च
मुनिपुण्यविजयः

: पुनःसंपादन - संशोधन - संस्कृत छाया :
मुनि पार्श्वरत्नसागरः

: प्रकाशक :
आ. ॐकारसूरी आराधना भवन
आ. ॐकारसूरि ज्ञानमंदिर, गोपीपुरा, सुरत

वीर संवत् : २५३८ विक्रम संवत् : २०६९ इस्वीसन् : २०१३

ग्रंथ का नाम : **आख्यानकमणिकोशः (संस्कृत छाया सह)**

भाग : **१**

आवृत्ति : **प्रथम सं. २०६९**

प्रकाशक : **आ. ॐकारसूरी आराधना भवन**
गोपीपुरा, सुरत

मूल्य : **३०० रूपये**

प्रत : **५००**

प्राप्तिस्थान :
- **आचार्य श्रीॐकारसूरिज्ञानमंदिर**
  आचार्य श्रीॐकारसूरि आराधनाभवन,
  सुभाषचोक, गोपीपुरा, सुरत
  फोन : ९८२४१५२७२७
  E-mail : omkarsuri@rediffmail.com / mehta_sevantilal@yahoo.co.in

- **आचार्य श्रीॐकारसूरि गुरुमंदिर**
  वावपथकनी वाडी, दशापोरवाड सोसायटी,
  पालडी चार रस्ता, अमदावाद-३८० ००७
  फोन : ०७९-२६५८६२९३

- **विजयभद्र चेरिटेबल ट्रस्ट**
  पार्श्वभक्तिनगर, नेशनल हाईवे नं. १४,
  भीलडीयाजी, जि. बनासकांठा-३८५५३५
  फोन : ०२७४४-२३३१२९, २३४१२९

- **सरस्वती पुस्तक भंडार**
  हाथीखाना, रतनपोल, अमदावाद-३८० ००१

मुद्रक : **किरीट ग्राफीक्स**
४१६, वृन्दावन शोपींग सेन्टर, रतनपोळ, अमदावाद-१, दूरभाष : ०७९-२५३३००९५

प्रकाशकीय

आख्यानकमणिकोश बृहद्गच्छीय सैद्धांतिक शिरोमणि आ.श्री नेमिचन्द्रसूरिजीए विक्रमना बारमा सैकामां रचेलो उपदेशकथाओनो अनूठो संग्रह छे.

मात्र बावन गाथामां १४६ कथाओनो उल्लेख कर्यो छे. आ 'आख्यानकमणिकोश' ग्रंथ उपर तेओना ज विद्वान शिष्यरत्न आ.आम्रदेवसूरिजीए वि.सं. १२०९मां १४००० श्लोक प्रमाण वृत्ति रची छे. आ वृत्तिमां मूळ ग्रंथनी बधी गाथाओनी संस्कृतमां व्याख्या तो छे ज ते उपरांत ग्रंथकारे गाथाओमां उल्लिखित बधी कथाओने अति मनोहर शैलिमां रजू करी छे. मोटा भागनी (१२७ मांथी ११७) कथाओ प्राकृत-पद्यमां छे. बे-त्रण कथाओ क्रमांक २३, ४३ (७३ आंशिक) १४, १७, १२४ आ त्रण कथाओ संस्कृत-गद्यमां छे. ३९, ६४, १०९, १२२ क्रमांकनी कथाओ संस्कृत-पद्यमां छे.

आ ग्रंथनुं संपादन आगमप्रभावक मुनिश्री पुण्यविजयजी म.सा.अे करेलुं. प्राकृत ग्रंथ परिषद् तरफथी अेनुं प्रकाशन वि.सं. २०१८मां थयेलुं. मुनिश्री पार्श्वरत्नसागरजीअे ग्रंथनी बधी ज प्राकृत कथाओनी संस्कृत छायारचनापूर्वक पुनः संपादन कर्युं छे. आ ग्रंथने ४ विभागमां प्रगट करतां अमे अत्यंत आनंद अनुभवीअे छीअे. विदुषी सा. महायशाश्रीजीअे बधा प्रुफो जोई आप्या छे. संस्कृत छायानुं संशोधन कर्युं छे.

आ ग्रंथ उपर श्रीविमल बाफणा Ph.D. करी रह्या छे अेवा समाचार मुनिश्री वैराग्यरति वि.म. द्वारा मळतां आ.मुनिचन्द्रसूरि म.अे श्री बाफणाने प्रस्तावना लखवा जणावेल जे अहीं भाग-१मां प्रगट थई रही छे.

आख्यानकमणिकोशना प्रथम अधिकार (कथा १ थी ४) अने तेनो डो. तारा डागाअे करेल हिन्दी अनुवादनुं प्रकाशन ई.स. २०१३मां प्राकृत अध्ययन शोध केन्द्रम् राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम् जयपुर द्वारा प्रगट थयुं छे. आ संस्करणमां डो. तारा डागानो लेख प्राकृत कथासाहित्य परंपरा एवं आख्यानकमणिकोशमांथी केटलीक उपयोगी विगतो पण डो. तारा डागाना नामे ज प्रथम भागमां प्रकट थई रही छे. आ माटे अमे डो. तारा डागा अने संस्थाना आभारी छीए. ग्रंथ प्रकाशन माटे बधा लाभार्थी संघोना अमे आभारी छीअे.

अभ्यासीओ आ ग्रंथनो अभ्यास करी आत्मकल्याणने वरे अेज प्रार्थना.

ली.

प्रकाशक

• • •

आवकार

'अक्खाणयमणिकोस' (आख्यानकमणिकोश) प्राकृत कथासाहित्यनुं अेक अणमोल नझराणुं छे. प्राकृत ग्रंथोनो अभ्यास वधारवा संस्कृतछाया बनाववानो प्रचार हमणांथी वध्यो छे. आ कारणे प्राकृत ग्रंथोनुं वांचन वध्युं होय अेवुं पण जाणवा मळ्युं छे.

मुनिश्री पार्श्वरत्नसागरे आ ग्रंथनी संस्कृत छाया बनावी छे. आ पूर्वे 'पउमचरियं'नी संस्कृत छाया पण तेमणे बनावेली. गया वर्षे आज संस्था द्वारा प्रगट थई छे.

साध्वीश्री सत्यरेखाश्रीना शिष्या विदुषी साध्वीश्री महायशाश्रीजीअे बधा प्रुफो जोया छे. संस्कृत छायानुं संशोधन कर्युं छे.

मुनिश्री वैराग्यरति वि.म.अे जणाव्युं के श्री विमल बाफणा आ ग्रंथ उपर Ph.D. करी रह्या छे. अमारी सूचनाथी तेओअे श्री बाफणा पासे प्रस्तावना लखावीने मोकली आपी छे. जे अहीं (भाग-१)मां प्रसिद्ध थई रही छे.

डो. तारा डागाअे 'आख्यानकमणिकोश'नुं हिन्दी भाषांतर करवानुं शरु कर्युं छे. अेक भाग (प्रथम अधिकार) प्रगट थयो छे ते तेओअे अमने मोकल्यो छे. अेमांथी पण उपयोगी विगत अहीं (प्रथम भागमां) आपवामां आवी छे.

अभ्यासीओने विनंती के - मूळ प्राकृत भाषानी मजा माणवा जेवी छे. ज्यां क्लिष्ट के न समजाय त्यां ज संस्कृत छायानो उपयोग करशो. प्राकृत भाषाना संस्कृत रुपांतरो घणां थई शकता होवाथी छायाकार ग्रंथकारना भावो न समजी शक्या होय अने भिन्न रुपांतर थयुं होय अेवुं पण संभवे छे. उपयोगपूर्वक अध्ययन करी अभ्यासीओ ग्रंथकारना हार्दने पामे, कथा रचना द्वारा विविध गुणो वाचकोने पमाडवानो कर्ताश्रीनो आशय छे तेने सफळ करे अने आत्मकल्याणने पामे अेज अभिलाषा.

- आ.विजय मुनिचन्द्रसूरि

• • •

ग्रंथसमर्पण

प.पू. आगमोद्धारक आचार्य भगवंतश्री

आनन्दसागरसूरीश्वरजी म.सा.

के कर कमलों में साहित्य सुमन

अर्पण

: श्रुतलाभ :

प.पू.आ.भगवंत

श्री मुनिचन्द्रसूरिजी म.सानी

प्रेरणाथी

श्री धर्मनाथ पोपटलाल हेमचंद जैननगर श्वे.मू.पू. जैन संघ (अमदावाद)

ज्ञानद्रव्यमांथी

ग्रंथ प्रकाशननो संपूर्ण लाभ लीधो छे.

अनुमोदना... अनुमोदना...

संपादक की कलम से...

वर्तमानकाल में जहां ज्ञानोपार्जन - अध्ययन आदि का भौतिकरूपसे मात्र व्यवहारिक शिक्षा को लक्ष बनाकर पठन-पठनादि अपनी सीमाएँ लांघ रहा है वहां, जैनशासन के नमोमंडलमें पूर्व आचार्यों द्वारा रचे गए कई महामूल्यवान ग्रंथ अभीतक मात्र हस्तलिखित ताडपत्रों में बंध पड़ा हैं । इनमें से कई ग्रंथो का आगम प्रभाकर पूज्य मुनिराज श्री पुण्यविजयजी म.सा. काफी महेनत करके प्रकाशित करनेका अनुमोदनीय एवं अपकारणीय प्रयास किया है । उन ग्रंथतलिकामें एक ग्रंथ यहभी है "आख्यान मणिकोश"।

पूज्यपाद आचार्य नेमिचन्द्रसूरि म.सा.ने इस ग्रंथकी श्लोकबद्ध प्राकृत भाषामें रचना की थी और उनकी ही परंपरा के पू. आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य पू. आचार्य आम्रदेवसूरिने इस ग्रंथ के श्लोकों में बताये गये दृष्टांतो के नाम उल्लेखों को कथानक में ग्रथन करके पद्यशैलीसे करीब १२७ कथानको को विशिष्ट शैलीओमें प्राकृत - संस्कृत - देश्य एवं अप्रभंश भाषाओंमें विभिन्न छेदालङ्कार - विभिन्नरस - विभिन्न इतिहासों आदी से अत्यंत मनमोहक बनाया है, इस पद्यबद्ध वृत्ति की रचना से ही पूज्यवरकी कवित्व शक्ति एवं भाषाके लय की विशिष्ट छबी उपस्थित होती है ।

मूल केवल ५३ गाथाओं मे रचे गए १४००० श्लोक प्रमाण विस्तृतवृत्ति की अद्‌भूत रचनावाले इस महाग्रंथ को ४१ अधिकारों में कुशलतापूर्वक बांटा गया हैं ।

वर्तमान में अपभ्रंश भाषा एवं देश्य शब्दो का प्रयोग काफी कम दिखाई देता है, वत्तिकारने सूक्ष्मबुद्धि से विभिन्न स्थलों पर अनेक देश्य शब्दों का इतनी बेखुबी से प्रयोग कीया है की जो तदानी काल की भाषाशैली की सुंदरता बयान करती है ।

देश्य शब्दों का भंडार एवं अपभ्रंश शैलीके कथानकों का रसथाल होने के कारण यह ग्रंथ वाचक वर्ग को पढने में काफी मुश्कील है, इतना रोचक और अद्‌भूतग्रंथ भाषा का पूर्ण ज्ञान न होने की वजह से संपादन होने के बादभी वाचक वर्गमें खास पढ़ा नहीं जाता है ।

आगे मैने पूर्वधर श्री विमलसूरि के द्वारा वीर सं. ५३० की साल में रचे गए 'पउमचरिय' ग्रंथकी संस्कृत छाया करने का प्रयत्न प.पू. शास्त्रसंशोधक आ.भ.श्री मुनिचन्द्रसूरि म.सा. के निर्देश के अनुसार कीया था । जो ग्रंथ चार विभागोमें छप चूका है । और उस कार्य को देखकर पू. आचार्य भगवंतश्रीने मुझे इस ग्रंथकी महत्ता बताकर ग्रंथ के अंदर के प्राकृत एव अपभ्रंश दृष्टांतो की संस्कृत छाया करने की बात कही और इस ग्रंथकी भी संस्कृत छाया करनेका मुझे लाभ मिला ।

और इस ग्रंथ को विशेष शुद्धि करके पू. साध्वीवर्या श्री महायशाश्रीजीने भी मुज पर उपकार कीया है । साथमें हर जगह जहां-जहां मुश्कीलें आई वहां पू. आ.भ.ने भी सामग्री हस्तप्रतकी नकल एवं योग्य सलाह लेकर बहोत बड़ा उपकार कीया है ।

इस ग्रंथ प्रकाशनका संपूर्ण लाभ श्री उवसग्गहरं पार्श्वनाथ तीर्थ एवं अ.भा. कल्याणमित्र सभाने लिया है श्रुत भविन इस कार्य के लिए भूरि भूरि अनुमोदना ।

पुस्तक मुद्रण कार्यको सुंदर सहयोग के साथ संपन्न करने के लिए 'किरीट ग्राफिक्स' के सुश्रावक श्री गिरीटभाई एवं सुश्रावक श्री श्रेणिकभाई को भी खुब खुब धन्यवाद ।

ग्रंथ प्रकाशक के रूप में संपूर्ण सहयोग देने के लिए श्री ऊँकार सूरी आराधना भवन की भी अनुमोदना ।

अंतमें इस ग्रंथकी संस्कृत छाया करते समय मतिदोष एवं प्रेसदोष से कुछ क्षति रह गई हो तो विरुद्धर्य पूज्यों से निवेदन है की सुधारकर पढ़े एवं मुझे क्षतियों से वाकेफ कराएँ ।

अपने अध्ययन - अध्यापनमें इसग्रंथ को सामिल करके जिनशासनमें घटित घटनाओं को कथानकों के माध्यमसे जानकर सभी स्व-पर उपकार करके ज्ञानावरणीवादि कर्मो का क्षय करके अक्षय स्थानको प्राप्त करें ऐसी शुभेच्छा ।

श्रावण वदी ०॥
राजनांद गाँव (छ.ग.)

- मुनि पार्श्वरत्न सागर

• • •

प्रस्तावना

कथाकथन अथवा कथाश्रवण मनुष्य का नैसर्गिक स्वभाव है। यही कारण है कि प्राचीन साहित्य में कथाकथन तथा श्रवण की मौखिक परम्परा प्रकर्ष के साथ द्रष्टिगोचर होती है। यद्यपि कथाओं की रचना करना कुछ हद तक मुश्किल कार्य है परन्तु कहानियाँ सुनकर ओरों को सुनाना बहुत आसान होता है। कहानियों की लोकप्रियता का प्राचीन कथासाहित्य का स्वरूप कुछ ऐसा था कि कहानियों मे केवल घटित प्रसंगो का नामोल्लेख होता था जिसमें काल्पनिक रंग भरने की आवश्यकता होती थी।

सामान्यरूप से पूर्वी क्षेत्र तथा विशेषरूप से भारतमें ईस प्रकार का साहित्य प्रचलित होने लगा। पञ्चतन्त्र की कहानियाँ विविध देश और भाषाओं में प्रवाहित हुई और विविध खण्डों में तथा भाषाओं में इनका परस्पर सम्बन्ध प्रस्थापित हुआ। हम जानते है कि 'इलियाड' तथा 'ओडिसी' जैसे विशाल महाकाव्य अस्तित्व में है। रामायण ओर महाभारत के कहानियों का विकास भी शायद किसी प्रसिद्ध उत्तरोत्तर कहानियों से हुआ होगा जिनका उद्देश केवल मनुष्य ने जो कुछ देखा ओर अनुभव किया उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

रामायण ओर महाभारत के अतिरिक्त भारतमें 'बड्डकहा' नामक कथासंग्रह था। इसके लेखक गुणाढ्य थे तथा भाषा पैशाचि प्राकृत थी। इसका समय ईसवी पूर्व था ऐसा अनुमान है। संभवतः ये कथाएँ मौखिक परम्परा से संग्रहित की गई तथा काल्पनिक नायक के जीवनपर इन कहानियों की रचना हुई। यद्यपि मूल 'बड्डकहा' अनुपलब्ध है फिर भी ईनकी पुनर्रचना होती रही। अनेक ग्रन्थो में इस बात का प्रमाण मिलता है। बुद्धस्वामी की संस्कृत में रचित 'बृहत्कथाकोष' ऐसी ही एक रचना है। संघदासगणि का 'वसुदेवहिण्डी' तथा 'मज्झिमखंड' दोनों प्राकृत ग्रन्थ भी बड्डकहा के समकालिन है जिनके स्वरूप भी इसीसे मिलता जुलता है। क्षेमेन्द्र रचित 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा सोमदेव रचित 'कथासरितसागर' संस्कृत में है जो अनुपलब्ध 'बड्डकहा' का स्मरण कराते है। महाकाव्य के पूर्वी नाटको में बृहत्कथा की कल्पनाओं को नाम बदल कर अन्तर्भूत किया गया है। भास का 'अविमारक', 'स्वप्नवासवदत्ता' और 'प्रतिज्ञायोगन्धरायण', हर्ष का 'रत्नावली', प्रियदर्शिका तथा नागानन्द, भवभूति का 'मालतिमाधव' ओर विशाखादत्त का 'मुद्राराक्षस' में स्पष्ट रूप से 'बड्डकहा' से लिए गये विषय है।

भिन्न धर्मो के उदयकाल में भ.महावीर तथा बुद्ध के नेतृत्व में प्रचलित कथाएँ आवश्यक रूपान्तर कर प्रचार में लाई गई तो धर्मोपदेश का प्रमुख आधार बनी । नैतिकता का उपदेश देने के लिए अच्छे या बुरे कर्मो का फ्ल दिखाने के लिए नैतिक तथा अनैतिक आचार पर आधारित कथाओं की योजना की गई । भिन्न धर्मपंथी से वादविवाद के समय उदाहरण कथाओं के द्वारा स्वधर्म तथा अन्यधर्म का विधान स्पष्ट किया गया। जैन साहित्य में ऐसी उदाहरणकथाओ का विपुल साहित्य उपलब्ध है ।

अंगग्रन्थों के समकालिन समाज में 'नायाधम्मकहा' बहुत प्रचलित थी। प्रत्येक साधु या उपदेशक उन्हें स्मरण में रखता तथा तत्काल उत्स्फूर्त उपदेश देता । दुसरे शब्दों यह कह सकते है कि इन कथाओं की मदद से वह किसी भी समय तत्त्व समझाने में उत्साहित रहता ।

तत्कालिन समय में 'नाय' प्रकार की कथाएँ उचित तथा आकस्मिक उपयोग के लिए सांकेतिक शब्दनिर्देश के साथ विषय (गुण) ओर आराधक (गुणी) के नामों के साथ संग्रहित की गई । जिसमें केवल ऐसी निर्देशक गाथाओं की रचना की गई जिसमें केवल तात्त्विक विषय तथा उपासक का नामोल्लेख किया गया । उस गाथा के माध्यम से विषय को स्पष्ट करना बहुत ही आसान हो जाता । मानलो किसी को दान कें विषय में उपदेश करना है तो चिन्नगाथा कंठस्थ कर उपदेशक अपना व्याख्यान बहुत सरलता और सहजता से दे सकता था -

सुर - नर - सिवसोक्खाणं मुणिदाणं कारणं जओ जायं ।
धण - धन्नय - कयउन्नय - दोणाई - सालिभद्दाणं ॥

अगर किसी को व्याख्यान विषयक उक्त निर्देशक गाथा याद है तो निर्धारित विषय का स्पष्टीकरण आसान है । ईस दृष्टिकोन को अपनाकर कथाओं को व्यवस्थित रूप से संरक्षित करने के लिए कथाओं का सिर्फ निर्देशक गाथाओ के माध्यम से उद्धृत किया जाने लगा ।

आम्रदेवसूरिकी आख्यानकमणिकोशवृति भी ऐसा ही एक वैशिष्ट्यपूर्ण ग्रन्थ है । यह वृत्ति नेमिचन्द्रसूरि के 'आख्यानकमणिकोष' नाम के मूलग्रन्थ पर लिखि गई है जिसका अर्थ है - कथारुपी रत्नों का खजाना । यह वृत्ति नेमिचन्द्रसूरि की मूल ५३ निर्देशक गाथाओं पर आधारित है ।

इन कथाओं का परस्पर आदान-प्रदान होता रहा जो अपने ढंग से पेश की गई किन्तु कथारचना ओर आशय को यत्किंचित् भी हानि न पहुँचाते हुए किंचित् बदलाव के साथ कथन करते थे । प्रत्यक्षरूप से वृत्तिकार कथा का कल्पक या संशोधक नहीं होता है फिर भी वह कथाविस्तार के संपूर्ण श्रेय का हकदार होता है। कहानि को सूझ-बूझ के साथ रुचि पेदा कर कठीन से कठीन तत्त्व कुशलता से सामान्य श्रोता के गले उतारना वह जानता था । आम्रदेवसूरिकी यह वृत्ति इस कसोटी पर खरी उतरती है ।

आम्रदेवसूरिकी वृत्ति में प्रमुख भाषा प्राकृत है जो आगमों की अर्धमागधी से समान्तर है परन्तु प्रगत लक्षणों से युक्त है जैसे - अकारान्त पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचनान्त 'ए' के स्थान पर 'ओ' की योजना है । विद्वानों के अनुसार यह जैन महाराष्ट्री है । इसके अतिरिक्त आख्यानकमाणिकोषवृत्ति में क्लासिकल संस्कृत तथा

भाषाकौशल्य दिखाने के लिए वृत्तिकार ने संस्कृत ओर प्राकृत गाथाओ को समान वृत्त में पेश किया है । उत्कृष्ट विविध छंदो का प्रयोग कर समस्यापूर्ति, प्रहेलिका तथा संकेत जैसे लोकप्रिय काव्यलक्षणों से कथाओं को सजाया है । आख्यानमणिकोषवृत्ति वृत्तिकार की सहजता तथा कार्यक्षमता का अद्वितीय उदाहरण है । इनमें कहीं भी खींचातानी नहीं है बल्कि एक स्वभाविक गति है ।

जैन साहित्य में संस्कृत, प्राकृत ओर अपभ्रंश में अनेक उपदेशात्मक कथासंग्रह है जैसे कि हरिषेण का बृहत्कथाकोष (संस्कृत), जिनेश्वरसूरि का कथाकोषप्रकरण (प्राकृत) और श्रीचन्द्र का कहकोसु (अपभ्रंश). इसके अतिरिक्त धर्मदासगणिकी उपदेशमाला, आचार्य हरिभद्र का उपदेशपद और उसकी वृत्तियाँ, मलधारी हेमचंन्द्र के भवभावना और उपदेशमालाप्रकरण । इन सभी ग्रन्थों में उपदेशात्मक और नीतिपरक कथाएँ इतस्तत: बिखरी पडी है । ये सभी कहानियाँ, उदाहरणकथाएँ जो इन ग्रन्थों में उपलब्ध है इनका चयन और अभ्यास संशोधक और विद्वानों के लिए सचमुच एक बहुत बडी तृप्ति होगी ।

आज तक आख्यानकमणिकोशवृत्ति पर कोई विशेष लेखनकार्य नहीं हुआ है । सभी जानते है कि श्री उमाकान्त पी. शहा ने आख्यानकमाणिकोषवृत्ति की प्रस्तावना में कहानियों के विषय सारांश से दिये है इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ पर विशेष अभ्यास नहीं हुआ था । यह ग्रन्थ भाषा की दृष्टि से क्लिष्ट है । सर्वसामान्य पाठक को इसे समझना बहुत मुश्किल है । मेने जब इस ग्रन्थ पर शोधनिबन्ध (C A Critical study of Akhyanmanikosh kruti) लिखा तब इसका अनुभव मैने किया है । मैने अपने शोधनिबन्ध में श्री नेमिचन्द्रसूरि की ५३ गाथाओ का संस्कृत अनुवाद किया है परन्तु इस विशालकाय ग्रन्थ का संपूर्ण (१४००० श्लोकप्रमाण) संस्कृत अनुवाद करना एक बेजोड तथा श्लाघनीय कार्य है । प्राकृतभाषा का जानकार, पाठक तथा अभ्यासक समाज बहुत ही अल्प है यह बात मुनि श्री पार्श्वरत्नसागर म. के समझ में आई । प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश में रचित इस ग्रन्थ का मूल्य और भी बढा दिया है । उनका यह अथक परिश्रम वन्दनीय है जो प्राकृतेतर पाठकों को ग्रन्थ का समर्थ परिचय देगा जिससे वे इस अनमोल काव्यग्रन्थ का आस्वाद ले सकते है । इस प्रकार के कुशल संस्कृत अनुवाद के लिए मुनिश्री का जितना भी धन्यवाद ओर अभिनन्दन किया जाय कम ही है । निश्चित ही यह आख्यानमणिकोशवृत्ति का संपूर्ण संस्कृत अनुवाद अनेक अभ्यसकों तथा संशोधको को महत् प्रेरणा देगा तथा इस ग्रन्थ के अनेक पहलुओं का विद्वज्जनों के लिए उद्घाटन होगा ।

डो. विमल बाफना

• • •

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

- डो. तारा डागा

आचार्य नेमिचन्द्रसूरि भारतीय वाङ्मय के बहुश्रुत विद्वान् आचार्य थे। उनकी कृतियाँ अनेक बहुमुखी पाण्डित्य की परिचायक हैं। उनकी विद्वत्ता अगाध थी। उनके व्यक्तित्व में वे सभी गुण विद्यमान थे जो एक सिद्धहस्त लेखक में होने चाहिए।

आचार्य नेमिचन्द्रसूरिने न केवल सिद्धान्तशास्त्रों का अध्ययन किया, अपितु वे भारतीय साहित्यिक-परम्परा एवं लोक संस्कृति के भी संवाहक बने। यही कारण है कि उनकी कृतियों में जैन सिद्धान्तों की प्रतिष्ठापना जहाँ एक ओर धार्मिक जगत् को सन्तुष्ट करती है, वहीं काव्य-तत्त्वों एवं लौकिक मूल्यों की प्रचुरता साहित्यिक जगत को भी अभिरंजित करती है। जैन दर्शन के अतिरिक्त उन्हें अन्य दर्शनों का भी पूर्ण ज्ञान था। उनकी रचनाओं के आधार पर उनकी बहुमुखी प्रतिभा का मूल्यांकन किया जा सकता है।

विषय सूची एवं सूचित आख्यानक :

आख्यानकमणिकोश में लेखक ने प्रायः नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक आदर्शो से सम्बन्धित कथानकों को संकलित किया है। मूल आख्यानकमणिकोश के विषय तथा उनमें सूचित आख्यानकों की सूचि इस प्रकार है-

अधिकार का नाम	सूचित आख्यानक
१. बुद्धिवर्णन-	१. भरत, २. नैमित्तिक, ३. कृषक, ४. भयकुमार
२. दानस्वरूपवर्णन-	५. धन, ६. धन्नक, ७. कृतपुण्यक, ८. द्रोण, ९. शालिभद्र, १०. चक्रचर, ११. चन्दना, १२. मूलदेव, १३. नागश्री ब्राह्मणी
३. शीलमाहात्म्यवर्णन-	१४. दवदन्ति (दमयन्ती), १५. सीता, १६. रोहिणी, १७. मनोरमा, १८. सुभद्रा
४. तपोमाहात्म्यवर्णन-	१९. महावीर, २०. विशल्या, २१. शौर्य, २२. वीरमती, २३. रुक्मणी, २४. मधु
५. भावनास्वरूपवर्णन-	२५. द्रमक, २६. भरत चक्रवर्ती, २७. इलापुत्र

६.	सम्यक्त्ववर्णन-	२८. राजा, २९. सुलसा
७.	जिनबिम्बदर्शनफल-	३०. आचार्य शय्यंभवभट्ट, ३१. आर्द्रककुमार
८.	जिनपूजाफलवर्णन-	३२. दीपकशिखा, ३३. नवपुष्पक, ३४. पद्मोत्तर, ३५. दुर्गनारी
९.	जिनवन्दनफलवर्णन-	३६. बकुल, ३७. सेदुवक, ३८. नंदश्रेष्ठी
१०.	साधुवन्दनफलवर्णन-	३९.हरि (वासुदेव)
११.	सामायिकफलवर्णन-	४०. राजा सम्प्रति
१२.	जिनागमश्रवणफलवर्णन-	४१. चिलातीपुत्र, ४२. रौहिणेय
१३.	नमस्कारपरावर्तनफल-	४३. गोकथा, ४४. पड्डुक, ४५. फणी, ४६. हस्तिपक, ४७. सोमप्रभ, ४८. सुदर्शन
१४.	स्वाध्यायफल-	४९. यव साधु
१५.	नियमविधानफल-	५०. दामन्न, ५१. वसुमती, ५२. कुलपुत्र चंडचूड, ५३. गिरि डुम्ब, ५४. राजहंस
१६.	मिथ्यादुष्कृतदानफल-	५५. क्षपक, ५६. चंडरुद्र, ५७. मृगावती, ५८. प्रसन्नचन्द्र
१७.	विनयफलवर्णन-	५९. चित्रप्रिययक्ष, ६०. वनवासीयक्ष
१८.	प्रवचनोन्नति-	६१. विष्णुमुनि, ६२. वज्रस्वामी, ६३. सिद्धसेन दिवाकर, ६४. आचार्य मल्लवादी, ६५. आचार्य समित, ६६. आर्यखपुट,
१९.	जिनधर्माराधनोपदेश-	६७. जोत्कार मित्र
२०.	नरजन्मरक्षा-	६८. वणिक पुत्रत्रय
२१.	उत्तमजनसंसर्गिगुणवर्णन-	६९. प्रभाकर, ७०. वरशुक, ७१. कम्बल-शम्बल
२२.	इन्द्रियवशवर्तिप्राणिदुःखवर्णन-	७२. उपकोशागृहगतमहातपस्वी, ७३. भद्राश्रेष्ठी, ७४. माथुर, ७५. नृपसुता, ७६. नराद (नर मांसभक्षी राजा), ७७. सुकुमारिका
२३.	व्यसनशतजनकयुवत्थ-विश्वासवर्णन	७८. नूपुरपण्डिता, ७९. दत्तक दहिता, ८०. भावभट्टिका
२४.	रागाद्यनर्थपरंपरावर्णन-	८१. वणिक-पत्नी, ८२. नन्द नाविका, ८३. चण्डहड, ८४. चित्त-सम्भूत, ८५. मायादित्य, ८६. लोभनन्दी, ८७. नकुलवणिक,
२५.	क्षान्तिगुणवर्णन-	८८. क्षुल्लकमुनि, ८९. नन्दिषेण, ९०. चण्डरुद्रशिष्य
२६.	जीवदयागुणवर्णन-	९१. श्राद्धसुता, ९२. गुणमति, ९३. मेघकुमार, ९४. दामन्नक
२७.	धर्मप्रियत्वादिगुणवर्णन-	९५. कामदेव श्रावक, ९६. सागरचन्द श्रावक, ९७. चन्द्रावतंसक राजा
२८.	धर्ममर्मज्ञजनप्रतिबोधगुणवर्णन-	९८. पादावलम्ब, ९९. रत्नत्रिकोटि, १००. मांसक्रय
२९.	भावशल्यालोचनादोष-	१०१. मातृसुता, १०२. मरुकब्राह्मण, १०३. ऋषिदत्ता, १०४. मक्षिकामल्ल,

३०.	मोहार्तमृतकुगतिपातदर्शक-	१०५. तापस, १०६. सागरदत्त, १०७. नन्दमणिकार, १०८. ललितांग जननी
३१.	धर्मसुकरतावर्णन-	१०९. ढण्ढणकुमार, ११०. जम्बूस्वामी
३२.	धर्मविषयकुलप्राधान्यनिवारक-	१११. हरिकेशि, ११२. नन्दिषेण
३३.	एकाकीविहारदोषवर्णन-	११३. अरहन्नक, ११४. कूलवालमुनि,
३४.	साधुदर्शनमहागुणवर्णन-	११५. तस्कर, ११६. मृगुपुरोहित पुत्र युगल
३५.	अवश्यप्राप्तव्यप्राप्त-	११७. करकंडु, ११८. नेमि, ११९. चारुदत्त, १२०. वणिक बंधुदत्त
३६.	सम्पद्विपदो समतावर्णन-	१२१. नरविक्रमकुमार,
३७.	दैवनिवारणाऽशक्यतावर्णन-	१२२. द्विजसुत, १२३. कुक्कुट, १२४. यादव, १२५. मित्रानन्द,
३८.	नष्टमृतरोदनादिनैरर्थकम्-	१२६. भरत, १२७. सगर, १२८. राम, १२९. पद्म
३९.	बंधुकृत्रिमस्नेहत्वर्णन-	१३०. रविकान्ता, १३१. चुलनीरानी, १३२. कोणिक, १३३. शंख, १३४. भरत, १३५. कनककेतु,
४०.	धन्यधान्यादिविषयशोकापार्थकता-	१३६. सावित्री, १३७. मन्त्री, १३८. श्रमणी, १३९. राम, १४०. कुलानन्द, १४१. भव्यकुटुम्ब
४१.	विवेकीजनस्वकृतकर्मोदयोपनतदुःखादिसहन	१४२. पार्श्व, १४३. महावीर, १४४. गजसुकुमाल, १४५. मेतार्यमुनि, १४६. सनत्कुमार

जैन प्राकृत साहित्य के अतिरिक्त वैदिक, बौद्ध आदि जैनेतर साहित्य भी उनके इस महान कार्य में सहायक रहा है। उनके द्वारा पूर्ववर्ती परम्परा से गृहीत सामग्री को मोटे तौर पर तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं- १. आगमिक साहित्य, २. पूर्ववर्ती स्वतन्त्र कथाग्रन्थ और ३. जैनेतर कथा साहित्य।

आम्रदेवसूरि ने इन्हीं ग्रन्थों से सामग्री ग्रहण कर अपनी परिकल्पना से आख्यानकों की भव्य इमारत का निर्माण किया है। महावीर तथा उनसे सम्बन्धित कथानकों में समसामयिक राजाओ, प्रसिद्ध श्रेष्ठीजन तथा धर्मपरायण श्रावक-श्राविकाओं के जीवन चरित्रों का उल्लेख आचारांगसूत्र, सूत्रकृतांग, कल्पसूत्र आदि ग्रन्थों में प्राप्त है। महावीर की परम भक्त श्राविका 'सुलसा' का उल्लेख स्थानांगसूत्र व समवायांगसूत्र में हुआ है। चन्दनार्या, मृगावती, राजा प्रसन्नचन्द्र, श्रेणिक, अभय कुमार आदि के कथानक भी जैन आगमों में बहुत प्रसिद्ध है। मेघकुमार, नन्दमणिकार तथा नागश्री के कथानकों का ज्ञाताधर्मकथा में विस्तार से निरूपण हुआ है। गजसुकुमाल का कथानक अन्तगडदशासूत्र के तीसरे अध्याय में वर्णित है। कामदेव श्रावक का चरित्र उपासकदशाङ्ग के सन्दर्भो से प्रभावित प्रतीत होता है। कामदेव श्रावक पर देव द्वारा किए गए उपसर्गो में तलवार से मारने, हाथी से घायल करने तथा सर्प से डंसने आदि के प्रसंग उपासकदशाङ्ग से ज्यों के त्यों उद्धृत हुए हैं। राजा श्रेणिक, कुणिक तथा राजा चेटक आदि से सम्बन्धित वृत्तान्तों का निरयावलिकासूत्र में ऐतिहासिक निरूपण है। चित्तसम्भूत, हरिकेशी तथा भृगुपुरोहित पुत्रों के आख्यानकों का मूल स्रोत उत्तराध्ययन में खोजा जा सकता है। सम्प्रति की कथा निशीथचूर्णि

में है। आख्यानकमणिकोश वृत्ति में भी यह सूचना प्रदान की गई है कि सम्प्रति के भविष्य के बारे में आगे की जानकारी निशीथसूत्र से पढी जा सकती है। यहाँ पर आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री का यह कथन ठीक ही प्रतीत होता है कि **'यह सार्वजनिक सत्य है कि प्राकृत कथा साहित्य की गंगोत्री आगम साहित्य ही है।'**

आर्द्रक कुमार की कथा सूत्रकृतांगचूर्णि में है। नूपुरपंडिता की कथा दशवैकालिकचूर्णि में तथा कम्बल-शम्बल की कथा आवश्यकनिर्युक्ति में है।

बुद्धिवर्णनाधिकार में वर्णित चार प्रकार की बुद्धि से सम्बन्धित कथानकों का मूल स्रोत नन्दीसूत्र है। नन्दीटीका, आवश्यकनिर्युक्ति और आवश्यकचूर्णि में भी बुद्धि से सम्बन्धित ये कथाएँ प्राप्त है। कुछ रूपान्तरणों के साथ आम्रदेवसूरि ने इन्हें लोकरंजक बनाकर प्रस्तुत किया है।

वज्रस्वामी के जीवन की घटनाएँ आवश्यकनिर्युक्ति एवं चूर्णि में संदर्भित हैं। इसके अतिरिक्त भद्रेश्वर की कहावली (अप्रकाशित) सिद्धसेन एवं मल्लवादी के सम्बन्ध में सूचना देती है। आचार्य खपूट का विवरण बृहत्कल्पभाष्य में उपलब्ध है। निशीथसूत्र में आचार्य खपूट, आर्यवज्र, सिद्धसेन, शय्यमंभव आदि आचार्यो के बारे में भी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इन ग्रन्थों से प्राप्त सन्दर्भो का प्रयोग कर आम्रदेवसूरि ने इन कथानकों को विस्तार दिया है।

भावभट्टिका के आख्यानक में वर्णित चारुदत्त की कथा वसुदेवहिण्डी में उपलब्ध है। जम्बूस्वामी की कथा का मूल स्रोत इसी ग्रन्थ को माना गया है। वसुदेव, रुक्मणी व प्रद्युम्न के आख्यान भी इन ग्रन्थ में हैं। स्पष्ट है कि वसुदेवहिण्डी आख्यानकमणिकोशवृत्ति में आए अनेक कथानकों का उपजीव्य है। उन्हीं को आधार बनाकर घटनाओं और वृत्तान्तों की योजना कर आम्रदेवसूरि ने मूल ग्रन्थ में निर्देशित आख्यानकों का विस्तार किया है।

नरविक्रमकुमार की कथा १०वीं शताब्दी में मुनिगुणपाल द्वारा रचित महावीर चरियं के चौथे प्रस्ताव में विस्तार से वर्णित है। ऋषिदत्ता की कथा १०वीं शताब्दी में गुणपाल मुनि द्वारा रचित 'इसिदत्ताचरियं' को आधार बनाकर प्रस्तुत की गई है। अनियत विहार के परिणाम को दर्शाने वाली कूलबालमुनि की कथा संवेगरंगशाला में वर्णित है। शालिभद्र, कृतपुण्य, मूलदेव, श्रेणिक आदि के कथानक जिनेश्वरसूरि के कथाकोष प्रकरण में विस्तार से निरूपित है। इसी प्रकार जयसिंहसूरि कृत धर्मोपदेशमाला विवरण में धन सार्थवाह, मूलदेव, नूपुरपंडिता, मैतार्यमुनि, नन्दीषेण, सुलसा, चन्दनार्या आदि के कथानकों का विवरण मिलता है। ये सभी आख्यानक कुछ भिन्नता के साथ आख्यानकमणिकोश में प्ररूपित हैं।

चारुदत्त की कथा भास के नाटक 'चारुदत्त' तथा शुद्रक के 'मृच्छकटिकं' नाटक में विस्तार से वर्णित है। हरिभद्र कृत उपदेशपद में भी चारुदत्त के कथानक का उल्लेख है।

कुक्कुटाख्यानक भी अजैन परम्परा को आधार बनाकर पौराणिक ढंग से लिखा गया है । ब्राह्मण साहित्य के साथ-साथ आख्यानकमणिकोशवृत्ति के अनेक आख्यानक कुछ भिन्नता के साथ बौद्ध जातकों में भी निरूपित हैं । 'यव साधु' की कथा का सम्बन्ध श्वेताम्बर, दिगम्बर साहित्य के साथ-साथ बौद्ध परम्परा से जुडा हुआ है । बौद्धों के 'मूसिक जातक' (३७३) में यह कथा कुछ भिन्नता के साथ उल्लेखित है । वहाँ बोधिसत्व ब्राह्मण अध्यापक है, राजकुमार यव अध्यापक का विद्यार्थी है । राजा बनने पर यव को खतरे से दूर करने हेतु बोधिसत्व गाथाओं का पाठ करते हैं । स्पष्ट है कि बौद्ध जातक तथा आख्यानकमणिकोशवृत्ति में वर्णित यव साधु के इस कथानक का धरातल एक समान है । केवल, वर्णनों की भिन्नता है । इसी प्रकार चित्तसम्भूत की कथा 'चित्तसम्भूत जातक' तथा हरिकेशी की कथा 'मातंग जातक' (चतुर्थ खण्ड ४९७) में उपलब्ध है ।

विभिन्न स्रोतों से सामग्री का चयन करने के पश्चात् भी आम्रदेवसूरिने अपनी परिकल्पना एवं संवेदनशीलता से आख्यानकमणिकोश के कथानकों को सरस व प्रभावोत्पादक बनाया है । काव्यकला की दृष्टि से इस कृति के आख्यानकों का महत्त्व कभी भी कम नहीं आंका जा सकता है ।

ग्रन्थगत १२७ आख्यानकों को भाषा की दृष्टि से इस प्रकार बाँटा जा सकता है । क्रमांक १४, १७, २३, ३९, ४२, ६४, १०९, १२१, १२२, १२४ वाले आख्यानकों को छोडकर शेष ११७ आख्यानक प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं । सीता आख्यानक (**आ.क्र. १४**), वीरचरित्र (**आ.क्र. १७**) और वीर आख्यानक (**आ.क्र. १२४**) - इन तीनों आख्यानकों की भाषा संस्कृत गद्य है । गौकथा (**आ.क्र. ३९**), कम्बल-शम्बल (**आ.क्र. ६४**), कुक्कुट आख्यानक (**आ.क्र. १०९**) और भव्य कुटुम्ब आख्यानक (**आ.क्र. १२२**) - इन चार आख्यानकों की भाषा संस्कृत पद्य है । भरत आख्यानक (**आ.क्र. २३**) और सोमप्रभ (**आ.क्र. ४२**) इन दो आख्यानकों की भाषा अपभ्रंश है । इसके अतिरिक्त भावभट्टिका आख्यानक (**आ.क्र. ७३**) के अन्तर्गत अवान्तर कथा के रूप में चारुदत्त का आख्यानक भी अपभ्रंश भाषा में निरुपित है । संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश - इन तीनों भाषाओं में स्वतन्त्र रूप से आख्यानकों की रचना के साथ-साथ कहीं-कहीं संस्कृत तथा प्राकृत का प्रयोग एक साथ हुआ है । कुलानन्द आख्यानक (**आ.क्र. १२१**) की भाषा संस्कृत-प्राकृत-मिश्रित है । ५० गाथा प्रमाण इस आख्यानक की प्रत्येक गाथा का पूर्वार्द्ध संस्कृत में और उत्तरार्द्ध प्राकृत में है ।

आख्यानकमणिकोशवृत्ति के कथानकों की शैली मनोरम हैं । शब्द तथा अर्थ भाव तथा भाषा की दृष्टि से शैली में पूरी सामन्जस्यता दिखाई पडती है । भिन्न-भिन्न प्रसंगों में शैली में विविधता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । जहाँ कथानक सामान्य गति से आगे ब्रढता है, वहाँ सरल भाषा का प्रयोग है । यथाः-

'उज्जेणीए पुरीए सूरी बहुगुणगणेहिं परियरिओ
नामेण चण्डरुद्दो रुद्दो व्व सिवासयसणाहो ॥ ५१.१ ॥

जहाँ कथानक को तीव्र गति से आगे बढाना है, वहाँ कथाकथन शैली और छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया गया है ।

ऐश्वर्य, वैभव, सौन्दर्य आदि के वर्णन में कवि आम्रदेवसूरिने लम्बे-लम्बे समास तथा दुरूह भाषा का प्रयोग किया है, जो बाण की कादम्बरी की याद को ताजा कर देते हैं। यथा- प्रसेनजीत राजा का यह वर्णन द्रष्टव्य है :-

तम्मि पुरे परकुंजरकुंभत्थलखोणिखणणसीरसमो ।
समरसयंवरजयसिरिरमणीगहणेक्कदुल्ललिओ ॥ ४.९ ॥

सुकुमालपाणि-पाओ सारयरयणियरसरिसमुहछाओ ।
रइरमणरुइरकाओ नरराओ सिरिपसेणइओ ॥ ४.१० ॥

विषय के अनुरूप कोमल व कठोर ध्वनियों का प्रयोग भी आख्यानकमणिकोश की विशेषता है। सौन्दर्य आदि वर्णन में कोमल तथा वीरता युद्ध आदि वर्णन में कठोर ध्वनियों का प्रयोग हुआ है।

प्राकृत भाषा में निबद्ध इस रचना का प्रमुख छन्द आर्या (गाथा) है। किन्तु, स्थान-स्थान पर अन्य छन्दों के भी प्रयोग मिलते हैं। आख्यानकमणिकोशवृत्ति की छन्द-योजना का विवरण द्रष्टव्य है :-

आख्यानकमणिकोशवृत्ति में कुल १२७ आख्यानक निरूपित हैं। इनमें से १० आख्यानक प्राकृतेतर भाषा में निबद्ध हैं। प्राकृतेतर भाषा में निबद्ध १० आख्यानको की छन्द-योजना इस प्रकार है :- सीताख्यानक **(आ.क्र. १४)**, वीरचरित **(आ.क्र. १७)** तथा वीराख्यानक **(आ.क्र. १२४)** की रचना संस्कृत गद्य भाषा में हुई है। गो आख्यानक **(आ.क्र. ३९)**, वरशुक आख्यानक **(आ.क्र. ६४)** तथा कुक्कुटाख्यानक **(आ.क्र. १०९)** की रचना संस्कृत के अनुष्ठुप छन्द में है। भव्यकुटुम्बाख्यानक **(आ.क्र. १२२)** की रचना प्रबोधिनी छन्द में है। कुलानन्द-आख्यानक **(आ.क्र. १२१)** आर्या छन्द में निबद्ध है। भरत-आख्यानक **(आ.क्र. २३)** और सोमप्रभआख्यानक **(आ.क्र. ४२)** अपभ्रंश भाषा में निबद्ध हैं।

इन १० आख्यानकों को छोडकर शेष ११७ आख्यानक (भावभट्टिका आख्यानक की अवान्तर कथा 'चारुदत्त' के अतिरिक्त) प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं। इनमें से (चन्द्रचूड-आख्यानक **(आ.क्र. ४७)** की रचना प्राकृत गद्य में है। पार्श्व-आख्यानक **(आ.क्र. १२३)** की रचना उपेन्द्रवज्रा छन्द में हैं। इन दोनों आख्यानकों के अतिरिक्त प्राकृत भाषा में निबद्ध शेष ११५ आख्यानकों की रचना प्राकृत भाषा के आर्या छन्द में है। यद्यपि कहीं-कहीं अन्य छन्दों के भी प्रयोग है परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। साथ ही प्रत्येक अधिकार के अन्त में उन अधिकारों के विषयद्योतक एक-एक वसन्ततिलका छन्द भी संस्कृत भाषा में दिया गया है, जो पूरे कथानक के निष्कर्ष को प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त वृत्तिकार का मंगलाचरण और उसकी प्रशस्ति में संस्कृत के विभिन्न छन्दों का प्रयोग दृष्टिगत है।

कवि आम्रदेवसूरिने आख्यानकमणिकोशवृत्ति में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों का भरपूर प्रयोग किया है। अर्थ को चमत्कृत करने के लिए कवि ने जगह-जगह श्लेषालंकार का भी प्रयोग किया है। आख्यानकमणिकोशवृत्ति में प्रयुक्त सटीक एवं जीवन्त उपमाओं के कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं-

(ख) अपयश की तरह अंधकार समूह संसार में फैल गया । (४.५६)

(ख) माता की तरह अभोग्या पिता की धनलक्ष्मी । (१५.५)

(ग) कामदेव की प्रत्यक्ष वधु की तरह रोहिणी । (१५.२१)

(घ) मोतियों के हार की तरह उज्वलशील । (१५.१०९)

कहीं-कहीं तो उपमाओं का जाल ही फैला हुआ है जिन्हें पढकर हृदय प्रफुल्लित हो जाता है । यथा शौर्य आख्यानक में मुनि का यह वर्णन द्रष्टव्य है- 'वे मुनि वायु की तरह प्रतिबद्ध, सिंह की तरह भयमुक्त, पराक्रमी हाथी की तरह मदमुक्त, मंदराचल पर्वत की तरह स्थिर, चन्द्रमा की तरह सौम्य, तप के तेज से सूर्य की तरह ओजस्वी, आकाश की तरह मल (कर्मबन्ध) से रहित, विचारों में शंख की तरह निरंजन, धरती की तरह सहनशील तथा महासमुद्र की तरह गंभीर थे (१९.१५-१७) ।

श्लेष तो कवि का प्रिय अलंकार है । श्लेषालंकार के प्रयोग द्वारा उक्तियों को चमत्कृत करने का प्रयास किया गया है, जिससे कथानक में रमणीयता दृष्टिगोचर होती है । श्लेषालंकार के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

अह एक्को चिय दोसो नयरीए तीए गुणसमिद्धाए ।
पयईए कडिला बाला सीसेण वुब्भंति ॥ १.९ ॥

अर्थात् गुण-समृद्धि से युक्त उस नगरी में केवल एक ही दोष था कि जहाँ प्रजा द्वारा कुटिल शत्रु की तरह घुंघराले बाल भी सिर पर धारण किए जाते थे ।

यहाँ **कडिल** शब्द का अर्थ शत्रु के पक्ष में कुटिल तथा बालों के पक्ष में घुंघराला होगा । एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है :-

खज्जंती परिवड्ढइ कंडू न उणो कयाइ धणरिद्धि ॥ १५.७ ॥

अर्थात् खुजाती हुई खाज बढती है, किन्तु खाई जाती हुई धनराशि नहीं बढती है । यहाँ पर '**खज्जंती**' शब्द का प्रयोग खाज के अर्थ में खुजाना तथा धनराशि के अर्थ में खाना होगा ।

आख्यानकमणिकोशवृत्ति में उपमा अलंकार के साथ-साथ रूपक एवं उत्प्रेक्षाओं का भी सफल प्रयोग हुआ है । उत्प्रेक्षाएँ मनोहर एवं चमत्कारी है । काव्यरूपक बांधने में भी कवि सिद्धहस्त है । विभिन्न रूपकों में उपमेय व उपमानों की योजना मनभावन है । यथा रोहिणी के आख्यानक में रोहिणी के उद्बोधन से सन्मार्ग पर आये राजा द्वारा रोहिणी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करनेवाला यह रूपक द्रष्टव्य है :-

पभणइ य महामोहधयार-कूवम्मि निवडिओ अहयं ।
निय-वयण-वरत्ताए तए सुसीले । समुद्धरिओ ॥ १५.९६ ॥

अर्थात् हे अच्छे शीलवाली ! महामोहरूपी कूप में पडा हुआ मैं तुम्हारे श्रेष्ठ वचनरूपी डोरी से बाहर खींचकर लाया गया हूँ ।

कहीं-कहीं अनुप्रास प्रधान गाथाओं की रचना द्वारा नाद सौन्दर्य का सफल परिपाक दृष्टिगत होता है। यथा :-

धवलं पि धवलयंतो धवलहरं दंसण किरणेहि ॥ ४.१०२ ॥

अर्थात् धवल दन्त किरणों से धवल प्रासाद को और भी धवल करता हुआ।

रस एवं भावाभिव्यंजना :

आख्यानकमणिकोशवृत्ति धार्मिक कथानकों का संग्रह ग्रन्थ है। अतः, रस की दृष्टि से प्रस्तुत कृति आद्योपान्त शान्तरस से ओतप्रोत है। संवेग, वैराग्य, निर्वेद, अनासक्ति आदि भावों की अभिव्यंजना प्रत्येक कथानकों में कहीं न कहीं विद्यमान है। प्रायः कथानकों के अधिकांश पात्र अन्त में वैराग्य भाव से अभिप्रेत होकर श्रमण दीक्षा अंगीकार कर तप-साधना की ओर उन्मुख होते हैं। लेकिन, आख्यानकमणिकोशवृत्ति के कथानक शान्तरस प्रधान होते हुए भी शृङ्गार, वीर, करुण, रौद्र, भयानक आदि रसों से विमुख नहीं है। त्याग से पूर्व जीवन में भोगों का वर्णन भी हुआ है। यह वर्णन शृङ्गाररस में संयोग शृङ्गार की धारा प्रवाहित है।

करुणरस के चित्रण में भी कवि सफल हुए हैं। आख्यानकमणिकोशवृत्ति में दुःख, सन्ताप, रुदन, विलाप आदि भावों की अभिव्यंजना में करुणरस की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। करुणरस के मार्मिक प्रसंग मन पर चिरस्थाई प्रभाव डालने में सक्षम हैं। (शालिभद्र के दीक्षा प्रसंग में माता का हाहाकार, पुत्र हरण पर रुक्मणी का विलाप, ऋषभदेव के निर्वाण पर भरत का रुदन, सौ पुत्रों के भस्म हो जाने पर चक्रवर्ती सगर का संताप तथा लक्ष्मण की मृत देह पर विलाप करते हुए राम का करुण क्रन्दन आदि प्रसंग इतने करुणोत्पादक हैं कि पाठकों की आँखों से अश्रुधारा निकल पडती हैं।

युद्ध, वीरता तथा राजाओं के ओजस्वी रूप वर्णन के प्रसंगों में वीर तथा रौद्ररस का मिलाजुला चित्रण परिलक्षित होता है। भरत-बाहुबली के युद्ध-वर्णन का पूरा प्रसंग वीर एवं रौद्र रस से परिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त 'कामदेव आख्यानक' में कामदेव की परीक्षा लेने आए विषधर का रूप धारण किए देव द्वारा कामदेव श्रावक को डराने, धमकाने के प्रसंग में रौद्र व भयानक रस का परिपाक देखा जा सकता है (८४.१३-२५) इसी प्रकार अद्भुत आदि रसों का प्रयोग भी प्रसंगानुसार हुआ है।

यद्यपि आख्यानकमणिकोश के कथानक वर्णनप्रधान हैं, किन्तु भावव्यंजना में भी लेखक सिद्धहस्त है। विभिन्न मानवीय भावनाओं के चित्रण में कवि ने उदारता का परिचय दिया है। प्रायः कथानकों में सभी कोटि के पात्र गहरे अनुभवों के साथ प्रस्तुत हुए हैं। लेखक ने उनके मनोभावों को गम्भीरतापूर्वक चित्रित किया है। उपकोशा और तपस्वी के आख्यानक में मानसिक द्वन्द्व पूर्णतया विद्यमान है। चन्द्रचूड का आख्यानक मानव-स्वभाव पर प्रकाश डालता है। दत्तकदुहिता तथा नूपुरपण्डिता के आख्यानकों में स्त्री स्वभाव का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

• • •

विषयानुक्रम

विषय		पृष्ठ संख्या
(१)	**चतुर्विधबुद्धिवर्णनाधिकारः**	**१-३६**
	१ भरतज्ञातंम्	५
	२ नैमित्तिकाख्यानम्	१३
	३ कर्षकाख्यानम्	१४
	४ अभयाख्यानम्	१७
(२)	**दानस्वरूपवर्णनाधिकारः**	**३७-११०**
	५ धनाख्यानकम्	३८
	६ कृतपुण्यकाख्यानकम्	४४
	७ दोणाद्याख्यानकम्	५५
	८ शालिभद्राख्यानकम्	६९
	९ चक्रचराख्यानकम्	८४
	१० चन्दनार्याख्यानकम्	८४
	११ मूलदेवाख्यानकम्	९०
	१२ नागश्री आख्यानकम्	१०३
(३)	**शीलमाहात्म्य वर्णनाधिकारः**	**१११-१५९**
	१३ दवदन्त्याख्यानकम्	१११
	१४ सीताख्यानकम्	१३७
	१५ रोहिण्याख्यानकम्	१४३
	१६ सुभद्राख्यानकम्	१५२
(४)	**तपोमाहात्म्यवर्णनाधिकारः**	**१६०-१९३**
	१७ वीराख्यानकम्	१६०
	१८ विशल्याख्यानकम्	१६१
	१९ शौर्याख्यानकम्	१६३
	२०/२१ रुक्मिण्याख्यानकम्	१६९
(५)	**भावना स्वरूप वर्णनाधिकारः**	**१९४-२३०**
	२२ द्रमकाख्यानकम्	१९४
	२३ भरताख्यानकम्	१९५
	२४ इलापुत्राख्यानकम्	२१९
(६)	**सम्यक्त्वगुणवर्णनाधिकारः**	**२३१-२३५**
	२५ सुलसाख्यानकम्	२३१
(७)	**जिनबिम्बदर्शनकलाधिकारः**	**२३६-२५२**
	२६ शय्यम्भव भट्टाख्यानकम्	२३६
	२७ आर्द्रकुमाराख्यानकम्	२४०

• • •

॥ जयन्तु वीतरागाः ॥

श्रीनेमिचन्द्रसूरिविरचितः

आख्यानकमणिकोशः

श्री आम्रदेवसूरिनिर्मितया वृत्त्या समेतः ।

[१. चतुर्विधबुद्धिवर्णनाधिकारः ।]

॥ नमः सर्वज्ञाय ॥

स्वर्नाथभीतघनभूधरसेव्यमूर्तिलावण्यधामबहुधीवरलब्धमध्यः ।
आख्यानकमणिकोशमहार्घरूपो जीयाद् युगादिजिननायकनीरनाथः ॥ १ ॥
सिद्धार्थपार्थिववरान्वयलब्धजन्मा निर्मिथ्य [१]वीरावलयान्वितरम्यमूर्तिः ।
रागादिशत्रुगुरुविक्रमवर्ण्यवर्णो जीयाज्जगत्त्रयजयासमवेश्म वीरः ॥ २ ॥
राकाशशाङ्ककरनिर्मलकीर्तिभाजो ज्ञानादिरत्नचयरोहणशैलकल्पाः ।
शेषा अपि प्रणतकल्पितकल्पवृक्षा जीयासुरानतसुरप्रभवो जिनेन्द्राः ॥ ३ ॥
श्रीगौतममुनिमुख्याः श्रुतजलधिविचारपारगतवचसः । सुगृहीतनामधेया जयन्तु गणधारिणः सर्वे ॥ ४ ॥
यस्याः प्रसादमासाद्य सद्यः सञ्जायते पुमान् । पारगामी श्रुताम्भोधेः [२]स्तौम्यहं तां सरस्वतीम् ॥ ५ ॥
अस्मादृशा अपि विशिष्टविवेकशून्या येषां प्रसादमधिगम्य मनीषिमान्याः ।
जाताः परोपकरणप्रकृतिप्रवीणास्तानप्यचिन्त्यमहसः स्वगुरुन् प्रणौमि ॥ ६ ॥
इत्थं कृतनमस्कारो ध्वस्तविघ्नविनायकः । विधास्ये विधिनाऽऽरब्धं समीहितमहं सुखम् ॥ ७ ॥

इहानन्तजन्म-जरा-मरणप्रवाहपयःपूरपूरिते इष्टवियोगाऽनिष्टसम्प्रयोगव्यसनशतकल्लोलमालासमाकुले हर्ष-विषादाद्यनेकप्रकारप्राणिपरिणामपरम्परारङ्गत्तरङ्गे शारीर-मानसानेककटुकदुःखदुष्टश्वापदसमाकीर्णे भुवन-

---

१. निर्मण्य वीर रं० । २. नौम्यहं रं० ।

त्रयसन्तापसम्पादनपटिष्ठप्रकृतिप्रज्वलन्मदनवडवानले अनन्तभवभ्रमणनिमित्तदुरन्तकषायमहापाताल-कलशालये अनुपलब्धपरपारसंसारपारावारे निमज्जता भव्यजन्तुना कर्णधारादिसमग्रसामग्रीकं यानपात्रमिव जलधिजल-मध्यपतितरत्नमिवातिदुर्लभं लब्ध्वा श्रीसर्वज्ञप्रणीतधर्मान्वितं मनुजजन्म परोपकारे यतितव्यम् । स चोपकारो यद्यपि द्रव्यादिभेदभिन्नत्वेनानेकप्रकार:, तथापि जिनवचनोपदेशेन भावोपकारेणोपकर्तव्यम्, तस्यैकान्तिका ऽऽत्यन्तिक-रूपत्वाद् इतरस्य चानैकान्तिकाऽनात्यन्तिकस्वरूपत्वात् । जिनवचनोपदेशोऽप्युपदेष्टव्यभेदाद् अनेकप्रकार: । अतो धर्मकथारुपोपदेशेनैव भव्यानामुपकर्तव्यम्, तेषामज्ञातधर्मस्वरूपाणां धर्मतत्त्वप्रकाशनेन तस्य महोपकारित्वाद् । अतो भव्यान् उपचिकीर्षु: श्रीमन्नेमिचन्द्रसूरिर्धर्मकथास्वरूपमाख्यानकमणिकोश-मेकचत्वारिंशदधिकारसमन्वितं विरचितवान्, तस्य विवरणं प्रस्तूयते । तस्य चाऽऽदावेवमङ्गलाऽभिधेय-प्रयोजनप्रतिपादिकेयं गाथा —

नमिऊण जिणं वीरं सुरमहियं केवलिं पवरवाणिं ।
अक्खाणयमणिकोसं भव्वजणविबोहयं वोच्छं ॥ १ ॥

अस्या व्याख्या— "नमिऊण" नत्वा 'जिनं' रागादिजेतृत्वाद् जिन: तम् 'वीरं' चरमतीर्थाधिपतिम्, 'सुरमहितं' सुरै:- देवैर्महित:- पूजितो यस्तम्, 'केवलिनं' केवलं-केवलज्ञानं तद् विद्यते यस्यासौ केवली तम्, 'प्रवरवाणीकं' प्रवरा-समस्तवचनगुणसमन्वितत्वेन निर्दोषा वाणी-भारती यस्य स प्रवरवाणीकस्तम् । प्राकृतत्वात् सूत्रेऽन्यथानिर्देश:। 'आख्यानकमणिकोशम्' आ-मर्यादया ख्यायन्ते-परहित-निरतैर्भव्यावबोधाय कथ्यन्ते इत्यख्यानकानि-धर्मकथा:, तान्येव संसारदौर्गत्यापहारकत्वेन मणय:- रत्नानि अख्यानकमणय: तेषां कोष:-भाण्डागारस्तम् । 'भव्यजनविबोधकं' भव्या:- मुक्तिगमनयोग्या जन्तवस्तेषां जन: [समूह]स्तस्य विबोधकं विशिष्टतत्त्वा [व]गमहेतुम् । "वोच्छं"ति वक्ष्ये इति गाथासमासार्थ: ॥ अवयवार्थस्त्वयम् —

इह भगवतो वीरस्य जिनादिविशेषणचतुष्टयेन यथासङ्ख्यं अपायापगम-पूजा-ज्ञान-वचो[रुपा:] चत्वारोऽतिशया: प्रतिपादिता द्रष्टव्या: । तथा "नमिऊण"मित्यनेन शिष्टसमयपरिपालनाय विघ्नविनायकोप-शान्त्यर्थं चेष्टदेवतानमस्कृतिमाह । तथाहि शिष्टा: क्व चिदभीष्टे वस्तुनि प्रवर्तमानास्सन्तोऽभीष्टदेवता-नमस्कृतिपुरस्सरमेव प्रवर्तन्ते, अयमप्याचार्यो नहि न शिष्ट इत्यत: शिष्टसमयपरिपालनाय । तथा श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्तीति । उक्तं च –

"श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति महतामपि । अश्रेयसि प्रवृत्तानां क्वापि यान्ति विनायका: ॥१ ॥"

इदं च प्रकरणं सम्यग्दर्शनहेतुत्वात् श्रेयोभूतं वर्तते, अतो विघ्नविनायकोपशान्तये । सिद्धा चेयमिष्टदेवतास्तुति: विघ्नविनायकोपशान्तिहेतुत्वेन । यत:-

पुंसस्तस्यां प्रवृत्तस्य श्रेयसो जन्मकर्मण: । तेन न्यत्कृतसामर्थ्या: क्षीयन्ते विघ्नहेतव: ॥ १ ॥

क्षीणेषु विघ्नबीजेषु जायते निरुपद्रवा । श्रोतृव्याख्यानविषयव्यापारर्द्धिपरम्परा ॥ २ ॥ इति ।

तथाऽभिधेयशून्येऽपि न प्रवर्तन्ते प्रेक्षावन्तः । यतः-

काकादन्तपरीक्षादौ वाच्यवैकल्यतो यथा । प्रवर्तेत न मेघावी तद्वत् शास्त्रेऽपि भाव्यताम् ॥ १ ॥

ततश्च 'आख्यानकमणिकोशम्' इत्यनेनाभिधेयं प्रतिपादितम्,आख्यानकानामेवाभिधास्यमानत्वात् । 'भव्यजनविबोधकम्' इत्यनेन प्रयोजनमाचष्टे, यतस्तद्रहितेऽपि प्रेक्षावन्तो न प्रवर्तन्ते । तदुक्तम् –

"सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वाऽपि कस्यचित् । यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावात् तत् केन गृह्यताम् ? ।१।"

(श्लोकवार्तिक-१.१२)

तथा– "सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते । शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥ १ ॥"

(श्लोकवार्तिक १.१७)

प्रयोजनं तु कर्तुः श्रोतुश्चानन्तर-परम्परभेदभिन्नम् । तत्रानन्तरं शास्त्रकर्तुः सत्त्वानुग्रहः, परम्परं तु मुक्तिपदप्राप्तिः । भणितं च –

"सम्यक् तत्त्वोपदेशेन यः सत्त्वानामनुग्रहम् । करोति तत्त्वशून्यानां स प्राप्नोत्यचिराच्छिवम् ॥१॥ "इति। श्रोतुरप्यनन्तरं तत्त्वावगमः, परम्परं तु तस्यापि मुक्तिरेव । अभाणि च –

"सम्यक् तत्त्वपरिज्ञानाद् विरक्ता भवतो जनाः । क्रियाशक्त्या ह्यविघ्नेन गच्छन्ति परमां गतिम् ॥१॥" इति

समबन्धस्तूपायोपेयादिलक्षणः सामर्थ्यलभ्यः । तथाहि - इदं शास्त्रमुपाय, वस्तुतत्त्वावगमश्चोपेयमिति । १।

अधुना प्रतिज्ञातमनुस्त्रियते –

लद्धूण नरत्ताइं सामग्गी मोक्खसाहणे धम्मे ।
दाणाइए पवत्ती कायव्वा बुद्धिमंतेहिं ॥ २ ॥

अस्या व्याख्या-'लब्ध्वा' अवाप्य 'नरत्वादिं' मनुजन्माऽऽर्यक्षेत्रादिलाभरुपां 'सामग्रीं' मुक्तिसाधक-गुणकलापम् । 'मोक्षसाधने' मोक्षं-मुक्ति साधयति-करोतीति मोक्षसाधनस्तत्र, एतच्च धर्मस्य विशेषणम् । पुनरपि किंविशिष्टे ? 'दानादिके' दान-शील-तपोभावनास्वरूपे [धर्मे] 'प्रवृत्तिः' प्रवर्तनं 'कर्तव्या' विधेया 'बुद्धिमद्धि' बुद्धिः -मतिर्विद्यते येषां ते बुद्धिमन्तस्तैः । अत्र च सामग्र्यन्तर्गतत्वेन पुनर्बुद्धेरुपादानं धर्मसाधनगुणकलापमध्ये बुद्धेः प्राधान्यख्यापनार्थम् । भणितं च –

"श्रियः प्रसूते तनुते विवेकं यशांसि धत्ते विपदो निहन्ति । संस्कारयोगाच्च परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः ॥ १॥"

तथा –

"हेयमुवाएयं वा न जाणई विमलबुद्धिपरिहीणो । न य धम्माइपरिक्खं बुद्धि ता सव्वगुणहेऊ ॥१॥"

किञ्च -

"बुद्धिजुओ आलोवइ[१], धम्मट्ठाणं उवाहिपरिसुद्धं । जोगत्तमप्पणो वि य, अणुबंधं चेव जत्तेणं ॥१॥

[२]आढवइ सम्ममेसो तहा जहा [३]लाघवं न पावेइ । पावेइ य गुरुगत्तं [४]इह-परलोए सुही होइ ॥ २ ॥"

[उपदेशपद गा० १६७,१७१] ॥ छ ॥ २ ॥

बुद्धिभेदानाह -

उप्पत्तिय वेणइया कम्मय परिणामिया चउह बुद्धी ।
भरह-निमित्तिय-करिसग-अभयाईनायओ नेया ॥ ३ ॥

व्याख्या - उत्पत्तिः- उत्पादः सैव प्रयोजनमस्याः सा तथा । उक्तं च –

"पुव्वमदिट्ठमसुयमवेइय तक्खणविसुद्धगहियत्था । अव्वाहयफलजोगा बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥१॥"

[नन्दी० गा० ६०] इति

"वेणइय"त्ति विनयः- गुरुशुश्रूषादिः तेन निर्वृत्ता वैनयिकी । भणितं च –

भरनित्थरणसमत्था तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला[५] । उभओलोगफलवई विणयसमुत्था हवइ बुद्धी ॥१॥

[नन्दी०गा०६४]

"कम्मय"त्ति कर्म-कृष्यादिकम् । कर्मणो जाता कर्मजा । कथितं च –

"उवओगदिट्ठसारा कम्मपसंगपरिघोलणविसाला । साहुक्कारफलवती कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी ॥१॥"

[नन्दी० गा० ६७]

"परिणामिय"त्ति परिणामः- बुद्धिपूर्वकं सदसद्वस्तुविवेचनं वयोविपाको वा तेन निवृत्ता पारिणामिकी । अभिहितं च –

"[६]अणुमाण-हेउ-दिट्ठंतसाहिया वयविवक्कपरिणामा । हिय निस्सेसफलवई बुद्धी परिणामिया नाम ॥१॥

[नन्दी गा० ६९]

"चउह बुद्धि"त्ति 'चतुर्धा' चतुर्भिः प्रकारैश्चतुःसङ्ख्या 'बुद्धिः' मतिरिति । आह च –

"उप्पत्तिया वेणइया कम्मया पारिणामिया । बुद्धी चउव्विहा वुत्ता पंचमा नोवलब्भइ ॥ १ ॥"

[नन्दी०गा० ५९]त्ति

उत्तरार्धेनाऽऽसां यथासङ्ख्येन द्रष्टान्तानाह-भरतश्च-भरतनटपुत्रो रोहकः फलहेतूपचारात् । नैमित्तिकौ च-निमित्तेन चरतस्तथाविधसिद्धपुत्रौ, कर्षकश्च-कृषति सस्यर्थं भूमिमिति कर्षकः-हलधरः, अभयश्चश्रेणिकराजसुतः

---

१. आलोचयति । २. आरभते । ३. पराभवम् । ४. उपदेशपदे "रोहिणिवणिएण दिट्ठंतो" इत्युत्तरार्द्धोत्तरांशः । ५. पेयालं-प्रमाणं सारो वा । ६. लिङ्गाद् लिङ्गिज्ञानम्, स्वार्थानुमानमत्र ज्ञातवव्यम् । अनुमानप्रतिपादकं वचः हेतुः, परार्थानुमानमित्यर्थः । द्रष्टान्तः-उदाहरणम् । वयोविपाके परिणामः- पुष्टता यस्याः सा वयोविपाकपरिणामा ॥

प्रतीत एव, भरत-नैमित्तिककर्षकाऽभयाः । ते आदिर्येषां [१]तथाविधधूर्तव्यंसितचिर्भिटिकापणितग्रामीण-विसंवादच्छेत्तृद्यूतकारादीनां ते तथोक्ताः । त एव ज्ञातानिदृष्टान्तास्तेभ्यो 'ज्ञेया' ज्ञातव्येति गाथासमासार्थः ॥ ३ ॥ व्यासार्थस्तु आख्यानकेभ्यो ज्ञेयः ।

तत्र तावद् भरतज्ञातं प्रथममाख्यायते । तद्यथा -

❀मालवमंडलवसुहाविलासिणीवयण-नयणलच्छि व्व । कामियणकामपूरणसज्जा उज्जेणि नयरि त्ति ॥१॥

विलसिरपयसंचारा कलहंसयसद्दसोहिया जत्थ । अंतो विलयामाला रेहइ बाहिं च सिप्पनई ॥२॥

अच्छरसोहाइन्ना अणिमिसविरइयविलासरमणीया । अमराउरि व्व परिहाविरयाए बहुलहरिवासा ॥३॥

विहिया णुव्वयचेट्ठो जत्थ य गोवो व्व सावयसमूहो । [२]पन्नवणिज्जो तंबोलिओ व्व हलिओ व्व सहलमई ॥४॥

सुत्तत्थगहणपवणो पवयणमायारुई सुगीयत्थो । मुणिजणमुत्तिसमाणो वियरइ वेसाजणो[३] जत्थ ॥५॥

मंति व्व करणरुइरो गुरुचरणरुई सुसीसवग्गोव्व । सेसो व्व खमाहारो साहुजणो जत्थ संवसइ ॥६॥

नेगमसंगहववहाररिउसुया सद्दसममिरूढा य । एवंभूया वणिणो जम्मि पुरे जिणमयसमाणा ॥७॥

तत्र तावद् भरतज्ञातं प्रथममाख्यायते । तद्यथा -

❀मालवमंडलवसुधाविलासिनी वदन-नयनलक्ष्मीरिव । कामिजनकामपूरणसज्जोज्जैनि नगरीति ॥ १ ॥

विलसत्पदसंचारा कलहंसकशब्दशोभिता यत्र । अंतर्वनितामाला राजते बहिश्च सिप्रानदी ॥ २ ॥

अप्सरःशोभाकीर्णाऽनिमेषविरचितविलासरमणीया । अमरापुरीव परिखाविरचितया बहुलहरिवर्षा ॥ ३ ॥

विहिताणुव्रतचेष्टो यत्र च गोप इव श्रावकसमूहः ।[२] प्रज्ञापनीयस्ताम्बोलिक इव हलिक इव सहल- (बल) मतिः ॥४॥

[३]सूत्रार्थग्रहणप्रवणः प्रवचनमातारुचिः सुगीतार्थः । मुनिजनमूर्तिसमानो विचरति वेश्या (वैश्य) जनो यत्र ॥ ५ ॥

मन्त्रीव करणरुचिरो गुरुचरणरुची सुशिष्यवर्ग इव । शेष इव क्षमाधारः साधुजनो यत्र संवसति ॥ ६ ॥

नैगम-संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्राः शब्द-समभिरुढाश्च । एवंभूता वणिजो यस्मिन्पुरे जिनमतसमानाः ॥ ७ ॥

---

१. एतदुदाहरणं यथा - कश्चिद् ग्रामेयकः चिर्भटिका आनयन् प्रतोलीद्वारे केनचिद् धूर्त्तनागरिकेण प्रोक्तः- यद्येताः सर्वा अपि चिर्भटिका भक्षयामि ततः किं मे प्रयच्छसि ? ग्रामेयकः प्राहः-योऽनेन प्रतोलीद्वारेण मोदको न निर्गच्छति तं प्रयच्छामि । बद्धं द्वाभ्यामपि ससाक्षिकं पणितम् । ततो नागरिकेण सर्वा अपि चिर्भटिका मनाग् मनाग् भक्षयित्वा ग्रामेयकाय प्रोक्तम्- देहि मे यथाप्रतिज्ञातं मोदकम् । ग्रामेयकः प्राह- न मे चिर्भटिका भक्षिताः । नागारिकः प्राह-चेन्न प्रत्येषि तर्हि प्रत्ययार्थ विक्रयाय चिर्भटिका विस्तारय चतुष्पथे । तेन तथाकृतम् । ततो लोकः चिर्भटिका निरीक्ष्य प्राह- भक्षितास्त्वदीयाः सर्वा अपि चिर्भटिकाः तत् कथं गृह्णीमः ?। ततः क्षुब्धो ग्रामेयकः विनयनम्रीभूय नागरिकधूर्त्ताय रुपकमेकं प्रयच्छति । नागरिको नेच्छति । ततो द्वे रुपके यावत् शतमपि रुपकाणां दातुं प्रवृत्तः तथापि नेच्छति । ततोऽपरेण कृपालुना नागरिकधूर्तेन तस्मै बुद्धिः दत्ता । ततस्तद्बलेन तेन मोदकमेकमादाय तं प्रतिद्वन्द्विनागरिकधूर्त्तमाकार्य सर्वसाक्षिसमक्षं स मोदक इन्द्रकीलकेऽस्थाप्यत् । भणितश्च मोदकः- याहि मोदक । स न प्रयाति । ततस्तेन साक्षिणोऽधिकृत्य प्रोक्तम् - एष यथाप्रतिज्ञातो मोदकः यः प्रतोलीद्वारेण न निर्गच्छति तस्मादहं मुत्कलः । एतच्च साक्षिभिरन्यैश्च नागरिकैः प्रतिपन्नमिति जितः प्रतिद्वन्द्वी धूर्त्तः ॥ २. पन्नवणिज्जो - पर्णवणिक् । प्रज्ञापनीय, सहलमई - सह हलेनेति सहला सा च मति र्यस्य सहलमतिः । सफलमतिः । ३. वेश्यापक्षे - सुप्तार्थग्रहणप्रवण, प्रवञ्चनमायारुचिः, सुष्टुगीतो अर्था येन ।

सामन्नदव्वसमवायसंजुओ गुणविसेसकुसलमई । सुहकम्मो जत्थ जणो निवसइ सिवसमयसारिच्छो ॥८॥

अह एक्को च्चिय दोसो नयरीए तीए गुणसमिद्धाए । जं पयईण कुडिला वाला सीसेण वुब्भंति ॥९॥

तत्थ नियरूवनिज्जियपुरंदरो दरियरायनिद्दलणा । समरंगणजियसत्तू जियसत्तू नाम नरनाहो ॥१०॥

निवसइ पयइपहाणो सम्मयकविलोयलद्धमाहप्पो । सप्पुरिसवन्नवाई सक्खं संखागमसमाणो ॥११॥

आजलहिवेलपसरियपयंडमाहप्पकलियनियदंडो । दरियरिउसमरजयसिरिकरेणुआलाणभुयदंडो ॥१२॥

पणमंतसयलमहिवालमउहिमालामिलंतकमकमलो । कमकमलाजुवइ विलासविविहसंभोगदुल्ललिओ ॥१३॥

अह तीए पुरवरीए पच्चासन्ने समत्थि वित्थिन्नो । नामेण सिलागामो गामो धण-धन्नपरिकलिओ ॥१४॥

तत्थऽत्थि नडो नाडयवियक्खणो भरहनामओ मइमं । नियबुद्धिलद्धसोहो रोहो नामेण तस्स सुओ ॥१५॥

तस्य य सवक्किमाया न वहइ सम्मं ति भणइ तो एसो । तं नियपायाण मए पमामियव्वा न संदोहो ॥१६॥

अह अन्नया य निम्मलनिसाए उट्ठित्तु रोहओ भणइ । नियछायं अवलोइय परपुरिसो एस जाइ त्ति ॥१७॥

निसुणित्तु तयं भरहो निद्दं चइउं समुट्ठिउं भणइ । रे कत्थ गओ पुरिसो ? आह इमो एस एस त्ति ॥१८॥

निउणं निरिक्खिओ वि हु परपुरिसो नो कहिं पि भरहेण । दिट्ठो ताहे जाओ मंदसिणेहो नियपियाए ॥१९॥

अह अन्नया य तीए पयंपिओ रोहओ जहा वच्छ ! । अहयं तुह पयपणया नियपियरं पत्तियावेसु ॥२०॥

एवं होउ त्ति पयंपिऊण रयणीए रोहएण तहा । जा विहियं ता भरहेण पुच्छिओ कत्थ परपुरिसो ? ॥२१॥

सामान्यद्रव्यसमवायसंयुक्तो गुणविशेषकुशलमतिः । शुभकर्मा यत्र जनो निवसति शिवसमयसदृशः ॥ ८ ॥

अथैक चैव दोषो नगर्यास्तस्या गुणसमृद्धायाः । यत्प्रकृत्या कुटिला वाला शीर्षेण उह्यन्ते ॥ ९ ॥

तत्र निजरुपनिर्जितपुरंदरो दारितरागनिर्दलनः । समराङ्गणजितशत्रु र्जितशत्रु र्नामा नरनाथः ॥ १० ॥

निवसति प्रकृतिप्रधानः सम्मतकविलोकलब्धमाहात्म्यः । सत्पुरुषवर्णवादी साक्षात् साङ्ख्याऽऽगमसमानः ॥ ११ ॥

आजलधिवेलाप्रसृतप्रचण्डमाहात्म्यकलितनिजदण्डः । दारितरिपुसमरजयश्रीकरेण्वालानभुजदण्डः ॥ १२ ॥

प्रणमत्सकलमहिपालमौलिमालामिलत्क्रमकमलः । क्रमकमलायुवतिविलासविविधसम्भोग दुर्ललितः ॥ १३ ॥

अथ तस्याः पुर्वर्याः प्रत्यासन्ने समस्ति विस्तीर्णः । नाम्ना शिलाग्रामो ग्रामो धनधान्यपरिकलितः ॥ १४ ॥

तत्रास्ति नटो नाटकविचक्षणो भरतनामको मतिमान् । निजबुद्धिलब्धयशोभः रोहो नाम्ना तस्य सुतः ॥ १५ ॥

तस्य च शौक्ये माता न वहति सम्यगिति भणति तदैषः । त्वां निजपादयो र्मया प्रणामितव्या न संदेहः ॥ १६ ॥

अथान्यदा च निर्मलनिशि उत्थाय रोहको भणति । निजच्छायामवलोक्य परपुरुष एष यातीति ॥ १७ ॥

निश्रुत्य तकं भरतो निद्रां त्यक्त्वा समुत्थाय भणति । रे कुत्र गतः पुरुषः ? आहाऽयमेष एष इति ॥ १८ ॥

निपुणं निरीक्षितोऽपि खलु परपुरुषो न कुत्रापि भरतेन । दृष्टस्तदा जातो मन्दस्नेहो निजप्रियायाः ॥ १९ ॥

अथान्यदा च तया प्रजल्पितो रोहको यथा वत्स ! । अहं तव पादप्रणता निजपितरं प्रत्येहि ॥ २० ॥

एवं भवत्विति प्रजल्प्य रजन्यां रोहकेण तथा । यावद् विहितं तावद् भरतेन पृष्टः कुत्र परपुरुषः ? ॥ २१ ॥

दंसेइ निययछायं ताय ! इमो तयणु भणइ भरहो वि । वच्छ ! तइया वि एसो परपुरिसो ? आह सो एवं ॥२२॥
चिंतेइ तओ भरहो बालाणं पेच्छ केरिसुल्लावा ? । इय मुणिय तहेव पुणो दइयाए उवरिमणुरत्तो ॥२३॥
तद्दिवसाओ सा वि हु सविसेसं कुणइ तस्स पडिवत्तिं । अह अन्नया य भरहो गओ सपुत्तो तमुज्जेणिं ॥२४॥
काऊण तत्थ कयविक्कयाइ नियगाममणुपयट्टो सो । जा सिप्पसरिसमीवे समागओ ताव भरहेण ॥२५॥
भणियं रोहय ! पुडिया वीसरिया मज्झ हट्टमज्झम्मि । चिट्ठ तुमे जाव अहं गिण्हित्ता पडिनियत्तेमि ॥२६॥
इय भणिय गए भरहे वालत्तणओ य रोहएण तओ । सिप्पसरिवालुयाए विणिम्मिया तेण उज्जेणी ॥२७॥
एत्थंतरम्मि राया बलरेणुभएण अग्गए होउं । तुरयारूढो जा एइ तत्थ रोहेण ता रुद्धो ॥२८॥
हे आसवार ! पुरओ उज्जेणीहट्टमग्गमज्झेण । जियसत्तुरायराउलमुल्लंघिय किह णु वच्चिहिसि ? ॥२९॥
ता विम्हइओ राया तं पुच्छइ भद्द ! कत्थ उज्जेणी ? । अह रोहओ वि वालुयविणिम्मियं तस्स दंसेइ ॥३०॥
तथाहि-
इह ताव हट्टमग्गो इह राउलमेत्थ हत्थिसालाओ । इह पासाया इह मंदुराओ तो तं निएऊण ॥३१॥
तस्स मइविहवरंजियहियओ हियए विचिंतए राया । एस मम मंतिमंडलसिरोमणित्तस्स [1]जोगो त्ति ॥३२॥
परिभाविऊण एवं पुच्छइ तं वच्छ ! कत्थ वत्थव्वो ? । कस्स सुओ सो साहइ भरहसुओ हं सिलागामे ॥३३।
तस्स वरबुद्धिविहवं [2]परिभावेंतो गओ निवो नयरिं । सो वि समागयपिउणा समन्निओ नियगामम्मि ॥३४॥

दर्शयति निजच्छायं तात ! अयं तदनु भणति भरतोऽपि । वत्स ! तदापि एष परपुरुषः ? आह स एवम् ॥ २२॥
चिन्तयति ततो भरतो बालानां पश्य कीदृशोल्लापाः ? । इति ज्ञात्वा तथैव पुन र्दयिताया उपर्यनुरक्तः ॥ २३ ॥
तद्दिवसात्साऽपि खलु सविशेषं करोति तस्य प्रतिपतिम् । अथान्यदा च भरतो गतः सपुत्रस्तामुज्जैनीम् ॥ २४ ॥
कृत्वा तत्र क्रयविक्रयादिं निजग्राममनुप्रवृत्तः सः । यावत्सीप्रासरित्समीपे समागतस्तावद्भरतेन ॥ २५ ॥
भणितं रोहक ! पुटिका विस्मृता मम हट्टमध्ये । तिष्ठ त्वं यावदहं गृहीत्वा प्रतिनिवर्तयामि ॥ २६ ॥
इति भणित्वा गते भरते बालत्वेन च रोहकेन ततः । सीप्रासरिद्वालुकया विनिर्मिता तेनोज्जैनी ॥ २७ ॥
अत्रान्तरे राजा बलरेणुभयेनाग्रतो भूत्वा । तुरगारुढो यावदेति तत्र रोहकेन तावद्रुद्धः ॥ २८ ॥
हे अश्ववार ! पुरत उज्जैनीहट्टमार्गमध्येन । जितशत्रुराजराजकुलमुल्लङ्घ्य कथं तु व्रजिष्यषि ? ॥ २९ ॥
तावद्विस्मितो राजा तं पृच्छति भद्र ! कुत्रौज्जैनी ? । अथ रोहकोऽपि वालुकाविनिर्मितां तस्य दर्शयति ॥ ३० ॥
तथाहि -
इह तावद्धट्टमार्ग इह राजकुलमत्रहस्तिशाला । इह प्रासादा इह मंदुरास्ततस्तं दृष्ट्वा ॥ ३१ ॥
तस्य मतिविभवरञ्जितहृदयो हृदये विचिन्तयति राजा । एष मम मन्त्रिमण्डलशिरोमणित्वस्य योग्य इति ॥ ३२ ॥
परिभाव्यैवं पृच्छति त्वं वत्स ! कुत्र वास्तव्य ? । कस्य सुतः स कथयति भरतसुतोऽहं शिलाग्रामे ॥ ३३ ॥
तस्य वरबुद्धिविभवं परिभावयन् गतो नृपो नगरीम् । सोऽपि समागतपित्रा समन्वितो निजकग्रामे ॥ ३४ ॥

---

१. जोगु त्ति रं० । २. भाविंतो रं०

अन्नदिणे नरनाहो बुद्धिपरिक्खणकए समाइसइ । पासायमेगथंमं एगसिलाए कुणह मज्झं ॥३५॥
तो गामीणा सव्वे मिलिया परिसाए मंतिउं लग्गा । बुद्धिमपेच्छंताणं भोयणवेला अइक्कंता ॥३६॥
तो रोहएण भणिओ वच्चामो ताय ! भोयणनिमित्तं । आह पिया वि य तं वच्छ ! सुत्थिओ भणइ सो वि तओ ।३७।
तुम्हाणं किं दुक्खं ? भरहो अक्खेइ खुद्दयाएसं । सो भणइ ताव भुंजह अहयं पच्छा भलिस्सामि ॥३८॥
तो भोयणावसाणे चउपासं रोहओ खणावेइ । एगसिलाए मज्झे थंभत्थूभं विहेऊण ॥३९॥
इय एगथंभभवणं कारित्ता राइणो निवेइंति । आगंतुं नरनाहो हरिसियहियओ पलोएइ ॥४०॥
अह विम्हिओ नरिंदो पुच्छइ नणु कस्स एरिसा बुद्धी ? तो रोहयस्स बुद्धि ते वि हु साहेंति गामीणा ॥४१॥
अह अन्नया य राया मेंढं पेसिय भणावए एवं । जह एसो मासद्धं धरियव्वो एगमाणेण ॥४२॥
तो रोहएण मेंढो बाढं जवसाइचारिओ संतो । जा जायइ अहियबलो ता दंसिज्जइ विरूयस्स ॥४३॥
धरिउं जहुत्तदिवसे तं मिंढं पढमदिवसबलकलियं । [१]उवणिंति य नरवइणो रोहयबुद्धि पयासंता ॥४४॥
तब्बुद्धिपगरिसेणं पमोयपरिपूरिओ पुहइपालो । अवरं खुद्दाएसेण पेसिउं कुक्कुडं भणइ ॥४५॥
जह जुज्झावह एयं असहायं रोहएण तो भणियं । दप्पणपडिबिंबेणं जुज्झावह तंबचूडं ति ॥४६॥
काऊण तयं रन्नो निवेइए पुच्छियम्मि मइविहवे । साहेंति ते वि जह रोहयस्स तो रंजिओ राया ॥४७॥
अवरं च पेसिऊणं तिलभरिए सगडए भणइ राया । तिलमाणेणं तेल्लं[२] दायव्वं मज्झ तुब्भेहिं ॥४८॥

अन्यदिने नरनाथो बुद्धिपरीक्षणकृते समादिशति । प्रासादमेकस्तम्भमेकशिलया कुरुत मम ॥ ३५ ॥
ततो ग्रामीणाः सर्वे मिलिताः पर्षदि मन्त्रयितुं लग्नाः । बुद्धिमपश्यतां भोजनवेलाऽतिक्रान्ता ॥ ३६ ॥
ततो रोहकेण भणितो व्रजामो तात ! भोजननिमित्तम् । आह पिताऽपि च त्वं वत्स ! सुस्थितो भणति सोऽपि ततः ।३७।
युष्माकं किं दुःखं ? भरत आख्याति क्षुद्रादेशम् । स भणति तावद्भुङ्ग्ध्वमहं पश्चाद्भलिष्यामि ॥ ३८ ॥
ततो भोजनावसाने चतुःपार्श्वं रोहकः खानयति । एकशिलाया मध्ये स्तम्भस्तुपं विधाय ॥ ३९ ॥
इत्येकस्तम्भभवनं कारयित्वा राज्ञे निवेदयन्ति । आगत्य नरनाथो हर्षितहृदयः प्रलोकयति ॥ ४० ॥
अथ विस्मितो नरेन्द्रः पृच्छति ननु कस्येदृशी बुद्धिः ? । तदा रोहकस्य बुद्धि तेऽपि कथयन्ति ग्रामीणाः ॥४१॥
अथान्यदा च राजा मेंढ्रं प्रेष्य भाणयत्येवम् । यथैष मासार्द्धं धारितव्य एकमानेन ॥४२ ॥
ततो रोहकेण मैंढो बाढं यावसादिचारितः सन् । यावद्जायतेऽधिकबलस्तावद्दर्श्यते वरुकस्य ॥ ४३ ॥
धृत्वा यथोक्तदिवसांस्तं मेंढ्रं प्रथमदिवसबलकलितम् । उपनयन्ति च नरपते रोहकबुद्धिं प्रकाशमानाः ॥ ४४ ॥
तद्बुद्धिप्रकर्षेण प्रमोदपरिपूरितः पृथिवीपालः । अपरं क्षुद्रादेशेन प्रेष्य कुर्कुटं भणति ॥ ४५ ॥
यथा योधयतैनमसहायं रोहकेन ततो भणितम् । दर्पणप्रतिबिम्बेन योधयत ताम्रचूडमिति ॥ ४६ ॥
कृत्वा तकं राज्ञे निवेदिते पृष्टे मतिविभवे । कथयन्ति तेऽपि यथा रोहकस्य ततो रञ्जितो राजा ॥ ४७ ॥
अपरं च प्रेष्य तिलभृतान्शकटान् भणति राजा । तिलमानेन तैलं दातव्यं मह्यं युष्माभिः ॥ ४८ ॥

---

१. उवणेंति रं० । २. तिल्लुं रं० ।

उत्ताणदप्पणेणं तिले गहेऊण रोहओ तेल्लं । तेणेव दप्पणेणं पेसइ रायस्स पासम्मि ॥४९॥

आइसइ पुहइपालो पेसह वलिऊण वालुयावरहं । जुन्नवरहं समप्पह पडिछंदकए भणइ रोहो ॥५०॥

अह संपेसइ राया मयपायं करिवरं भणावइ य । निच्चं पि गयपवित्ती कहियव्वा मरणपरिहीणा ॥५१॥

ते वि पइवासरं पि हु कहेंति रायस्स हत्थिवुत्तंतं । अह अन्नया गइंदे मए भणावइ भरहपुत्तो ॥५२॥

देव ! गइंदो न चरइ न चलइ नो ससइ न वि य नीससइ । न पियइ न नियइ नवरं चिट्ठइ निच्चेट्ठसंठाणो ॥५३॥

तो पुहइवई पभणइ रे रे ! किं करिवरो मओ ? तयणु । जंपति ते वि सामी एवं वज्जरइ नो अम्हे ॥५४॥

भूओ भणियं पेसवह कूवयं महुरपाणियं । तेहुत्तं मत्तो देव ! कूवओ पामरत्तणओ ॥५५॥

अम्हच्चओ तओ तं पेससु नायरयकूवियं निययं । जेणाऽऽगच्छइ तम्मग्गलग्गओ सामिय ! सयण्हो ॥५६॥

अवरमकंडे वणसंडमेत्थ पुव्वाए तं पि पच्छिमओ। कायव्वं तेण तयं पि गाममुच्चालिऊण कयं ॥५७॥

अग्गि सूरं च विणा वि पायसं सिज्झवेह पट्ठविए । खुड्डाएसो उक्कुरूडियाए निप्फाइया खीरी ॥५८॥

सव्वत्थ वि केण कयं ? ति रोहओ उत्तरम्मि वत्तव्वे । रंजियहियओ वाहरइ अन्नया एउ मह पासे ॥५९॥

[१]पव्ववुनं (?) दिणराई छाउण्हे छत्तनह पहुम्मग्गे । जाणचलणे तहा ण्हाणमइलगो अन्नहाऽऽगच्छे ॥६०॥

अमवासासंधीए सूरत्थमणम्मि सुद्धसंझाए । सिरउवरिधरियचालणयछत्तओ गंडधाराए ॥६१॥

ऊरणयारूढतणू करफंसविवज्जवारिकयण्हाणो । कोमारमट्टियकरो रायदुवारम्मि संपत्तो ॥६२॥

उत्तानदर्पणेन तिलाङ्गृहीत्वा रोहकस्तैलम् । तेनैव दर्पणेन प्रेषयति राज्ञः पार्श्वे ॥ ४९ ॥

आदिशति पृथिवीपालः प्रेषयत वालयित्वा वालुकादवरकम् । जीर्णावरकं समर्पयत प्रतिबिम्बकृते भणति रोहः ॥५०॥

अथ संप्रेषयति राजा मृतप्रायं करिवरं भाणयति च । नित्यमपि गजप्रवृत्तिः कथितव्या मरणपरिहीणा ॥ ५१ ॥

तेऽपि प्रतिवासरमपि खलु कथयन्ति राज्ञे हस्तिवृत्तान्तम् । अथान्यदा गजेन्द्रे मृते भाणयति भरतपुत्रः ॥ ५२ ॥

देव ! गजेन्द्रो न चरति न चलति न श्वसति नापि च निःश्वसति । न पिबति न पश्यति नवरं तिष्ठति निश्चेष्टसंस्थानः ॥५३॥

तदा पृथिवीपति प्रभणति रे रे ! किं करिवरो मृतः ? तदनु । जल्पन्ति तेऽपि स्वाम्येवं कथयति न वयम् ॥ ५४ ॥

भूयो भणितं प्रेषयत कूपकं मधुरपानीयं निजकम् । तैरुक्तं मत्तो देव ! कूपकः पामरत्वतः ॥ ५५ ॥

अस्मत्सत्कस्ततस्तं प्रेषय नागरककूपिकं निजकम् । येनाऽऽगच्छति तन्मार्गलग्नः स्वामिन् ! सकर्णकः ॥ ५६ ॥

अपरमकाण्डे वनखण्डमत्र पूर्वस्मिस्तमपि पश्चिमतः । कर्तव्यं तेन तकमपि ग्राममुच्चाल्य कृतम् ॥ ५७ ॥

अग्निं सूर्यं च विनाऽपि पायसं सिधयत प्रस्थापिते । क्षुद्रादेश उत्कुरुड्यां निष्पादिता क्षीरी ॥ ५८ ॥

सर्वत्रापि केन कृतमिति रोहक उत्तरे वक्तव्ये । रञ्जितहृदयो व्याहरत्यन्यदैतु मम पार्श्वे ॥ ५९ ॥

पर्वद्विकं दिनरात्री छायोष्णे छत्रनभसि पथोन्मार्गे । यानचरणे तथा स्नानमलिनकोऽन्यथाऽऽगच्छे ॥ ६० ॥

अमावस्यासन्धौ सूर्यास्ते शुद्धसन्ध्यायाम् । शिरसोपरिधृतचारणकछत्रको गण्डधारया ॥ ६१ ॥

ऊरणकारुढतनूः करस्पर्शविवर्जवारिकृतस्नानः । कुमारमृतिकाकरो राजद्वारे संप्राप्तः ॥ ६२ ॥

---

१. पब्बदुन रं० । 'पव्वदुगं' इति पाठोऽत्र संगतो भाति ।

मणिकणयभित्तिपसरंतकिरणउज्जोयमाणदिसिवलए । असरिसपोरिसनिज्जियपडिभडसुहडेहिं संकिन्ने ॥६३॥[1]

फलिहसिलायलनिम्मियनाणविहरयणकंतिविच्छुरिए । सीहासणे निविट्ठम्मि तम्मि जियसत्तुनरनाहे ॥६४॥

नियमइविहवविणिज्जियसुरगुरुमाहप्पवुद्धिविहवेसु । निस्सेसमंतिवग्गेसुभओपासे निविट्ठेसु ॥६५॥

तरवारिभिन्नदरियारिगयघडालद्धनिम्मलजसेण । धवलियभुवणब्भंतरनिरंतरासेसठाणेसु ॥६६॥

केऊर-मउड-कुंडलमऊहकयअमररायचावेसु । घोलिरनिम्मलमुत्तियहारविरायंतकंठेसु ॥६७॥

सेवासमयवियक्खणलक्खणपडिपुन्नपवरदेहेसु । पुरओ य पुहइपालेसु जहरिहं सन्निविट्ठेसु ॥६८॥

[2]उद्दंडदंडकोदंडकलियकरसुहडकोडिसंकिन्ने । निस्सेसरायउवणीयतुरय-सिंधुरसमाइन्ने ॥६९॥

करकलियदंडपहरणपयंडपडिहारसूइयपवेसो । पविसइ रायत्थाणे थिमियपयारो निंवाणाए ॥७०॥[3]

अह ऊसियकरदंसियकुमारमट्टियपहिट्ठनरनाहो । आसणदाणावसरम्मि पढियआसीसथुइवाओ ॥७१॥

गंधव्व-मुरवसद्दो मा सुव्वउ तुह नरिंद ! भवणम्मि । चंकम्मंतविलासिणिखलंतपयनेउररवेण ॥७२॥

अवरं च —

परमगओ पउरहओ परमोइयतुरय-रहवरपयारो । विलसिरसयणविपत्ती रिउसरिसो जयसु तं देव ॥७३॥

तत्तो संझासमए विसज्जियासेसराय-अत्थाणो । राया निउत्तपाहरियरोहओ सेज्जमारुहइ ॥७४॥

मग्गपरिस्समभावाओ निब्भरं रोहओ सुयइ जाव । ताव अइक्कंते जामिणीए पढमम्मि पहरम्मि ॥७५॥

मणिकनकभित्तीप्रसरत्किरणोद्योतमानदिग्वलये । असदृशपौरुषनिर्जितप्रतिभटसुभटैः संकीर्णे ॥ ६३ ॥

स्फटिकशिलातलनिर्मितनानाविधरत्नकान्तिविच्छूरिते । सिंहासने निविष्टे तस्मिञ्जितशत्रुनरनाथे ॥ ६४ ॥

निजमतिविभवविनिर्जितसुरगुरुमाहात्म्यबुद्धिविभवेषु । निःशेषमन्त्रिवर्गेषूभयपार्श्वे निविष्टेषु ॥ ६५ ॥

तलवारिभिन्नदीर्णारिगजघटालब्धनिर्मलयशसा । धवलितभुवनाभ्यन्तरनिरन्तराशेषस्थानेषु ॥ ६६ ॥

केयूर-मुकुट-कुण्डलमयूखकृतामरराजचापेषु । घूर्णितनिर्मलमौलिकहारविराजत्कण्ठेषु ॥ ६७ ॥

सेवासमयविचक्षणलक्षणप्रतिपूर्णप्रवरदेहेषु । पुरतश्च पृथिवीपालेषु यथार्हं सन्निविष्टेषु ॥ ६८ ॥

उदण्डदण्डकोदण्डकलितकरसुभटकोटिसङ्कीर्णे । निःशेषराजोपनीततुरग-सिंधुरसमाकीर्णे ॥ ६९ ॥

करकलितदण्डप्रहरणप्रचण्डप्रतिहारसूचितप्रवेशः । प्रविशति राजास्थाने स्तिमितप्रचारो नृपाज्ञया ॥ ७० ॥

अथोच्छ्रितकरदर्शितकुमारमृतिकाप्रहृष्टनरनाथः । आसनदानावसरे पठिताशीषस्तुतिवादः ॥ ७१ ॥

गांधर्वमुरवशब्दो मा श्रूयताम् तव नरेन्द्र ! भवने । चङ्क्रमद्विलासिनिस्खलत्पदनुपूररवेण ॥ ७२ ॥

अपरं च -

परमगजः प्रचूरहयः परमोदिततुरग-रथवरप्रचारः । विलसत्स्वजनविपत्ति रिपुसदृशो जय त्वं देव ! ॥ ७३ ॥

ततः सन्ध्यासमये विसर्जिताशेषराजास्थानः । राजा नियुक्तप्राहरिकरोहकः शय्यामारोहति ॥ ७४ ॥

मार्गपरिश्रमभावान्निर्भरं रोहकः स्वपिति यावत् । तावदतिक्रान्ते यामिन्यां प्रथमे प्रहरे ॥ ७५ ॥

---

१. भडपसरेहिं रं० । २. उद्दंडकंड रं० । ३. नृपाज्ञया ॥

जग्गसि रोहय ? जग्गामि सामि ! ता किं न देसि पडिवयणं ? । पभणइ किं पि हु चिंतामि देव ! किं तं ? ति सो आह ।७६।
अइयाउयरे परिवट्टुलाओ किल लिंडियाओ को कुणइ ? । रायाऽऽह भव्वमेयं ममावि चिंता इमा आसि ॥७७॥
पुच्छियमिमिणा रोहय ! जइ जाणसि ता कहेसु ता कत्तो ? संवट्टगवायाविद्धजढरजलणाओ ता देव ॥७८॥
बीए जामे जग्गाविओ वि जंपइ तमेव मणचिंतं । किं तं ? ति पुच्छिएऽसत्थपत्त-अग्गाण किं दीहं ? ॥७९॥
तुल्लाणि देव ! तइयम्मि पुच्छिओ चिंतयामि तं किं ? ति । खाडहिलारेहाणं सुक्किल-कालाण का बहुया ? ॥८०॥
अन्ने सरीर-पुच्छाण किं गुरुं ? उत्तरं दुवे तुल्ला । रयणीए चरिमजामे सुत्तो नो देइ पडिवयणं ॥८१॥
तो कंबियाए छित्तो भणियं सुत्तो न व ? त्ति तेणुत्तं । जग्गामि राय ! इयरह पाहरिओ केरिसो अहयं ? ॥८२॥
नवरं महई चिंता संजाया ता कहं पयंपेमि । सा केरिस ? त्ति रुसिऊण जंपियं पंच पिया ॥८३॥
कयर ? त्ति राय-वेसमण-रयग-चंडाल-विच्चुया देव । कहमिव ? नरवर ! भवओ लक्खणजोगाओ एएसिं ॥८४॥
सिट्ठाणमवणमसयाणसासणं पणइपोसणं जं ते । खत्तेण रक्खणमओ नज्जसि तं रायपुत्तो त्ति ॥८५॥
अलयाउरिसरिसपुरो नलकूवररूवसरिसकुमरपिया । अदरिद्दं कुणसि जणं पणयमओ वेसमणतणओ ॥८६॥
अवहरसि धणमसेसं महावराहाण दंडकरणेणं । वत्थाण मलं व जओ तुमं रयगज्जाओ सि ॥८७॥
पयईए दुद्धरिसो जं रिउवग्गस्स निग्गहं कुणसि । चंडालकोवसरिसो तं निव ! चंडालपुत्तो त्ति ॥८८॥
जं जग्गियं सुयंतं कंबीए पामरो व्व मममेवं । तोत्तेण तुयसि गलिमिव नायमओ विच्चुयस्स सुओ ॥८९॥

जागर्षि रोहक? जागर्मि स्वामिन्! तावत्किं न देहि प्रतिवचनम्? । प्रभणति किमपि खलु चिन्तयामि देव ! किमिति स आह ।७६।
अर्जिकोदरे परिवर्त्तुलाः किल लिण्डिकाः कः करोति ? । राजाऽऽह भव्यमेतन्ममापि चिन्तेमाऽऽसीत् ॥ ७७ ॥
पृष्टमनेन रोहक ! यदि जानासि तदा कथय ता कुतः ? । संवर्तकवाताविद्धजठरज्वलनतस्ता देव ! ॥ ७८ ॥
द्वितीये यामे जागरितोऽपि जल्पति तामेव मनचिन्ताम् । किं तामिति पृष्टे ऽश्वस्थपत्र-ऽग्राणां किं दीर्घम् ? ॥ ७९॥
तुल्यानि देव ! तृतीये पृष्टश्चिन्तयामि तं किमिति ? । खाडहिलारेखानां[१] शुक्ल-कालानां का बहुकाः ? ॥ ८० ॥
अन्ये शरीर-पृच्छयोः किं गुरुः ? उत्तरं द्वौ तुल्यौ । रजन्याश्चरिमयामे सुप्तो न ददाति प्रतिवचनम् ॥ ८१ ॥
तदा कम्बिकया स्पृष्टो भणितं सुप्तो न वेति तेनोक्तम् । जागर्मि राजन् । इतरथा प्राहरिकः कीदृशोऽहम् ॥ ८२ ॥
नवरं महती चिन्ता सज्जाता ता कथं प्रजल्पामि । सा कीदृशेति ? रुष्ट्वा जल्पितं तव पञ्च पितरः ॥ ८३ ॥
कतरा इति राजा-वैश्रमण-रजक-चण्डाल वृश्चिका देव ! । कथमिव ? नरवर ! भवतो लक्षणयोगादेतेषाम् ॥ ८४॥
शिष्टानामवनमसतानांशासनं प्रणतिपोषणं यत्ते । क्षात्रेण रक्षणमतो ज्ञायते त्वं राजपुत्र इति ॥ ८५ ॥
अलकापुरिसदृशपुरो नलकुबररुपसदृशकुमारपिता । अदरिद्रं करोषि जनं प्रणतमतो वैश्रमणतनयः ॥ ८६ ॥
अपहरसि धनमशेषं महापराधानां दण्डकरणेन । वस्त्राणां मलमिव यतस्ततस्त्वं रजकजातोऽसि ॥ ८७ ॥
प्रकृत्या दुधर्षो यद्रिपुवर्गस्य निग्रहं करोषि । चण्डालकोपसदृशस्त्वं नृप ! चण्डालपुत्र इति ॥ ८८ ॥
यज्जागरि सुप्तं कम्ब्या पामर इव मामेवम् । तोत्रेण तुदसि गलिमिव ज्ञातमतो वृश्चिकस्य सुतः ॥ ८९ ॥

---

१. 'खिसकोली' भाषायाम्

तम्मइविणिच्छयत्थं रहम्मि विणएण पुच्छिया जणणी । एएसिमूवरि तीए कहिओ सव्वेसिमहिलासो ॥९०॥
राया रइवीएणं धणओ तप्पडिमपूयफंसेणं । दोहलगभक्खणे विच्चुओ वि सेसाण दंसणओ ॥९१॥
तप्पभिइ पक्खवाओ रन्नो तम्मि महं समुप्पन्नो । संठाविओ य सव्वेसिमुवरि मंती मइगुणेण ॥९२॥
रन्नो मइविरहेणं जाणि असज्झाणि रायकज्जाणि । सव्वाणि ताणि सिद्धाणि निउणवुद्धी(ए) तम्मिलणे ॥९३॥
जओ भणियं-
"पूयप्फलेहिं न हु केवलेहिं नरनाह ! कीरए राओ । जा न मिलिया तह च्चिय निच्चं सच्चुन्नया पत्ता ॥९४॥"
अवरं च-
एगं हणेज्ज नो वा हणेज्ज मुक्को धणुद्धरेणमिसू[१] । बुद्धिमया पुण बुद्धी रट्ठं पि हणेज्ज निस्सिट्ठा ॥९५॥
चिंतामणि व्व रयणाणमुवरि मंतीणमुत्तमगुणेहिं । जियसत्तुरायरज्जे विरायए रोहओ मंती ॥९६॥
अह सो राया मंतिम्मि तम्मि संजायगरुयविस्संभो । निक्खित्तरज्जभारो सुहाइमुवभुंजइ विसंको ॥९७॥
तं किं पि जए पुन्नेहिं माणुसं मिलइ गुणमणिमहग्घं । अइवाहिज्जइ जम्मो वि जस्स साहिज्जएण सुहं ॥९८॥
एवं लोमसपणियाइएसु जूइयरमाइणो णेगे । पत्थुयवुद्धीए नरा विन्नेया समयकुसलेहिं ॥९९॥

भरताख्यानकं समाप्तम् ॥ १ ॥

तन्मतिविनिश्चयार्थं रहसि विनयेन पृष्टा जननी । एतेषामुपरि तया कथितः सर्वेषामभिलाषः ॥ ९० ॥
राजा रतिद्वितीयेन धनदस्तत्प्रतिमापूतस्पर्शेन । दोहदभक्षणे वृश्चिकोऽपि शेषाणां दर्शनतः ॥ ९१ ॥
तत्प्रभृति पक्षपातो राज्ञस्तस्मिन्महान्समुत्पन्नः । संस्थापितश्च सर्वेषामुपरि मंत्री मतिगुणेन ॥ ९२ ॥
राज्ञो मतिविरहेण यान्यासाध्यानि राजकार्याणि । सर्वाणि तानि सिद्धानि निपुणबुद्धिके तन्मिलने ॥ ९३ ॥
यतो भणितम् -
पूगफलै र्न खलु केवलै र्नरनाथ ! क्रियते रागः । या न मिलितास्तथा चैव नित्यं सचूर्णकाः पत्राः ॥ ९४ ॥
अपरं च -
एकं हन्यान्न वा हन्यान्मुक्तो धनुर्धरेण ईषुः । बुद्धिमता पुनर्बुद्धिः राष्ट्रमपि हन्यान्निःसृष्टा ॥ ९५ ॥
चिन्तामणिरिव रत्नानामुपरि मन्त्रीणामुत्तमगुणैः । जितशत्रुराजराज्ये विराजते रोहको मन्त्री ॥ ९६ ॥
अथ स राजा मन्त्रिणि तस्मिन्सञ्जातगुरुकविश्रम्भः । निक्षिप्तराज्यभारः सुखादिमुपभुनक्ति विशंकः ॥ ९७ ॥
तत्किमपि जगति पुण्यै र्मानुष्यं मिलति गुणमणिमहार्घ्यम् । अतिवाह्यते जन्मापि यस्य साहाय्येन सुखम् ॥ ९८ ॥
एवं लोमसप्रणितादिकेषु द्युतिकरादयोऽनेके । प्रस्तुतबुद्धया नरा विज्ञेयाः समयकुशलैः ॥ ९९ ॥

भरताख्यानकं समाप्तम् ॥ १ ॥

---

१. बाणः ।

इदानीं नैमित्तिकाख्यानकम् । तच्चैदम्-

कम्वि तहाविहरूयम्मि सन्निवेसम्मि सुत्थवासम्मि । कस्स वि य सिद्धनामस्स नंदणा दोन्नि जणयपिया ॥१॥
ते किं पि तेण सुत्ताइ पाढिया परमिमो विचिंतेइ । जह किं पि निमित्तमिमे जाणंति तओ भवे लट्ठं ॥२॥
तो नेमित्तियसत्थन्नुयस्स कस्स वि समप्पिया पिउणा । सिक्खंति नवरमेगस्स सिक्खियं परिणमइ सम्मं ॥३॥
बीयस्स पुणो न तहा अविणयभावा अहऽन्नदिवसम्मि । कट्ठाणमाणणत्थं पट्ठविया ते अरन्नम्मि ॥४॥
जंतेहिं तेहिं मग्गे दिट्ठाणि पयाणि हत्थिरूयस्स । एगेण भणियमेसो भायर ! हत्थी गओ पेच्छ ॥५॥
वीएण भणियमेसा हत्थिणिया काइयाए विन्नाया । अन्नं काणा एगम्मि चेव पासम्मि चरणाओ ॥६॥
अन्नं च उवरि इत्थी य अइहवा कह णु नज्जए एयं ? । रुक्खम्मि रत्तदसियाविलग्गणाओ य मुणियमिमं ॥७॥
अवरं च तीए गब्भो तत्थ वि से दारओ कहमिमं पि । नज्जइ ? सरीरचिंता दाहिणपयधरणिखुप्पणओ ॥८॥
ते जाव तयणुमग्गेण जंति तप्पच्चयत्थमभिउत्ता । ता सरतीरे सव्वं सच्चवियं तेहिं जह भणियं ॥९॥
एत्थंतरम्मि छायाए वीसमंताणमागया एगा । थेरी तेसि समीवे सिरसंठियनीरभरियघडा ॥१०॥
दट्ठूण पुत्तसमवयसमन्निए सुयसिणेहसंभमओ । देसंतरत्थपुत्तप्पउत्तिपुच्छापवन्नाए ॥११॥
भग्गो घडओ नीरं मिलियं नीरस्स सा उ सवियक्का । जावऽच्छइ (त) त्थमणा थेरी ता भणियमेगेणं ॥१२॥
जइ तज्जाए तज्जायमिइ वओ सच्चयं निमित्तस्स । ता भद्दे ! तुज्झ सुओ मओ मुहा किं विसाएण ? ॥१३॥

इदानीं नैमित्तिकाख्यानकम् । तच्चेदम् -

कस्मिंस्तथाविधरुपे सन्निवेशे सुस्थवासे । कस्यापि च सिद्धनाम्नो नन्दनौ द्वौ जनकप्रियौ ॥ १ ॥
तौ किमपि तेन सूत्रादि पाठितौ परममयं विचिन्तयति । यथा किमपि निमितमिमौ जानीतस्ततो भवेच्छोभनम् ॥ २ ॥
ततो नैमितिकशास्त्रज्ञस्य कस्यापि समर्पितौ पित्रा । शिक्षेते नवरमेकस्य शिक्षितं परिणमति सम्यक् ॥ ३ ॥
द्वितीयस्य पुन र्न तथाऽविनयभावादथान्यदिवसे । काष्टानामानयार्थं प्रस्थापितौ तावरण्ये ॥ ४ ॥
याद्भयां ताभ्यां मार्गे दृष्टानि पदानि हस्तिरुपस्य । एकेन भणितमेष भ्रात ! हस्ती गतः पश्य ॥ ५ ॥
द्वितीयेन भणितमेषा हस्तिनीका कायिक्या विज्ञाता । अन्यत्काणैकस्मिंश्चैव पार्श्वे चरणात् ॥ ६ ॥
अन्यच्चोपरि स्त्रीश्चाविधवा कथं नु ज्ञायत एतत् ? । वृक्षे रक्तदशिकाविलग्नाच्च मुणितमिदम् ॥ ७ ॥
अपरं च तस्या गर्भस्तत्रापि तस्या दारकः कथमिदमपि । ज्ञायते ? शरीरचिन्ता दक्षिणपदधरणिमज्जनतः ॥ ८ ॥
तौ यावत्तदनुमार्गेणयातस्तत्प्रत्यार्थमभियुक्तौ । तावत्सरस्तीरे सर्वं दृष्टं ताभ्यां यथा भणितम् ॥ ९ ॥
अत्रान्तरे छायायां विश्राम्ययोरागतेका । स्थविरी तयोः समीपे शिरस्संस्थितनीरभृतघटा ॥ १० ॥
दृष्ट्वा पुत्रसमवयःसमन्वितौ सुतस्नेहसम्भ्रमतः । देशान्तरस्थपुत्रप्रवृत्तिपृच्छाप्रपन्नायाः ॥ ११ ॥
भग्नो घटो नीरं मिलितं नीरस्य सा तु सवितर्का । यावदास्ते तत्रमना स्थविरी तावद्भणितमेकेन ॥ १२ ॥
यदि तज्जाते तज्जातमिति वचःसत्यकं निमित्तस्य । तावद्भद्रे ! तव सुतो मृतो मुधा किं विषादेण ? ॥ १३ ॥

वीएण भणिय मिलिया न होइ एसा निमित्तगयवाणी । ता जीवइ तुज्ज सुओ भद्दे ! गंतुं गिहे पेच्छ ॥१४॥

दट्ठूण तयं खणमेगमागया वच्छरू यगसणाहा । परिहाविऊण आणंदिऊण तुट्ठा गया सगिहं ॥१५॥

भणियं च भाउणा कह णु भाय ! विवरीयमेरिसं जायं ? । तज्जाए तज्जायं सच्चमिणे भणियमियरेण ॥१६॥

नीरं नीरे मिलियं मट्टीए मिम्मओ घडो मिलिओ । मायाए मिलइ पुत्तो एस जओ उज्जओ मग्गो ॥१७॥

मा कुणसु तं विसायं गुरुविसए मा पओसमुव्वहसु । गुरुणो वि जोग्गयाए कुणंति जीवे गुणाहाणं ॥१८॥

यत उक्तम्-

"अयोग्यस्य गुणाधानं विधातुं नैव पार्यते । लाक्षारसेन केनापि कर्पासः किमु रज्यते ॥१९॥"

तेण वि य विणयपुव्वं तहा समाराहिओ गुरू कह वि । जह नाणभायणं सो संजाओ गुरुपसायाओ ॥२०॥

एमेव अत्थसत्थाइएहिं जो कोइ नज्जइ पयत्थो । सो सव्वो वि हु मरिसउ विणयसमुत्थाए बुद्धीए ॥२१॥

॥ नैमित्तिकाख्यानकं समाप्तम् ॥ २ ॥

इदानीं कर्षकाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

अत्थि विसालविसप्पियसप्पायारं महंतरन्नं व । कुंडलवलयं नयरं सखाइयं चाइवंद्रं व ॥१॥

साहसिओ कूरमणो लोहियपाणी पभूयलोहिल्लो । परदव्वहरणचित्तो एगो चोरो वसइ तत्थ ॥२॥

सिंगारपिओ सिंगारसासणो मुणियसरससिंगारो । सिंगारसत्थपाढी सिंगारं चेव सद्दहइ ॥३॥

द्वितीयेन भणितं मिलिता न भवत्येषा निमित्तकृतयवाणी । तावज्जीवति तव सुतो भद्रे ! गत्वा गृहं पश्य ॥ १४ ॥

दृष्ट्वा तकं क्षणमेकमागता वत्सरुपकसनाथा । परिधाप्यानन्द्य तुष्टा गता स्वगृहम् ॥ १५ ॥

भणितं च भ्रात्रा कथं नु भ्रात ! विपरितमीदृशं जातम् ? । तज्जाते तज्जातं सत्यमिदं भणितमितरेण ॥ १६ ॥

नीरं नीरे मिलितं मृतिकायां मृन्मयो घटो मिलितः । मात्रा मिलति पुत्र एष यतो ऋजुको मार्गः ॥ १७ ॥

मा कुरु त्वं विषादं गुरुविषये मा प्रद्वेषमुद्वह । गुरवोऽपि योग्यतया कुर्वन्ति जीवे गुणाधानम् ॥ १८ ॥

यत उक्तम् -

अयोग्यस्य गुणाधानं विधातुं नैव पार्यते । लाक्षारसेन केनापि कर्पासः किमु रज्यते ॥ १९ ॥

तेनापि च विनयपूर्वं तथा समाराधितो गुरुःकथमपि । यथा ज्ञानभाजनं स सञ्जातो गुरुप्रसादात् ॥ २० ॥

एवमेवार्थशास्त्रादिकै यः कोपि ज्ञायते पदार्थः । स सर्वोऽपि खलु मृशतु विनयसमुत्थया बुद्धया ॥ २१ ॥

॥ नैमितिकाख्यानकं समाप्तम् ॥

इदानीं कर्षकाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम् -

अस्ति [1]विशालविसर्पितसप्राकारं महदरण्यमिव । कुण्डलवलयं नगरं [2]सखातिकं त्यागीवृन्दमिव ॥ १ ॥

साहसिकः क्रूरमना लोहितपाणिः प्रभूतलोभवान् । परद्रव्यहरणचित्त एकश्चौरोवसति तत्र ॥ २ ॥

शृङ्गारप्रियः शृङ्गारशासनो मुणितसरसशृङ्गारः । शृङ्गारशास्त्रपाठी शृङ्गारमेव श्रद्धाति ॥ ३ ॥

---

१. अरण्य पक्षे - विशाल विसर्पित्रसप्रचारम् । २. त्यागीवृन्द पक्षे - सक्षायिकम् ।

तथाहि-

लवणरसो व्व रसाणं पवरो चिंतामणि व्व रयणाणं । कप्पतरु व्व तरूणं सव्वेसिं रसाण सिंगारो ॥४॥

साहसियवओ सूरो रयणीए चोरिऊण परदव्वं । विलसइ देइ जहिच्छं परलोयावायनिरवेक्खो ॥५॥

भणइ य-

"अप्पणिया माया चेव होइ साहसधणाण वीराण । पुहइ व्व वीरभोज्जा लच्छी महिला य परकीया ॥६॥"

अह अन्नया य तेणं ईसरपासायभित्तिभायम्मि । पउमागारं खत्तं खणिउं नीसारियं दव्वं ॥७॥

रायाई पउरजणो पभायसमए समागओ तत्थ । उत्ताणियनयणजुओ पेच्छइ खत्तं पयंपइ य ॥८॥

सिंगारो च्चिय एगो सव्वेसु सिरोमणीयइ रसेसु । जं गुणरोरो चोरो पउमागारं खणइ खत्तं ॥९॥

तथा च केनचिदहमकारि-

"रसः शृङ्गार एवैकस्तं च बद्धुं यदि क्षमः । अहं वा कालिदासो वा प्रोच्यन्तां यद्यमत्सरः ॥१०॥"

तहा-

चोरस्स साहसमहोऽहो ! सिंगारप्पियत्तमप्पुव्वं । जं एरिसम्मि दुग्गे खत्तं दिण्णं सविन्नाणं ॥११॥

सो वि हु चोरो जणवायजाणणत्थं निगूहियायारो । हरिसिज्जंतो हियए निसुणंतो नियगुणपसंसं ॥१२॥

ण्हाओ कयबलिकम्मो पयडुब्भडविहियफारसिंगारो । विम्हइयजणसमूहे समुन्नओ नियइ नियखत्तं ॥१३॥

तथाहि -

लवणरस इव रसानां प्रवरश्चिन्तामणिरिव रत्नानाम् । कल्पतरुरिव तरुणा सर्वेषां रसानां शृङ्गारः ॥ ४ ॥

साहसिकव्रतः शूरो रजन्यां चोरयित्वा परद्रव्यम् । विलसति ददाति यथेच्छं परलोकापायनिरपेक्षः ॥ ५ ॥

भणति च -

अर्पणीया माया चैव भवति साहसधनानां वीराणाम् । पृथिवीव वीरभोग्या लक्ष्मी महिला च परकीया ॥ ६ ॥

अथान्यदा च तेनेश्वरप्रासादभितिभागम् । पद्माकारं क्षात्रं खनित्वा निःसारितं द्रव्यम् ॥ ७ ॥

राजादिपौरजनः प्रभातसमये समागतस्तत्र । उत्तानितनयनयुगः पश्यति क्षात्रं प्रजल्पति च ॥ ८ ॥

शृङ्गार एवैकः सर्वेषु शिरोमणीयते रसेषु । यद्गुणरोरश्चौरः पद्माकारं खनति क्षात्रम् ॥ ९ ॥

तथा-

चौरस्य साहसमहोऽहो ! शृङ्गारप्रियत्वमपूर्वम् । यदेतादृशे दुर्गे क्षात्रं दत्तं सविज्ञानम् ॥ ११ ॥

सोऽपि खलु चौरो जनवादजाननार्थं निगूहिताकारः । हृष्यमानो हृदये निशृण्वन्निजगुणप्रशंसाम् ॥ १२ ॥

स्नातः कृतबलिकर्मा प्रकटोद्भटविहितस्फारशृङ्गारः । विस्मापितजनसमूहे समुन्नतः पश्यति निजक्षात्रम् ॥ १३ ॥

इओ य-

चउवीसभेयभिन्नस्स सस्ससस्स(स्स) संभवणभूमी । भूमिवलयप्पसिद्धो धन्नउरगनामगो गामो ॥१४॥

तत्थऽत्थि [१]सत्थपयरोहिणीपिओ परमसस्सबहुवसहो । परिकलियहलो बलभद्दसरिसगो करिसगो एगो ॥१५॥

चउवीसं पुण धन्नाणि एयाणि-

धन्नाइं चउव्वीसं जव-गोहुम-वीहि-सालि-सट्ठीया । कोद्दव-अणुया-कंगू रालग-तिल-मुग्ग-मासा य ॥१६॥

अयसि-हिरमित्थ-तिउडग-निप्फाव-सिलिंद-रायमासा य । ईच्छू मसूर तुवरी कुलत्थ तह धन्नग-कलाया ॥१७॥

पत्थावं नाऊणं सव्वाणेयाणि ववइ धन्नाणि । निंदिणइ लुणइ गाहइ गिहम्मि पइसारए सम्मं ॥१८॥

केण वि पओयणेणं संपत्तो तम्मि चेव पत्थावे । गामाओ करिसगो सो सलहिज्जंतं सुणिय चोरं ॥१९॥

भणइ य भो भो ! किं सिक्खियस्स किर दुक्करं ? जमेएण । आजम्मं चिय खणियं खत्तं चिय पावकम्मेण ।२०।

सोऊणमत्तणो तं परिभवजयणं विरुद्धवयणं से । चिंतइ चोरो एसो विणासियव्वो मए पावो ॥२१॥

अह सो कम्मि वि विजणम्मि हक्किओ कीस निंदिओ हं ति । तुमए ? ता पुरिसो होसु संपयं मरसि तुममिण्हिं ।२२।

आयड्ढिय असिघेणुं भेसावइ जाव तेण ता भणियं । मा पहरसु होसु थिरो भद्द ! तुमं पेच्छ मह चेट्ठं ॥२३॥

पडयं पत्थरिऊणं मुट्ठिं भरिऊण वीहियाणं च । भणियमिमे किं समुहे परम्मुहे वंऽगुलंतरओ ॥२४॥

अंगुलदुगमंतरए काऊण खिवामि ? तह कए तुट्ठो । तेणुत्तं भद्द ! जणो सव्वो वि हु कुणइ अब्भत्थं ॥२५॥

इतश्च -

चतुर्विंशतिभेदभिन्नस्य शस्यस्य संभवनभूमिः । भूमिवलयप्रसिद्धो धन्यपुरनामको ग्रामः ॥ १४ ॥

तत्रास्ति सार्थपतिरोहिणीप्रियः परमशस्यबहुवृषभः । परिकलितहलो बलभद्रसदृशः कर्षक एकः ॥ १५ ॥

चतुर्विंशति पुन र्धान्यानि एतानि-

धान्यानि चतुर्विंशति र्यव-गोधुम-व्रीहि-शालि-सष्टिका । कोद्रवाणुका कङ्गु-रालक-तिल-मुद्ग-मासाश्च ॥ १६ ॥

अतसि-हीमंथ-त्रिपुटक-निष्पाव-शिलिन्द-राजमाषाश्च । इक्षु-मसूर-तुवरी कुलत्थस्तथा धान्यक-कलादाः ॥ १७ ॥

प्रस्तावं ज्ञात्वा सर्वाण्येतानि वपति धान्यानि । नि[२]न्दिनति लुनाति ग्राहयति गृहे प्रतिसारके सम्यक् ॥ १८ ॥

केनाऽपि प्रयोजनेन संप्राप्तस्तस्मिन्नेव प्रस्तावे । ग्रामात्कर्षकः स श्लाधमानं श्रुत्वा चौरम् ॥ १९ ॥

भणति च भो ! भो ! किं शिक्षितस्य किल दुष्करम् ? यदेतेन । आजन्ममेव खनितं क्षात्रमेव पापकर्मणा ॥ २० ॥

श्रुत्वाऽऽत्मनस्तत्परिभवजनकं विरुद्धवचनं तस्य । चिन्तयति चौर एष विनाशितव्यो मया पापः ॥ २१ ॥

अथ स कस्मिन्नपि विजने हक्कारितः कथं निंदितोऽहमिति । त्वया ? ततः पुरुषो भव संप्रति म्रियसे त्वमीदानीम् ॥२२॥

आकृष्यासिधेनुं भापयति यावत्तेन तावद्भणितम् । मा प्रहर भव स्थिरो भद्र ! त्वं पश्य मम चेष्टाम् ॥ २३ ॥

पटकं प्रस्तार्य मुष्टिं भृत्वा व्रीहिकाणां च । भणितमिमान् किं संमुखान् पराङ्मुखान् वाऽङ्गुलान्तरतः ॥ २४ ॥

अङ्गुलद्विकान्तरे कृत्वा क्षिपामि ? तथा कृते तुष्टः । तेनोक्तं भद्र ! जनः सर्वोऽपि खलु करोत्यभ्यस्तम् ॥ २५ ॥

---

१. सार्थपतिः । २. खेतरमां वावणी करता पहेला वधारानुं घास-पान वगेरे जे काढी नांखवामां आवे ते गुजरातीमां 'निंदण' कहेवाय छे.

हेरन्निया(इया) वि हु हिरन्नकाई मुणंति जं वत्थुं । कम्मयवुद्धीए तयं विलसियमिसओ[१] ववइसंति ॥२६॥

॥ कर्षकाख्यानकं समाप्तम् ॥

अधुना अभयाख्यानकमुच्यते । तच्चेदम्-

दाहिणभरहद्धरसारमणीवयणे विसेसयसमाणं । सिरिरायगिहं नयरं नयरंजियजणवयं आसि ॥१॥

नीहारधराधरसिहरसरिसउत्तुंगपवरपायारो । सहसकररहतुरंगमगमणक्खलणं जणइ जत्थ ॥२॥

पायारतलपरिट्ठियपरिहासंकंततारयुक्केरो । जत्थ रयणीसु रेहइ निम्मलमुत्ताहलभरो व्व ॥३॥

गयभासियं पि विगयं रायविहूणं विसिट्ठरायं पि । हयमइसामंतं पि हु पसिद्धसामंतमइरम्मं ॥४॥

देवउलधवलमाला निम्मलकलहोयकलसकयसोहा । सारयजलहरसिहरावलि व्व तडिसंजुया जत्थ ॥५॥

उन्नयपओहरभरो खणरुइरुइरो कलाविकयसोहो । जत्थ विलासिणिविसरो पाउससोहं समुव्वहइ ॥६॥

वरचित्तरयणजुत्तो सुजाणवत्तो सुहारसहिओ य । गुरुकमलासियहियओ नयरजणो जत्थ जलहि व्व ॥७॥

फलिहसिलामलकुट्टिमतलेसु पडिमागयाओ रमणीओ । पायालपुरंधीओ व्व जम्मि दीसंति लोएण ॥८॥

तम्मि पुरे परकुंजरकुंभत्थलखोणिखणणसीरसमो । समरसयंवरजयसिरिरमणीगहणेक्कदुल्ललिओ ॥९॥

सुकुमालपाणि-पाओ सारयरयणियरसरिसमुहछाओ । रइरमणरुइरकाओ नरराओ सिरिपसेणइओ ॥१०॥

जस्स रिउरमणिमाणसमज्झे पजलियपयावदवजलणो । लक्खिज्जइ दीहर-उण्हसासधूमप्पवाहेहिं ॥११॥

हैरणिकादिका अपि खलु हिरण्यकादीन् मुणन्ति यद्वस्तु । कर्मकबुद्धया तकं विलसितमृषयो व्यपदिशन्ति ॥ २६ ॥

॥ कर्षकाख्यानकं समाप्तम् ॥

अधुना अभयाख्यानकमुच्यते । तच्चेदम् -

दक्षिणभरतार्द्धरसारमणीवदने विशेषकसमानम् । श्रीराजगृहं नगरं नयरञ्जितजनपदमासीत् ॥ १ ॥

नीहारधराधरशिखरसदृशोतुङ्गप्रवरप्राकारः । सहस्रकररथतुरङ्गमगमनस्खलनं जनयति यत्र ॥ २ ॥

प्राकारतलपरिस्थितपरिखासङ्क्रान्ततारकोत्करः । यत्र रजनीषु शोभते निर्मलमुक्ताफलभर इव ॥ ३ ॥

गजभाषितमपि विगजं राजविहीनं विशिष्टरागमपि । हतमतिसामन्तमपि खलु प्रसिद्धसामन्तमतिरम्यम् ॥ ४ ॥

देवकुलधवलमाला निर्मलकलधौतकलशकृतशोभा । शारदजलधरशिखरावलिरिव तडित्संयुक्ता यत्र ॥ ५ ॥

उन्नतपयोधरभरः क्षणरुचिरुचिरः कलापिकृतशोभः । यत्र विलासिनिविसरः प्रावृट्शोभां समुद्वहति ॥ ६ ॥

वरचित्ररत्नयुक्तः सुयानपात्रः सुधारसहृदयश्च । गुरुकमलाश्रितहृदयो नगरजनो यत्र जलधिरिव ॥ ७ ॥

स्फटिकशिलाऽमलकुट्टिमतलेषु प्रतिमागता रमण्यः । पातालपुरन्ध्र्य इव यस्मिन्दृश्यन्ते लोकेन ॥ ८ ॥

तस्मिन्पुरे परकुञ्जरकुम्भस्थलक्षोणिखननशीरसमः । समरस्वयंवरजयश्रीरमणीग्रहणैकदुर्ललितः ॥ ९ ॥

सुकुमालपाणिपादः शारदरजनीकरसदृशमुखच्छायः । रतिरमणरुचिरकायो नरराजः श्रीप्रसेनजित् ॥ १० ॥

यस्य रिपुरमणीमानसमध्ये प्रज्वलितप्रतापदवज्वलनः । लक्ष्यते दीर्घोष्णश्वासधुम्रप्रवाहैः ॥ ११ ॥

---

१. ऋषयः ।

जस्स जयलच्छिलालसमणस्स अवमाणमसहमाण व्व । धोयकलहोयकंता कित्ती वच्चइ दिसिमुहेसु ॥१२॥
जस्स तुरंगमखुरखणियखोणिउड्डीणरेणुपूरेण । अंधारितो दिसिमुहसमेयबंभंडखंडउडं ॥१३॥
झलकंतकुंतविरइयविज्जुज्जोयप्पयासियदिसोहो । गंभीरसिंधुरघडागलगज्जियभरियभुवणयलो ॥१४॥
चलचवलधवलधयवडवलायपंतिप्पहासियदियंतो । सामंतमउडमणिकिरणफुरणकोदंडडंबरिओ ॥१५॥
दोघट्टथट्टसुंडापज्जंतपमुक्कसिक्कारासारो । गयकणयघड़ियघंटारणंतबप्पीहयकुडुंबो ॥१६॥
कारावितो आणं नीसेसनरेसराण विसएसु । खंधावारो वियरइ जलहरलीलं विडंबंतो ॥१७॥
तस्सऽत्थि पुन्नलायन्नधारिणी धारिणि त्ति विक्खाया । भज्जाऽणवज्जसज्जियसरस्स कामस्स केलिगिहं ॥१८॥
निस्सेसुकुमरसारो तस्सऽत्थि समग्गसत्तुसंहारो । रूवविणिज्जियमारो सेणियनामो वरकुमारो ॥१९॥
रज्जपमुहं समप्पिय भारं मंतीण सुद्धबुद्धीणं । केलीविणोयवसिओ गमेइ कालं पुहइवालो ॥२०॥
तथा हि-
कइया वि कुणइ कुंजरकेलिं सामंत-मंतिसंजुत्तो । अप्फालंतो कामिणिपीणत्थणथूलकुंभयडं ॥२१॥
कइय वि तरलतुरंगमवग्गणवसतुट्टमोत्तियकलावो । पगलंतघम्मसलिलो व्वकुणइ हयवाहियालीओ ॥२२॥
अह अन्नया कयाई रयणीए पच्छिमम्मि जामम्मि । सुहसंबुद्धो चिंतिउमारद्धो नरवई एवं ॥२३॥
मज्झ कुमराण मज्झे होही को धरधुराधरणधीरो । सेसो व महाभोगो चूडामणिरंजियसिरग्गो ॥२४॥

यस्य जयलक्ष्मीलालसमनसोऽवमानमसहमान इव । धौतकलधौतकान्ता कीर्ति र्व्रजति दिङ्मुखेषु ॥ १२ ॥
यस्य तुरङ्गमखुरखनितक्षोण्युड्डीनरेणुपुरेण । अन्धकारितं दिङ्मुखसमस्तब्रह्माण्डभाण्डखण्डपूटम् ॥ १३ ॥
दीप्यमान[1]कौन्तविरचितविद्युदुद्योतप्रकाशितदिगौघः । गम्भीरसिन्धुरघटागलगर्जितभृतभुवनतलः ॥ १४ ॥
चलचपलधवलध्वजपटबलाकपङ्क्तिप्रभाषितदिगन्तः । सामन्तमुकुटमणिकिरणस्फुरणकोदण्डडम्बरितः ॥ १५ ॥
हस्तिसमूहशुण्डापर्यन्तमुक्तसीत्कारसारः । गजकनकघटितघण्टारणच्चातककुटुम्बः ॥ १६ ॥
कारयन्नाज्ञां निःशेषनरेश्वराणां विषयेषु । स्कंधावारो विचरति जलधरलीलां विडम्बयन् ॥ १७ ॥
तस्यास्ति पुण्यलावण्यधारिणी धारिणीति विख्याता । भार्याऽनवद्यसर्जितशरस्य कामस्य केलिगृहम् ॥ १८ ॥
निःशेषकुमारसारस्तस्यास्ति समग्रशत्रुसंहारः । रुपविनिर्जितमारः श्रेणिकनामा वरकुमारः ॥ १९ ॥
राज्यप्रमुखं समर्प्य भारं मन्त्रिणाम् शुद्धबुद्धीनाम् । केलिविनोदोषितो गमयति कालं पृथिवीपालः ॥ २० ॥
तथाहि ।
कदाऽपि करोति कुञ्जरकेलिं सामन्तमन्त्रिसंयुक्तः । आस्फालयन्कामिनिपीनस्तनस्थूलकुम्भतटम् ॥ २१ ॥
कदाऽपि तरलतुरङ्गमवल्गनवशत्रुटितमौक्तिककलापः । प्रगलत्घर्मसलिल इव करोति हयवाह्यालीकः ॥ २२ ॥
अथान्यदा कदाचिद्ररजन्यां पश्चिमे यामे । सुखसंबुद्धश्चिन्तयितुमारब्धो नरपतिरेवम् ॥ २३ ॥
मम कुमाराणां मध्ये भविष्यति को धराधुराधरणधीरः । शेष इव महाभोगश्चूडामणिरञ्जितशिराग्रः ॥ २४ ॥

---

१. झलक्क (दे.) संस्कृतमां दीप्यमान अर्थ-'झगमगतुं' भाषा ।

इय चिंतऊण सिंधुर-तुरंगमा-ऽऽउज्ज-रहवराइन्नं । पज्जालावइ सयलं चउद्दिसिं जिन्नसालगिहं ॥२५॥

तं नियवि जलणजालाकरालियं भणइ भूवई कुमरे । रे रे ! जो जं गिण्हइ दिन्नं तं तस्स सव्वं पि ॥२६॥

रायाएसं निसुणिउ तडयडफुट्टंतवंससंदोहे । कड्ढंति पलित्ते पविसिऊण कुमरा गइंदाई ॥२७॥

उल्लालियकरपेरंतमुक्कसिक्कारछडाकडप्पेहिं । जलणं विज्झावेंतो व्व कड्ढिओ केणवि करिंदो ॥२८॥

अवरेण पवरमाणिक्कचक्ककिरिणोहरंजियदियंतो । संगहिओ पयलंतो व्व रहवरो रायकुमरेण ॥२९॥

जालाजडालजलणं पविलोइय तरलतारओ तुरियं । पज्जलियजलणभीओ व्व कड्ढिओ केण वि तुरंगो ॥३०॥

सेणियकुमरेण पुणो पविसिय पजलंतमंदिरस्संतो । गहिया भिंभऽभिहाणा दक्खेण झड त्ति जयढक्का ॥३१॥

तं मच्छरेण करकलियभिंभमवलोइउं [१]इयरकुमरा । उवहासेण पयंपंति सेणियं भिंभसारो त्ति ॥३२॥

तं दट्ठूण नरिंदेण चिंतियं सेणिएण साहु कयं । पढममिणं रज्जंगं संगहिया जेण जयढक्का ॥३३॥

अह अन्नया परक्कम-चायपरिक्खणकए कुमाराण । काराविय परमन्नं भोएइ निवो नियकुमारे ॥३४॥

परमन्नं परिवेसिय निवेण लिल्लिक्किओ सुणयवग्गो । सम्मुहमागच्छंतं तं नियवि पलाइया इयरे ॥३५॥

सेणियकुमरो इयराणमुभयपासट्ठिए गहियथाले । सुणयाण खिवइ जेमेइ अप्पणा भयविमुक्कमणो ॥३६॥

तव्वइयरमवलोइय चिंतेइ पमोइओ पुहइपालो । एसो उदार-वीरो त्ति कायरा इयरकुमरा मे ॥३७॥

अवरसमयम्मि राया बुद्धिपरिक्खणकए कुमाराण । मुद्देइ गणियलड्डुयकरंडए सलिलकलसे य ॥३८॥

इति चिन्तयित्वा सिन्धुर-तुरङ्गमाऽऽयुध-रथवराकीर्णम् । प्रज्वालयति सकलं चतुर्दिशं जीर्णशालगृहम् ॥ २५ ॥

तं दृष्ट्वा ज्वलनज्वालाकरालितं भणति भूपतिः कुमाराः । रे रे ! यो यद्गृह्णाति दत्तं तत्तस्य सर्वमपि ॥ २६ ॥

राजादेशं निश्रुत्य तडतडस्फुटद्वंशसंदोहे । कर्षयन्ति प्रदीप्ते प्रविश्य कुमारा गजेन्द्रादीन् ॥ २७ ॥

उल्लालितकरपर्यन्तमुक्तसीत्कारछटाकटप्रैः । ज्वलनं विध्यापयन्निव कृष्टः केनापि करीन्द्रः ॥ २८ ॥

अपरेण प्रवरमाणिक्यचक्रकिरणौघरञ्जितदिगन्तः । संगृहीतप्रचालयन्निव रथवरो राजकुमारेण ॥ २९ ॥

ज्वालाजटालज्वलनं प्रविलोक्य तरलतारकस्त्वरितम् । प्रज्वलितज्वलनभीत इव कृष्टः केनापि तुरङ्गः ॥ ३० ॥

श्रेणिककुमारेण पुनः प्रविश्य प्रज्वलन्मंदिरस्यान्तः । गृहीता भिम्भाभिधाना दक्षेण झटिति जयढक्का ॥ ३१ ॥

तं मत्सरेण करकलितभिम्भमवलोक्येतरकुमाराः । उपहास्येन प्रजल्पन्ति श्रेणिकं भिम्भसार इति ॥ ३२ ॥

तं दृष्ट्वा नरेन्द्रेण चिन्तितं श्रेणिकेन साधुकृतम् । प्रथममिदं राज्याङ्गं संगृहीता येन जयढक्का ॥ ३३ ॥

अथान्यदा पराक्रमत्यागपरीक्षणकृते कुमाराणाम् । कारितं परमान्नं भोजयति नृपो निजकुमारान् ॥ ३४ ॥

परमान्नं परिवेश्य नृपेण [२]आकारितः शुनकवर्गः । सम्मुखमागच्छन्तं तं दृष्ट्वा पलायिता इतरे ॥ ३५ ॥

श्रेणिककुमार इतरेषामुभयपार्श्वस्थितान्गृहीतस्थालान् । शुनकेभ्यः क्षिपति जेमत्यात्मना भयविमुक्तमनाः ॥ ३६ ॥

तद् व्यतिकरमवलोक्य चिन्तयति प्रमुदितः पृथिवीपालः । एष उदार-वीर इति कातरा इतरकुमारा मे ॥ ३७ ॥

अपरसमये राजा बुद्धिपरीक्षणकृते कुमाराणाम् । मुद्राति गणितमोदककरण्डकान् सलिलकलशांश्च ॥ ३८ ॥

---

१. पवरकुमरा-रं० । २. 'ललकार्यो' इति भाषायाम् ।

हक्कारिउं तओ ते भणेइ वच्छा ! सबुद्धिविहवेण । मुद्दमभंजिय भुंजेह मोयगे पियह सलिलं पि ॥३९॥
एवं वुत्ता नियबुद्धिगव्विया वि य उवायमलभंता । ते छुह-पिवाससोसियगत्ता दीणत्तमणुपत्ता ॥४०॥
सेणियकुमरेण पुणो घेत्तुं पगलंतकलसबिंदुजलं । धुणिउं करंडए मोयगाण चूरीएँ भोयविया ॥४१॥
तयणंतरं कुमारे विविहविणोयप्पसंगवक्खिते[१] । पासित्तु नरवरिंदो वाहरिउं पुच्छई एवं ॥४२॥
मुद्दाभंगं काऊण मोयगा भक्खिया कइ ? कहेह । एवं वुत्ता राएण ते पुणो विन्नवंति अओ ॥४३॥
ताय ! नियगणिय-मुद्दियमोयगसंखं समुद्दकलसे य । परिभाविऊण कइ भक्खिय ? त्ति दोसं पयासेह ॥४४॥
इय भणिए भूवालो संभालइ जा तहेव तं सव्वं । पुच्छइ य पुणो कुमरे कहेह जहवत वुत्तंतं ॥४५॥
तो अक्खिओ समग्गो वि वइयरो तेहिं रायपायाणं । जह भिंभसारकुमरेण भोइया नियबुद्धिए ॥४६॥
इय निसुणिऊण सेणियमइविहवं विम्हिओ महाराओ । चिंतेइ जहा जुत्तो एसो रज्जाहिसेयस्स ॥४७॥
नवरं जइ सपसायं एयं पेच्छामि ता न संदेहो । सव्वे वि य मिलिऊणं वावाइस्संति कुमरमिमं ॥४८॥
संपइ अलीढभावो एयस्स पराभवं पयासेमि । रज्जमयम्मि नियमा इमस्स काहामि अहिसेयं ॥४९॥
तो तस्स रक्खणकए करेइ राया पसायमियराण । कुमराण तुरय-रहवर-वारण-आभरणनियरेण ॥५०॥
नियअंगरक्खपुरिसे वाहरिऊणं नरेसरो भणइ । रक्खेयव्वो कुमरो अलक्खिएहिं अवायाण ॥५१॥
इयराण गुरुपसायं निएवि चिंतेइ नियमणे कुमरो । पेच्छ अहं ताएण वि जेट्ठो वि जहा पराभूओ ॥५२॥

आकार्य ततस्तान् भणति वत्साः ! स्वबुद्धिविभवेन । मुद्रा[२]मभङ्क्त्वा भुङ्ग्ध्वं मोदकान् पिबत सलिलमपि ॥ ३९ ॥
एवमुक्ता निजबुद्धिगर्विता अपि चोपायमलभमाणाः । ते क्षुधा-पिपासाशोषितगात्रा दीनत्वमनुप्राप्ताः ॥ ४० ॥
श्रेणिककुमारेण पुनर्गृहीत्वा प्रगलत्कलशबिन्दुजलम् । धुनयित्वा करण्डकान्मोदकानां चूर्णेन भोजिताः ॥ ४१ ॥
लदनन्तरं कुमारान् विविधविनोदप्रसङ्गव्याक्षिप्तान् । दृष्ट्वा नरवरेन्द्रो व्याहृत्य पृच्छत्येवम् ॥ ४२ ॥
मुद्राभङ्गं कृत्वा मोदका भक्षिताःकथं ? कथयत । एवमुक्ता राज्ञा ते पुनर्विज्ञापयत्यतः ॥ ४३ ॥
तात ! निजगणितमुद्रितमोदकसंख्यां समुद्रकलशांश्च । परिभाव्य कथं भक्षितमिति दोषं प्रकाशध्वम् ॥ ४४ ॥
इति भणिते भूपालः सम्भालयति यावत्तथैव तत्सर्वम् । पृच्छति च पुनः कुमारान् कथयत यथावृत्तं वृत्तान्तम् ॥ ४५ ॥
तदाऽऽख्यातः समग्रोऽपि वृतान्तस्तै राजपादानाम् । यथा भिम्भसारकुमारेण भोजिता निजकबुद्ध्या ॥ ४६ ॥
इति निश्रुत्य श्रेणिकमतिविभवं विस्मितो महाराजा । चिन्तयति यथा युक्त एष राज्याभिषेकस्य ॥ ४७ ॥
नवरं यदि सप्रसादमेनं पश्यामि तावन्न संदेहः । सर्वेऽपि च मिलित्वा व्यापादिष्यन्ति कुमारमेनम् ॥ ४८ ॥
संप्रत्यलीढभाव एतस्य पराभवं प्रकाशयामि । राज्यसमये नियमैतस्य करिष्याम्यभिषेकम् ॥ ४९ ॥
ततस्तस्य रक्षणकृते करोति राजा प्रसादमितराणाम् । कुमाराणां तुरग-रथवर-वारणाभरणनिकरेण ॥ ५० ॥
निजाङ्गरक्षपुरुषान् व्याहृत्य नरेश्वरो भणति । रक्षितव्यः कुमारोऽलक्षितैरपायेभ्यः ॥ ५१ ॥
इतरेषां गुरुप्रासादं दृष्ट्वा चिन्तयति निजमनसि कुमारः । पश्याहं तातेनापि ज्येष्ठोऽपि यथा पराभूतः ॥ ५२ ॥

---

१. विक्खित्ते-रं० । २. उपर लगावेल मुद्राने तोड्या विना ।

अवमाणमहादुहदुहियमाणसो माणगुणगरिट्ठो वि । गुरुसोयजलणजालाकरालिओ गमइ तद्दियहं ।।५३।।
मज्झ नियंतस्स कहं कुमरो अवमाणिओ ? त्ति रत्ततणू । पगलंतअंसुजालो मित्तो अद्दंसणीहूओ ।।५४।।
जासुयणरायरत्ता सिणिद्धतारा कुमारअवमाणं । पेच्छिय सुरसरणिठिया सइ व्व विलयं गया संझा ।।५५।।
राएण [1]कइमजुत्तं सेणियकुमरोऽवमाणिओ जमिह । अजसपसरो व्व भुवणे वित्थरिओ तिमिरपब्भारो ।।५६।।
अवमाणजलणजालाकरालियं सेणियं नियकरेहिं । निव्वविउं व विचिंतिय समुग्गओ सिसिरकिरणो वि ।।५७।।
तम्मि समयम्मि कुमरो महंतअवमाणपूरियसरीरो । चिंतेइ पेच्छ ताएण न गणिओ तिणसमो वि अहं ।।५८।।
ता किं करेमि संपइ ? माणं चइउं किमित्थ चिट्ठामि ? । अहवा उत्तमसत्ताण माणमुयणं महादोसो ।।५९।।
जम्हा गुणाण मूलं माणो पुरिसाण वीरचित्ताण । परदेसे वि न पावंति परिभवं जेण संजुत्ता ।।६०।।
अवमाणिया वि जे नियगिहं पि न चयंति हीणमाणधणा । अभिमाणगुणविहूणा साणसमाण व्व ते नियमा ।।६१।।
वियडुब्भडभिउडिभिडंतसुहडकोदंडडंबरे वि रणे । जइ [2]अपरिमलियमाणा सुयणा ता किं न पज्जत्तं ? ।।६२।।
अवि चलइ धरणिवीढं रइकेलिविसंठुलस्स फणिवइणो । अभिमाणं माणघणा मणयं पि मुयंति न तहा वि ।।६३।।
अवि करवालकरालियरणंगणे कप्परिंति ससरीरं । न सहंति सयणविरइयपराभवं पोरिसेक्करसा ।।६४।।
ता उद्दालेमि सिरिं करवालबलेण अक्कमिय तायं ।। हा हा ! न जुत्तमेयं उत्तमवंसप्पसूयाणं ।।६५।।
ता वच्चामि विएसं ति चिंतिउं माणसाहससणाहो । गमणेक्कबद्धबुद्धि समुट्ठिओ सेणियकुमारो ।।६६।।

अपमानमहादु:खदु:खितमानसो मानगुणगरिष्ठोऽपि । गुरुशोकज्वलनज्वालाकरालितो गमयति तद्दिवसम् ।। ५३ ।।
मम पश्यत: कथं कुमारोऽपमानित: ? इति रक्ततनू: । प्रगलदंशुजालो मित्रोऽदर्शनीभूत: ।। ५४ ।।
जपासुमनरागरक्ता स्निग्धतारा कुमारापमानम् । दृष्ट्वा सुरसरणिस्थिता सतीव विलयं गता सन्ध्या ।। ५५ ।।
राज्ञा कृतमयुक्तं श्रेणिककुमारोऽपमानितो यदिह । अयश:प्रसर इव भुवने विस्तरितस्तिमिरप्राग्भार: ।। ५६ ।।
अपमानज्वलनज्वालाकरालितं श्रेणिकं निजकरै: । निर्वापितुमिव विचिन्त्य समुद्गत: शिशिरकिरणोऽपि ।। ५७ ।।
तस्मिन्समये कुमारो महदपमानपूरितशरीर: । चिन्तयति पश्य तातेन न गणितस्तृणसमोऽप्यहम् ।। ५८ ।।
तत: किं करोमि संप्रति ? मानं त्यक्त्वा किमत्र तिष्ठामि ? अथवोत्तमसत्वानां मानमुञ्चनं महादोष: ।। ५९ ।।
यस्माद्गुणानां मूलं मान: पुरुषाणां वीरचित्तानाम् । परदेशेऽपि न प्राप्नुवन्ति परिभवं येन संयुक्ता: ।। ६० ।।
अपमानिता अपि ये निजगृहमपि न त्यजन्ति हीनमानधना: । अभिमानगुणविहीना: श्वानसमाना इव ते नियमा ।।६१।।
विकटोद्भटभृकुटिभिडन्तसुभटकोदण्डडम्बरेऽपि रणे । यद्यपरिमलिनमाना: सुजनास्तावत्किं न पर्याप्तम् ? ।। ६२।।
अपि चलति धरणिपृष्टं रतिकेलिविसंस्थुलस्य फणिपते: । अभिमानं मानधना मनागपि मुञ्चन्ति न तथाऽपि ।।६३।।
अपि करवालकरालितरणाङ्गणे कर्तयन्ति स्वशरीरम् । न सहन्ते स्वजनविरचितपराभवं पौरुषैकरसा: ।। ६४ ।।
तत आछिनद्मि श्रियं करवालबलेनाऽऽक्राम्य तातम् । हा हा ! न युक्तमेतदुत्तमवंशप्रसूतानाम् ।। ६५ ।।
ततो वव्रामि विदेशमिति चिन्तयित्वा मानसाहससनाथ: । गमनैकबद्धबुद्धि: समुत्थित: श्रेणिककुमार: ।। ६६ ।।

---

१. कृतमयुक्तम् । २. गलिय. रं० ।

रेहंतरयणहारो विरइयवरवीरपुरिससिंगारो कराकरकलियरिउवियारणरुहिरारुणकूरकरवालो ॥६७॥
वंचियनियपरिवारो दूरं परिहरियपुरिससंचारो । नीहरिओ नयराओ रयणीए तुरियपहरम्मि ॥६८॥
जाव न झिज्जइ अरुणोरुकिरणपब्भारपेरिया रयणी । अक्कंतनयरपरिसरधरवीढो ता कुमारो वि ॥६९॥
मा होउ मग्गदोसो तमभरपरिपूरियम्मि मग्गम्मि । कुमरस्स गमणविग्घं ति चिंतिउं अवगया रयणी ॥७०॥
सुकुमारचरणजुयलं पयचारेणं महीए गच्छंतं । कुमरं दट्ठुमसत्तो सुयणो व्व ससी अवक्कंतो ॥७१॥
किह वच्चइ ? त्ति दट्ठुं दिणेसरो उदयगिरिवरारूढो । जणयावमाणदुहभारपूरियं सेणियकुमारं ॥७२॥
तो पुहइपालपेसियपच्छन्नपयट्टपुरिसनियरेहिं । वच्चइ अलक्खिएहिं अणुगम्मंतोऽभिमाणधणो ॥७३॥
नयर-पुर-सरिय-गरिवर-कंदर-वरपरिसरे पलोयंतो । गच्छंतो संपत्तो कमेण बिन्नायडं नयरं ॥७४॥
तम्मि मणोहरगोउर-चच्चर-रत्थामुहे निरिक्खंतो । भद्दाभिहाणसेट्ठिस्स आवणे गंतुमुवइट्ठो ॥७५॥
तो तस्स पुव्वपुन्नाणुभावओ सिट्ठिणा बहु विढत्तं । अहवा उत्तमसन्नेज्झभावओ किन्न कल्लाणं ? ॥७६॥
दट्ठूण तं कुमारं सिट्ठी तुट्ठो मणम्मि चिंतेइ । जं अज्ज मए सुविणो दिट्ठो रयणीए विरमम्मि ॥७७॥
करि-मयर-कुलिस-विद्दु म-राजीव-पवित्तचक्कपवरपओ । रयणायरो व्व पुरिसो मह धूयं किर समुव्वूढो ॥७८॥
सव्वंगलक्खणधरो स एव एसो त्ति चिंतिउं सेट्ठी । पभणइ सुपुरिस ! तुव्मे इह नयरे कस्स पाहुणयो ? ॥७९॥
तो तेण ताय ! तुम्हाण पभणिए सेट्ठिणा निययभवणे । नेऊण ण्हाण-आसणपुरस्सरं भोइ[१]ओ विहिणा ॥८०॥

राजमानरत्नहारो विरचितवरवीरपुरुषशृङ्गारः । करकलितरिपुविदारणरुधिरारुणक्रूरकरवालः ॥ ६७ ॥
वञ्चितनिजपरिवारो दूरं परिहृतपुरुषसञ्चारः । निसृतो नगराद्रजन्यां तुर्यप्रहरे ॥ ६८ ॥
यावन्न क्षीयतेऽरुणोरुकिरणप्राग्भारप्रेरिता रजनी । आक्रान्तनगरपरिसरधरापीठस्तावत्कुमारोऽपि ॥ ६९ ॥
मा भवतु मार्गदोषस्तमोभरपरिपूरिते मार्गे । कुमारस्य गमनविघ्नमिति चिन्तयित्वाऽपगता रजनी ॥ ७० ॥
सुकुमारचरणयुगलं पदचारेण मह्यां गच्छन्तम् । कुमारं द्रष्टुमसक्तः सुजन इव शश्यपक्रान्तः ॥ ७१ ॥
कथं व्रजतीति ? द्रष्टुं दिनेश्वर उदयगिरिवरारुढः । जनकापमानदुःखभारपूरितं श्रेणिककुमारम् ॥ ७२ ॥
तदा पृथिवीपालप्रेषितप्रच्छन्नप्रवृत्तपुरुषनिकरैः । व्रजत्यलक्षितैरनुगम्यमानोऽभिमानधनः ॥ ७३ ॥
नगर-पुर-सरिद्गिरिवर-कंदर-वरपरिसरान् प्रलोकयन् । गच्छन्संप्राप्तःक्रमेण बेन्नातटं नगरम् ॥ ७४ ॥
तस्मिन्मनोहरगोपूर-चत्वर-रथ्यामुखान्निरीक्षमाणः । भद्राभिधानश्रेष्ठिन आपणे गत्वोपविष्टः ॥ ७५ ॥
तदा तस्य पूर्वपुण्यानुभावाच्छ्रेष्ठिना बह्वर्जितम् । अथवोत्तमसान्निध्यभावात्किन्नकल्याणम् ? ॥ ७६ ॥
दृष्ट्वा तं कुमारं श्रेष्ठिस्तुष्टो मनसि चिन्तयति । यदद्य मया स्वप्नो दृष्टो रजन्यां विरामे ॥ ७७ ॥
करि-मकर-कुलिश-विद्रुम-राजीव-पवित्रचक्रप्रवरपदः । रत्नाकर इव पुरुषो मम दुहितरं किल समुद्वोढः ॥ ७८ ॥
सर्वाङ्गलक्षणधरः स एवेष इति चिन्तयित्वा श्रेष्ठी । प्रभणति सत्पुरुष ! यूयमिहनगरे कस्य प्राघूर्णकः ? ॥ ७९ ॥
तदा तेन तात ! युष्माकं प्रभणिते श्रेष्ठिना निजभवने । नीत्वा स्नानाऽऽसनपुरस्सरं भोजितो विधिना ॥ ८० ॥

---

१. भोइओ पुरिसो-रं० ।

कइया वि भणइ सेट्ठी कुमार ! जइ वऽणुचिया तुह सुनंदा । वणियदुहिय त्ति तह वि हु सुविणयकहियं विवाहेसु ॥८१॥

तं निसुणिऊण कुमरो जलगब्भगभीरजलहरसरेण । वज्जरइ दसणकिरिणोहपूरियासेसदिसिचक्को ॥८२॥

अमुणियकुलक्कमाणं अपरिक्खियसील-नय-सहावाणं । तायऽम्हाणं कन्नं वियरंतो मुणसि तं चेव ॥८३॥

तो भणइ भद्दसेट्ठी कुमार ! तुह लक्खणाणि अक्खंति । पुहईपसिद्धउत्तमकुलक्कमं खत्तवंसस्स ॥८४॥

एवं भणिऊण पमोयपसरपरिपूरिओ तओ सेट्ठी । कारावेइ सुनंदाए पाणिगहणं कुमारस्स ॥८५॥

उव्वूढजोव्वणाए बिंबाहरहसियपउमरायाए । उवभुंजइ विसयसुहं कुमरो सद्धिं सुनंदाए ॥८६॥

अह अन्नया सुनंदा सुविणं दट्ठूण कहइ कुमरस्स । जह अज्जंउत्त ! एसो अज्ज मए सुविणओ दिट्ठो ॥८७॥

रेहंतपुक्खरकरो सियदसणो दाणसंजुओ भद्दो । पियवारणो पविट्ठो तुमं व मह वयणकुहरम्मि ॥८८॥

तं सोऊण कुमारो पभणइ हरिणच्छि ! तुज्झ वरकुमरो । संभविही तो हरिसियहियया सा गब्भमुव्वहइ ॥८९॥

अह अन्नया कुमारो तीए समं जाव कीलइ जहिच्छं । ता नियइ नियजणयस्स मंतिणो तत्थ संपत्ते ॥९०॥

धरविलुलियसिरकमला कमजुयलं पणमिऊण कुमरस्स । आबद्धपाणिपउमा सप्पणयं ते भणंति इमं ॥९१॥

हक्कारणाय तुम्हाण पेसिया पुहइसामिणा अम्हे । ता रायपायपंकयमल्लियह कुमार ! अवियप्पं ॥९२॥

बहुमन्निऊण मंतीण विणयवयणाणि तक्खणं कुमरो । जणयचरणावलोयणसमुस्सुओ पभणइ सुनंदं ॥९३॥

सुयणु ! मह जणयलेहो समुस्सुओ ता अहं गमिस्सामि । तुमए पुण ससरीरं पालेयव्वं पयत्तेणं ॥९४॥

कदाऽपि भणति श्रेष्ठी कुमार ! यदि वानुचिता तव सुनन्दा । वणिग्दुहितेति तथापि खलु सुविनयकथितं विवाहय ॥८१॥

तन्निश्रुत्य कुमारो जलगर्भगम्भीरजलधरस्वरेण । कथयति दशनकिरणौघपूरिताशेषदिक्चक्रः ॥ ८२ ॥

अमुणितकुलक्रमानपरीक्षितशीलनयस्वभावान् । तात ! अस्मान्कन्यां वितरयन्मुणसि त्वमेव ॥ ८३ ॥

तदा भणति भद्रश्रेष्ठी कुमार ! तव लक्षणान्याख्यन्ति । पृथिवीप्रसिद्धोत्तमकुलक्रमं क्षात्रवंशस्य ॥ ८४ ॥

एवं भणित्वा प्रमोदप्रसरपरिपूरितस्ततः श्रेष्ठी । कारयति सुनन्दायाः पाणिग्रहणं कुमारस्य ॥ ८५ ॥

उद्वोढयौवनाया बिम्बाधरहसितपद्मरागायाः । उपभुनक्ति विषयसुखं कुमारः सार्धं सुनन्दायाः ॥ ८६ ॥

अथान्यदा सुनन्दा स्वप्नं दृष्ट्वा कथयति कुमारस्य । यथाऽऽर्यपुत्र ! एषोऽद्य मया स्वप्नो दृष्टः ॥ ८७ ॥

राजमानपुष्करकरः श्वेतदशनो दानसंयुक्तो भद्रः । प्रियवारणः प्रविष्टस्त्वमिव मम वदनकुहरे ॥ ८८ ॥

तच्छ्रुत्वा कुमारः प्रभणति हरिणाक्षि ! तव वरकुमारः । संभविष्यति ततो हर्षितहृदया सा गर्भमुद्वहति ॥ ८९ ॥

अथान्यदा कुमारस्तया समं यावत्क्रीडति यथेच्छम् । तावत्पश्यति निजकजनकस्य मन्त्रिणस्तत्र संप्राप्तान् ॥ ९० ॥

धराविलुलितशिरःकमलाः क्रमयुगलं प्रणम्य कुमारस्य । आबद्धपाणिपद्माः सप्रणयं ते भणन्तीदम् ॥ ९१ ॥

आह्वायनाय युष्मान्प्रैषिताः पृथिवीस्वामिना वयम् । ततो राजपादपङ्कजमालीनत कुमार ! अविकल्पम् ॥ ९२ ॥

बहुमान्य मन्त्रिणो विनयवचनानि तत्क्षणं कुमारः । जनकचरणावलोकनसमुत्सुकः प्रभणति सुनन्दाम् ॥ ९३ ॥

सुतनु ! मम जनकलेखः समुत्सुकस्ततोऽहं गमिष्यामि । त्वया पुनः स्वशरीरं पालयितव्यं प्रयत्नेन ॥ ९४ ॥

परिणावितओ चइऊण निग्गओ गुव्विणी पमोत्तूण । ससिवयणि ! मणायं पि य मणम्मि मा मुणसु अवमाणं ॥९५॥
विन्नवइ तओ कुमरं अंसुजलोल्लियकवोलफलया सा । किह मंदभाइणी तुह नयरमहं नाह ! जाणिस्सं ॥९६॥
तो तीए जाणणत्थं लिहेइ धवलहरभित्तिभायम्मि । रायगिहनयरपंडरकुड्डा गोवालय त्ति पयं ॥९७॥
तो पणमिऊण सेट्ठिं सम्माणेऊण पणइणिं कुमरो । आरोहिउं वरियाए विणिग्गओ मंतिपरियरिओ ॥९८॥
वच्चंतो संपत्तो कमेण कुमरो पुरम्मि रायगिहे । पेच्छंतो पणइयणं झडत्ति अत्थाणमणुपत्तो ॥९९॥
रायचलणावलोयणसमाणधरणियलविलुलियसरीरो । जा वच्चइ ता रन्ना गहिऊणाऽऽलिंगिओ गाढं ॥१००॥
पुहईसरेण कुसलं ? ति [१]पुच्छिए भणइ कयपणामो सो । ताय ! तुह पायपउमप्पसायओ मज्झ कुसलं ति ॥१०१॥
अह भणइ अन्नसमयम्मि नरवई सजलजलहरसरेण । धवलं पि धवलयंतो धवलहरं दसणकिरणेहिं ॥१०२॥
भो पउरजणा ! संपइ कहेह सव्वे वि नियमभिप्पायं । एएसि कुमाराणं कीरइ जो तुम्ह नरनाहो ॥१०३॥
धरणियललुलियसीसा विणयपरा विन्नवंति ते निवइं । तं चेव रायलच्छि उवभुंजसु राय ! सुइरं पि ॥१०४॥
तो भणइ नरवरिंदो चिरकालं पालियं मए रज्जं । संपइ असमत्थो हं जो जोग्गो भणह तं तुब्भे ॥१०५॥
जइ एवं ता सामिय ! समग्गगुणयणरोहणगिरिस्स । अम्ह मएणं दिज्जउ सेणियकुमरस्स रज्जसिरि ॥१०६॥
तेसि निसुणित्तु वयणं पमोयपरिपूरिओ पुहइपालो । कारेइ सुहमुहुत्ते समग्गमभिसेयसामग्गिं ॥१०७॥
वारविलासिणिविरइयसंगीयऽक्खित्तखत्तियसमूहे । बंदियणभणियजयजयरवबहिरियनहयलविभागे॥१०८॥

परिणायितस्त्यक्त्वा निर्गतो गुर्विणीं प्रमुच्य । शशिवदने ! मनागमपि च मनसि मा मुणापमानम् ॥ ९५ ॥
विज्ञापयति ततः कुमारमश्रुजलार्द्रितकपोलफलका सा । कथं मन्दभागिनी तव नगरमहं नाथ ! जानिष्ये ॥ ९६ ॥
ततस्तस्या ज्ञापनार्थं लिखति धवलगृहभित्तिभागे । राजगृहनगरपाण्डुरकुडयां[२] गोपालक इति पदम् ॥ ९७ ॥
ततः प्रणम्य श्रेष्ठिं सन्मान्य प्रणयिनिं कुमारः । आरुह्य वर्यां[३] विनिर्गतो मन्त्रिपरिकरितः ॥ ९८ ॥
व्रजन्संप्राप्तः क्रमेण कुमारः पुरे राजगृहे । पश्यन्प्रणतिजनं झटित्यास्थानमनुप्राप्तः ॥ ९९ ॥
राजचरणावलोकनसमानधरणितलविलुलितशरीरः । यावद्व्रजति तावद्राज्ञा गृहीत्वाऽऽलिङ्गितो गाढम् ॥ १०० ॥
पृथिवीश्वरेण कुशलमिति पृष्टे भणति कृतप्रणामः सः । तात ! तव पादपद्मप्रसादान्मम कुशलमिति ॥ १०१ ॥
अथ भणत्यन्यसमये नरपतिः सजलजलधरस्वरेण । धवलमपि धवलयन्धवलगृहं दशनकिरणैः ॥ १०२ ॥
भो पौरजनाः ! संप्रति कथयत सर्वेऽपि निजमभिप्रायम् । एतेषां कुमाराणां क्रियते यो युष्माकं नरनाथः ॥ १०३ ॥
धरणितललुलितशीर्षा विनयपरा विज्ञापयन्ति ते नृपतिम् । त्वं चैव राजलक्ष्मीमुपभुङ्क्ष्व राजन् ! सुचिरमपि ॥१०४॥
तदा भणति नरवरेन्द्रश्चिरकालं पालितं मया राज्यम् । संप्रत्यसमर्थोऽहं यो योग्यो भणत तं यूयम् ॥ १०५ ॥
यद्येवं तदा स्वामिन् ! समग्रगुणगणरोहणगिरये । अस्मन्मतेन ददातु श्रेणिककुमाराय राज्यश्रियम् ॥ १०६ ॥
तेषां निश्रुत्य वचनं प्रमोदपरिपूरितः पृथिवीपालः । कारयति शुभमुर्हूते समग्रामभिषेकसामग्रीम् ॥ १०७ ॥
वारविलासिनिविरचितसंगीताऽऽक्षिप्तक्षत्रियसमूहे । बन्दिकजनभणितजयजयरवबधिरितनभस्तलविभागे ॥ १०८ ॥

---

१. पुच्छिओ-रं० । २. पाण्डुरकुड्यां - धवलगृह इत्यर्थः । ३. शिबिकामित्यर्थः ।

नच्चंतीसु विसंठुलधम्मेल्लगलंतकुसुममालासु । दरउक्कंपिरिपिवरथणहररमणीयरमणीसु ॥१०९॥

वज्जंततूरपडिरवपडिपूरियविवरकंदरगिरिंदे । निवकज्जसज्जउब्भडभडकोडिसुसंकडत्थाणे ॥११०॥

कामिणिपीणघणत्थणसमाणनिम्माणकणयकलसेहिं । मंतिसहिओ नरिंदो अहिसिंचइ सेणियकुमारं ॥१११॥

तयणु मणिकिरणरंजियदियंतरं तस्स कणयमयमउडं । बंधित्तु उत्तमंगे पणमइ धरलुलियसिरकमलो ॥११२॥

उवविसिय खोणिवीढे विन्नवइ नरेसरो नरवरिंदं । नियछाय व्व नरेसर ! परिहरियव्वा पया न तए ॥११३॥

इय वित्ते रज्जमहूसवम्मि [१]रिउनियरसमरसोडीरो । नवरायलच्छिरमणिं उवभुंजइ सेणियनरिंदो ॥११४॥

इओ य-

गब्भाणुभावदोहलयदुब्बलं नियवि दुहियरं सेट्ठी । पुच्छइ वच्छे ! अइदुब्बलंगिया कीस तं ? कहसु ॥११५॥

सा आह ताय ! मह अत्थि दोहलो तेण दुब्बलसरीरा । जाणामि अभयदाणं वारणमारुहिय वियरेमि ॥११६॥

तं निसुणिऊण सेट्ठी दोहलयं तीए पूरिय पहिट्ठो । उव्वहइ तयणु गब्भं पमोयपरिपूरिया सा वि ॥११७॥

परिपालिऊण गब्भ नवमासऽद्धट्ठमेहिं दिवसेहिं । पसवइ तओ सुनंदा देवकुमारोवमं कुमरं ॥११८॥

नच्चंतकामिणिजणं वज्जिरवरतूरपूरियदियंतं । वियरिज्जमाणदाणं वद्धावणयं कुणइ सेट्ठी ॥११९॥

अह बारसम्मि दिवसे पसत्थतिहि-करण-जोगसंजुत्ते । कारइ दोहलयसमं नामं कुमरस्स अभओ त्ति ॥१२०॥

धाईहिं लालियंगो कमेण सो अट्ठवारिसो जाओ । उज्झायस्सुवणीओ सुविणीओ विज्जगहणत्थं ॥१२१॥

नृत्यन्तीषु विसंस्थूलधम्मिलगलत्कुसुममालासु । ईषदुत्कम्पितपीवरस्तनभररमणीयरमणीषु ॥ १०९ ॥

वाद्यमानतूर्यप्रतिरवप्रतिपूरितविवरकंदरगिरीन्द्रे । नृपकार्यसज्जोद्भटभटकोटिसुसंकीर्णास्थाने ॥ ११० ॥

कामिनिपीनघनस्तनसमाननिर्माणकनककलशैः । मन्त्रिसहितो नरेन्द्रोऽभिषिञ्चति श्रेणिककुमारम् ॥ १११ ॥

तदनु मणिकिरणरञ्जितदिगन्तरं तस्य कनकमयमुकुटम् । बद्ध्वोत्तमाङ्गे प्रणमति धरालुलितशिरकमलः ॥ ११२ ॥

उपविश्य क्षोणिपीठे विज्ञापयति नरेश्वरो नरवरेन्द्रम् । निजच्छायेव नरेश्वर ! परिहर्तव्या प्रजा न त्वया ॥ ११३ ॥

इति वृते राज्यमहोत्सवे रिपुनिकरसमरशौण्डिरः । नवराजलक्ष्मीरमणिमुपभुनक्ति श्रेणिकनरेन्द्रः ॥ ११४ ॥

इतश्च -

गर्भानुभावदोहददुर्बलं दृष्ट्वा दुहितरं श्रेष्ठी । पृच्छति वत्से ! अतिदुर्बलाङ्गिका कथं त्वं ? कथय ॥ ११५ ॥

साऽऽह तात ! ममास्ति दोहदस्तेन दुर्बलशरीरा । जानाम्यभयदानं वारणमारुह्य वितरामि ॥ ११६ ॥

तन्निश्रुत्य श्रेष्ठी दोहदं तस्याः पूरितं प्रहृष्टः । उद्वहति तदनु गर्भं प्रमोदपरिपूरिता साऽपि ॥ ११७ ॥

परिपाल्य गर्भं नवमासार्द्धाष्टमैर्दिवसैः । प्रसूते ततः सुनन्दा देवकुमारोपमं कुमारम् ॥ ११८ ॥

नृत्यत्कामिनिजनं वाद्यद्वरतूर्यपूरितदिगन्तम् । वितीर्यमाणदानं वर्धापनकं करोति श्रेष्ठी ॥ ११९ ॥

अथ द्वादशे दिवसे प्रशस्ततिथिकरणयोगसंयुक्ते । कारयति दोहदसमं नामं कुमारस्याभय इति ॥ १२० ॥

धात्रिभिर्लालिताङ्गः क्रमेण सोऽष्टवार्षिको जातः । उपाध्यायस्योपनीतः सुविनायः विद्याग्रहणार्थम् ॥ १२१ ॥

---

१. रिउनयर० रं० ।

अह अन्नदिणे केणावि कलहयंतेण पभणिओ अभओ । तुह जणओ वि न नज्जइ किं कलहसि तं मए सद्धिं ? ॥१२२॥
तो तव्वयणायन्नणफुरंतअवमाणपूरिओ कुमरो । रुयमाणो नियभवणे गंतूणं पुच्छए जणणिं ॥१२३॥
अंब ! कहिं मह जणओ ? त्ति पुच्छिए पगलियंसुया भणइ । पुत्तय ! पवसंतेणं तुह जणएणं लिहियमेयं ॥१२४॥
परिभाविउं तओ सो अवगयतत्तो पयंपए जणणी । अंब ! पुहईसरो मे जणओ ता तत्थ वच्चामो ॥१२५॥
सेट्ठिस्स वि कहियमिणं तेण वि पउणीकरेवि सामग्गिं । पट्ठाविओ कुमारो रायगिहे सह सुनंदाए ॥१२६॥
आसाइऊण नयरं कुमरो जणणिं बहिं पमोत्तूण । नरनाहदंसणकए चलिओ नियपुरिसपरियरिओ ॥१२७॥
तो वच्चंतो जुन्नायडम्मि दट्ठूण लोयसम्मद्दं । पुच्छइ पुरिसं कं पि हु किमेत्थ बहुलोयसम्मद्दो ? ॥१२८॥
सो जंपइ बुद्धिपरिक्खणत्थमिह जुन्नकूवमज्झम्मि । मुद्दारयणं पक्खिविय पभणियं नरवरिंदेण ॥१२९॥
तीरनिसन्नो गिण्हइ जो एयं तस्स देमि नियधूयं । पंचसयमंतिनाहं करेमि सह अद्धरज्जेण ॥१३०॥
पभणइ पुणो कुमारो लहइ किमागंतुओ इयं[१] पुरिसो । आयड्ढिउं ? तओ सो पयंपए पावए बाढं ॥१३१॥
तो अयडतडे उवविसिय खिवइ तुस्सवरि गोमयं कुमरो । तस्स परिसोसणत्थं पलालपूलं पि जलमाणं ॥१३२॥
पूरेऊणं सारणिजलेण तं अंधकूवयं कुमरो । तो नीरे तरमाणं छगणं घेत्तुं सहत्थेणं ॥१३३॥
आयड्ढिऊण मुद्दारयणं नियअंगुलीए पक्खिविउं । तो नरवईकमकमलावलोयणत्थं गओ कुमरो ॥१३४॥
पडिहारकयपवेसो विसिट्ठजणसरिसविहियसियवेसो । नयरजणजणियतोसो अत्थाणं पेच्छइ तओ सो ॥१३५॥

अथान्यदिने केनापि कलहयता प्रभणितोऽभयः । तव जनकोऽपि न ज्ञायते किं कलहयसि त्वं मया सार्धम् ? ॥१२२॥
तदा तद्वचनाकर्णनस्फुरदपमानपूरितः कुमारः । रुदन्निजभवने गत्वा पृच्छति जननीम् ॥ १२३ ॥
अम्ब ! कुत्र मम जनकः ? इति पृष्टे प्रगलिताश्रुका भणति । पुत्रक ! प्रवसता तव जनकेन लिखितमेतत् ॥ १२४ ॥
परिभाव्य ततःसोऽवगततत्त्वः प्रजल्पति जननीम् । अम्ब ! पृथिवीश्वरो मे जनकस्ततस्तत्र व्रजावः ॥ १२५ ॥
श्रेष्ठिनोऽपि कथितमिदं तेनापि प्रगुणीकृत्य सामग्रीम् । प्रस्थापितः कुमारो राजगृहे सह सुनन्दया ॥ १२६ ॥
आसाद्य नगरं कुमारो जननीं बहिः प्रमुच्य । नरनाथदर्शनकृते चलितो निजपुरुषपरिकरितः ॥ १२७ ॥
ततो व्रजन्जीर्णावटे दृष्ट्वा लोकसमूहम् । पृच्छति पुरुषं कमपि खलु किमत्र बहुलोकसमूहः ? ॥ १२८ ॥
स जल्पति बुद्धिपरीक्षणार्थमिह जीर्णकूपमध्ये । मुद्रारत्नं प्रक्षिप्य प्रभणितं नरवरेन्द्रेण ॥ १२९ ॥
तीरनिषण्णो गृह्णाति य एतत्तस्मै ददामि निजदुहितरम् । पञ्चशतमन्त्रिनाथं करोमि सहार्द्धराज्येन ॥ १३० ॥
प्रभणति पुनः कुमारो लभते किमागन्तुक इदं पुरुषः । आकृष्य ? तव स प्रजल्पति प्राप्यते बाढम् ॥ १३१ ॥
ततोऽवटतट उपविश्य क्षिपति तस्योपरि गोमयं कुमारः । तस्य परिशोषणार्थं पलालपूलमपि ज्वलन्तम् ॥ १३२ ॥
पूरयित्वा सारणिजलेन तमन्धकूपकं कुमारः । ततो नीरे तरन् छगणं गृहीत्वा स्वहस्तेन ॥ १३३ ॥
आकृष्य मुद्रारत्नं निजाङ्गुल्यां प्रक्षिप्य । ततो नरपतिक्रमकमलावलोकनार्थं गतः कुमारः ॥ १३४ ॥
प्रतिहारकृतप्रवेशो विशिष्टजनसदृशविहितसितवेशः । नगरजनजनिततोष आस्थानं पश्यति ततः सः ॥ १३५ ॥

---

१. इदम् ।

जत्थिंदनीलकुट्टिमतलविरइयविमलमोत्तियचउक्को । सहइ करवालसामलनहंगणे तारयगणो व्व ॥१३६॥

जत्थ य मरगयभित्ती संवसिया फलिहथंभदित्तीए । अइरुग्गयससहरकरकरंबिया सहइ रयणि व्व ॥१३७॥

जत्थ नवमेहडंबरचंदोययतलपलंबहारोहो । नवजलहरधारासारडंबरं लहु विडंबेइ ॥१३८॥

नमिरनरेसरनिरुवमचूडामणिकिरणरंजियसरीरो । अरुणारुणकिरिणावलिसंचलिरो सुरगिरिंदो व्व ॥१३९॥

नवइंदनीलचूडारयणकरुक्केररंजियसिरग्गो । सिरिधरियमेहडम्बरछत्तसमालंकियतणु व्व ॥१४०॥

परिहियमरगयमणिमयकुंडलकिरिणोहरुइरभुयसिहरो । घणहरिणनाहिकयपत्तवल्लिजुयलो व्व सोहंतो ॥१४१॥

तारुज्जलमूत्ताहलहारावलिकिरिणछुरियवच्छयलो । सच्छसिरिखंड भूहरिभासुरभूय(म)मज्झभाओ व्व ॥१४२॥

मंडलियमंडलुड्डुमरसमरसंदोहसंकहक्खित्तो । दाहिणजाणुनिवेसियसुललियतलवामकमकमलो ॥१४३॥

दोपासपरिट्ठियतरुणरमणिदोधुव्वमाणसियचमरो । दिट्ठो अभयकुमारेण तत्थ सिरिसेणियनरिंदो ॥१४४॥

हरिसेण चरणकमलेसु निवडिओ महिमिलंतसिरकमलो । तत्तो नरिंदचलणारविंदपुरओ मुयइ मुद्दं ॥१४५॥

पउरेहिं पुहइवइणो पयासिओ वइयरो असेसो वि । एएण जहा आगंतुएण आयड्ढियं एयं ॥१४६॥

तं निसुणिउं नरिंदो हरिसवसप्फुल्ललोयणो भणइ । सुपुरिस ! निययागमणेण विरहियं किं तए नयरं ? ॥१४७॥

तत्तो अभयकुमारो विन्नवइ नरेसरं कयपणामो । बिन्नायडनयराओ समागओ हं तुह समीवे ॥१४८॥

तो भूवइणा भणियं भद्द ! तुमं भद्दसेट्ठिणो धूयं । परियाणेसि सुनंदं ? तो अभओ भणइ आमं ति ॥१४९॥

यत्रेन्द्रनीलकुट्टिमतलविरचितविमलमौक्तिकचतुष्कः । राजते करवालश्यामलनभोङ्गणे तारकगण इव ॥ १३६ ॥

यत्र च मरकतभित्ती संवसिता स्फटिकस्तम्भदीप्त्या । अचिरोद्गतशशधरकरकरम्बिता राजते रजनीव ॥ १३७ ॥

यत्र नवमेघाऽम्बरचन्द्रोदयतलप्रलम्बहारौघः । नवजलधरधारासाराडम्बरं लघु विडम्बयति ॥ १३८ ॥

नमन्नरेश्वरनिरुपमचूडामणिकिरणरञ्जितशरीरः । अरुणारुणकिरणावलिसंचलत्सुरगिरीन्द्र इव ॥ १३९ ॥

नवेन्द्रनीलचूडारत्नकरोत्कररञ्जितशिरोऽग्रः । श्रीधृतमेघाडम्बरछत्रसमालङ्कृततनूरिव ॥ १४० ॥

परिधितमरकतमणिमयकुण्डलकिरणौघरुचिरभुजशिखरः । घनहरिणनाभिकृतपत्रवल्लीयुगल इव शोभमानः ॥ १४१ ॥

तारोज्वलमुक्ताफलहारावलिकिरणछूरितवक्षःस्थलः । स्वच्छश्रीखण्डतिलकभासुरभूतमध्यभाग इव ॥ १४२ ॥

मण्डलितमण्डलोड्डामरसमरसन्दोहसङ्कथाव्याक्षिप्तः । दक्षिणजानुनिवेशितसुललिततलवामक्रमकमलः ॥ १४३ ॥

द्विपार्श्वपरिस्थिततरुणरमणीदोर्धूयमानश्वेतचामरः । दृष्टोऽभयकुमारेण तत्र श्रीश्रेणिकनरेन्द्रः ॥ १४४ ॥

हर्षेण चरणकमलयो र्निपतितो महिमिलच्छिरःकमलः । ततो नरेन्द्रचरणारविन्दपुरतो मुञ्चति मुद्राम् ॥ १४५ ॥

पौरैः पृथिवीपत्युः प्रकाशितो व्यतिकरोऽशेषोऽपि । एतेन यथाऽऽगन्तुकेनाकृष्टतमेतत् ॥ १४६ ॥

तन्निश्रुत्य नरेन्द्रो हर्षवशप्रफुल्ललोचनो भणति । सुपुरुष ! निजकागमनेन विरहितं किं त्वया नगरम् ? ॥ १४७ ॥

ततोऽभयकुमारो विज्ञापयति नरेश्वरं कृतप्रणामः । बेन्नातटनगरासमागतोऽहं तव समीपे ॥ १४८ ॥

तदा भूपतिना भणितं भद्र ! त्वं भद्रश्रेष्ठिनो दुहितरम् । परिजानासि सुनन्दां ? तदाऽभयो भणत्योमिति ॥ १४९ ॥

तो सायरं नरिंदेण पुच्छियं तीए वच्छ ! गब्भम्मि । किं जायं ? ति सपणयं पुत्तो त्ति पयंपए अभओ ॥१५०॥
सो केरिसगुणकलिओ ? त्ति सहरिसं पुच्छिए पुहइवइणा । अभओ पभणइ मं पिव देव ! परियाणसु कुमारं ॥१५१॥
एसेव मज्झ पुत्तो त्ति कलिय पुहईसरेण सप्पणयं । पुरपरिहसरलसुललियभुएहिं आलिंगिओ गाढं ॥१५२॥
नियउच्छंगे विणिवेसिऊण अग्घाइऊण सिरकमले । भणिओ य जाय ! जणणी समागया ? अहव नो तुज्झ ॥१५३॥
आबद्धपाणिपउमो विन्नवइ नरेसरं तओ अभओ । ताय ! तुह नयरपरिसरउज्जाणं आगया अम्बा ॥१५४॥
ता तव्वयणायन्नणफुरंतपरिओसपूरिओ राया । आइसइ मंतिनियरं पवेसणत्थं सुनंदाए ॥१५५॥
तो सिग्धयरतुरंगमवेगेणं जाव जाइ उज्जाणे । कुमरो तो संपेच्छइ नियजणणिं जणियसिंगारं ॥१५६॥
पभणइ पउत्थवइयाण अंब ! न कयाइ जुज्जइ विहूसा । ता झति अणुब्भडवेसविरयणं वियरसु इयाणिं ॥१५७॥
तो तीए तणयवयणाओ विरइओ जा पसत्थओ वेसो । ता आगंतुं नयरे पवेसिया मंतिनियरेण ॥१५८॥
राया वि अणुब्भडवेसभूसियं पणइणिं पलोएउं । तो तीए अग्गमहिसीपयं पयच्छइ पहिट्ठमणो ॥१५९॥
नियरज्जसिरीअद्धं दाउण पसत्थवासरे राया । तो पंचसयामच्चाण नायगं कुणइ तं कुमरं ॥१६०॥
नियभइणीए सुसेणाए दुहियरं दलियकमलदलनयणं । वियरइ अभयकुमारस्स मयणसेणाभिहं तत्तो ॥१६१॥
भुंजंताणं पंचप्पयारविसए नरिंद-कुमराण । निवलच्छिकज्जउज्जमपराण कालो अइक्कमइ ॥१६२॥
अह अन्नया जयत्तयसामी सिरिवद्धमाणजयनाहो । रायगिहनयरपरिसरउज्जाणम्मी समोसरिओ ॥१६३॥

ततः सादरं नरेन्द्रेण पृष्टं तस्या वत्स ! गर्भे । किं जातमिति ? सप्रणयं पुत्र इति प्रजल्पत्यभयः ॥ १५० ॥
स कीदृशगुणकलित? इति सहर्षं पृष्टे पृथिवीपतिना । अभयः प्रभणति मामिव देव ! परिजानाहि कुमारम् ॥१५१॥
एष एव मम पुत्र इति कलित्वा पृथिवीश्वरेण सुप्रणयम् । पुरपरिखसरलसुललितभुजाभ्यामालिङ्गितो गाढम् ॥ १५२॥
निजोत्सङ्गे विनिवेश्याघ्राय शिरःकमले । भणितश्चजात ! जननी समागताऽथवा न तव ? ॥ १५३ ॥
आबद्धपाणिपद्मो विज्ञापयति नरेश्वरं ततोऽभयः । तात ! तव नगरपरिसरोद्यानमागताऽम्बा ॥ १५४ ॥
ततस्तद्वचनाकर्णनस्फुरत्परितोषपूरितो राजा । आदिशति मन्त्रिनिकरं प्रवेशनार्थं सुनन्दायाः ॥ १५५ ॥
ततः शीघ्रतरतुरङ्गमवेगेन यावद्यात्युद्याने । कुमारस्तावत्सम्पश्यति निजजननीं जनितशृङ्गाराम् ॥ १५६ ॥
प्रभणति प्रवसितभर्तृकाणामम्ब ! न कदाचिद्युज्यते विभूषा । ततो झटित्यनुद्भटवेशविरचनं विरचयेदानीम् ॥ १५७॥
ततस्तया तनयवचनाद्विरचितो यावत्प्रशस्तो वेशः । तावदागत्य नगरे प्रवेशिता मन्त्रिनिकरेण ॥ १५८ ॥
राजाऽप्यनुद्भटवेशभूषितां प्रणयिनीं प्रलोक्य । ततस्तस्या अग्रमहिषीपदं प्रयच्छति प्रहृष्टमनाः ॥ १५९ ॥
निजराजश्र्यर्द्धं दत्वा प्रशस्तवासरे राजा । ततः पञ्चशतामात्यानां नायकं करोति तं कुमारम् ॥ १६० ॥
निजभगिन्याः सुषेणाया दुहितरं दलितकमलदलनयनाम् । वितरत्यभयकुमारस्य मदनसेनाभिधां ततः ॥ १६१ ॥
भुञ्जतोः पञ्चप्रकारविषयान्नरेन्द्र-कुमारयोः । नृपलक्ष्मीकार्योद्यमपरयोः कालोऽतिक्रामति ॥ १६२ ॥
अथान्यदा जगत्त्रयस्वामी श्रीवर्धमानजगन्नाथः । राजगृहनगरपरिसरोद्याने समवसृतः ॥ १६३ ॥

तो राया नयरजणे विलसिरसंगार[1] रेहिरसरीरं । उज्जाणे वच्चंतं दट्ठुं पुच्छइ पडीहारं ॥१६४॥
कयमणहरसिंगारो नयरजणो भद्द ! वच्चए कत्थ ? । विन्नवइ तओ सो देव ! जाइ सव्वन्नुनमणत्थं ॥१६५॥
अम्हे वि सव्वविउपायपंकयं कोउएण पेच्छामो । इय चिंतिउं नरिंदो महरिहरिद्धीए नीहरिओ ॥१६६॥
रहरयण-तुरय-कुंजर-अंतेउर-पत्तिनियरपरियरिओ । संपत्तो गुणसिलयम्मि चेइए मणहरुज्जाणे ॥१६७॥
दट्ठुं कलहोय-हिरन्न-रयणपायारतियसमोसरणं । परिहरियगंधसिंधुरबंधुरखंधो विसइ तत्थ ॥१६८॥
पेच्छइ य चउद्दिसिअमरनियरपणमिज्जमाणकमकमलं । सुरविसरभत्तिविरइयअट्ठमहापाडिहेरजुयं ॥१७०॥
अवलोइऊण तिहुयणसरणं सिरिवद्धमाणजिणनाहं । संथुणइ कयपणामो राया रोमंचियसरीरो ॥१७०॥
जय रोसतिमिरदिणयर ! मयणमहाजलणजलहरसमाण ! । मच्छरकरेणुदारणदारुणकंठीरवकिसोर ! ॥१७१॥
जय दुरियनियरसायरतारण ! नवतरणिअरूणकर-चरण ! ।रायविसहरनिवारण ! करुणारसनिज्झर ! नमो ते ॥१७२॥
इय जिणवरिंदचरणारविन्दजुयलं थुणित्तु नरनाहो । उवविसइ उच्चरोमंचअंचिओ उचियदेसम्मि ॥१७३॥
भयवं पि दसणकिरणच्छलेण अमयं व विसयविसहरणं । वियरंतो नवजलहरसरेण सद्देसणं कुणइ ॥१७४॥
भो भव्वपाणिविसरा ! वयणं निसुणंतु इह भवावट्टे । परियट्टंता सत्ता मणयं पि सुहं न पावंति ॥१७५॥
पेच्छह परमाहम्मियनिट्ठुरकरवत्तकप्परिज्जंता । नेरइया नयणनिमेसमित्तमवि न वि लहंति सुहं ॥१७६॥
तिरिया वि बंध-वह-छेय-भेय-उक्कत्तणाइदुक्खत्ता । विरसं रसमाणा वि हु छुट्टंति न पुव्वपावाओ ॥१७७॥

ततो राजा नगरजनं विलसन्शीलशृङ्गारराजमानशरीरम् । उद्याने व्रजन्तं दृष्ट्वा पृच्छति प्रतिहारम् ॥ १६४ ॥
कृतमनोहरशृङ्गारो नगरजनो भद्र ! व्रजति कुत्र ? । विज्ञापयति ततः स देव ! याति सर्वज्ञनमनार्थम् ॥ १६५ ॥
वयमपि सर्ववित्पादपङ्कजं कौतुकेन पश्यामः । इति चिन्तयित्वा नरेन्द्रो महार्हर्द्धया निसृतः ॥ १६६ ॥
रथरत्न-तुरग-कुञ्जरान्तःपुर-पत्तिनिकरपरिकरितः । संप्राप्तो गुणशिलके चैत्यै मनोहरोद्याने ॥ १६७ ॥
दृष्ट्वा कलधौत-हिरण्य-रत्नप्राकारत्रिकसमवसरणम् । परिहृतगन्धसिन्धुरबन्धुरस्कन्धो विशति तत्र ॥ १६८ ॥
पश्यति च चतुर्दिगमरनिकरप्रणम्यमानक्रमकमलम् । सुरसमूहभक्तिविरचिताष्टमहाप्रातिहार्ययुक्तम् ॥ १६९ ॥
अवलोक्य त्रिभुवनशरणं श्रीवर्धमानजिननाथम् । संस्तौति कृतप्रणामो राजा रोमाञ्चितशरीरः ॥ १७० ॥
जय रोषतिमिरदिनकर ! मदनमहाज्वलनजलधरसमान ! । मत्सरकरेणुदारणदारुणकण्ठीरवकिशोर ! ॥ १७१ ॥
जय दुरितनिकरसागरतारण ! नवतरण्यरुणकरचरण ! । रागविषधरनिवारण ! करुणारसनिर्झर ! नमस्ते ॥ १७२ ॥
इति जिनवरेन्द्रचरणारविन्दयुगलं स्तुत्वा नरनाथः । उपविशत्युच्चरोमाञ्चाञ्चित उचितदेशे ॥ १७३ ॥
भगवानपि दशनकिरणच्छलेनामृतमिव विषयविषहरणाम् । वितरन्नवजलधरस्वरेण सद्देशनां करोति ॥ १७४ ॥
भो ! भव्यप्राणीविसराः ! वचनं शृण्वन्तु इह भवावर्ते । पर्यटन्तः सत्त्वा मनागपि सुखं न प्राप्नुवन्ति ॥ १७५ ॥
पश्यत परमाधार्मिकनिष्ठुरकरपत्रकर्त्यमाणाः । नैरयिका नयननिमेषमात्रमपि नापि लभन्ते सुखम् ॥ १७६ ॥
तिर्यञ्चोऽपि बन्ध-वधच्छेद-भेदोत्कर्तनादिदुःखार्त्ताः । विरसंरसन्तोऽपि खलु मुञ्चन्ति न पूर्वपापात् ॥ १७७ ॥

---

१. सिंगार-रं० ।

गुरुरोय-सोय-पियविप्पओग-दारिद्ददूमिया दुहिया । पेच्छह पुरिसा वि कुकम्मपरिणईपासपडिबद्धा ॥१७८॥
अमरा वि अवरसुरवररमणीअणुरायरंजियसरीरा । ईसा-विसायविसहरविसविवसा अणुवहंति दुहं ॥१७९॥
न य चउगइसंसारे सुहलेसस्सावि संभवो सुलहो । इय परिभाविय भव्वा ! भवंतु सव्वे भवविरत्ता ॥१८०॥
इय निसुणिऊण तित्थयरदेसणं तयणु सेणियनरिंदो । खायगदंसणरयणं पावइ हयपावपब्भारो ॥१८१॥
अभयकुमारो गिण्हइ सावगधम्मं दुवालसविहं पि । तो पणमिउं जिणिंदं सव्वे वि गया सठाणेसु ॥१८२॥
एत्तो वि हु अणुवरिसं रोहइ रोसेण रायगिहनयरं । नियबलगव्वियचित्तो सुपयंडो चंडपज्जोओ ॥१८३॥
तो सेणिएण भणिओऽभयमंती किं पि चिंतसु उवायं । नयरस्स जेण खेमं संजायइ तयणु अभएण ॥१८४॥
पुरपरिसरपुहईए तेण निहाणीकया कणयकलसा । समयं मुसंढि-मोग्गर-तोमर-झसनिसियसत्थेहिं ॥१८५॥
पुणरवि कम्मि वि वरिसे पुव्वपओगेण रोहियं नयरं । तो अभएणं भणिओ सामंता तुज्झ सव्वे वि ॥१८६॥
मह पिउणा धणदाणेण भेइया जइ न पच्चओ तुज्झ । ता परिसरधरवीढं खणिउं निस्संकियं कुणसु ॥१८७॥
तो तत्थ चंडपज्जोयनरवई जा खणावए खोणिं । ता नियइ कणयकलसे निसायधणपहरणगणे य ॥१८८॥
पेच्छिय अतुच्छउच्छलियकंपपरिगलियसेयसलिलोहो । नियखंधवारविरइयसरक्खणो नासिऊण गओ ॥१८९॥
नासंतस्स असेसं पि लूडियं सेणिएण तस्स बलं । जीवंतो उज्जेणिं पत्तो किच्छेण पुण राया ॥१९०॥
हक्केइ निए ते वि हु भणंति एयस्स कारिणो न वयं । ता देव ! एत्थ अत्थे अभयपवंचेण होयव्वं ॥१९१॥

गुरुरोग-शोक-प्रियविप्रयोग-दारिद्रदाविता दुःखिताः । पश्यत पुरुषा अपि कुकर्मपरिणतिपाशप्रतिबद्धाः ॥ १७८ ॥
अमरा अप्यपरसुरवररमण्यनुरागरञ्जितशरीराः । ईर्ष्या-विषाद-विषधरविषविवशा अनुभवन्ति दुःखम् ॥ १७९ ॥
न च चतुर्गतिसंसारं सुखलेशस्यावि सम्भवः सुलभः । इति परिभाव्य भव्याः ! भवन्तु सर्वे भवविरक्ताः ॥ १८० ॥
इति निश्रुत्य तीर्थकरदेशनां तदनु श्रेणिकनरेन्द्रः । क्षायिकदर्शनरत्नं प्राप्नोति हतपापप्राग्भारः ॥ १८१ ॥
अभयकुमारो गृह्णाति श्रावकधर्मं द्वादशविधमपि । ततः प्रणम्य जिनेन्द्रं सर्वेऽपि गताः स्वस्थानेषु ॥ १८२ ॥
इतोऽपि हु अनुवर्षं रुणद्धि रोषेण राजगृहनगरम् । निजबलगर्वितचित्तः सुप्रचण्डश्चण्डप्रद्योतः ॥ १८३ ॥
तदा श्रेणिकेन भणितोऽभयमन्त्री किमपि चिन्तयोपायम् । नगरस्य येन क्षेमं सञ्जायते तदन्वभयेन ॥ १८४ ॥
पुरपरिसरपृथिव्यां तेन निधानीकृताः कनककलशाः । समकं मुसण्ढि मुदगर-तोमर-झसनिशितशस्त्रैः ॥ १८५ ॥
पुनरपि कस्मिन्नपि वर्षे पूर्वप्रयोगेण रुद्धं नगरम् । ततोऽभयेन भणितः सामन्तास्तवसर्वेऽपि ॥ १८६ ॥
मम पित्रा धनदानेन भेदिता यदि न प्रत्ययस्तव । तदा परिसरधरापीठं खनित्वा निःशङ्कितं कुरु ॥ १८७ ॥
तदा तत्र चण्डप्रद्योतनरपति र्यावत्खानयति क्षोणिम् । तावत्पश्यति कनककलशान्निशातघनप्रहरणगणांश्च ॥ १८८ ॥
दृष्ट्वाऽतुच्छोच्छलितकम्पपरिगलितस्वेदसलिलौघः । निजस्कन्धावारविरचितसंरक्षणो नंष्ट्वा गतः ॥ १८९ ॥
नश्यतोऽशेषमपि लुण्टितं श्रेणिकेन तस्यबलम् । जीवन्नुज्जैनीं प्राप्तः कृच्छ्रेण पुना राजा ॥ १९० ॥
आकारयति निजांस्त अपि खलु भणन्त्येतस्य कारिणो न वयम् । तस्मादेवात्रार्थे ऽभयप्रपञ्चेन भवितव्यम् ॥१९१ ॥

अवगयसब्भावो भणइ नत्थि सो कोई मज्झ अत्थाणे । जो कूडकवडबुद्धि बंधिय आणेइ इह अभयं ॥१९२॥
तं निसुणिऊण विन्नवइ नरवइ चमरहारिणी गणिया । आइससु देव ! मं झति जेण बंधिय तमाणे हं ॥१९३॥
तो नरवइणा मज्झिमवयाओ अवराओ सत्त गणियाओ । तीए सह थविरपरियणपायाओ पेसियाओ लहुं ॥१९४॥
तत्तो समणिसयासम्मि सिक्खिउं सव्वमेव गिहिधम्मं । पत्ता परिपूयती तित्थाणि कमेण रायगिहं ॥१९५॥
तत्थ जिणभवणवंदणवडियं काऊण तयणु गिहपडिमा । पूयंती संपत्ता कमेण अभयस्स भवणम्मि ॥१९६॥
निस्सीहियं कुणंती सोउं अभओ पयंपइ पहिट्ठो । सागयमत्थु निसीहियपरस्स साहम्मियजणस्स ॥१९७॥
पूइत्तु जिणवरिंदं वंदाविय तित्थजिणवरे अभयं । उवविट्ठाओ पुट्ठा अभएणं इह कओ तुब्भे ? ॥१९८॥
मज्झिमवयाण मज्झाओ तस्स एगा कहेउमाढत्ता । निसुणसु सावय ! एईए भवविरत्ताए सुहचरियं ॥१९९॥
उज्जेणीए इब्भस्स भारिया तस्स आसि मणइट्ठा । पुव्वकयकम्मपरिणइवसेण विहवत्तमणुपत्ता ॥२००॥
भवउव्विग्गा काऊण तित्थजत्ताओ तयणु नियनयरिं । गंतूणं पव्वज्जं घेत्तुं काही तवच्चरणं ॥२०१॥
इय निसुणिऊण अभएण तयणु विप्फुरियदसणकिरणेण । रेहिररोमंचंचियसव्वंगेणं पुणो भणियं ॥२०२॥
साहम्मिणीओ ! भोयणकरणेण अणुग्गहं मह कुणंतु । तित्थोववासियाओ अम्हे भणिऊण उट्ठंति ॥२०३॥
धरणियलनिहियनयणा परिहरियसचित्तसरणिसंचरणा । गंतूण नियावासे कुणंति मुणिभणियसज्झायं ॥२०४॥
तो बीयदिणे अभओ तासिं गुणरायरंजिओ संतो । तुरयारूढो गंतूण ताओ आमंतए सगिहे ॥२०५॥

अवगतसद्भावो भणति नास्ति स कोऽपि ममास्थाने । यः कूटकपटबुद्धि बद्ध्वाऽऽनयतीहाभयम् ॥ १९२ ॥
तन्निश्रुत्य विज्ञापयति नरपतिं चामरधारिणी गणिका । आदिश देव ! मां झटिति येन बद्ध्वा तमानयाम्यहम् ॥१९३॥
ततो नरपतिना मध्यमवया अपराः सप्त गणिकाः । तस्याः सह स्थविरपरिजनप्रायाः प्रैषिता लघुम् ॥ १९४ ॥
ततः श्रमणीसकाशे शिक्षित्वा सर्वमेव गृहिधर्मम् । प्राप्ता परिपूजयन्ती तीर्थाणि क्रमेण राजगृहम् ॥ १९५ ॥
तत्र जिनभवनवन्दनवर्तिकां कृत्वा तदनु गृहप्रतिमाम् । पूजयन्ती संप्राप्ता क्रमेणाभयस्य भवने ॥ १९६ ॥
निषेधिकां कुर्वन्तीं श्रुत्वाऽभयःप्रजल्पति प्रहृष्टः । स्वागतमस्तु निषेधिकापरस्य साधर्मिकजनस्य ॥ १९७ ॥
पूजयित्वा जिनवरेन्द्रं वन्दित्वा तीर्थजिनवरानभयम् । उपविष्टाः पृष्टा अभयेनेह कुतोयूयम् ? ॥ १९८ ॥
मध्यमवयसां मध्यतस्तस्यैका कथयितुमारब्धा । निशृणु श्रावक ! एतस्या भवविरक्तायाः शुभचरितम् ॥ १९९ ॥
उज्जैन्यामिभ्यस्य भार्या तस्यासीन्मनइष्टा । पूर्वकृतकर्मपरिणतिवशेन विधवत्वमनुप्राप्ता ॥ २०० ॥
भवोद्विग्ना कृत्वा तीर्थयात्रास्तदनु निजनगरीम् । गत्वा प्रव्रज्यां गृहीत्वा करिष्यति तपश्चरणम् ॥ २०१ ॥
इति निश्रुत्याभयेन तदनु विस्फुरितदशनकिरणेन । राजमानरोमाञ्चाञ्चितसर्वाङ्गेण पुनर्भणितम् ॥ २०२ ॥
साधर्मिक्यः ! भोजनकरणेनानुग्रहं मम कुर्वन्तु । तीर्थोपवासिता वयं भणित्वोत्तिष्ठन्ति ॥ २०३ ॥
धरणितलनिहितनयनाः परिहृतसचितसरणिसञ्चरणाः । गत्वा निजावासे कुर्वन्ति मुनिभणितस्वाध्यायम् ॥२०४ ॥
ततो द्वितीयदिने ऽभयस्तासां गुणरागरञ्जितस्सन् । तुरगारुढो गत्वा ता आमन्त्र्यति स्वगृहे ॥ २०५ ॥

भणिओ य ताहिं तं एत्थ ताव कुण भोयणं तओ अम्हे । तुह भवणे काहामो पारणयं तयणु सो भुत्तो ॥२०६॥
सम्मोहकारिबहुविहवत्थुजुयं पाइओ मयं ताहिं । तयणु पसुत्तो संतो अवहरिओ रहवरेण इमो ॥२०७॥
नीओ उज्जेणीए तीए नियरायपायपासम्मि । पक्खित्तो य नरिंदेण तयणु बोल्लाविओ एवं ॥२०८॥
रे ! कत्थ गया बुद्धी महिलामेत्तेण जं इहाणीओ । धम्मच्छलेण छलिओ पावाए इमाए सो भणइ ॥२०९॥
इय भणिए नरनाहेण नियलिओ तह स वयणनियलेहिं । जह न अमुक्को सक्कइ नियनयरे गन्तुमेत्तो य ॥२१०॥
चत्तारि संति रयणाणि चंडपज्जोयपुहइपालस्स । देवी सिवा नलगिरी करी तहा अग्गिभीरु रहो ॥२११॥
लेहारिओ य तह लोहजंघनामो दिणम्मि पणवीसं । अइकमइ जोयणे लेहहत्थओ जाइ राईण ॥२१२॥
अणुवासरं पि संताविएहिं तो तेहिं तस्स वहणत्थं । रइउं कुदव्वमोयगसंबलयं अप्पियं तत्तो ॥२१३॥
मग्गम्मि जाव जेमेइ मोयगे ता छड त्ति केणावि । छीयं एवमसउणो संजाओ तस्स वारतिगं ॥२१४॥
तं विन्नतं तो तेण चंडपज्जोयराइणो सो वि । पुच्छइ अभयकुमारं सो वि तयं कहइ बुद्धीए ॥२१५॥
होही नियमेण नरिंद ! एत्थ दिट्ठीविसो महासप्पो । तद्दिट्ठीए दिट्ठो एसो भासीकओ होज्ज ॥२१६॥
इण्हि पुण अडवीए परम्मुहं छोडिउं मुयह थइयं । तो तहकए करालो नीहरिओ दिट्ठिविससप्पो ॥२१७॥
तद्दिट्ठिगोयरगया भासीभूया असेसवणराई । कहियं च पुहइपालस्स सो वि तुट्ठो भणइ अभयं ॥२१८॥
मोत्तुं बंधणमोक्खं वरमवरं वरसु जं मणोभिमयं । सो भणइ देव ! चिट्ठउ मज्झ वरो तुज्झ पासम्मि ॥२१९॥
होही जया पओयणमहं तया नियवरं वरिस्सामि । अह अन्नया नलगिरी भग्गालाणो भमइ नयरिं ॥२२०॥

भणितश्च ताभिस्त्वमत्र तावत्कुरुभोजनं ततो वयम् । तव भवने करिष्यामः पारणकं तदनु स भुक्तः ॥ २०६ ॥
सम्मोहकारिबहुविधवस्तुयुतं पायितो मदं ताभिः । तदनु प्रसुप्तस्सन्नपहृतो रथवरेणायम् ॥ २०७ ॥
नीत उज्जैन्यां तया निजराजपादपार्श्वे । प्रक्षिप्तश्च नरेन्द्रेण तदनु कथित एवम् ॥ २०८ ॥
रे ! कुत्र गता बुद्धि र्महिलामात्रेण यदिहाऽऽनीतः । धर्मच्छलेन छलितः पापयाऽनया स भणति ॥ २०९ ॥
इति भणिते नरनाथेन निगडितस्तथा स वचननिगडैः । यथा नामुक्तः शक्यते निजनगरे गन्तुमितश्च ॥ २१० ॥
चत्वारि सन्ति रत्नानि चण्डप्रद्योतपृथिवीपालस्य । देवी शिवाऽनलगिरिःकरी तथाऽग्निभीरूरथः ॥ २११ ॥
लेखारिकश्च तथा लोहजङ्घनामो दिने पञ्चविंशतिः । अतिक्रामति योजनाल्लेखहस्तको याति रात्रिणा ॥ २१२ ॥
अनुवासरमपि संतापितैस्ततस्तैस्तस्य हननार्थम् । रचयित्वा कुद्रव्यमोदकशम्बलकमर्पितं ततः ॥ २१३ ॥
मार्गे यावज्जेमति मोदकांस्तावच्छडितिकेनापि । क्षुतमेवमपशकुनः सञ्जातस्तस्य वारत्रिकम् ॥ २१४ ॥
तं विज्ञप्तं ततस्तेन चण्डप्रद्योतराज्ञा सोऽपि । पृच्छत्यभयकुमारं सोऽपि तकं कथयति बुद्ध्या ॥ २१५ ॥
भविष्यति नियमेन नरेन्द्र ! अत्र दृष्टिविषो महासर्पः । तदृष्ट्या दृष्ट एष भस्मीकृतो भवेत् ॥ २१६ ॥
इदानीं पुनरटव्यां पराङ्मुखं छोटयित्वा मुञ्चत स्थगिकम् । ततस्तथाकृते करालो निःसृतो दृष्टिविषसर्पः ॥ २१७ ॥
तद्दृष्टिगोचरगता भस्मीभूता अशेषवनराजयः । कथितं च पृथिवीपालस्य सोऽपि तुष्टो भणत्यभयम् ॥ २१८ ॥
मुक्त्वा बन्धनमोक्षं वरमपरं वृणु यन्मनोऽभिमतम् । सभणति देव ! तिष्ठतु मम वरो तव पार्श्वे ॥ २१९ ॥
भविष्यति यदा प्रयोजनमहं तदा निजवरं वरिष्यामि । अथान्यदाऽनलगिरी भग्नालानो भ्रमति नगरीम् ॥ २२० ॥

भंजंतो पुर-मन्दिरगोउर-दाराणि तो नरिन्देण । अभयकुमारो पुट्ठो तेणावि पयंपियं एयं ॥२२१॥
वच्छाहिवई गायउ जो चिट्ठइ उदयणो इहाऽऽणीओ । सो किह ? पज्जोयसुया वासवदत्ता कलाकुसला ॥२२२॥
गंधव्वकलाकुसलो न तम्मि समयम्मि उदयणादन्नो । ता आणिज्जउ एसो एईए सिक्खणनिमित्तं ॥२२३॥
सो कह आणेयव्वो ? अभएणुत्तंस गयवर दट्ठुं । गीएण कुणइ सवसं तो कारिमकरिवरोविहिओ ॥२२४॥
मुक्को य तस्स विसए चरमाणो वणयरेण केणावि । दिट्ठो कहिओ य तओ गंतुं उदयणनरिंदस्स ॥२२५॥
तत्तो वलसहिओ सो समागओ गयवरस्स पासम्मि । मोत्तुं खंधावारं अल्लीणो गयसमीवम्मि ॥२२६॥
अइमहुररावपूरियदियंतरो जाव गायइ नरिंदो । ताव गइंदो जाओ अविचलगत्तो पसुत्तो व्व ॥२२७॥
पच्चासन्नो जाओ राया पच्छन्नसंठियनरेहिं । धरिऊण चंडपज्जोयराइणो तेहिं उवणीओ ॥२२८॥
भणिओ य मज्झ धूयं काणं सिक्खवसु सुंदरं गेयं । न तए निरिक्खियव्वा जओ इमा लज्जिही अहियं ॥२२९॥
कहियं तीय वि वच्छे ! एयं कोढाभिभूयसव्वंगं । मा पेच्छसु तं तुज्झ वि मा संचरिही इमो वाही ॥२३०॥
सो जवणियंतरठियं कुमरिं सिक्खवइ तस्स सद्देण । अवहरियमणा सा तं पलोइउं कोउयं वहइ ॥२३१॥
परमवलोयइ न हु रोगसंगभीया अहऽन्नया कुमरी । सम्मं सरसंगहणं न कुणइ रुट्ठेण तो तेण ॥२३२॥
भणिया काणे ! किं पढसि कूडयं ? तो सरोसमेसा वि । जंपइ किं न वियाणसि अप्पाणं कोढिय ! निहीण ? ॥२३३॥
जारिसवो हं कोढी नूणं काणा वि तारिसा एसा । इय चिंतिऊण जवणियमुक्खिविउं जाव सो नियइ ॥२३४॥
ता पेच्छइ तं कुमरिं अहिणवजोव्वणमणोहरावयवं । सो सपिवासं तीय वि सच्चविओ कुसुमबाणो व्व ॥२३५॥

भञ्जत्पुरमन्दिरगोपूरद्वाराणि ततो नरेन्द्रेण । अभयकुमारः पृष्टस्तेनापि प्रजल्पितमेतत् ॥ २२१ ॥
वत्साधिपति र्गायतु यस्तिष्ठत्युदायन इहाऽऽनीतः । स कथं ? प्रद्योतसुता वासवदत्ता कलाकुशला ॥ २२२ ॥
गान्धर्वकलाकुशलो न तस्मिन्समय उदायनादन्यः । तत आनयत्वेष एतस्याः शिक्षणनिमित्तम् ॥ २२३ ॥
स कथमानेतव्यो ? ऽभयेनोत्तांशं गजवरं दृष्ट्वा । गीतेन करोति स्ववशं ततः कृत्रिमकरिवरो विहितः ॥ २२४ ॥
मुक्तश्च तस्य विषये चरन्वनचरेण केनापि । दृष्टः कथितश्च ततो गत्वोदयननरेन्द्रस्य ॥ २२५ ॥
ततो बलसहितः स समागतो गजवरस्य पार्श्वे । मुक्त्वा स्कन्धावारमालीनो गजसमीपे ॥ २२६ ॥
अतिमधुरारावपूरितदिगन्तरो यावद्गायति नरेन्द्रः । तावद्गजेन्द्रो जातोऽविचलगात्रः प्रसुप्त इव ॥ २२७ ॥
प्रत्यासन्नो जातो राजा प्रच्छन्नसंस्थितनरैः । धृत्वा चण्डप्रद्योतराज्ञे तैरुपनीतः ॥ २२८ ॥
भणितश्च ममदुहितां काणां शिक्षस्व सुन्दरं गेयम् । न त्वया निरीक्षितव्या यत इमा लज्जिस्यत्यधिकम् ॥ २२९ ॥
कथितं तस्या अपि वत्से ! एनं कुष्ठाभिभूतसर्वाङ्गम् । मा पश्य त्वं तवापि मा सञ्चरिष्यत्ययं व्याधिः ॥२३० ॥
स यवनिकान्तरस्थितां कुमारिं शिक्षते तस्य शब्देन । अपहृतमना सा तं प्रलोकयितुं कौतुकं वहति ॥ २३१ ॥
परमवलोकयति न खलु रोगसङ्गभीताऽथान्यदाकुमारी । सम्यक्स्वरसङ्ग्रहणं न करोति रुष्टेन ततस्तेन ॥ २३२ ॥
भणिता काणे ! किं पठसि कूटकं ? तदा सरोषमेषाऽपि । जल्पति किं न विजानात्यात्मानं कुष्ठी ! निह्रीण ? ॥२३३॥
यादृशोऽहं कुष्ठी नूनं काणापि तादृशैषा । इति चिन्तयित्वा यवनिकामुत्क्षिप्य यावत्स पश्यति ॥ २३४ ॥
तावत्पश्यति तां कुमारिमभिनवयौवनमनोहरावयवाम् । स सपिपासं तयापि [1]सत्यापितः कुसुमबाण इव ॥ २३५ ॥

अवरोप्पराणुराओ संजाओ ताण मुणइ न हु कोइ । मोत्तुं कंचणमालं नलगिरिकरिबंधणनिमित्तं ॥२३६॥
भणिओ पज्जोयनिवेण उदयणो कुणसु सुंदरं गीयं । पभणइ गाएमि अहं वासवदत्ताए संजुत्तो ॥२३७॥
आरूढो भद्दवइं करेणुयं तो तहा कयं तेहिं । अंतरदिन्नपडेहिं गहिओ हत्थी तओ राया ॥२३८॥
वियरइ वरं दुइज्जं अभयस्स तहेव तं पि निक्खिवइ । तो उदयणेण घडिया चउरो मुत्तस्स भरिऊण ॥२३९॥
आरोवियाओ सद्धिं वासवदत्ताए नियपुराभिमुहं । सिग्घं पलाइओ सो सन्नज्झइ नलगिरिं जाव ॥२४०॥
पणवीसजोयणाइं भद्दवई हत्थिणी गया तत्तो । मिलिओ नलगिरिहत्थी मुत्तघडी पाडिया एगा ॥२४२॥
उस्सिंघइ जाव तयं हत्थी ता हत्थिणी पवणवेगा । पणुवीसजोयणाइं गया पुणो नलगिरी पत्तो ॥२४३॥
तो अवरा मुत्तघडीउ तप्पुरो पाडियाओ जा तिन्नि । ता संपत्तो कोसंविनियपुरिं उदयणनरिंदो ॥२४४॥
जाया य अग्गमहिसी वासवदत्ता इओ अवंतीए । केत्तियकालम्मि गए असिवग्गी दारुणो जाओ ॥२४५॥
पज्जलइ अवल-इट्टाल-धूलिमाई वि सयलनयरीए । तण-कट्ठ-करीसाणं का गणणा दाहजोग्गाण ? ॥२४६॥
तो पुट्ठोऽभयमंती तेणुत्तं खिवह एत्थ अवरग्गी । तह विहिए विज्झाओ समग्गनयरीए असिवग्गी ॥२४७॥
लद्धो वरो तइज्जो तहा निहित्तो निवम्मि अभएण । अह अन्नया समुट्ठियमसिवं अइभीसणं तत्थ ॥२४८॥
तो पुच्छइ पुहइवई अभयं सो भणइ देव ! अत्थाणे । कयरायअलंकाराओ इंतु देवीओ सव्वाओ ॥२४९॥
जा का वि जिणइ तुब्भे दिट्ठीए मज्झ सा कहेयव्वा । तह विहिए सव्वा वि हु देवीओ अहोमुहीउ ढिया ॥२५०॥
मोत्तूण सिवादेविं निवेइयं तो निवेण अभयस्स । सो भणइ सा अवसणा निसाए आढगबलिं घेत्तुं ॥२५१॥
चच्चर-चउक्क-रच्छा-गोउर-अट्टालपमुहठाणेसु । जत्थ समुट्ठइ भूयं तस्स मुहे निव्विसंकाए ॥२५२॥

परस्परानुरागः सञ्जातस्तयो र्मुणति न खलु कोऽपि । मुक्त्वा कञ्चनमालां नलगिरिकरिबन्धननिमित्ताम् ॥२३६ ॥
भणितः प्रद्योतनृपेणोदयनः कुरु सुन्दरं गीतम् । प्रभणति गायाम्यहं वासवदत्तया संयुक्तः ॥ २३७ ॥
आरुढो भद्रवतीं करेणुकां ततस्तथा कृतं तैः । अन्तरदत्तपटै गृहीतो हस्ती ततो राजा ॥ २३८ ॥
वितरति वरं द्वितीयमभयस्य तथैव तमपि निक्षिपति । तत उदयेन घटिका चत्वारो मूत्रस्य भृत्वा ॥ २३९ ॥
आरोपिताः सार्धं वासवदत्तया निजपुराभिमुखम् । शीघ्रं पलायित स सन्नह्यते नलगिरिं यावत् ॥ २४० ॥
पञ्चविंशतिर्योजनानि भद्रवती हस्तिनी गता ततः । मिलितो नलगिरिहस्ती मूत्रघटी पातितैका ॥ २४२ ॥
आघ्राति यावत्तकं हस्ती तावद्धस्तिनी पवनवेगा । पञ्चविंशतिर्योजनानि गता पुन र्नलगिरिः प्राप्तः ॥ २४३ ॥
ततोऽपरा मूत्रघटिका तत्पुरः पातिता यात्रिणि । तावत्संप्राप्तः कौशाम्बीनिजपुरीमुदयननरेन्द्रः ॥ २४४ ॥
जाता चाग्रमहिषी वासवदतेतोऽवन्त्याम् । कतिपयकाले गते ऽशिवाग्नि र्दारुणो जातः ॥ २४५ ॥
प्रज्वलत्युत्पलेष्टालधूल्यादयोऽपि सकलनगर्याम् । तृण-काष्ट-करीषाणां का गणना दाहयोग्यानाम् ? ॥ २४६ ॥
ततः पृष्टोऽभयमन्त्री तेनोक्तं क्षिपतात्रापराग्निम् । तथा विहिते विध्यातः समग्रनगर्यामशिवाग्निः ॥ २४७ ॥
लब्धो वरस्तृतीय तथा निहितो नृपे ऽभयेन । अथान्यदा समुत्थितमशिवमतिभीषणं तत्र ॥ २४८ ॥
तदा पृच्छति पृथिवीपतिरभयं स भणति देव ! आस्थाने । कृतरागालङ्कारा एन्तु देव्य सर्वाः ॥ २४९ ॥
या काऽपि जयति त्वं दृष्ट्या मम सा कथितव्या । तथा विहिते सर्वा अपि खलु देव्योऽधोमुख्यः स्थिताः ॥२५०॥
मुक्त्वा शिवादेवीं निवेदितं ततो नृपेणाभयस्य । स भणति साऽवशना निशायामाढकबलिं गृहीत्वा ॥ २५१ ॥
चत्वर-चतुष्क-रथ्या-गोपूराट्टालकप्रमुखस्थानेषु । यत्र समुत्तिष्ठति भूतं तस्य मुखे निर्विशङ्कया ॥ २५२ ॥

---

१. दृष्टः ।

खिवियव्वो बलिकूरो तह कए तो अवंतिनयरीए । जाओ असिवोवसमो तओ चउत्थो वरो लद्धो ॥२५३॥
को चिट्ठिही परगिहे ? इय चिंतिय अभयमंतिणा भणियं । चउरो वि वरा दिज्जंतु देव ! जे मज्झ पडिवन्ना ॥२५४॥
आरूढो एगेणं खंधे नलगिरिकरेणुरायस्स । अवरेण तुमं मिंढो तइएण सिवाए अच्छंगे ॥२५५॥
अवरमिह अग्गिभीरुयरहवरदारू हिं मह चउत्थेणं । वियरसु कट्ठाइं चियाए जेण पविसामि निव्विन्नो ॥२५६॥
नियमेणं गंतुमणो एसो एवं जओ पयंपेइ । सम्माणिऊण मुक्को निवेण तो तेण पडिभणियं ॥२५७॥
धम्मच्छलेण छलिओ तए अहं तं पुणो मए नियमा । रविणा दीवेण अवंतिपुरवरीलोयपच्चक्खं ॥२५८॥
बंधेउं नेयव्वो त्ति [१]जंपियं सो पुरम्मि रायगिहे । संपत्तो तो [२]कइय वि दिणाणि तत्थेव गमिऊण ॥२५९॥
तरूणजणनयणमोहणअहिणवजोव्वणमणोहरंगीओ । गणियाओ दोन्नि घेत्तूण सो गओ नयरिमुज्जेणिं ॥२६०॥
गुडियकयावरूवो रायदुवारम्मि आवणं घेत्तुं । पारद्धो ववहरिउं अभओ अह अन्नदिवसम्मि ॥२६१॥
गच्छंतेण नरिंदेण ताओ गणियाओ गिहगवक्खम्मि । उवविट्ठाओ दिट्ठाओ भुवणअब्भहियरूवाओ ॥२६२॥
सविलास-सविब्भम-सालसेहिं नेत्तेहिं ताहिं नरनाहो । आबद्धपंजलीहिं पलोइओ जा गिहं पत्तो ॥२६३॥
तत्तो गणियासविलासनयणबाणेहिं सल्लियसरीरो । पेसइ ताण सयासम्मि दूइयं सा वि गंतूण ॥२६४॥
जंपइ जहा नरिंदो तुम्हाण समागमं समीहेइ । न कुणइ राया एयं ति ताओ कुवियाओ जंपंति ॥२६५॥
पुणरवि बीय-तइज्जम्मि वासरे दूइयाए तह भणिए । गणियाओ भणंति जहा बीहेमो भाउणो अम्हे ॥२६६॥
परमेत्थ देवजत्ताए वाउलो सत्तमम्मि दिवसम्मि । सो होही तो राया मज्झण्हे एगगो एउ ॥२६७॥
अभएण चंडपज्जोयनामगो वाइओ कओ भिच्चो । वेज्जसयासे निच्चं निज्जइ एवं पयंपंतो ॥२६८॥

क्षेप्तव्यो बलिकूरस्तथा कृते तदाऽवन्तिनगर्याः । जातोऽशिवोपशमस्ततश्चतुर्थो वरो लब्धः ॥ २५३ ॥
कस्तिष्ठति परगृहे ? इति चितयित्वाभयमन्त्रिणा भणितम् । चत्वारोऽपि वरा दीयतां देव ! ये मम प्रतिपन्नाः ॥ २५४॥
आरुढ एकेन स्कन्धे नलगिरिकरेणुज्ञःस्य । अपरेण त्वं हस्तिपकस्तृतीयेन शिवाया उत्सङ्गे ॥ २५५ ॥
अपरमिहाग्निभीरुकरथवरदारुभि र्मम चतुर्थेन । वितर काष्टानि चितायां येन प्रविशामि निर्विण्णः ॥ २५६ ॥
नियमेन गन्तुमना एष एवं यतः प्रजल्पति । सन्मान्य मुक्तो नृपेण ततस्तेन प्रतिभणितम् ॥ २५७ ॥
धर्मच्छलेनछलितस्त्वयाहं त्वां पुनर्मया नियमा । रविना दीपेनावन्तिपुरर्वरीलोकप्रत्यक्षम् ॥ २५८ ॥
बद्ध्वा नेतव्य इति जल्पितं स पूरे राजगृहे । संप्राप्तस्तत कतिपयान्यपि दिनानि तत्रैव गमयित्वा ॥ २५९ ॥
तरुणजननयनमोहनाभिनवयौवनमनोहराङ्यौ । गणिके द्वे गृहीत्वा स गतो नगरीमुज्जैनीम् ॥ २६० ॥
गुटिकाकृतापररुपो राजद्वार आपणं गृहीत्वा । प्रारब्धो व्यवहर्तुमभयोऽथान्यदिवसे ॥ २६१ ॥
गच्छता नरेन्द्रेण ते गणिके गृहगवाक्षे । उपविष्टे दृष्टे भुवनाभ्यधिकरुपे ॥ २६२ ॥
सविलास-सविभ्रम-सालसै नैत्रैस्ताभ्यांर्नरनाथः । आबद्धपञ्जलिभ्यां प्रलोकितो यावद्गृहं प्राप्तः ॥ २६३ ॥
ततो गणिकासविलासनयनबाणैः शल्यितशरीरः । प्रेषयति तयोः सकाशे दूतिकां साऽपि गत्वा ॥ २६४ ॥
जल्पति यथा नरेन्द्रो युवयोःसमागमं समीहते । न करोति राजैतदिति ते कुपिते जल्पतः ॥ २६५ ॥
पुनरपि द्वितीय-तृतीये वासरे दूतिकया तथा भणिते । गणिके भणतो यथा बिभीवो भ्रात्राऽऽवाम् ॥ २६६ ॥
परमत्र देवयात्रायां व्याकुलः सप्तमे दिवसे । सभविष्यति तदा राजा मध्याह्नयेकक एतु ॥ २६७ ॥
अभयेन चण्डप्रद्योतनामको वातिकः कृतो भृत्यः । वैद्यसकाशे नित्यं नीयते एवं प्रजल्पन् ॥ २६८ ॥

---

१. जंपिउं -रं० । २. कइवइ दिणाणि रं० ।

भो नयरजणा ! तुम्हाण नायगो एस चंडपज्जोओ । निज्जइ बद्धो अभएण तयणु धावइ जणो सयलो ॥२६९॥
किं एस इमं जंपइ ? पयंपिए भणइ अभयवरमन्ती । मज्झ कणिट्ठो भाया कम्मवसा वाउलीहूओ ॥२७०॥
अणुवासरं पि वेज्जस्स मंदिरे कारवेमि उवयारं । उज्जेणिजणो सव्वो एवं विस्सासिओ तेण ॥२७१॥
सत्तमदिणमज्झण्हे नरेसरो जा गवक्खमग्गेण । आरूढो ता बद्धो पच्छन्ननिउत्तपुरिसेहिं ॥२७२॥
पक्खित्तो पल्लंके वाहरमाणो तहेव अभएण । आणीओ रायगिहे खित्तो सेणियनरिंदपुरो ॥२७३॥
तो बद्धभीमभिउडीभयंकरो सेणिओ पुहइपालो । आयड्ढियकरवालो समुट्ठिओ तस्स हणणत्थं ॥२७४॥
पडिसिद्धो अभएणं पयंपए वच्छ ! कहसु किं जुत्तं ? । तो भणइ अभयमन्ती देव ! महानरवई एसो ॥२७५॥
ता सम्माणं काउं महरिहरिद्धीए तत्थ गंतूण । मुच्चइ तत्तो सेणियनिवेण विहियं तह च्चेव ॥२७६॥
जाया तओ महंता पीई दोण्ह वि परोप्परं ताण । एसा अभयस्स सुए भणिया परिणामिया बुद्धी ॥२७७॥
एवंविहाणि बहुयाणि अप्पणा कट्ठसिट्ठिमाईणि । परिणामियबुद्धीए वियाणियव्वाणि नायाणि ॥२७८॥

॥ अभयाख्यानं समाप्तम् ॥४॥

इत्थं मनोभिमतकामभृतां नराणां श्रेयान् वसंततिलकाकृतिमादधानः ।
विष्वक्सुपत्रनिचयः सुमनोभिरामच्छायान्वितो जयति वृद्धिकृतः प्रपञ्चः ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे बुद्धिपञ्चवर्णनः प्रथमोऽधिकारः समाप्तः ॥१॥

भो नगरजनाः ! युष्माकं नायक एष चण्डप्रद्योतः । नीयते बद्धोऽभयेन तदनु धावति जनः सकलः ॥ २६९ ॥
किमेष इदं जल्पति ? प्रजल्पिते भणत्यभयवरमन्त्री । मम कनिष्ठो भ्राता कर्मवशाद्व्याकुलीभूतः ॥ २७० ॥
अनुवासरमपि वैद्यस्यमन्दिरे कारयाम्युपचारम् । उज्जैनिजनः सर्व एवं विश्वासितस्तेन ॥ २७१ ॥
सप्तमदिनमध्याह्ने नरेश्वरो यावद्गवाक्षमार्गेण । आरुढस्तावब्दद्धः प्रच्छन्ननियुक्तपुरुषैः ॥ २७२ ॥
प्रक्षिप्तः पल्यङ्के व्याहरमाणस्तथैवाभयेन । आनीतो राजगृहे क्षिप्तः श्रेणिकनरेन्द्रपुरः ॥ २७३ ॥
ततो बद्धभीमभृकुटिभयङ्करः श्रेणिकः पृथिवीपालः । आकृष्टकरवालः समुत्थितस्तस्य हननार्थम् ॥ २७४ ॥
प्रतिषिद्धोऽभयेन प्रजल्पति वत्स ! कथय किं युक्तम् ? । ततो भणत्यभयमन्त्री देव ! महानरपत्येषः ॥ २७५ ॥
ततः सन्मानं कृत्वा महार्हद्धर्या तत्र गत्वा । मुञ्चति ततः श्रेणिकनृपेण विहितं तथा चैव ॥ २७६ ॥
जाता ततो महती प्रीति र्द्वयोरपि परस्परं तयोः । एषाऽभयस्य सूत्रे भणिता पारिणामिका बुद्धिः ॥ २७७ ॥
एवंविधानि बहून्यात्मना काष्टश्रेष्ट्यादिनि । पारिणामिकबुद्धया विज्ञातव्यानि ज्ञातानि ॥ २७८ ॥

॥ अभयाख्यानकं समाप्तम् ॥ ४ ॥

[२. दानस्वरूपवर्णनाधिकारः]

बुद्धिमद्भिर्दानादिके धर्मे प्रवृत्तिर्विधेया इत्युक्तम् । अतस्तमेव चतुर्विधं दानादिकं धर्मं बिभणिषुस्तत्रापि गृहस्थानश्रित्य विशेषविधेयतया दानधर्मं प्रथमं तावदाह –

आरंभपवत्ताणं गिहीण बहुविहपरिग्गहजुयाणं ।
धम्मस्स पहाणंगं दाणं ता तत्थ जइयव्वं ॥ ४ ॥

व्याख्या-आरम्भः – कृष्यादिकस्तस्मिन् प्रकर्षेण-आदेयबुद्ध्या वृत्ताः- प्रवृत्तास्तेषाम् 'गृहीणां' गृहस्थानां बहुविधः-नानाप्रकारः परिग्रहः-धनधान्यादिरुपस्तेन युतानां-समन्वितानां 'धर्मस्य' प्राग्व्यावर्णितस्वरुपस्य प्रधानं-परमं अङ्गं कारणं 'दानं' वित्तवितरणम् । तस्मात् 'तत्र' दाने 'यतितव्यं' प्रयत्नो विधेय इति गाथार्थः ॥ ४ ॥

कुतः पुनरेतदवसित यद् गृहस्थानां दानं धर्मस्य प्रधानमङ्गम् इति ?अत आह –

सुर-नर-सिवसोक्खाणं मुणिदाणं कारणं जओ जायं ।
धण-धन्नय-कयउन्नय-दोणाई-सालिभद्दाणं ॥ ५ ॥

व्याख्या – 'सुर-नर-शिवसौख्यानां' देव-मनुज-मोक्षशर्मणां 'मुनिदानं' यतिभ्यः कल्पनीयवस्तुवितरणं 'कारणं' हेतुः 'यतः' यस्मात् कारणाद् 'जात' सम्पन्नम् । केषाम् इति ? अत आह-धनश्च-सार्थवाहः [१]धन्यकश्च-नलनृपतिजीवःकृतपुण्यकश्च-इभ्यपुत्रः द्रोणः- कर्मकरः स आदिर्येषां तत्स्वामिवणिजां ते द्रोणादयः ते च शालिभद्रश्च-इभ्यसुतस्ते तथोक्तास्तेषामित्यक्षरार्थः ॥ ५ ॥

भावार्थस्त्वाख्यानकेभ्योऽवसेयः । तानि चामूनि । तत्र तावत् प्रथमं धनाख्यानकमाख्यायते तच्चेदम्-

---

१. धान्यकश्च-खं० रं० ।

धनाख्यानकम्–

अवरविदेहविलासिणिविलसिरभालयलतिलयसोहिल्लं । आसि सिरिखिइपइट्ठियनयरं धणरिद्धजणकलियं ॥१॥
तत्थऽत्थि पुहइपालो जियसत्तू पणयसयलभूवालो । रिउरुहिरछडकरालो रणंगणं जस्स करवालो ॥२॥
चलचमरविहियसोहं निद्दलियासेससत्तुसंदोहं । रिउकरडिघडअखोहं सो भुंजइ रज्जसज्जसुहं ॥३॥
तत्थऽत्थि सत्थसारो दुत्थियजणदिन्नरित्थवित्थारो । धणनाम सत्थवाहो पलंबपुरिपरिहसमबाहो ॥४॥
अत्थोवज्जणकज्जे सज्जीकाउं कयाणयसमूहं । खर-करह-वसहसहिओ संचलियो सो वसंतउरे ॥५॥
गच्छंतेणं तेणं पयडो कप्पडिय-तडियपमुहस्स । जाणावणत्थमत्थियजणस्स घोसाविओ पडहो ॥६॥
जस्सऽत्थि बलं न हु संबलम्मि करवत्त-वत्थविसयम्मि । पाणहिय-वाहणाईसु तस्स सव्वं पयच्छामि ॥७॥
नयरम्मि वसंतउरे गंतुमणो धम्मघोससूरी वि । पेसइ तस्स सयासम्मि साहुसंघाडगं एगं ॥८॥
पुच्छह आगच्छामो समयं अम्हे वि तुम्ह सत्थेण । साहेज्जकज्जसज्जो जइ होहिसि जइसमूहस्स ॥९॥
गुरुणो वयणं बहुमन्निऊण जइणो धणस्स भवणम्मि । जा पविसंति तओ सो समुट्ठिओ सम्मुहं ताण ॥१०॥
गहिउण पक्क-पीवरसहयारफलाणि भणइ भत्तीए । भयवं ! विहियपसाया फलगहणेऽणुग्गहं कुणह ॥११॥
भणियं च तेहिमम्हं सच्चित्तफलाणि न हु पकप्पंति । तो भणइ धणो आगमणकारणं मह निवेएह ॥१२॥
साहंति तओ मुणिणो वयणं सिरिधम्मघोससूरीण । सो वि अणुग्गहिओ हं सूरीहि पयंपइ पहिट्ठो ॥१३॥

॥ धनाख्यानकम् ॥

अपरविदेहविलासिनिविलसद्भालतलतिलकशोभावत् । आसीच्छ्रीक्षितिप्रतिष्ठितनगरं धनर्द्धिजनकलितम् ॥ १ ॥
तत्रास्ति पृथिवीपालो जितशत्रुःप्रणतसकलभूपालः । रिपुरुधिरछटाकरालो रणाङ्गणे यस्य करवालः ॥ २ ॥
चलचामरविहितशोभं निर्द्दलिताशेषशत्रुसन्दोहम् । रिपुकरटिघटाऽक्षोभं स भुनक्ति राज्यसज्जसुखम् ॥ ३ ॥
तत्राऽस्ति सार्थसारो दुःखस्थितजनदत्तवित्तविस्तारः । धननाम सार्थवाहः प्रलम्बपुरिपरिखासमबाहः ॥ ४ ॥
अर्थोपार्जनकार्ये सज्जीकृत्य क्रयाणकसमूहम् । खर-करभ-वृषभ सहितः सञ्चलितःस वसन्तपुरे ॥ ५ ॥
गच्छता तेन प्रकटः कार्पटिक-तडितप्रमुखस्य । ज्ञापनार्थमर्थीकजनस्य घोषयितः पटहः ॥ ६ ॥
यस्याऽस्ति बलं न खलु संबले करपत्र-वस्त्रविषये । पानहिक[१]-वाहनादिषु तस्य सर्वं प्रयच्छामि ॥ ७ ॥
नगरे वसन्तपुरे गन्तुमना धर्मघोषसूरिरपि । प्रेषयति तस्य सकाशे साधुसङ्घाटकमेकम् ॥ ८ ॥
पृच्छताऽगच्छामः समकं वयमपि तव सार्थेण । साहायकार्यसज्जो यदि भविष्यसि यतिसमूहस्य ॥ ९ ॥
गुरोर्वचनं बहुमन्य यतयो धनस्य भवने । यावत्प्रविशन्ति ततः स समुत्थितः सम्मुखं तेषाम् ॥ १० ॥
गृहीत्वा पक्वपीवरसहकारफलानि भणति भक्त्या । भगवन् ! विहितप्रसादाः फलग्रहणेनानुग्रहं कुरुत ॥ ११ ॥
भणितं च तैरस्माकं सचित्तफलानि न खलु प्रकल्पन्ते । ततो भणति धन आगमनकारणं मम निवेदयत ॥ १२ ॥
कथयतः ततो मुनी वचनं श्रीधर्मघोषसूरेः । सोऽप्यनुगृहीतोऽहं सूरिभिः प्रजल्पति प्रहृष्टः ॥ १३ ॥

१. पानी उपाडवावाला – खेंचवावाला ।

तो सत्थवाहवयणं गंतूण कहंति साहुणो गुरुणो । सूरी वि साहुमंडलसमन्निओ पत्थिओ पंथे ॥१४॥
सुपसत्थतिहिमुहुत्ते कयकोउयमंगलो धवलवेसो । नियदेवयाओ नमिउं नीहरिओ तयणु सत्थाहो ॥१५॥
आयन्नन्तो संभारभरियसगडाण चक्कचिक्कारं । करहकडुरावमीसियखरखरसद्दं च निसुणंतो ॥१६॥
पेच्छंतो भंभारियदिणयरकरतत्तसेरहसमूहं । अत्थरियथोरमंथरमवलोयंतो वसहविंदं ॥१७॥
गुरुभारविसंठुलखुरपडंतमणवरयमणुपलोयंतो । पुच्छग्गधरिय-पिट्टिय-उट्ठाविज्जंतखरविसरं ॥१८॥
भारकसकिसिरकाओडिवावडे पइखणं निरिक्खंतो । धाडीवाहे खंधाओ अवरखंधं भरं निंते ॥१९॥
बहुसासवसपकंपिरपीवरथणहारणीहिं रमणीहिं । [१]हीरिज्जंतो सिग्घयरगमणपावियतरुतलाहिं ॥२०॥
वच्चइ विजियपहंजण-मणजवणुत्तरलतुरयमारूढो । सिरउवरि धरियसिक्किरिविणिवारियतरणिकरपसरो ॥२१॥
पावित्तु पउरइंधण-सीयलजलकलिय-विउलवणसंडं । आवासिओ विसारियविसालपडमंडवगिहेसु ॥२२॥
सत्थियजणो वि को वि हु कत्थइ अइबहलपत्तलतरूसु । अवरोप्परकलहपरो आवासइ रइयगुलिणीसु ॥२३॥
वियडकरवत्त-दीयड-काओडी-कुडयवावडकरग्गा । सिग्घयरं कम्मयरा नीराभिमुहं अणुसरंति ॥२४॥
इय एवमाइबहुविहवावारविहत्थपंथसत्थस्स । पढमो पयाणदियहोऽइक्कन्तो सत्थवाहस्स ॥२५॥
ताडाविउं पयाणगभेरिं पहरावसेसरयणीए । संवाहिऊण सत्थं संचलिओ पुणरवि पहम्मि ॥२६॥

ततः सार्थवाहवचनं गत्वा कथयतः साधूवो गुरुणाम् । सूरिरपि साधुमण्डलसमन्वितः प्रस्थितः पथि ॥ १४ ॥
सुप्रशस्ततिथिमुर्हूते कृतकौतुकमङ्गलो धवलवेशः । निजदेवता नत्वा निसृतस्तदनु सार्थवाहः ॥ १५ ॥
आकर्णयन् सम्भारभृतशकटानां चक्रचित्कारम् । करभकटुरावमिश्रितखरखरशब्दं च निश्रुण्वन् ॥ १६ ॥
पश्यन्तो भम्भारितदिनकरकरतप्तसेरभसमूहम् । आस्तृतस्थूलमन्थरमलोकयन्तो वृषभवृन्दम् ॥ १७ ॥
गुरुभारविसंस्थूलक्षुरपतन्तमनवरतमनुप्रलोकयन्तः । पृच्छाग्रधृत पिट्टतोत्थापयत्खरविसरम् ॥ १८ ॥
भारकशाकृष्यमाणकार्पटिकव्यापृतान् प्रतिक्षणं निरीक्षमाणः । घाटीवाहान् स्कंघादपरस्कन्धं भारं नयतः ॥ १९ ॥
बहुश्वासवशप्रकम्पमानपीवरस्तनधारणिभी रमणिभिः । ह्रियमाणः शीघ्रतरगमनप्राप्ततरुतलाभिः ॥ २० ॥
व्रजति विजितप्रभञ्जन-मनोजवनोत्तरलतुरगमारुढः । शिरउपरि धृतछत्रविनिवारिततरणिकरप्रसरः ॥ २१ ॥
प्राप्य प्रचूरेन्धन-शीतल जलकलित-विपुलवनखण्डम् । आवासितो विसारितविशालपटमण्डपगृहेषु ॥ २२ ॥
सार्थिकजनोऽपि कोऽपि खलु कुत्रचिदतिबहलपत्रालतरुषु । परस्परकलहपर आवासयति रचितगुल्मेषु ॥ २३ ॥
विकटकरपत्र-दन्तपत्र-कुठार-कुरज-व्यापृतकराग्राः । शीघ्रतरं कर्मकरा नीराभिमुखमनुसरन्ति ॥ २४ ॥
इत्येवमादिबहुविधव्यापारविहस्तपन्थसार्थस्य । प्रथमः प्रयाणदिवसोऽतिक्रान्तः सार्थवाहस्यः ॥ २५ ॥
ताडयित्वा प्रयाणकभेरिं प्रहरावशेषरजन्याः । संवाहय सार्थं सञ्चलितः पुनरपि पथि ॥ २६ ॥

---

१. ह्रियमाणः ।

इय एवंविहबहुविहपयाणअक्कंतभूरिमहिवलओ । बहुविडविसंकडाए पत्तो वियडाए अडवीए ॥२७॥

सा केरिसा ?-

तरुणि व्व तरलचिता संवरजुत्ता सुसाहुवित्ति व्व । सुरहि व्व सुहयवच्छा वरकमला कण्हमुत्ति व्व ।२८॥

जा पेच्छंतो गच्छइ तं सो लल्लक्कसावयसमूहे । ता गज्जंतो पत्तो नहंगणे नवघणारंभो ॥२९॥

पहणियमुणिप्पहावो विहुणियवुह-सोम-गुरुपहापसरो । कलिकालो व्व वियंभइ गयणे घणतिमिरपब्भारो ॥३०॥

रयणिसमुन्नयसामलजलहरअंधारियम्मि भुवणयले । दीवसिह व्व तडिलया दरिसइ अभिसारियाण पहं ॥३१॥

उन्नयपओहराए तडितरलऽच्छीए गयणलच्छीए । धवलबलाहयमाला रेहइ मुत्ताहलसरि व्व ॥३२॥

रोलंब-गवलसामलसच्छायं नहयलं सहइ जत्थ । विरहिणिमणमयणानलधूमेण व [1]मइलियमसेसं ॥३३॥

उम्मग्गपसरियासुं घणरसपरिपूरियासु तरलासु । असईसु व्व नईसुं निम्मूलुम्मूलियतडासु ॥३४॥

बहलजलाविलपंकिलपहम्मि पल्हसिरकरहचरणेसु । उद्दामगड्डकद्दमचहुट्टचक्केसु सगडेसु ॥३५॥

आसारवारिधारापहारअवणमिरसीसवसहेसु । गड्डुलजलोहपल्ललपविसिरसेरहसमूहेसु ॥३६॥

अक्कमिउमसक्केसुं चिक्कणकद्दमिलदुग्गमग्गसु । धणसत्थवाहचित्ते चिंता एवं समुपन्ना ॥३७॥

बहलजलवरिसयाले गंतुं पुरओ पहुप्पए नये । ता इण्हि एत्थेव य छइत्तु विरएमि आवासे ॥३८॥

इत्येवंविधबहुप्रयाणाक्रान्तभूरिमहिवलयः । बहुविटपिसङ्कीर्णायां प्राप्तो विकटायामटव्याम् ॥ २७ ॥

सा कीदृशा ? -

तरुणीव तरलचिता संवरयुक्ता सुसाधुवृत्तिरिव । सुरभिरिव सुभगवत्सा वरकमला कृष्णमूर्तिरिव ॥ २८ ॥

यावत्पश्यन्त गच्छति तां स भयङ्करश्वापदसमूहान् । तावद्गर्जन् प्राप्तो नभोऽङ्गणे नवघनारम्भः ॥ २९ ॥

प्रहतमुनिप्रभावो विधुनितबुध-सोम-गुरुप्रभाप्रसरः । कलिकाल इव विजृम्भति गगने घनतिमिरप्राग्भारः ॥ ३० ॥

रजनीसमुन्नतश्यामलजलधराङ्धकारिते भुवनतले । दीपशिखेव तडिल्लता दृश्यत अभिसारिकाणां पथम् ॥ ३१ ॥

उन्नतपयोधरायास्तडितरलाक्ष्या गगनलक्ष्म्याः । धवलबलाहकमाला राजते मुक्ताफलश्रीरिव ॥ ३२ ॥

रोलम्ब-गवलश्यामल-सच्छायं नभस्तलं राजते यत्र । विरहिणिमनोमदनानलधूम्रेणेव मलिनितमशेषम् ॥ ३३ ॥

उन्मार्गप्रसरितासु घनरसपरिपूरितासु तरलासु । असतीष्वेव नदीषु निर्मूलमुन्मूलिततटासु ॥ ३४ ॥

बहलजलाविलपङ्किलपथि प्रस्रंसत्करभचरणेषु । उद्दामगर्तकर्दमनिमग्नचक्रेषु शकटेषु ॥ ३५ ॥

आसारवारिधाराप्रहारावनम्रशीशर्षवृषभेषु । गण्डुलजलौघपल्वलप्रविशत्सैरभसमूहेषु ॥ ३६ ॥

आक्रमितुमशक्येषु चिक्कणकर्दमिलदुर्गमार्गेषु । धनसार्थवाहचित्ते चिन्तैवं समुत्पन्ना ॥ ३७ ॥

बहलजलवर्षाकाले गंतुं पुरतः प्रभवति नैव । तत इदानीमत्रैव च छादयित्वा विरचयाम्यावासान् ॥ ३८ ॥

---

१. मयलिय० रं० ।

इय चिंतिऊण सजडं सुगहं ससिवं सगंगमहिसहियं । तिणयणमिव धरणिधरं निवासहेउं समल्लियइ ॥३९॥
विरइत्तु बहलपत्तलतरूसु रोहंसकड-कुडीराइं । सुत्थकयसयलसत्थियजणेण सह वसिउमारद्धो ॥४०॥
अडविनिवासित्ताओ बहुदियहत्ताओ [१]तुट्टसंबलिओ । कुणइ नियपाणविर्त्ति सत्थो फल-मूल-कंदेहिं ॥४१॥
अह अन्नया कयाई धणस्स रयणीए चिंतयंतस्स । नियसत्थसोक्ख-दुक्खं खुडिक्किया साहुणो हियए ॥४२॥
इह ते महाणुभावा परदत्तुवजीविणो महासत्ता । कंद-फल-मूलभोयणविवज्जिया किह भविस्संति ? ॥४३॥
जम्हा तया वि दाणं फलाण साहूहिं तत्थ पडिसिद्धं । इण्हिं तु वरिसयाले विसेसओ न हु गहिस्संति ॥४४॥
अवरं च ताण तइया आसं दाऊण अवगणंतेण । अंगीकओ मए किह अहह ! महापावपब्भारो ? ॥४५॥
नियपडिवज्जियपालणसुपुरिससरणिं पि परिहरंतेण । अंगीकओ मए किह अहह ! महापावपब्भारो ? ॥४६॥
तिक्खतव-चरणसोसियतणुणो मुणिणोऽवहीरयंतेण । अंगीकओ मए किह अहह ! महापावपब्भारो ? ॥४७॥
आबालकालपालियदुद्धरबंभव्वए चयंतेण । अंगीकओ मए किह अहह ! महापावपब्भारो ? ॥४८॥
धण-सयण-भवणसंबंधवज्जिए जियमए मुयंतेण । अंगीकओ मए किह अहह ! महापावपब्भारो ? ॥४९॥
विसयविसपरवसेणं जईण विर्त्ति अचिंतयंतेण । अंगीकओ मए किह अहह ! महापावपब्भारो ? ॥५०॥
साहूण पहपरिस्समसमुचियकज्जं विव[२]ज्जयंतेण । अंगीकओ मए किह अहह ! महापावपब्भारो ? ॥५१॥

इति चिन्तयित्वा सजटं सगुहं सशिवं सगङ्गमहिसहितम् । त्रिनयनमिव धरणिधरं निवासहेतुं समालीनाति ॥ ३९ ॥
विरच्य बहलपत्रालतरुषु [३]रोहंसकृत-कुटिराणि । सुस्थकृतसकलसार्थिकजनेन सह वसितुमारब्धः ॥ ४० ॥
अटवीनिवासित्त्वाद्बहुदिवसत्वात्त्रुटितसम्बलिकः। करोति निजप्राणवृत्तिं सार्थः फल-मूल-कन्दैः ॥ ४१ ॥
अथान्यदा कदाचिद्धनस्य रजन्यां चिन्तयतः । निजसार्थसौख्यदुःखं शल्यिताः साधवो हृदये ॥ ४२ ॥
इह ते महानुभावाः परदत्तोपजीविनो महासत्त्वाः । कन्द-फल-मूलभोजनविवर्जिताः कथं भविष्यन्ति ? ॥ ४३ ॥
यस्मात्तदापि दानं फलानां साधुभिस्तत्रप्रतिसिद्धम् । इदानीन्तु वर्षाकाले विशेषतो न खलु ग्रहिष्यन्ति ॥ ४४ ॥
अपरं च तेषां तदाऽऽश्रयं दत्त्वाऽवगणयता । अङ्गीकृतो मया कथमहह ! महापापप्राग्भारः ? ॥ ४५ ॥
निजप्रतिपादितपालनपुरुषसरणिमपि परिहरता । अङ्गीकृतो मया कथमहह ! महापापप्राग्भारः ? ॥ ४६ ॥
तीक्ष्णतपश्चरणशोषितततनवो मुनयोऽवधीरयता । अङ्गीकृतो मया कथमहह ! महापापप्राग्भारः ? ॥ ४७ ॥
आबालकालपालितदुर्धरब्रह्मव्रतांस्त्यजता । अङ्गीकृतो मया कथमह ! महापापप्राग्भारः ? ॥ ४८ ॥
धन-स्वजन-भवनसम्बन्धवर्जिताञ्जिनमतान्मुञ्चता । अङ्गीकृतो मया कथमहह ! महापापप्राग्भारः ? ॥ ४९ ॥
विषयविषपरवशेन यतीनां वृत्तिमचिन्तयता । अङ्गीकृतो मया कथमहह ! महापापप्राग्भारः ? ॥ ५० ॥
साधूनां पथपरिश्रमसमुचितकार्यं विवर्जयता । अङ्गीकृतो मया कथमहह ! महापापप्राग्भारः ? ॥ ५१ ॥

---

१. संबलओ रं० । २. विचिंतयंतेण रं०। ३. तृणविशेषः ।

चारित्तिणो सुपत्ते अतिही मुणिणोऽवहीरयंतेण । अंगीकओ मए किह अहह ! महापावपब्भारो ? ।।५२।।
जइ कह वि एत्थ समए छुहाकिलंताण जायइ विरूवं । ता नूणं नरयम्मि वि गयस्स सुद्धी मह न होज्जा ।।५३।।
अह कह वि तिव्वतवतेयभावओ कुसलिणो भविस्संति । तह वि हु निक्करुणो हं वयणं कह ताण दंसिस्सं ? ।।५४।।
इय चिंतिउं समुग्गयसहसकरे कयपभायकायव्वो । आपुच्छित्तु निवासं साहुसयासम्मि संचलिओ ।।५५।।
गच्छंतेणं दिट्ठा मुणिणो गुरुगिरिगुहाए गब्भम्मि । मासोववाससोसियसरीरसोहाए भासंता ।।५६।।
के वि पउमासणत्था मुणिणो उक्कुडुयआसणा अवरे । मंडियलगंडआसणविहूसिया साहुणो अन्ने ।।५७।।
नासग्गनिहियनयणा कलयंता के वि किं पि परमत्थं । उड्ढीकयभुयदंडा चंडतवं के वि हु कुणंता ।।५८।।
वायण-पुच्छण-चिंतण-अणुपेहण-धम्मदेसणसरूवं । पंचविहं सज्झायं झायंता के वि तवनिहिणो ।।५९।।
इय एवंविहमुणिवरपरियरिओ सुरवइ व्व अमरेहिं । सिरिधम्मघोससूरी दिट्ठो धणसत्थवाहेण ।।६०।।
दट्ठूण मुणिवरिंदं पसरियलज्जा विलक्खवयणो सो । अवणमियसिरो वंदिय कयंजली भणिउमाढत्तो ।।६१।।
आसाइया मुणीसर ! तुब्भे निब्भग्गसेहरेण मए । संचालिऊण जम्हा न भासिया वयणमेत्तेणं ।।६२।।
ता काऊण पसायं खमेह अवराहमेक्कमम्हाणं । जम्हा उत्तमपुरिसा हवंति कारुन्नजलनिहिणो ।।६३।।
तो भणइ मुणिवरिंदो दसणावलिकिरणधवलियदियंतो । परिहर विसायमिणमो सुपुरिस ! मा कुणसु मणखेयं ।।६४।।
नियसत्थविविहवावारकरणवक्खित्तमाणसेण तए । जइ न कया साहूणं सारा ता तत्थ को दोसो ? ।।६५।।

चारित्रिणः सुपात्राननतिथिन्मुनिन्नवधीरयता । अङ्गीकृतो मया कथमहह ! महाप्रापप्राग्भारः ? ॥ ५२ ॥
यदि कथमप्यत्र समये क्षुधाक्लान्तानां जायते विरुपम् । ततो नूनं नरकेऽपि गतस्य शुद्धि र्मम न भवेत् ॥ ५३ ॥
अथ कथमपि तीव्रतपस्तेजोभावतः कुशलिनो भविष्यन्ति । तथापि खलु निष्करुणोऽहं वदनं कथं तान्दर्शयिष्यामि ? ॥५४॥
इति चिन्तयित्वा समुद्गतसहस्रकरे कृतप्रभातकर्तव्यः । आपृच्छय निवासं साधुसकाशे सञ्चलितः ॥ ५५ ॥
गच्छता दृष्टा मुनयो गुरुगिरिगुहाया गर्भे । मासोपवासशोषितशरीरशोभया भासमाणाः ॥ ५६ ॥
केऽपि पद्मासनस्था मुनय उत्कुटुकासना अपरे । मण्डितलगण्डासनविभूषिताः साधवोऽन्ये ॥ ५७ ॥
नासाग्रनिहितनयनाः कलयन्तःकेऽपि किमपि परमार्थम् । उर्ध्वीकृतभुजदण्डाश्चण्डतपः केऽपि खलु कुर्वन्तः ॥ ५८ ॥
वाचन-पृच्छन-चिन्तनानुप्रेक्षण-धर्मदेशनस्वरुपम् । पञ्चविधं स्वाध्यायं ध्यायन्तःकेऽपि तपोनिधयः ॥ ५९ ॥
इति एवंविधमुनिवरपरिकरितः सुरपतिरिवामरैः । श्रीधर्मघोषसूरि र्दृष्टो धनसार्थवाहेन ॥ ६० ॥
दृष्ट्वा मुनिवरेन्द्रं प्रसृतलज्जाविलक्षवदनः सः । अवनतशिरा वंदित्वा कृताञ्जलि र्भणितुमारब्धः ॥ ६१ ॥
आशासिता-मुनीश्वर ! यूयं निभाग्यशेखरेण मया । सञ्चाल्य यस्मान्नभाषिता वचनमात्रेण ॥ ६२ ॥
तस्मात्कृत्वा प्रसादं क्षमध्वमपराधमेकमस्माकम् । यस्मादुत्तमपुरुषा भवन्ति कारुण्यजलनिधयः ॥ ६३ ॥
ततो भणति मुनिवरेन्द्रो दशनावलिकिरणधवलितदिगन्तः । परिहर विषादमयं सुपुरुष ! मा कुरु मनःखेदम् ॥ ६४ ॥
निजसार्थविविधव्यापारकरणव्याक्षिप्तमानसेन त्वया । यदि न कृता साधूनां सारा तस्मात्तत्र को दोषः ? ॥ ६५ ॥

अवरं च इह महायस ! मुणिणो माणाऽवमाणविसएसु । सुह-दुक्खकारणेसु य समचित्ता जेण सयकालं ॥६६॥

इय निसुणिऊण वयणं गुरूण बहुगुणगुरूण तयणु धणो । पणमित्तु तो निमंतइ दाणनिमित्तं नियावासे ॥६७॥

गुरुणो वि तस्स बहुमाणपगरिसं पेच्छिऊण पेसंति । तेण सह तस्स भवणम्मि साहुणो असण-पाणस्स ॥६८॥

गंतूण धणो सह मुणिवरेहिं भवणम्मि भणइ नियपुरिसे । आणेह असण-पाणाइ जमिह साहूण पाउग्गं ॥६९॥

तो विन्नविंति ते वि हु असणाइ न अत्थि संपयं सामि ! । किंतु घयमत्थि भणिए मुणिपुरओ तं पि उवणेंति ॥७०॥

दव्वाइचउहसुद्धिं पउंजिउं मुणिवरा वि गिण्हंति । सो वि हु तद्दाणेणं मन्नइ सकयत्थमप्पाणं ॥ ७१॥

अन्नं च-

घयदाणसमयसज्जियहिययब्भंतरफुरंतपरिओसो । बंधइ बंधुरबुद्धीए बोहिबीयं घणो धणियं ॥७२॥

अह घणसमए वित्ते पत्ते सरयम्मि विहसियायासे । धणसत्थवाहसत्थो सुत्थो संपत्थिओ पंथे ॥७३॥

पत्तो य वसंतपुरे कमेण गुरुययरबहुपयाणेहिं । विक्किय कयाणगाइं बहुलाभो गयणमग्गो व्व ॥७४॥

कलकंठसउणकोलाहलेण विहरिय धणो वसंतो व्व । पुणरवि य खिइपइट्ठियनयराभिमुहं पडिनियत्तो ॥७५॥

पत्तो य तम्मि तन्नयरवासिनरनाहविहियपरिओसो । पंचप्पयारभोए उवभुंजंतो गमइ दियहे ॥७६॥

अह अन्नया जगत्तयसाधारममरणमुवगओ जाओ । सुहदाणवससमज्जियभोगहलो मिहुणभावम्मि ॥७७॥

तत्तो य सुर महव्बल ललियंगय वइरजंघ मिहुणो य । सोहम्म वेज्ज अच्चुय चक्की सव्वट्ठसिद्धे य ॥७८॥

अपरं चेह महायशः ! मुनयो मानापमानविषयेषु । सुख-दुःखकारणेषु च समचित्ता येन सदाकालम् ॥ ६६ ॥

इति निश्रुत्य वचनं गुरूणां बहुगुणगुरुणां तदनु धनः । प्रणम्य ततो निमन्त्रयति दाननिमित्तं निजावासे ॥ ६७ ॥

गुरवोऽपि तस्य बहुमानप्रकर्षं दृष्ट्वा प्रेषयन्ति । तेन सह तस्य भवने साधवोऽशनपानाय ॥ ६८ ॥

गत्वा धनः सह मुनिवरै र्भवने भणति निजपुरुषान् । आनयताशन-पानादयो यदिह साधूनां प्रायोग्यम् ॥ ६९ ॥

ततो विज्ञापयन्ति तेऽपि खलु अशनादयो नास्ति सांप्रतं स्वामिन् ! । किन्तु घृतमस्ति भणिते मुनिपुरतस्तमप्युपनयन्ति ॥७०॥

द्रव्यादिचतुःर्धाशुद्धिं प्रयुज्य मुनिवरा अपि गृह्णन्ति । सोऽपि खलु तद्दानेन मन्यते सकृतार्थमात्मानम् ॥ ७१ ॥

अन्यच्च -

घृतदानसमयसर्जितहृदयाभ्यन्तरस्फुरत्परितोषः । बध्नाति बन्धुरबुद्ध्या बोधिबीजं धनो गाढम् ॥ ७२ ॥

अथ घनसमये वृत्ते प्राप्ते शरदि विहसिताकाशे । धनसार्थवाहसार्थः सुस्थः सम्प्रस्थितः पथि ॥ ७३ ॥

प्राप्तश्च वसन्तपुरे क्रमेण गुरुकतरबहुप्रयाणैः । विक्रिय क्रयाणकानि बहुलाभो गगनमार्ग इव ॥ ७४ ॥

कलकण्ठशकुनकोलाहलेन विहृत्य धनो वसन्त इव । पुनरपि च क्षितिप्रतिष्ठितनगराभिमुखं प्रति निवृत्तः ॥ ७५ ॥

प्राप्तश्च तस्मिंस्तन्नगरवासिनरनाथविहितपरितोषः । पञ्चप्रकारभोगानुपभुञ्जन्गमयति दिवसान् ॥ ७६ ॥

अथान्यदा जगत्त्रयसाधारणमरणमुपगतो जातः । शुभदानवशसमर्जितभोगफलो मिथुनभावे ॥ ७७ ॥

ततश्च सुरो महाबलो ललिताङ्गको वज्रजङ्घो मिथुनश्च । सौधर्मो वैद्योऽच्युतश्चक्री सर्वार्थसिद्धे च ॥ ७८ ॥

इय एवंविहबारसभवेसु संसारसारसोक्खाइं । उवभुंजिऊण जाओ तेरसमभवे जिणो रिसहो ॥७९॥
भुंजित्तु रायलच्छि घेत्तूण वयं विबोहिउं भविए । निट्ठवियसेसकम्मो संपत्तो सासयं सोक्खं ॥८०॥

॥ धनाख्यानकं समाप्तम् ॥५॥

इदानीं धन्यकाख्यानकस्यावसरः, तच्च दवदन्त्याख्यानके भणिष्यत इति क्रमागतं कृतपुण्यकाख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

धरविलयावासगिहे रायगिहे पवरनयरसिरितिलए । दरियारिमत्तवारणवियारणो सेणिओ राया ॥१॥
सव्वंगसुंदराहिं सुनंद-चेल्लणविसिट्ठभज्जाहिं । कलिओ रइ-पीईहिं व रेहइ सो कुसुमबाणो व्व ॥२॥
नियबुद्धिपसरपडिहयसुरगुरुणोऽभयकुमारमन्तिस्स । रज्जपमुहं समप्पिय भारं सो भुंजए भोए ॥३॥
एत्थेव मगहदेसे कम्मि वि गामम्मि दुग्गयमहेला । चारइ तग्गामे च्चिय तीए सुओ वच्छरूवाणि ॥४॥
अह अन्नदिणे अडवीए वच्छरूवाण चारणगएण । दिट्ठो उस्सग्गठिओ साहू अभिवंदिओ तेण ॥५॥
निच्चं पि साहुचरणारविंदसेवापवित्तगत्तस्स । वच्चंति तस्स दिवसा अहऽन्नया कम्मि वि महम्मि ॥६॥
तग्गामपुरंधीणं सयासओ जाइऊण खीराइ । रद्धा तस्स निमित्तं तज्जणणीए पवरखीरी ॥७॥
उववेसिऊण पुत्तस्स अप्पियं खीरिपूरियं थालं । कज्जंतरेण केणइ तओ गया सा गिहस्संतो ॥८॥
एत्थंतरम्मि साहू समागओ तग्गिहे तओ सो वि । भत्तिभरुब्भूयपभूयपुलयपरिपूरिओ संतो ॥९॥

इत्येवंविध द्वादशभवेषु संसारसारसौख्यानि । उपभुज्य जातस्त्रयोदशमभवे जिनो ऋषभः ॥ ७९ ॥
भुङ्क्त्वा राजलक्ष्मीं गृहीत्वा व्रतं विबोध्य भव्यान् । निष्ठापितशेषकर्मा संप्राप्तःशाश्वतं सौख्यम् ॥ ८० ॥

॥ कृतपुण्यकाख्यानकम् ॥

धरावनितावासगृहे राजगृहे प्रवरनगरश्रीतिलके । दारितारिमतवारणविदारणःश्रेणिको राजा ॥ १ ॥
सर्वाङ्गसुन्दराभ्यां सुनन्दा-चेल्लणाविशिष्टभार्याभ्यां । कलितो रति-प्रीतिभ्यामिरिव शोभते स कुसुमबाण इव ॥ २ ॥
निजबुद्धिप्रसरप्रतिहतसुरगुरोरभयकुमारमन्त्रिणः । राज्यप्रमुखं समर्प्य भारं स भुनक्ति भोगान् ॥ ३ ॥
अत्रैव मगधदेशे कस्मिन्नपि ग्रामे दुर्गतमहिला । चारयति तद्ग्रामे चैव तस्याः सुतो वत्सरूपाणि ॥ ४ ॥
अथान्यदिनेऽटव्यां वत्सरुपाणां चारणगतेन । दृष्टः उत्सर्गस्थितः साधुरभिवन्दितस्तेन ॥ ५ ॥
नित्यमपि साधुचरणारविन्दसेवापवित्रगात्रस्य । व्रजन्ति तस्य दिवसा अथान्यदा कस्मिन्नपि महसि ॥ ६ ॥
तद्ग्रामपुरन्ध्रीणां सकाशाद्याचित्वा क्षीरादिः । पक्ता तस्य निमित्तं तज्जनन्या प्रवरक्षीरी ॥ ७ ॥
उपवेश्य पुत्रस्यार्पितं क्षीरिपूरितं स्थालम् । कार्यान्तरेण केनचित्ततोगता सा गृहस्यान्तः ॥ ८ ॥
अत्रान्तरे साधुः समागतस्तद्गृहे ततः सोऽपि । भक्तिभरोद्भूतप्रभूतपुलकपरिपूरितः सन् ॥ ९ ॥

उत्तमपत्तं साहू दाणं परमन्नमसरिसमिमं पि । इय चिंतंतो थालस्स उवरि रेहादुगं रयइ ॥१०॥
परमन्नस्स तिभायं मुणिणो देमि त्ति तो समुट्ठेइ । घेत्तूण खीरिथालं उच्छलियातुच्छपरिणामो ॥११॥
आह इमो जइ कप्पइ भयवं ! ता गिण्ह सो वि नियसुद्धिं । नाऊण धरइ पत्तं तिभागमेसो वि देइ तओ ॥१२॥
परिभावइ अह थोवं वियरइ तो तस्स बीयभागं पि । पुणरवि चिंतइ जइ खीरिभायणे किंचि अवररसं ॥१३॥
गिण्हिस्सइ विहरंतो एसो ता पायसो विणस्सेहि । सो तस्स तइयभायं पि देइ उल्लसियबहुमाणो ॥१४॥
तो वंदिउं मुणिंदं उवविट्ठो तम्मि चेव ठाणम्मि । साहुम्मि गए जणणी वि गेहमज्झाओ नीहरिया ॥१५॥
अवलोइऊण पुत्तं तदवत्थं नूण भुत्तमेएण । इय चिंतिऊण तीए पुणो वि परिपूरियं थालं ॥१६॥
रोरत्तणेण सव्वं भुत्तं तो निसि विसूइयाए मओ । मुणिदाणसमयसज्जियभोगफलो रायगिहनयरे ॥१७॥
सो उववन्नो धणपालइब्भभद्दाकलत्तकुच्छिंसि । उल्लवियं लोएणं कयउन्नो कोइ इह भवणे ॥१८॥
उप्पज्जिही समिद्धे धण-धन्नसमिद्धरयणरिद्धीहिं । वेलामासे भद्दा वि पसविया उत्तमं पुत्तं ॥१९॥
विहियं वद्धावणयं वज्जिरवरतूरपूरियदियंतं । अह संपत्ते दसमम्मि वासरे तस्स इब्भेण ॥२०॥
कयउन्नओ त्ति नामं विहियं जम्हा जणेण पुव्वं पि । भणियमिणं कयउन्नो को वि हु उप्पज्जिही एत्थ ॥२१॥
अह सो कमेण जाओ निस्सेसकलाकलावपारमई । पत्तो य जुवइजणनयणमोहणं जोव्वणं जाव ॥२२॥
ताव वररूवजोव्वणमणोहरं इब्भकन्नयं एसो । परिणाविओ वि न मणं मणयं पि हु कुणइ भोगेसु ॥२३॥

उत्तमपात्रं साधुर्दानं परमान्नमसदृशमिदमपि । इति चिन्तयन्स्थालस्योपरि रेखाद्विकं रचयति ॥ १० ॥
परमान्नस्य त्रिभागं मुनये ददामीति ततः समुत्तिष्ठति । गृहीत्वा क्षीरिस्थालमुच्छलितातुच्छपरिणामः ॥ ११ ॥
आहायं यदि कल्पते भगवन् ! तदा गृहाण सोऽपि निजशुद्धिम् । ज्ञात्वा धरति पात्रं त्रिभागमेषोऽपि ददाति ततः ॥१२॥
परिभावयत्यथ स्तोकं वितरति तदा तस्यद्वितीयभागमपि । पुनरपि चिन्तयति यदि क्षीरीभाजने किंञ्चिदपररसम् ॥१३॥
ग्रहिष्यति विहरन्नेष तदा पायसो विनक्ष्यति । स तस्य तृतीयभागमपि ददात्युल्लसितबहुमानः ॥ १४ ॥
ततो वन्दित्वा मुनीन्द्रमुपविष्टस्तस्मिन्नेव स्थाने । साधौ गते जनन्यपि गृहमध्यान्निसृता ॥ १५ ॥
अवलोक्य पुत्रं तदवस्थं नूनं भुक्तमेतेन । इति चिन्तयित्वा तया पुनरपि परिपूरितं स्थालम् ॥ १६ ॥
रोरत्वेन सर्व भुक्तं ततो निशि विसूचिकाया मृतः । मुनिदानसमयसर्जितभोगफलो राजगृहनगरे ॥ १७ ॥
स उत्पन्नो धनपालेभ्यभद्राकलत्रकुक्षौ । उल्लापितं लोकेन कृतपुण्यः कोऽपीह भवने ॥ १८ ॥
उत्पतिष्यति समृद्धे धन-धान्यसमृद्धरत्नर्द्धिभिः । वेलामासे भद्रापि प्रसूतोत्तमं पुत्रम् ॥ १९ ॥
विहितं वर्द्धापनकं वाद्यद्वरतूर्यपूरितदिगन्तम् । अथ संप्राप्ते दशमे वासरे तस्येभ्येन ॥ २० ॥
कृतपुण्यक इति नाम विहितं यस्माज्जनेन पूर्वमपि । भणितमिदं कृतपुण्यः कोऽपि खलूत्पतिष्यत्यत्र ॥ २१ ॥
अथ स क्रमेण जातो निःशेषकलाकलापपारमतिः । प्राप्तश्च युवतिजननयनमोहनं यौवनं यावत् ॥ २२ ॥
तावद्वररूपयौवनमनोहरामिभ्यकन्यकामेषः । परिणायितोऽपि न मनो मनागपि खलु करोति भोगेषु ॥ २३ ॥

भद्दाए तओ इब्भो भणिओ पिययम ! न एस विसयसुहं । उवभुंजइ ता पभणसु जह सेवइ विसयसु हमिण्हिं[१] ॥२४॥
इब्भो तओ पयंपइ पिए ! पसप्पंति सव्वजीवाण । आहार-भय-परिग्गह-मेहुणसन्नाओ सयमेव ॥२५॥
भद्दा पुणो पयंपइ नाह ! इमा अइपभूय धणरिद्धी । जइ उवभुंजइ एसो संतोसो होइ तो मज्झ ॥२६॥
तीए निबंधं नाउं दुल्ललियकुमारगोट्ठिमज्झम्मि । पक्खित्तो धणपालेण भमइ एसो वि तीए समं ॥२७॥
आरामुज्जाण-विहार-वावि-सरि-परिसरे पलोयंतो । अह अन्नया पविट्ठो पुरम्मि वेसासमूहस्स ॥२८॥
तत्थ य वसंतसेणा नवजोव्वणरूवसालिणी गणिया । दिट्ठा तेण तओ सो अक्खित्तो तीए रूवेणं ॥२९॥
तमखित्तमणं दट्ठुं सव्वे वि वयंसगा गया सगिहं । सविणय-सविलासपयंपिएहिं सो रंजिओ अहियं ॥३०॥
तह कह वि हु नवसुरयप्पसंगओ मोहिओ इमो तीए । न जहा अवरपुरंधी मणयं पि मणम्मि वीसमइ ॥३१॥
तीए समं सो भुंजइ भोए रंभाए अमरनाहो व्व । तत्थ ठियस्स वि अम्मा-पियरो पेसंति धणनियरं ॥३२॥
अन्नसमयम्मि अम्मापियराणि दिवंगयाणि वि न तेण । मुणियाणि अह तह च्चिय भज्जा पेसइ दविणजायं ॥३३॥
इय बारसवरिसेहिं सुररिद्धिसमं पि मंदिरं तस्स । जायं रोरगिहं पिव विच्छायं दविणरहियं च ॥३४॥
परिनिट्ठियम्मि दव्वम्मि पेसियं तीए निययमाभरणं । सुकुलीणयाए तो तं निएवि परिचिंतए अक्का ॥३५॥
नूणमियाणिं एसो संजाओ निद्धणो त्ति अक्काए । दीणारसहस्सजुयं पुणो वि पेसवियमाभरणं ॥३६॥

भद्रया तत इभ्यो भणितः प्रियतम ! नैष विषयसुखम् । उपभुनक्ति यदि तावत्प्रभण यथा सेवते विषयसुखमिदानीम् ॥२४॥
इभ्यस्ततः प्रजल्पति प्रिये ! प्रसर्पन्ति सर्वजीवानाम् । आहार-भय-परिग्रह-मैथुन संज्ञाः स्वयमेव ॥ २५ ॥
भद्रा पुनः प्रजल्पति नाथ ! इमातिप्रभूता धनर्द्धिः । यद्युपभुनक्त्येष संतोषो भवति तदा मम ॥ २६ ॥
तस्या निबन्धं ज्ञात्वा दुर्ललितकुमारगोष्टिमध्ये । प्रक्षिप्तो धनपालेन भ्रमत्येषोऽपि तस्याः समम् ॥ २७ ॥
आरामोधान-विहार-वापि-सरित्परिसरान्प्रलोकयन् । अथान्यदा प्रविष्टः पुरे वेश्यासमूहस्य ॥ २८ ॥
तत्र च वसन्तसेना नवयौवनरूपशालिनी गणिका । दृष्टा तेन ततः स आक्षिप्तस्तस्या रुपेण ॥ २९ ॥
तमाक्षिप्तमनसं दृष्ट्वा सर्वेऽपि वयस्का गताः स्वगृहम् । सविनय-सविलासप्रजल्पितैः स रञ्जितोऽधिकम् ॥ ३०॥
तथा कथमपि खलु नवसुरतप्रसङ्गतो मोहितोऽयं तया । न यथाऽपरपुरन्ध्रीं मनागपि मनसि विश्राम्यति ॥ ३१ ॥
तस्याः समं स भुनक्ति भोगान् रम्भाया अमरनाथ इव । तत्र स्थितस्याप्यम्मा-पितरौ प्रेषयतो धननिकरम् ॥ ३२ ॥
अन्यसमये मातापितरौ दिवंगतावपि न तेन । मुणितावथ तथा चैव भार्या प्रेषयति द्रव्यजातम् ॥ ३३ ॥
इति द्वादशवर्षैःसुरर्द्धिसममपि मन्दिरं तस्य । जातं रोरगृहमिव विच्छायं द्रव्यरहितं च ॥ ३४ ॥
परिनिष्ठिते द्रव्ये प्रेषितं तया निजकमाभरणम् । सुकुलिनयया ततस्तद्दृष्ट्वा परिचिन्तयत्यक्का ॥ ३५ ॥
नूनमिदानीमेष सञ्जातो निर्धन इत्यक्कया । दीनारसहस्रयुतं पुनरपि प्रेषिताभरणम् ॥ ३६ ॥

---

१. सुहमेण्हि रं० ।

तो कुट्टिणीए भणिया वसंतसेणा जहा इमं वच्छे ! । निद्धणकामुयपुरिसं परिहर आयरसु धणवंतं ।।३७।।

जम्हा अम्हाणमिमो निग्गुणो वि धणवंतो । माणिज्जइ गुणवंतो वि न उण धणवज्जिओ सुयणु ! ।।३८।।

सा आह अंब ! एएण तुज्झ दिन्ना पभूय धणरिद्धी । जीए आसत्तवेणी उ जाव होही इमो अत्थो ।।३९।।

अवरपुरिसो वराओ किं दाही ? अहव तस्स किं होही ? । ता अंब ! न काहमहं परिहरणमिमस्स पुरिस्स ।।४०।।

अवरं च गुणविसिट्ठं पि निद्धणं परिहरंति इयराओ । उत्तमविलासिणी पुण न मुयइ मरणे वि पडिवन्नं ।।४१।।

इय निसुणिऊण नाऊण निच्छयं तीए संतियं अक्का । मोणेण ठिया धरिऊण नियमणे किं पि कायव्वं ।।४२।।

निद्दापरव्वसं जामिणीए पुरिसेहिं तं सपल्लंकं । मेल्लावइ देवउले वसंतसेणाए सुत्ताए ।।४३।।

पडिवुद्धो य पभाए पलोयमाणो मणे विचिंतेइ । अवहरिओ हं केणइ ? किं वा मणविब्भमो मज्झ ? ।।४४।।

अहवा दिसिब्भमो मे ? उयाहु सुमिणंतरं इमं किं पि ? । किं इंदजालमेयं ? धाउक्खोभोऽहवा एसो ? ।।४५।।

इय चिंतंतो पासट्ठियाहिं दासीहिं पभणिओ एवं । मा किं पि कुण विसायं मुयाविओ तमिह अंबाए ।।४६।।

दविणरहिओ त्ति काउं नियकुलमज्जायमणुसरंतीए । मड्डाए नियसुयाए वसंतसेणाए सुत्ताए ।।४७।।

ता वच्च निययगेहम्मि जेण अम्हे वि गहिय पल्लंकं । गच्छामो तो एसो संचलिओ साममुहछाओ ।।४८।।

बहुदिवसदिट्ठपुव्वं नियगिहमग्गं जणाओ जाणेउं । पेच्छइ सो नियगेहं तं सुक्कसरं व गयपउमं ।।४९।।

पब्भट्ठमत्तवारणमनायकलियं कुनरवइगिहं व । मुणिवरमिव अत्थंभं समंतओ अतुलमहिमं च ।।५०।।

ततः कुट्टिन्या भणिता वसन्तसेना यथेमं वत्से ! । निर्धनकामुकपुरुषं परिहराऽऽदर धनवन्तम् ॥ ३७ ॥

यस्मादस्माकमयं कुलक्रमो निर्गुणोऽपि धनवान् । मान्यते गुणवानपि न पुनर्धनवर्जितः सुतनु ! ॥ ३८ ॥

साऽऽहाम्ब ! एतेन तव दत्ता प्रभूता धनर्द्धिः । ययाऽऽसप्तवेणी तु यावद्भविष्यत्यमर्थः ॥ ३९ ॥

अपरपुरुषो वराकः किं दास्यति ? अथवा तस्य किं भविष्यति ? । ततोऽम्ब ! न करिष्येऽहं परिहरणमेतस्य पुरुषस्य ॥४०॥

अपरं च गुणविशिष्टमपि निर्धनं परिहरन्तीतराः । उत्तमविलासिनी पुनर्न मुञ्चति मरणेऽपि प्रतिपन्नम् ॥ ४१ ॥

इति निश्रुत्य ज्ञात्वा निश्चयं तस्याःसत्कमक्का । मौनेन स्थिता धृत्वा निजमनसि किमपि कर्तव्यम् ॥ ४२ ॥

निद्रापरवशं यामिन्यां पुरुषैस्तं सपल्यङ्कम् । मोचयति देवकुले वसन्तसेनायाः सुप्तायाः ॥ ४३ ॥

प्रतिबुद्धश्च प्रभाते प्रलोकमानो मनसि विचिन्तयति । अपहृतोऽहं केनचित् ? किं वा मनोविभ्रमो मम ॥ ४४ ॥

अथवा दिग्भ्रमो मे ? उत स्वप्नान्तरमिदं किमपि ? । किमिन्द्रजालमेतद् ? धातुक्षोभोऽथवैषः ॥ ४५ ॥

इति चिन्तयन्पार्श्वस्थिताभि र्दासीभिः प्रभणित एवम् । मा किमपि कुरु विषादं मोचितस्त्वमिहाम्बया ॥ ४६ ॥

द्रव्यरहित इति कृत्वा निजकुलमर्यादामनुसरन्त्या । हठेन निजसुताया वसन्तसेनायाः सुप्तायाः ॥ ४७ ॥

ततो व्रज निजगृहे येन वयमपि गृहीत्वा पल्यङ्कम् । गच्छामस्तदैष सञ्चलितः श्याममुखच्छायः ॥ ४८ ॥

बहुदिवसदृष्टपूर्वं निजगृहमार्गं जनाज्ज्ञात्वा । पश्यति स निजगृहं तं शुष्क सर इव गतपद्मम् ॥ ४९ ॥

प्रभ्रष्टमत्तवारणमज्ञातकलितं कुनरपतिगृहमिव । मुनिवरमिवास्तम्भं संमन्ततोऽतुलमहिमं च ॥ ५० ॥

गयरहरयणं वरचक्कवट्टिभवणं व नरवइरणं व । पब्भग्गनागदंतं सरोगपुरिसं व विगयसुहं ॥५१॥

जा पविसइ सासंको पलोयमाणो चउद्दिसं तत्थ । ता पेच्छइ नियदइयं करवयसहियं समुहमिंतिं ॥५२॥

दिन्नासणोववट्ठो विहियं पयसोयणं तओ तीए । पुच्छइ जणणी-जणयाण वइयरं तयणु कयउन्नो ॥५३॥

कहियं च ताण मरणं अंसुजलोल्लियकवोलफलयाए । तीए तओ कयउन्नो कंदइ संजायसोयभरो ॥५४॥

हा ताय ! विसयविसमोहिएण निब्भग्गसेहरेण मए । मरणे वि तुह न विहिया सुस्सूसा पावकम्मेण ॥५५॥

हा माय ! मए आबालकालपरिपालिएण वि न तुज्झ । संभासो च्चिय विहिओऽकयन्नुणा मरणकाले वि ॥५६॥

हा ! एसा वि वराई उत्तमवंसुब्भवा विणीया वि । वीवाहिऊण मुक्का न भासिया वयणमेत्तेण ॥५७॥

इय एवं विलवंतो करुणसरं दीणिमं जणेमाणो । संधीरिओ कलत्तेण तयणु सो पुच्छई एवं ॥५८॥

किं अत्थि किं पि ? तो तीए दाइयं तस्स निययमाभरणं । अत्थोवज्जणकज्जे काउं तं चेव भंडोल्लं ॥५९॥

तत्थेव ठिओ नियमित्तवग्गलज्जाए कइवयदिणाणि । जा तीए संजाओ गब्भो ता पत्थिओ सत्थो ॥६०॥

तीए सत्थासन्नम्मि देउले सोविओ स पल्लंके । एत्तो य आसि इब्भो सुधणू नामेण तम्मि पुरे ॥६१॥

दइया महिमानामेण तस्स बहुकूडकवडदुल्ललिया । तीए सुओ धणदत्तो पिउणा परिणाविओ जाव ॥६२॥

वररूवजोव्वणाओ चत्तारि नियंबिणीओ ता इब्भो । पंचत्तं संपत्तो मित्तेहिं तयणु धणयत्तो ॥६३॥

गतरथरत्नं वरचक्रवर्त्तिभवनमिव नरपतिरणमिव । प्रभग्ननागदन्तं सरोगपुरुषमिव विगतसुखम् ॥ ५१ ॥

यावत्प्रविशति साशङ्कः प्रलोकमानश्चतुर्दिशं तत्र । तावत्पश्यति निजदयितां [१]करककसहितां सम्मुखमायान्तीम् ॥५२॥

दत्ताऽऽसनोपविष्टो विहितं पदशोचनं ततस्तया । पृच्छति जननी-जनकयो र्व्यतिकरं तदनु कृतपुण्यः ॥ ५३ ॥

कथितं च तयो र्मरणमश्रुजलाद्रितकपोलफलकया । तया ततः कृतपुण्यः क्रन्दति सञ्जातशोकभरः ॥ ५४ ॥

हा तात ! विषयविषमोहितेन निर्भाग्यशेखरेण मया । मरणेऽपि तव न विहिता शुश्रुषा पापकर्मणा ॥ ५५ ॥

हा मात ! मयाऽऽबालकालपरिपालितेनापि न तव । सम्भाषश्चैव विहितोऽकृतज्ञेन मरणकालेऽपि ॥ ५६ ॥

हा ! एषाऽपि वराकूयुत्तमवंशोद्भवा विनीताऽपि । विवाहय मुक्ता न भाषिता वचनमात्रेण ॥ ५७ ॥

इत्येवं विलपन्करूणस्वरं दैन्यं जन्यमानः । संधीरितः कलत्रेण तदनु स पृच्छत्येवम् ॥ ५८ ॥

किमस्ति किमपि ? ततस्तया दर्शितं तस्य निजकमाभरणम् । अर्थोपार्जनकार्ये कृत्वा तच्चैव निधानम् ॥ ५९ ॥

तत्रैव स्थितो निजमित्रवर्गलज्जया कतिपयदिनानि । यावत्तस्याः सञ्जातो गर्भस्तावत्प्रस्थितः सार्थः ॥ ६० ॥

तया सार्थासन्ने देवकुले सुप्तः स पल्यङ्के । इतश्चासीदिभ्यः सुधनु र्नाम्ना तस्मिन्पुरे ॥ ६१ ॥

दयिता महिमानाम्ना तस्य बहुकूटकपटदुर्ललिता । तस्याः सुतो धनदत्तः पित्रा परिणायितो यावत् ॥ ६२ ॥

वररूपयौवनाश्चत्वारो नितम्बिनीस्तावदिभ्यः । पञ्चत्वं संप्राप्तो मित्रैस्तदनु धनदत्तः ॥ ६३ ॥

---

१. पानपात्र विशेषः

दविणावज्जणकज्जे सज्जीकाउं कयाणए नीओ । रयणायरपरतीरं विढत्तवित्तो पडिनियत्तो ॥६४॥

जा संपत्तो हल्लंतलहरिमाले समुद्दमज्झम्मि । ता गिरितडम्मि फुट्टं वहणं निहणं गओ सो वि ॥६५॥

तो एक्केण नरेण कहियं तरिउं तरंगिणीनाहं । महिमाए पुत्तमरणं तो उवयरिउं इमो तीए ॥६६॥

विउलेण दविणजाएण पभणिओ भद्द ! नो इमं तुमए । छक्कन्नं कायव्वं ति तयणु तेणावि पडिवन्नं ॥६७॥

चिंतेइ इमा आणेमि किं पि सुण्हाणमवरभत्तारं । जायंति जहा पुत्ता घर-लच्छीरक्खणसमत्था ॥६८॥

इय चिंतिऊण रयणीए नियइ नयरस्स परिसरे जाव । ता दिट्ठो सुहसुत्तो कयउन्नो तीए देवउले ॥६९॥

पल्लंकपसुत्तो च्चिय उक्खित्तो तीए भणियपुरिसेहिं । मुक्को मंदिरमज्झे कमेण जा उट्ठिओ ताव ॥७०॥

सोयपरिपूरियंगी कंठम्मि विलग्गिऊण रुयमाणी । जंपइ बालो वि तुमं अवहरिओ जाय ! केणावि ॥७१॥

निउणं निरिक्खिओवि य महिवीढे न हु कहिंपि उवलद्धो । नाणेण मुणिय मुणिणा कहिओ तुह आगमो अज्ज ॥७२॥

दिट्ठो य मए सुमिणे समागओ नियगिहम्मि कप्पतरू । ता एत्थ पुत्त ! पुन्नेहिं आगओ अज्ज अम्हाण ॥७३॥

तं कत्थ गओ विद्धि ? परिभमिओ वा कहिं ? कहसु मज्झ । किं वा तएऽणुभूयं सुहदुक्खं एत्तियं कालं ? ॥७४॥

अवरं च मज्झ हिययं वज्जसिलिंकाहिं निम्मियं मन्ने । जं न गयं तुह विरहे धस त्ति सयसिक्करीहोउं ॥७५॥

जाय ! तुह विरहदुम्मियमणाएं जं चिंतियं मए किं पि । तं तुह वेरीणं पि हु एउ सरीरम्मि मा कह वि ॥७६॥

एत्तियकालं पुत्तय ! नियकुलदेवीहिं रक्खिओ इण्हिं । मह जीविएण जीवसु नहंगणे जाव ससि-सूरा ॥७७॥

द्रविणोपार्जनकार्ये सज्जीकृत्वा क्रयाणकान्नीत: । रत्नाकरपरतीरं अर्जितवित्त: प्रतिनिवृत्त: ॥ ६४ ॥

यावत्संप्राप्तश्चलल्लहरिमाले समुद्रमध्ये । तावद्गिरितटे स्फुटितं वाहनं निधनं गत: सोऽपि ॥ ६५ ॥

तदैकेन नरेण कथितं तीर्त्वा तरंगिणीनाथम् । महिमाया: पुत्रमरणं तत उपचरितुमयं तया ॥ ६६ ॥

विपुलेन द्रविणजातेन प्रभणितो भद्र ! न इदं त्वया । षट्कर्णं कर्तव्यमिति तदनु तेनापि प्रतिपन्नम् ॥ ६७ ॥

चिन्तयतीमाऽऽनयामि किमपि श्नुषाणामपरभर्त्तारम् । जायन्ते यथा पुत्रा: गृहलक्ष्मीरक्षणसमर्था: ॥ ६८ ॥

इति चिन्तयित्वा रजन्यां पश्यति नगरस्य परिसरे यावत् । तावद्दृष्ट: सुखप्रसुप्त: कृतपुण्यस्तया देवकुले ॥ ६९ ॥

पल्यङ्कप्रसुप्तश्चैवोत्क्षिप्तस्तया भणितपुरुषै: । मुक्तो मन्दिरमध्ये क्रमेण यावदुत्थितो तावत् ॥ ७० ॥

शोकपरिपूरिताङ्गी कण्ठे विलग्य रुदन्ती । जल्पति बालोऽपि त्वमपहृतो जात ! केनापि ॥ ७१ ॥

निपुणं निरीक्षितोऽपि च महिपृष्टे न खलु कुत्राप्युपलब्ध: । ज्ञानेन मुणितमुनिना कथितस्तवाऽऽगमोऽद्य ॥ ७२ ॥

दृष्टश्च मया स्वप्ने समागतो निजगृहे कल्पतरु: । तस्मादत्र पुत्र ! पुण्यैरागतोऽद्यास्माकम् ॥ ७३ ॥

त्वं कुत्र गतो वृद्धि ? परिभ्रान्तो वा कुत्र ? कथय मम । किं वा त्वयाऽनुभूतं सुखदु:खमैतावन्तं कालम् ॥ ७४ ॥

अपरं च मम हृदयं वज्रशलाकाभिर्निमितं मन्ये । यन्न गतं तव विरहे धसिति शतशर्करीभूय ॥ ७५ ॥

जात ! तव विरहदुमितमनसा यच्चिन्तितं मया किमपि । तत्तव वैरिणामपि खल्वेतु शरीरे मा कथमपि ॥ ७६ ॥

एतावत्कालं पुत्रक ! निजकुलदेविभी रक्षित इदानीम् । मम जीवितेन जीव नभोङ्गणे यावच्छशिसूर्यौ ॥ ७७ ॥

विविहवररयण-मणि-कणय-रुप्पमुत्ताहलाइधणरिद्धि । उवभुंजसु जाय ! तुमं सम्माणंतो सुहिसमूहं ॥७८॥
अवरं च तुज्झ जेट्ठो भाया देसंतरम्मि वावन्नो । ता नियभाउज्जायाण होसु सामी तुमं वच्छ ॥७९॥
इय एवं तीए मइप्पवंचविम्हियमणो मुणंतो वि । कूडकवडं ति जंपइ जं पभणसि अंब ! तं काहं ॥८०॥
भणियाओ तओ तीए सुण्हाओ ठाविऊण एगंते । पडिवज्जह देवरमवि कंतं एवंविहे कज्जे ॥८१॥
जओ भणियं-
गते मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ । पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥८२॥
ता देवरेण पुत्तं उप्पाइत्ता करेह कुलरक्खं । मा वच्चउ तुम्हाणं धणरिद्धी रायभवणम्मि ॥८३॥
कुंतीमहासईए अन्नन्नपईहिं पुत्तउप्पत्ती । सुव्वइ ता मह वयणं पडिवज्जह मा वियप्पेह ॥८४॥
इय एवंविहबहुविहलोइयजुत्तीहिं तीए धुत्तीए । तह कह वि हु भणियाओ ताओ जहा ताहिं पडिवन्नं ॥८५॥
तो ताहिं समं एसो विसयसुहं नेहनिब्भरमणाहिं । भुंजइ मुणिदाणज्जियकिट्ठपुन्नाणुभावेण ॥८६॥
कालक्कमेण जाया पुत्ता चउरो चउण्ह सुण्हाण । गय-चक्क-संख-सारंगलंछिया लच्छिनाह व्व ॥८७॥
अन्नोन्ननेहनिब्भरमणाण परिहासहरियहिययाण । बारस समइक्कंताणि ताण वरिसाणि सोक्खेण ॥८८॥
सुण्हाओ सासुयाए भणियाओ इमं विडं परिच्चयह । जम्हा तुम्हाण पई न होइ तो बिंति इयराओ ॥८९॥
अंब ! इमो तुमए च्चिय विहिओ अम्हाण भवणसामित्ते । ता सुविणे वि हु एयं अम्हे न कयाइ परिहरिमो ॥९०॥

विविधवररत्नमणिकनकरुप्यमुक्ताफलादिधनर्द्धिम् । उपभुङ्ग्ध जात ! त्वं सन्मानयन् मित्रसमूहम् ॥ ७८ ॥
अपरं च तव ज्येष्ठो भ्राता देशान्तरे व्यापन्नः । ततो निजभातृजायानां भव स्वामी त्वं वत्स ! ॥ ७९ ॥
इत्येवं तया मतिप्रपञ्चविस्मितमना मुणन्नपि । कूटकपटमिति जल्पति यत्प्रभणस्यम्ब ! तत्करिष्ये ॥ ८० ॥
भणितास्तास्तया श्नुषाः स्थाप्यैकान्ते । प्रतिपद्यध्वम् देवरमपि कान्तमेवंविधे कार्ये ॥ ८१ ॥
यतो भणितम् -
"गते मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ । पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ८२ ॥"
ततो देवरेण पुत्रमुत्पाद्य कुरुत कुलरक्षाम् । मा व्रजतु युष्माकं धनर्द्धी राजभवने ॥ ८३ ॥
कुन्तीमहासत्याऽन्यान्यपतिभिः पुत्रोत्पतिः । श्रूयते ततो मम वचनं प्रतिपद्यध्वं मा विकल्पयत ॥ ८४ ॥
इत्येवंविधबहुविधलौकिकयुक्तिभिस्तया धूर्त्या । तथा कथमपि खलु भणितास्ता यथा ताभिः प्रतिपन्नम् ॥ ८५ ॥
ततस्ताभिःसममेष विषयसुखं स्नेहनिभरमनोभिः । भुनक्ति मुनिदानार्जितप्रकृष्टपुण्यानुभावेन ॥ ८६ ॥
कालक्रमेण जाताः पुत्रश्चत्वारश्चतसृणां स्नुषाणाम् । गज-चक्र-शङ्ख-सारङ्गलाञ्छिता लक्ष्मीनाथ इव ॥ ८७ ॥
अन्योन्यस्नेहनिर्भरमनसां परिहासहृतहृदयानाम् । द्वादशसमतिक्रान्तानि तेषां वर्षाणि सौख्येन ॥ ८८ ॥
स्नुषाश्छ्वश्वा भणिता इमं विटं परित्यजत । यष्माद्युष्माकं पति र्न भवति ततो ब्रुवन्तीतराः ॥ ८९ ॥
अम्ब ! अयं त्वया चैव विहितोऽस्माकं भवनस्वामित्वे । तस्मात्स्वप्नेऽपि खल्वेनं वयं न कदाचित् परिहरामः ॥९०॥

तो बद्धभीमभिउडीभयंकरा हक्किउं तहा भणइ । भयभीयाओ ताओ जह पडिवज्जंति तव्वयणं ॥९१॥
जंपंति य जइ पभणसि ता अंब ! इमस्स किंपि संबलयं । काहामो तो महिमाणुमईए तं कयं ताहिं ॥९२॥
रइया य सिंहकेसरयमोयगा तयणु ताण मज्झम्मि । खित्ताणि ताहिं बहुमोल्लयाणि वरविविहरयणाणि ॥९३॥
तो मोयगाण थइया भरिया मुक्का य तस्स पल्लंके । महिमाए सो पसुत्तो मुक्को तत्थेव देवउले ॥९४॥
भवियव्वयाए सत्थो समागओ जो तया गओ आसि । रयणि त्ति नो पविट्ठो पुरम्मि आवासियो बाहिं ॥९५॥
सोऊण आगयं तं भत्तारपउत्तिजाणणनिमित्तं । जा तत्थ गया दइया ता नियइ तयं तहिं सुत्तं ॥९६॥
कयसिंगारं दट्ठुं पहिट्ठहियया समुट्ठविय कंतं । घेत्तुं संबलथइयं पल्लंकं चिय गया सगिहं ॥९७॥
कयउन्नओ वि पत्तो नियभवणं मुणिय महिमपरमत्थो । आबद्धवेणिदंडं वसंतसेणं तहिं नियइ ॥९८॥
सयपागपभिइतेल्लेहिं जाव अब्भंगिओ तओ पुत्तो । पत्तो लेहयसालाओ सविणयं जणयपयपणओ ॥९९॥
जंपइ य अंब ! मह देहि भोयणं तो वसंतसेणाए । दट्ठुं असिद्धमन्नं पियथइयामोयगो दिन्नो ॥१००॥
तं भक्खंतो पुत्तो संपत्तो जाव लेहसालाए । ता मोयगम्मि दिट्ठो तेण मणी फुरियकिरिणोहो ॥१०१॥
तो घुंटओ त्ति काऊण इयरछत्ताण दंसिओ तेण । ते बिंति मणी ता पूइयस्स हट्टे पयच्छामो ॥१०२॥
जेण इमो अम्हाणं दिणे दिणे देइ मंडयाऊयं । अप्पंति तओ ते पूइयस्स सो खिवइ जलकुंडे ॥१०३॥
तो तम्मणिप्पभावेण कुंडनीरं खणेण पविभत्तं । नायं च पूइएणं जलकंतमणी जहा एसो ॥१०४॥

ततो बद्धभीमभृकुटिभयङ्कराऽऽकार्य तथा भणति । भयभीतास्ता यथा प्रतिपद्यन्ते तद्वचनम् ॥ ९१ ॥
जल्पन्ति च यदि प्रभणसि ततोऽम्ब ! अस्य किमपि शम्बलकम् । करिष्यामस्ततो महिमानुमत्या तत्कृतं ताभि: ॥९२॥
रचिताश्चसिंहकेशरकमोदकास्तदनु तेषां मध्ये । क्षिप्तानि ताभिर्बहुमूल्यानि वरविविधरत्नानि ॥ ९३ ॥
ततो मोदकानां स्थगिका भृता मुक्ता च तस्य पल्यङ्के । महिमया स प्रसुप्तो मुक्तस्तत्रैव देवकुले ॥ ९४ ॥
भवितव्यतया सार्थ: समागतो यस्तदा गत आसीत् । रजनीति न प्रविष्ट: पुर आवासितो बहि: ॥ ९५ ॥
श्रुत्वाऽऽगतं तं भर्तुप्रवृत्तिजानननिमित्तम् । यावत्तत्र गता दयिता तावत्पश्यति तकं तत्र सुप्तम् ॥ ९६ ॥
कृतशृङ्गारं दृष्ट्वा प्रहृष्टहृदया समुत्थाप्य कान्तम् । गृहीत्वा शम्बलस्थगिकं पल्यङ्कं चैव गता स्वगृहम् ॥ ९७ ॥
कृतपुण्यकोऽपि प्राप्तो निजभवनं मुणितमहिमापरमार्थ: । आबद्धवेणीदण्डां वसन्तसेनां तत्र पश्यति ॥ ९८ ॥
शतपाकप्रभृतितैलै र्यावदभ्यङ्गितस्तत: पुत्र: । प्राप्तो लेखकशालाया: सविनयं जनकपदप्रणत: ॥ ९९ ॥
जल्पति चाम्ब ! मम देहि भोजनं ततो वसन्तसेनया । दृष्ट्वाऽसिद्धमन्नं प्रियस्थगिकामोदको दत्त: ॥ १०० ॥
तं भक्षमाण:पुत्र: संप्राप्तो यावल्लेखशालायाम् । तावन्मोदके दृष्टस्तेन मणी स्फुरितकिरणौघ: ॥ १०१ ॥
तदा घुन्टओ इतिकृत्वेतरछात्रान्दर्शितस्तेन । ते ब्रुवन्ति मणी तावत्पुपकिनो हट्टे प्रयच्छाम: ॥ १०२ ॥
येनायमस्मद्भ्यो दिने दिने ददाति मण्डकादिकम् । अर्पयन्ति ततस्ते पुपकिन: स क्षिपति जलकुण्डे ॥ १०३ ॥
ततस्तन्मणिप्रभावेन कुण्डनीरं क्षणेन प्रविभक्तम् । ज्ञातं च पुपकिना जलकान्तमणी यथैष: ॥ १०४ ॥

संगोविय जलकंतं रयणं उचियं च देइ छत्ताण । एत्तो य कहइ कयउन्नयस्स दासी पियंगुलया ॥१०५॥
सामि ! जया परिचत्तो अंबाए तुमं तओ इमं नाउं । महिमंडले गविट्ठो दिट्ठो न वसंतसेणाए ॥१०६॥
वेणीबंधं काऊण तयणु परिहरियसयलसिंगारा । निवसियसियवत्थजुया तुच्छासणविहियतणुवित्ती ॥१०७॥
एत्तियकालं एसा पउत्थवइयावएण तुह विरहे । तुह गेहे चेव ठिया अंसुजलोल्लिकवोलजुया ॥१०८॥
सोऊण तयं कयउन्नयस्स जाओ पुणो वि अणुराओ । उवभुंजइ तो दोहिं वि भज्जाहिं समं विसयसोक्खं ॥१०९॥
अह अन्नया य सेयणयसिंधुरो जाव सलिलपाणत्थं । सरियाए अवयरिओ ता बद्धो तंतुणा तत्थ ॥११०॥
पोक्करियं पुरिसेहिं तं सोउं आउलो महाराओ । विन्नतो अभएणं खिवह तहिं देव ! जलकंतं ॥१११॥
कड्ढिज्जइ जाव मणी भंडाराओ तओ गओ मरइ । तो सिग्घपावणत्थं पुरम्मि घोसाविओ पडहो ॥११२॥
हंहो ! जो जलकंतेण गयवरं तंतुणा मुयावेइ । तस्स निवो नियकन्नं देइ समं अद्धरज्जेण ॥११३॥
तं सोउं कुंदुइओ पक्खिवइ मणी तरंगिणीमज्झे । जायं थलं च सलिलं पलाइओ तंतुजंतू वि ॥११४॥
नीहरिओ य करिंदो संतुट्ठो नियमणे नरिंदो वि । कहिओ य पूइयगओ निवस्स जलकंतवुत्तंतो ॥११५॥
तं निसुणिउं नरिंदो चिंतापब्भारपूरिओ भणइ । अभय ! कहं दायव्वा नियकन्ना नीयजाइस्स ? ॥११६॥
विन्नवइ तओ अभओ नीयस्स न हुंति देव ! रयणाणि । तो पुच्छिज्जउ एसो उप्पत्तिं नीरकंतस्स ? ॥११७॥
रन्ना वि पुच्छिओ सो सच्चं मह कहसु रयणवुत्तंतं । भयकंपिरेण तेण वि जहट्ठियं राइणो कहियं ॥११८॥

सङ्गोप्य जलकान्तं रत्नमुचितं च ददाति छात्रेभ्यः । इतश्च कथयति कृतपुण्यकस्य दासी प्रियङ्गुलता ॥ १०५ ॥
स्वामिन् । यदा परित्यक्तोऽम्बया त्वं तत इदं ज्ञात्वा । महिमण्डले गवेषितो दृष्टो न वसन्तसेनया ॥ १०६ ॥
वेणीबन्धं कृत्वा तदनु परिहृतसकलशृङ्गारा । निवसितश्वेतवस्त्रयुगा तुच्छाशनविहिततनुवृत्तिः ॥ १०७ ॥
एतावत्कालमेषा प्रोषितभर्तृकाव्रतेन तव विरहे । तव गृहे चैव स्थिताश्रुजलार्द्रितकपोलयुग्मा ॥ १०८ ॥
श्रुत्वा तकं कृतपुण्यकस्य जातः पुनरप्यनुरागः । उपभुनक्ति ततो द्वाभ्यामपि भार्याभ्यां समं विषयसौख्यम् ॥ १०९ ॥
अथान्यदा च सेचनकसिन्धुरो यावत्सलिलपानार्थम् । सरित्यवतरितस्तावद्बद्धस्तन्तुना तत्र ॥ ११० ॥
पुत्कारितं पुरुषैस्तच्छ्रुत्वाऽऽकुलो महाराजः । विज्ञप्तोऽभयेन क्षिपत तत्र देव ! जलकान्तम् ॥ १११ ॥
कृष्यते यावन्मणी भण्डगारात्ततो गजो म्रियते । ततः शीघ्रप्रापणार्थं पुरे घोषयितः पटहः ॥ ११२ ॥
हंहो ! यो जलकान्तेन गजवरं तन्तुना मोचयति । तस्मै नृपो निजकन्यां ददाति सममर्द्धराज्येन ॥ ११३ ॥
तच्छ्रुत्वा कान्दविकः प्रक्षिपति मणीं तरङ्गिणीमध्ये । जातं स्थलं च सलिलं पलायितस्तन्तुजन्तूरपि ॥ ११४ ॥
निसृतश्च करीन्द्रः सन्तुष्टो निजमनसि नरेन्द्रोऽपि । कथितश्चपुपकिगतो नृपस्य जलकान्तवृत्तान्तः ॥ ११५ ॥
तन्निश्रुत्य नरेन्द्रश्चिन्ताप्राग्भारपूरितो भणति । अभय ! कथं दातव्या निजकन्या नीचजातेः ? ॥ ११६ ॥
विज्ञापयति ततोऽभयो नीचस्य न भवन्ति देव ! रत्नानि । ततः पृच्छयते एष उत्पत्तिं नीरकान्तस्य ? ॥ ११७ ॥
राज्ञाऽपि पृष्टः स सत्यं मम कथय रत्न वृत्तान्तम् । भयकम्पता तेनाऽपि यथास्थितं राज्ञे कथितम् ॥ ११८ ॥

तो भणइ अभयमंती भवंति रयणाणि रोहणे नूणं । राया वि य कंदुइयं उचियं दाउं विसज्जेइ ॥११९॥
तो हक्कारिय कयउन्नयस्स दिन्ना निवेण नियकन्ना । सह रायलच्छिअद्धेण तयणु वीवाहिया तेण ॥१२०॥
तीए सह विविहविसए उवभुंजइ रायलच्छिपरियरिओ । अह अन्नदिणे महिमाए वइयरं कहइ अभयस्स ॥१२१।
सोऊण तीए मायापवंचमभओ सविम्हओ भणइ । पेच्छ जहा धुत्तीए अम्हे वि जिया सवुद्धीए ॥१२२॥
एवंविहमच्चब्भुयकज्जं काऊण वसइ एत्थेव । न वियाणिया मए वि हु अहो ! सुनिउणत्तमेयाए ॥१२३॥
ता वीसत्थो होऊण चिट्ठ जाणामि तुज्झ दइयाओ । इय भणिउं कारावइ देवउलं दोहिं दारेहिं ॥१२४॥
कयउन्नयपडिरूवा पडिमा जक्खस्स तत्थ कारविया । घोसावियं च नयरं जहा सपुत्ता पुरंधीओ ॥१२५॥
पविसिय पुव्वदुवारेण निंतु अवरेण पूइउं जक्खं । होही ताणुवसग्गो न जाउ एयं करिस्संति ॥१२६॥
तं सोऊण सवच्छो विलयावग्गो समागओ तत्थ । कयउन्नयदइयाओ वि पत्ताओ तहिं सपुत्ताओ ॥१२७॥
ताण तओ चत्तारि वि पुत्ता भणिऊण ताय ! ताय ! त्ति । आरूढा उच्छंगे झड त्ति जक्खस्स पहसंता ॥१२८॥
तो तेऽभय-कयउन्ना एगंताओ विणिग्गया झति । तं दट्ठूणं ताओ अवणमियमुहाओ जायाओ ॥१२९॥
तो अभएणं महिमा हक्कारिय हक्किया तहा कहवि । जह चलणेसु निवडिया दोण्हं पि हु दीणमुहछाया ॥१३०॥
इय सत्तकलत्तेहिं सहियस्स सुहाइं भुंजमाणस्स । रज्जसिरिमणुहवंतस्स तस्स कालो अइक्कमइ ॥१३१॥
एत्थंतरम्मि भयवं भुवणगुरू वद्धमाणजिणानाहो । थुव्वंतो सुर-चारणनियरेण तहिं समोसरिओ ॥१३२॥

ततो भणत्यभयमन्त्री भवन्ति रत्नानि रोहणे नूनम् । राजापि च कान्दविकमुचितं दत्वा विसर्जयति ॥ ११९ ॥
तत आकार्य कृतपुण्यस्य दत्ता नृपेण निजकन्या । सह राजलक्ष्म्यर्द्धेन तदनु वीवाहिता तेन ॥ १२० ॥
तया सह विविधविषयानुपभुनक्ति राजलक्ष्मीपरिकरितः । अथान्यदिने महिमाया व्यतिकरं कथयत्यभयस्य ॥१२१ ॥
श्रुत्वा तस्या मायाप्रपञ्चमभयः सविस्मयो भणति । पश्य यथा धुर्त्याऽस्मान्नपि जिता स्वबुद्धया ॥ १२२ ॥
एवंविधमाश्चर्यभूतकार्यं कृत्वा वसत्यत्रैव । न विज्ञाता मयाऽपि खल्वहो ! सुनिपुणत्वमेतस्याः ॥ १२३ ॥
तावद्विश्वस्तो भूत्वा तिष्ठ जानामि तव दयिताः । इति भणित्वा कारयति देवकुलं द्वाभ्यां द्वाराभ्याम् ॥ १२४ ॥
कृतपुण्यकप्रतिरुपा प्रतिमा यक्षस्य तत्र कारयिता । घोषयितं च नगरे यथा सपुत्राः पुरन्ध्र्यः ॥ १२५ ॥
प्रविश्य पूर्वद्वारेण नयन्त्वपरेण पूजयित्वा यक्षम् । भविष्यति तासामुपसर्गो न जात्वेतत्करिष्यन्ति ॥ १२६ ॥
तच्छ्रुत्वा सवत्सो वनितावर्गः समागतस्तत्र । कृतपुण्यकदयिता अपि प्राप्तास्तत्र सपुत्राः ॥ १२७ ॥
तासां ततश्चत्वार अपि पुत्रा भणित्वा तात ! ताततेति । आरुढा उत्सङ्गे झटिति यक्षस्य प्रहसन्तः ॥ १२८ ॥
ततस्तावभय-कृतपुण्यवेकान्ताद्विनिर्गतौ झटिति । तं दृष्ट्वा ता अवनतमुखा जाताः ॥ १२९ ॥
ततोऽभयेन महिमाऽऽकार्य तर्जितास्तथा कथमपि । यथा चरणयो र्निपतिताद्वयोरपिखलु दीनमुखच्छायाः ॥ १३० ॥
इति सप्तकलत्रैः सहितस्य सुखानि भुञ्जतः । राज्यश्रियमनुभवतस्तस्य कालोऽतिक्रामति ॥ १३१ ॥
अत्रान्तरे भगवान्भुवनगुरु वर्धमानजिननाथः । स्तूयमानः सुर-चारणनिकरेण तत्र समवसृतः ॥ १३२ ॥

तो कयउन्नयराया गंतु उज्जाणपालपुरिसेहिं । वद्धाविओ तओ ताण देइ पीइप्पयाणं सो ॥१३३॥
संचलिओ जयवारणमारूढो धरियधवलसिरछत्तो । सामंत-मंतिजुत्तो संपत्तो समवसरणम्मि ॥१३४॥
काउं पयाहिणतियं खोणीमंडलमिलंतभालयलो । पणमित्तु जिणं सिररइयअंजली थोउमाढत्तो ॥१३५॥
जयकम्ममहावणदहणगहण दवजलण ! माणनिम्महण ? । जय करणंतरंगिणिनाहमहणवरमंदर ! नमो ते ॥१३६॥
इय संथुणिऊण जिणं पुणरवि पणमित्तु सामिकमकमलं । नरनाहनियरनिस्सियसहाए गंतु समुवविट्ठो ॥१३७॥
तयणंतरं जिणिंदो दसणावलिकिरणधवलियदियन्तो । जलहरगंभीरसरेण देसणं काउमाढत्तो ॥१३८॥
हंहो ! संसारमहासमुद्दनिवडंतजंतुजायस्स । जिणधम्मजाणवत्तं मोत्तूण न अत्थि उत्तारो ॥१३९॥
धम्मेण असुर-नर-खयर-अमररिद्धीओ हुंति जंतूण । किं बहुणा ? सिवसुहमवि सत्ता पावंति धम्मेण ॥१४०॥
इय निसुणिऊण जिणनाहदेसणं पाणिणो भवविरत्ता । कयउन्ननिवई वि य संविग्गो भणइ भयवंतं ॥१४१॥
भयवं ! किं मह असरिसरिद्धी भोगा य सुंदरा जाया ? । परमंतरायबहुला कारणमेएसिमाइसह ॥१४२॥
तो भयवया समग्गो पुव्वभवो अक्खिओ नरिंदस्स । जाव परमन्नथाले रेहाकरणा विपरिणामो ॥१४३॥
तो तेण खीरिदाणेण पाविया उब्भडा तए रिद्धी । रेहाभावखएणं जायं भोयंतरायं पि ॥१४४॥
तं सोउं कयउन्नयराया संजायजाइसरणेण । अवलोइय पुव्वभवं जह कहियं जिणवरिंदेण ॥१४५॥
जंपइ जहा जिणेसर ! तुमए कहियं तहा मए दिट्ठं । इय जंपिउं नरिंदो पणामपुव्वं पुणो भणइ ॥१४६॥

तदा कृतपुण्यकराजा गत्वोद्यानपालपुरुषैः । वर्धापितस्ततस्तेभ्यो ददाति प्रीतिप्रदानं सः ॥ १३३ ॥
सञ्चलितो जयवारणमारुढो धृतधवलशिरच्छत्रः । सामन्त-मन्त्रियुतः संप्राप्तः समवसरणे ॥ १३४ ॥
कृत्वा प्रदक्षिणात्रिकं क्षोणीमण्डलमिलद्भालतलः । प्रणम्य जिनं शिरोरचिताञ्जलिः स्तोतुमारब्धः ॥ १३५ ॥
जयकर्ममहावनदहनगहनदवज्वलन ! माननिर्मथन ! । जय करणतरङ्गिणिनाथमथनवरमंदर ! नमस्ते ॥ १३६ ॥
इति संस्तुत्य जिनं पुनरपि प्रणम्य स्वामिक्रमकमलम् । नरनाथनिकरनिश्रितसभां गत्वा समुपविष्टः ॥ १३७ ॥
तदनन्तरं जिनेन्द्रो दशनावलिकिरणधवलितदिगन्तः । जलधरगम्भीरस्वरेण देशनां कर्तुमारब्धः ॥ १३८ ॥
हंहो ! संसारमहासमुद्रनिपतज्जन्तुजातस्य । जिनधर्मयानपात्रं मुक्त्वा नास्त्युत्तारः ॥ १३९ ॥
धर्मेणाऽसुर-नर-खेचरामरर्द्धयो भवन्ति जन्तूनाम् । किं बहुना ? शिवसुखमपि सत्वाः प्राप्नुवन्ति धर्मेण ॥ १४० ॥
इति निश्रुत्य जिननाथदेशनां प्राणिनो भवविरक्ताः । कृतपुण्यनरपतिरपि च संविग्नो भणति भगवन्तम् ॥ १४१ ॥
भगवन् ! किं ममासदृशर्द्धि र्भोगाश्च सुन्दरा जाताः ? । परमन्तरायबहुलाः कारणमेतेषामादिशत ॥ १४२ ॥
ततो भगवता समग्रः पूर्वभव आख्यातो नरेन्द्रस्य । यावत्परमान्नस्थाले रेखाकरणाद्विपरिणामः ॥ १४३ ॥
ततस्तेन क्षीरदानेन प्राप्तोद्भटा त्वया ऋद्धिः । रेखाभावक्षयेन जातं भोगान्तरायमपि ॥ १४४ ॥
तच्छ्रुत्वा कृतपुण्यकराजा सञ्जातजातिस्मरणेन । अवलोक्य पूर्वभवं यथाकथितं जिनवरेन्द्रेण ॥ १४५ ॥
जल्पति यथा जिनेश्वर ! त्वया कथितं तथा मया दृष्टम् । इति जल्पित्वा नरेन्द्रः प्रणामपूर्वं पुनर्भणति ॥ १४६ ॥

नाह ! तुह पायपासे पव्वज्जमहं करेमि भवमहणिं । आउच्छिऊण सेणियनिवाइ तो पभणिओ पहुणा ॥१४७॥

भो भो देवाणुप्पिय ! मा पडिबंधं करेज्ज तो राया । पणमित्तु सामिसालं गओ य सो नयरमज्झम्मि ॥१४८॥

आपुच्छिऊण सेणियनरेसरं नियसुयाण रज्जसिरिं । सव्वं पि विभइऊणं घोसाविय अभयदाणाइ ॥१४९॥

परिपूइउं जिणिंदे सम्माणिय चउविहं समणसंघं । आरुहिउं सिबियाए सकलत्तो पुत्तसंजुत्तो ॥१५०॥

सेणियनरेसरेणं अणुगम्मंतो जणेण थुव्वंतो । महया महूसवेणं समागओ समवसरणम्मि ॥१५१॥

जिणचरणकमलपणओ सकलत्तो दिक्खिओ जिणिंदेणं । कयपंचमुट्ठिलोओ तो उवणीओ गणहराण ॥१५२॥

अज्जाउ चंदणज्जाइ अप्पिया तयणु मुणियसुत्तत्थो । गीयत्थो संजाओ चरिउं अइघोरतव-चरणं ॥१५३॥

काऊण कालमासे काले संलेहणाए कयकिच्चो । परिवत्तियनवकारो उववन्नो देवलोगम्मि ॥१५४॥

॥ कृतपुण्यकाख्यानकं समाप्तम् ॥६॥

इदानीं द्रोणाद्याख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

निस्सेसदेसवसुहाविहूसणे कोसलम्मि देसम्मि । सिरिउरनयरं सिंगारमंदिरं आसि लच्छीए ॥१॥

तत्थऽत्थि कलानिलओ निहणियनिस्सेसदोसतमपसरो । तारावइ व्व तारापीडो नामेण नरनाहो ॥२॥

तस्सऽत्थि कामरइकेलिकुलहरं कामधरिणिसमरूवा । सयलंतेउरसारा देवी रइसुंदरी पवरा ॥३॥

निवसंति तत्थ चत्तारि सेट्ठिपुत्ता विसिट्ठगुणजुत्ता । सुधण-धणवइ-धणीसर-धणया धणरिद्धिपरिकलिया ॥४॥

नाथ ! तव पादपार्श्वे प्रव्रज्यामहं करोमि भवमथनीम् । आपृच्छ्य श्रेणिकनृपादींस्ततः प्रभणितः प्रभुना ॥ १४७ ॥

भो भो देवानुप्रिय ! मा प्रतिबन्धं कूर्यात्ततो राजा । प्रभण्य स्वामिनं गतश्च स नगरमध्ये ॥ १४८ ॥

आपृच्छ्य श्रेणिकनरेश्वरं निजसुतानां राज्यश्रियम् । सर्वामपि विभज्य घोषयितमभयदानादिम् ॥ १४९ ॥

परिपूज्य जिनेन्द्रान् सन्मान्य चतुर्विधं श्रमणसङ्घम् । आरुह्य शिबिकां सकलत्रः पुत्रसंयुक्तः ॥ १५० ॥

श्रेणिकनरेश्वरेणानुगम्यमानो जनेन स्तूयमानः । महता महोत्सवेन समागतः समवसरणे ॥ १५१ ॥

जिनचरणकमलप्रणतः सकलत्रो दिक्षितो जिनेन्द्रेण । कृतपञ्चमुष्टिलुञ्चस्तत उपनीतो गणधराणाम् ॥ १५२ ॥

आर्याश्चन्दनार्याया अर्पितास्तदनु मुणितसूत्रार्थः । गीतार्थः सञ्जातश्चरित्वाऽतिघोरतपश्चरणम् ॥ १५३ ॥

कृत्वा कालमासे कालं संलेखनया कृतकृत्यः । परिवर्तितनवकार उत्पन्नो देवलोके ॥ १५४ ॥

॥ कृतपुण्यकाख्यानकं समाप्तम् ॥

द्रोणाद्याख्यानकम् ।

निःशेषदेशवसुधाविभूषणे कोशले देशे । श्रीपुरनगरं शृङ्गारमन्दिरमासील्लक्ष्म्या ॥ १ ॥

तत्रास्ति कलानिलयो निहतनिःशेषदोषतमःप्रसरः । तारापतिरिव तारापीडो नाम्ना नरनाथः ॥ २ ॥

तस्यास्ति कामरतिकेलिकुलगृहं कामगृहिणिसमरुपा । सकलन्तःपुरसारा देवी रतिसुन्दरी प्रवरा ॥ ३ ॥

निवसन्ति तत्र चत्वारश्छ्रेष्टिपुत्रा विशिष्ठगुणयुक्ताः । सुधन-धनपति-धनेश्वर-धनदा धनर्द्धिपरिकलिताः ॥ ४ ॥

अह अन्नया कयाई अम्मा-पियराणि वंचिउं चलिया । दविणाय रयणदीवे दोणभिहाणेक्ककमयरा ॥५॥
वच्चंताणं ताणं समागया कत्थई वियडअडवी । तो तेहि तत्थ पडिमापडिवन्नो मुणिवरो दिट्ठो ॥६॥
हरिसाऊरियहियएहिं तयणु गुरुभत्तिनिब्भरं भणिओ । संबलयमिणं दोणय ! देहि मुणिंदस्स एयस्स ॥७॥
सो वि मुणिदाणसद्धाभत्तिभरुब्भिन्नभूरिरोमंचो । वियसंतवयणकमलो पडिलाहइ मुणिवरमुयारं ॥८॥
पत्ता य रयणदीवं कमेण सुविढत्तभूरिधणनिवहा । तत्तो य पडिनियत्ता पत्ता नियनयरमचिरेण ॥९॥
विलसंति धणं पालंति परियणं गुरुयणं पि पूयंति । दीणाण दिंति दाणे कुणंति मित्ताण सम्माणं ॥१०॥
ईसिसमायं धणवइ-धणीसरा ववहरंति कालेणं । निययाउसमत्तीए दोणो मरिउं समुप्पन्नो ॥११॥
गयउरनयरे दुप्पसहरायणो सुंदरीए कुच्छीए । तो तीए मुहे दिट्ठो सोमो सुमिणम्मि पविसंतो ॥१२॥
दट्ठूण तयं सुमिणं हरिसवसुब्भिज्जमाणरोमंचा । उट्ठित्तु विगयनिद्दा सुमिणं साहेइ दइयस्स ॥१३॥
राया वि साहइ तओ नियमइमाहप्पमुणियसुविणत्थो । कुरुजणवय[१]नरचंदो होही पुत्तो पिए ! तुज्झ ॥१४॥
एवं होउ त्ति पयंपिऊण संजायगरुयआणंदा । संपज्जंतसमीहियमणोरहा गब्भमुव्वहइ ॥१५॥
अह सा देवी पुत्तं पसत्थसव्वंगलक्खणावयवं । पसवइ पसत्थदियहे नवमासऽद्धट्ठमदिणेहिं ॥१६॥
तं च पसरंतनियतणुकिरणकडप्पप्पयासियदियंतं । दट्ठुं सहरिससंभमखलंतपयगमणसंचारा ॥१७॥

अथान्यदाकदाचिदम्मापितरौ वञ्चित्वा चलिता: । द्रविणाय रत्नद्वीपे द्रोणाभिधानैककर्मकरा: ॥ ५ ॥
व्रजतां तेषां समागता कुत्रचिद्विकटाटवी । ततस्तैस्तत्र प्रतिमाप्रतिपन्नो मुनिवरो दृष्ट: ॥ ६ ॥
हर्षापूरितहृदयैस्तदनु गुरुभक्तिनिर्भरं भणित: । शम्बलमिदं द्रोणक ! देहि मुनीन्द्रायैतस्मै ॥ ७ ॥
सोऽपि मुनिदानश्रद्धाभक्तिभरोद्भिन्नभूरिरोमाञ्च: । विकसद्वदनकमल: प्रतिलाभयति मुनिवरमुदारम् ॥ ८ ॥
प्राप्ताश्च रत्नद्वीपं क्रमेण स्वर्जितभूरिधननिवहा: । ततश्च प्रतिनिवृत्ता: प्राप्ता निजनगरमचिरेण ॥ ९ ॥
विलसन्ति धनं पालयन्ति परिजनं गुरुजनमपि पूजयन्ति: । दीनेभ्यो ददति दानं कुर्वन्ति मित्राणां सन्मानम् ॥ १० ॥
ईषत्समायं धनपति-धनेश्वरौ व्यवहरत: कालेन । निजकायु:समाप्त्या द्रोणो मृत्वा समुत्पन्न: ॥ ११ ॥
गजपुरनगरे दुष्प्रधर्षराजान: सुन्दर्या: कुक्षौ । तदा तया मुखे दृष्ट: सोम: स्वप्ने प्रविशन् ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा तकं स्वप्नं हर्षवशोद्भिद्यमानरोमाञ्चा । उत्थाय विगतनिद्रा स्वप्नं कथयति दयितस्य ॥ १३ ॥
राजाऽपि कथयति ततो निजमतिमाहात्म्यमुणितस्वप्नार्थ: । कुरुजनपदनरचन्द्रो भविष्यति पुत्र: प्रिये ! तव ॥ १४ ॥
एवं भवत्विति प्रजल्प्य सञ्जातगुरुकानन्दा । सम्पद्यमानसमीहितमनोरथा गर्भमुद्वहति ॥ १५ ॥
अथ सा देवी पुत्रं प्रशस्तसर्वाङ्गलक्षणावयवम् । प्रसूते प्रशस्तदिवसे नवमासार्द्धाष्टमदिनै: ॥ १६ ॥
तं च प्रसरन्निजतनुकिरणकलापप्रकाशितदिगन्तम् । दृष्ट्वा सहर्षसम्भ्रमस्खलत्पदगमनसञ्चारा ॥ १७ ॥

---

१. नहचंदो रं०।

तुरियगमवसविसंठुलरसणारणझणिरकिंकिणिकलावा । वद्धावइ नरनाहं पियंकरा दासचेडि त्ति ॥१८॥

तव्वयणसवणसंजायपहरिसो तीए वियरइ नरिंदो । केऊर-कडय-कुंडल-कंठाहरणायलंकारं ॥१९॥

दाऊण कणयजीहं दासत्तं अवणिऊण सप्पणयं । तत्तो वद्धावणयं राया नयरे समाइसइ ॥२०॥

तथाहि-

किज्जंतविविहरक्खं संपूइज्जंतदेवयसमूहं । कप्पूरमिस्सचंदणरससिंचिज्जंतरच्छोहं ॥२१॥

मुच्चंतगोत्तिवग्गं घोसाविज्जंतअभयदाणं च । दिज्जंतमहादाणं सम्माणिज्जंतपउरजणे ॥२२॥

पविसंतमाउलगणं पउणीकिज्जंतकणयमयकलसं । उब्भिज्जंतसुतोरणमु[१]द्दाविज्जंतविंटलियं ॥२३॥

किज्जंतमंगलसयं परिवाइज्जंततूरसमुदायं । हरिसाऊरियनच्चिररमणीतुट्टंतहारलयं ॥२४॥

एवं वद्धावणयं काउं सुपसत्थबारसमदिवसे । तस्स कुरुचंद नामं विहियं सुमिणाणुसारेणं ॥२५॥

अणुदियहं गहियकलो वड्ढंतो सह गुणेहिं तो कुमरो । तरुणियणमणभिरामं संपत्तो जोव्वणारंभं ॥२६॥

तं कइ[२]विवाहकम्मं वसुंधराभारबंधुरं नाउं । पव्वज्जकज्जसज्जो रज्जे राया निवेसेइ ॥२७॥

जाओ य महाराओ पडुपयडपयावपत्तमाहप्पो । दरियारिमत्तमायंगकेसरी केलिकुलभवणं ॥२८॥

एत्तो य वसंतपुरे सुधणो मरिउं वसंतदेवो त्ति । सेट्ठिसुओ संजाओ संपत्तो जोव्वणं परमं ॥२९॥

त्वरितगमवशविसंस्थूलरसनारणझणत्किङ्किणिकलापा । वर्धापयति नरनाथं प्रियङ्करा दासचेटीति ॥ १८ ॥

तद्वचनश्रवणसञ्जातप्रहर्षस्तस्यै वितरति नरेन्द्रः । केयूर-कटक-कुण्डल-कण्ठाभरणालङ्कारम् ॥ १९ ॥

दत्त्वा कनकजीह्वा दासत्वमपनीय सप्रणयम् । ततो वर्द्धापनकं राजा नगरे समादिशति ॥ २० ॥

तथाहि -

क्रियमाणविविधरक्षं सम्पूज्यमानदेवकसमूहम् । कर्पूरमिश्रचन्दनसिञ्च्यमानरथ्यौघम् ॥ २१ ॥

मुञ्चद्गोत्रिवर्गं घोष्यमाणाभयदानञ्च । दीयमानमहादानं सन्मान्यमानपौरजनम् ॥ २२ ॥

प्रविशत्मातुलगणं प्रगुणीक्रियमाणकनकमयकलशम् । उद्भिद्यमानसुतोरणमवच्छिद्यमानविंटलिकम् ॥ २३ ॥

क्रियमाणमङ्गलशतं परिवाद्यमानयन्त्रतूर्यसमुदायम् । हर्षापूरितनृत्यद्रमणीत्रुटद्धारलतम् ॥ २४ ॥

एवं वर्द्धापनं कृत्वा सुप्रशस्तद्वादशमदिवसे । तस्य कुरुचन्द्रो नामं विहितं स्वप्नानुसारेण ॥ २५ ॥

अनुदिवसं गृहीतकलो वर्धमानस्ततः सहगुणैस्तदा कुमारः । तरुणिजनमनोऽभिरामं संप्राप्तो यौवनारम्भम् ॥ २६ ॥

तं कृतविवाहकर्माणं वसुन्धराभारबन्धुरं ज्ञात्वा । प्रव्रज्याकार्यसज्जो राज्ये राजा निवेशयति ॥ २७ ॥

जातश्च महाराजः पटुप्रकटप्रतापप्राप्तमाहात्म्यः । दारितारिमत्तमातङ्गकेसरी केलिकुलभवनम् ॥ २८ ॥

इतश्च वसन्तपुरे सुधनो मृत्वा वसन्तदेव इति । श्रेष्ठिसुतः सञ्जातः सम्प्राप्तो यौवनं परमम् ॥ २९ ॥

---

१. द्दालिज्जंत रं० । २. कृतविवाहकर्माणम् ।

कत्तियपुरम्मि रम्मे धणओ मरिऊण कामपालो त्ति । उप्पन्नो सेट्ठिसुओ कलाकलावेसु अइकुसलो ॥३०॥

धणवइजीओ मरिउं मइरानामेण संखनयरम्मि । उप्पन्ना सेट्ठिसुया आरूढा तारतारुन्नं ॥३१॥

मरिउं धणीसरो वि हु जाओ य जयंतियाए नयरीए । रूयजुया सेट्ठिसुया मणोहरा केसरा नाम ॥३२॥

इओ य-

खर-करह-वसह-वाहणसणाहबहुसत्थसंजुओ पत्तो । नयरीए जयंतीए वसंतदेवो वणिज्जेण ॥३३॥

एत्थंतरे वसंतो संपत्तो सह अणंगवीरेण । कुव्वंतो भुवणयलं परव्वसं कुसुमबाणेहिं ॥३४॥

तथाहि-

कामीहिं समं कुव्वंति महुयरा जत्थ सुरभिमहुपाणं । अंदोलएण सद्धिं अंदोलइ पहियजणचित्तं ॥३५॥

विरहिणिसासेहिं समं सोवचया मलयमारुया जाया । सह सिंगारजणेणं साहीहिं कओ कुसुमबंधो ॥३६॥

सद्धिं पउत्थवइयादुहेहिं दियहा य वड्ढिउं लग्गा । [1]उज्जंभिओ व मयणो सह कुसुमरएण भुवणयले ॥३७॥

सह मिहुणसुरयकूइयसरेण कूयंति कोइलकुलाइं । उवलद्धमहुसमागमपियाहिं सह हसइ वणराई ॥३८॥

झिज्जंति सह विओइयजणेण रयणीओ अणुदिणं जत्थ । परितावइ भुवणयलं तरणी सह कुसुमबो[2]णेहिं ॥३९॥

सह माणिणीण माणेण विरहिणीणं गलंति वलयाइं । पेसइ पियासु सह दूइयाहिं हिययाणि दइयजणो ॥४०॥

कार्तिकपुरे रम्ये धनदो मृत्वा कामपाल इति । उत्पन्नः श्रेष्ठिसुतः कलाकलापेष्वतिकुशलः ॥ ३० ॥

धनपतिजीवो मृत्वा मदिरानाम्ना शङ्खनगरे । उत्पन्ना श्रेष्ठिसुताऽऽरुढा तारतारुण्यम् ॥ ३१ ॥

मृत्वा धनेश्वरोऽपि खलु जातश्च जयन्त्यां नगर्याम् । रुपयुता श्रेष्ठिसुता केसरा नाम ॥ ३२ ॥

इतश्च -

खर-करभ-वृषभ-वाहनसनाथबहुसार्थसंयुक्तः प्राप्तः । नगर्यां जयन्त्यां वसन्तदेवो वाणिज्येन ॥ ३३ ॥

अत्रान्तरे वसन्तः सम्प्राप्तः सहानङ्गवीरेण । कुर्वन् भुवनतलं परवशं कुसुमबाणैः ॥ ३४ ॥

तथाहि -

कामिभिः समं कुर्वन्ति मधुकरा यत्र सुरभिमधुपानम् । आन्दोलनेन सार्द्धमान्दोलयति पथिकजनचितम् ॥ ३५ ॥

विरहिणिश्वासैः समं सोपचया मलयमारुता जाता । सह शृङ्गारजनेन शाखिभिः कृतः कुसुमबन्धः ॥ ३६ ॥

सार्द्धं प्रौषितभर्तृकादुखै दिवसाश्च वर्धितुं लग्नाः । उज्जृम्भितश्चमदनः सह कुसुमरजसा भुवनतले ॥ ३७ ॥

सह मिथुनसुरतकूजितस्वरेण कूजन्ति कोकिलकुलानि । उपलब्धमधुसमागमप्रियाभिः सह हसति वनराजी ॥ ३८ ॥

क्षियन्ति सह वियोगिकजनेन रजन्योऽनुदिनं यत्र । परितापयति भुवनतलं तरणी सह कुसुमबाणैः ॥ ३९ ॥

सह मानिनीनां मानेन विरहिणीनां गलन्ति वलयानि । प्रेषयति प्रियासु सह दूतीकाभि र्हृदयानि दयितजनः ॥ ४० ॥

---

१. उज्जंभिउ व्व रं०। २. बाणेण रं ।

अन्नं च-

सह कुरबएण कामी कामिणिपरिरंभमीहए कोइ । सह केसरेण रमणीमयरागंडूसमह अन्नो ॥४१॥

पियपण्हिपहारेणं अन्नो विहसेइ सह असोएण । तिलएण समं तरुणो तरुणिकडक्खेहिं विहसेइ ॥४२॥

सह विरहएण विरही अन्नो अहिलसइ पंचमुग्गारं । सह चंपएण अन्नो अब्भत्थइ सुरहिवरसलिलं ॥४३॥

कामीहिं समं एगिंदिया वि जायंति जत्थ विसयवसा । तत्थ वसंते संते पंचेंदीणं तु का गणणा ? ॥४४॥

एयारिसे वसंते संपत्ते मयणतेरसीदिवसे । पत्तो वसंतदेवो उज्जाणे रायनंदणए ॥४५॥

दिट्ठा य तत्थ सहिययणपरिवुडा कामकेलिकुलभवणं । विहिविन्नाणपगरिसा नवजोव्वणमणहरा बाला ॥४६॥

तो चिंतउं पयत्तो किं एसा कामएववरघरिणी ? । उज्जाणसिरी अहवा ? उयाहु पायालकन्न ? त्ति ॥४७॥

इय चिंतंतो एसो तीए वि हु दिट्ठिगोयरे पडिओ । पुव्वभवब्भासाओ मिलिया अवरोप्परं दिट्ठी ॥४८॥

आपुच्छिओ पियंकरनामो तप्पुरवरीए वत्थव्वो । उप्पन्नमित्तभावो वसंतदेवेण का एसा ? ॥४९॥

सो भणइ इह पुरीए वत्थव्वयपंचनंदिसेट्ठिस्स । धूया जयंतदेवस्स केसरा नाम लहुबहिणी ॥५०॥

पारद्धो तेण तओ नेहो सद्धिं जयंतदेवेण । भुंजाविओ नियगिहे जयंतदेवो सबहुमाणं ॥५१॥

तेण वि वसंतदेवो निमंतिओ नियगिहम्मि जा नीओ । ता पेच्छइ तं बालं रइं व रहियं अणंगेण ॥५२॥

तीए वि इमो दिट्ठो जयंतदेवस्स पाणिपउमाओ । वरसुरहिकुसुममालं गिण्हंतो कुसुमबाणो व्व ॥५३॥

अन्यच्च -

सह कुरबकेन कामी कामिनिपरिरम्भमीहते कोऽपि । सह[१] केसरेण रमणीमदिरागण्डूषमथान्यः ॥ ४१ ॥

प्रियापार्ष्णिप्रहारेणान्यो विहसति सहाशोकेन । तिलकेन समं तरुणस्तरुणिकटाक्षै र्विहसति ॥ ४२ ॥

सह विरहकेन विरह्यन्योऽभिलषति पञ्चमोद्गारम् । सह चम्पकेनान्योऽभ्यर्थति सुरभिवरसलिलम् ॥ ४३ ॥

कामिभिः सममेकेन्द्रिया अपि जायन्ते यत्र विषयवशाः । तत्र वसन्ते सति पञ्चेन्द्रियाणां तु का गणना ? ॥ ४४ ॥

एतादृशे वसन्ते सम्प्राप्ते मदनत्रयोदशीदिवसे । प्राप्तो वसन्तदेव उद्याने राजनन्दनके ॥ ४५ ॥

दृष्टा च तत्र सखीजनपरिवृत्ता कामकेलिकुलभवनम् । विधिविज्ञानप्रकर्षा नवयौवनमनोहरा बाला ॥ ४६ ॥

ततश्चिन्तयितुं प्रवृतः किमेषा कामदेववरगृहिणी ? । उद्यानश्रीरथवा ? उदाहु पातालकन्येति ? ॥ ४७ ॥

इति चिन्तयन्नेष तस्या अपि खलु दृष्टिगोचरे पतितः । पूर्वभवाभ्यासान्मिलिता परस्परं दृष्टिः ? ॥ ४८ ॥

आपृष्टः प्रियङ्करनाम तत्पुरवर्यां वास्तव्यः । उत्पन्नमित्रभावो वसन्तदेवेन कैषा ? ॥ ४९ ॥

स भणतीह पूर्यां वास्तव्यपञ्चनन्दिश्रेष्ठिनः । दुहिता जयन्तदेवस्य केसरा नाम लघुभगिनी ॥ ५० ॥

प्रारब्धस्तेन तत स्नेहः सार्धं जयन्तदेवेन । भोजितो निजगृहे जयन्तदेवः सबहुमानम् ॥ ५१ ॥

तेनापि वसन्तदेवो निमन्त्रितो निजगृहे यावन्नीतः । तावत्पश्यति तां बालां रतिमिव रहितामनङ्गेन ॥ ५२ ॥

तयाप्ययं दृष्टो जयन्तदेवस्य पाणिपद्मात् । वरसुरभिकुसुममालां गृहण्कुसुमबाण इव ॥ ५३ ॥

---

१. कोइ स्त्रीको मदिराका घूंट पीलाता हैं । रमण्यै मदिरायाः गण्डूषम् इत्यर्थः ।

अवरोप्परं पि दोहि वि जणेहि नियहिययपेसणसणाहा । पट्ठविया नियदिट्ठी दूइ व्व समागमनिमित्तं ॥५४॥
अन्नोन्ननयणजुयलावलोयणुप्पन्ननेहसारेण । ते के वि ताण जाया भावा जे ते च्चिय मुणंति ॥५५॥
हिययब्भंतरघोलंतनेहभरमंथरेहिं नयणेहिं । ताणऽन्नोन्नपलोयणपराण जायं अणिमिसत्तं ॥५६॥
तत्तो पियंकराए धाईधूयाए ताण अन्नोन्नं । नवनेहनिब्भरालसदिट्ठिप्पसरं पलोएउं ॥५७॥
भणिया एसा सामिणि ! जुत्तं तुज्झ वि इमस्स सम्माणं । काउं तओ पयंपइ तप्पुरओ केसरा एयं ॥५८॥
तं चेव जहाजुत्तं जाणसि भणिए समप्पए सा वि । सह कक्कोलफलेहिं पियंगुतरुमंजरी तस्स ॥५९॥
भणियं च तीए गंतुं पट्ठविया मज्झ सामिणीए इमा । सह कक्कोलफलेहिं पियंगुतरुमंजरी तुज्झ ॥६०॥
अन्नं च-
धिज्जमवलंबिरीए गुरुयणपुरओ तुमम्मि वोलीणे । पडिओ से अच्छिनिमीलणेण परिपीडिओ बाहो ॥६१॥
कस्स भरसि त्ति ? भणिए को मे अत्थि ? त्ति जंपमाणीए । [१]उब्बिबिररुइरीए अम्हे वि रुयाविया तीए ॥६२॥
रुइरीए रुयावियपरियणाए तुह सुहय ! पेसविज्जंतो । न समप्पइ ओसरसुंभिएहिं लहुओ वि संदेसो ॥६३॥
गिण्हित्तु तयं वि समप्पियं तीए मुद्दियारयणं । भणियं नेहेण जहा पियाणुरूवं विहेयव्वं ॥६४॥
एवं च पणयपुव्वं पडिवज्जिय पडिगया गिहे तत्तो । साहेइ केसराए तं सोउं सा वि परितुट्ठा ॥६५॥

परस्परमपि द्वाभ्यामपि जनाभ्यां निजहृदयप्रेषणसनाथा । प्रस्थापिता निजदृष्टि र्दूतीव समागमनिमित्तम् ॥ ५४ ॥
अन्योऽन्यनयनयुगलावलोकनोत्पन्नस्नेहसारेण । ते केऽपि तयोर्जाता भावा ये तौ चैव मुणतः ॥ ५५ ॥
हृदयाभ्यन्तरघोलयन्स्नेहभरमन्थरैर्नयनैः । तयोरन्योन्यप्रलोकनपरयोर्जातमनिमेषत्वम् ॥ ५६ ॥
ततः प्रियङ्करया धात्रीदुहित्रा तयोरन्योन्यम् । नवस्नेहनिर्भरालशदृष्टिप्रसरं प्रलोक्य ॥ ५७ ॥
भणितैषा स्वामिनि ! युक्तं तवाप्येतस्य सन्मानम् । कर्तुं ततः प्रजल्पति तत्पुरतः केसरैतत् ॥ ५८ ॥
त्वं चैव यथोक्तं जानासि भणिते समर्पयति साऽपि । सह कङ्कोलफलैः प्रियङ्गुतरुमञ्जरीं तस्य ॥ ५९ ॥
भणितं च तया गत्वा प्रस्थापिता मम स्वामिन्येमा । सह कङ्कोलफलैः प्रियङ्गुतरुमञ्जरीं तव ॥ ६० ॥
अन्यच्च -
धैर्यमवलम्बिन्यां गुरुजनपुरतस्त्वयि गते । पतितस्तस्याक्षिनिमीलनेन परिपीडितो बाष्पः ॥ ६१ ॥
कस्य स्मरसीति भणिते को ममास्ति ? इति जल्पन्त्या । उद्विग्नरुदन्त्या वयमपि रोदितास्तया ॥ ६२ ॥
रुदन्त्या रोदितपरिजनया तव सुभग ! प्रेष्यमाणः । न समर्पयत्यवसरशुल्कै र्लघुकोऽपि सन्देशः ॥ ६३ ॥
गृहीत्वा तकं तेनापि समर्पितं तस्या मुद्रिकारत्नम् । भणितं स्नेहेन यथा प्रियानुरूपं विधातव्यम् ॥ ६४ ॥
एवं च प्रणयपूर्वं प्रतिपद्य प्रतिगता गृहे ततः । कथयति केसरायास्तच्छ्रुत्वा साऽपि परितुष्टा ॥ ६५ ॥

---

१. उब्बिबिर-उद्विग्न०।

तत्तो वसंतदेवो उव्वूढो केसराए सुविणम्मि । तेण वि सा परिणीया रयणीए अह पभायम्मि ॥६६॥
कहिओ पियंकराए नियसुविणो केसराए तुट्ठाए । तम्मि समयम्मि केणइ भणियं एवं इमं होही ॥६७॥
तं निसुणिउं पयंपइ पियंकरा निच्छएण तुह होही । भत्ता वसंतदेवो ता वंधसु सउणगंठि त्ति ॥६८॥
तत्तो पियंकराए वसंतदेवस्स साहिओ सुमिणो । सो परितुट्ठो चिंतइ संवाई सुमिणगो एसो ॥६९॥
सम्माणिया समाणी पियंकरा तेण जंपए एवं । बंधित्तु सउणगंठिं समप्पिओ तीए तुह अप्पा ॥७०॥
एवमवरोप्परं पि हु पउत्तिसंपायणेण पइदियहं । अक्कमइ कोइ कालो ता निसुणह तत्थ जं जायं ॥७१॥
गंभीरतूरघोसो तेण सुओ पंचनंदिगेहम्मि । सवियक्केणं दासी पट्ठविया तप्पउत्तिकए ॥७२॥
नाउं समागया सा साहइ जह अज्ज वरणयं जायं । दिन्ना कन्ना कन्नउजवासिवरदत्तसेट्ठिस्स ॥७३॥
जायं वद्धावणयं वज्जिरवरतूरबहिरियदियंतं । गिज्जंतमंगलसरं सिंगारियबालियासत्थं ॥७४॥
करकलियअक्खवत्तयपविसिरवरनारिनियररमणीयं । निस्सरिरपवरकुंकमदिन्नमुहालेवरमणियणं ॥७५॥
तं सोउं सो पडिओ मुच्छाविहलंधलो धरणिवीढे । सीयलजलेण सित्तो सचेयणो चिंतए एवं ॥७६॥
तग्गय ! तयाणुरत्तय ! तस्सुक्कंठलय ! तग्गुणदुहत्त ! । तव्विरहवज्जनिहणिय ! हियय ! तए किहविणोइस्सं ? ॥७७॥
अच्छीणि ताव तं पेच्छिराइं रोयंतु अहव फुट्टंतु । हियय ! तए किं विहियं जमवत्थं वहसि मरणसमं ? ॥७८॥
हे हियय ! जइ न सक्का तं मोत्तुं ता ममं परिच्चयसु । वारियवामेण तए सद्धिं को मज्झ वावारो ? ॥७९॥

ततो वसन्तदेव उद्वोढःकेसरया स्वप्ने । तेनापि सा परिणीता रजन्यामथ प्रभाते ॥ ६६ ॥
कथितः प्रियङ्कराया निजस्वप्नः केसरया तुष्टया । तस्मिन्समये केनचिद्भणितमेवमिदं भविष्यति ॥ ६७ ॥
तन्निश्रुत्य प्रजल्पति प्रियङ्करा निश्चयेन तव भविष्यति । भर्ता वसन्तदेवस्ततो बधाण शकुनग्रन्थिरिति ॥ ६८ ॥
ततःप्रियङ्करया वसन्तदेवस्य कथितः स्वप्नः । स परितुष्टश्चिन्तयति संवादी स्वप्न एषः ॥ ६९ ॥
सन्मानिता सती प्रियङ्करा तेनजल्पत्येवम् । बद्ध्वा शकुनग्रन्थि सर्मर्पितस्तया तवाऽऽत्मा ॥ ७० ॥
एवमपरापरमपि खलु प्रवृत्तिसंपादनेन प्रतिदिवसम् । आक्रामति कश्चित्कालस्तावन्निश्रृणुत तत्र यज्जातम् ॥ ७१ ॥
गम्भीरतूर्यघोषस्तेन श्रुतः पञ्चनन्दिगृहे । सविकल्पेन दासी प्रस्थापिता तत्प्रवृत्तिकृते ॥ ७२ ॥
ज्ञात्वा समागता सा कथयति यथाऽद्य वरणकं जातम् । दत्ता कन्या कन्यकुब्जवासिवरदत्तश्रेष्ठिनः ॥ ७३ ॥
जातं वर्धापनकं वाद्यद्वरतूर्यबधिरितदिगन्तम् । गीयमानन्मङ्गलस्वरं श्रृङ्गारितबालिकासार्थम् ॥ ७४ ॥
करकलिताक्षपत्रकप्रविशद्वरनारिनिकररमणीयम् । निस्सरत्प्रवरकुङ्कुमदत्तमुखालेपरमणिजनम् ॥ ७५ ॥
तच्छ्रुत्वा स पतितो मूर्च्छाविह्वलान्धलो धरणिपीठे । शीतलजलेन सिक्तः सचेतनश्चिन्तयत्येवम् ॥ ७६ ॥
तद्गत ! तदानुरक्तक ! तस्योत्कण्ठलक ! तद्गुणदुःखार्त्त । तद्विरहवज्रनिहत ! हृदय ! त्वया कथं विनोदयिष्यामि ॥७७॥
अक्षीणि तावत्तां पश्यन्ती रुदन्त्वथवा स्फुटन्तु । हृदय ! त्वया किं विहितं यदवस्थां वहसि मरणसमाम् ? ॥ ७८ ॥
हे हृदय ! यदि न शक्यास्त्वां मोक्तुं तावन्मां परित्यज । वारितव्यामेन त्वया सार्धं को मम व्यापारः ? ॥ ७९ ॥

हियय ! निहुयं किलम्मसु निच्चं चिय खिज्जवेसु अत्ताणं । परवसजणाणुलग्गिर ! बहुयं खु तए सहेयव्वं ॥८०॥

रे हियय ! किं विसूरसि ? किं तम्मसि ? किं खु भग्ग ! कलमलसि ? । दुल्लहलंभम्मि जणे अणुबंधे एरिसं होइ ॥८१॥

हा हियय ! निरंतरनेहपेसले माणुसम्मि वोलीणे । कह विसहिसि विरहुप्पन्नदुक्खकरवत्तकप्परणं ? ॥८२॥

दुक्खेसु जइ विराओ जइ राओ सोक्खजीवियव्वम्मि । तुह हियय ! हियं भणिमो तम्मि जणे मुयसु पडिबंधं ॥८३॥

इय सो वसंतदेवो झूरंतो जाव चिट्ठए तत्थ । एत्थंतरम्मि पत्ता पियंकरा पेसिया तीए ॥८४॥

सत्थीकाऊण तयं साहइ सा तीए तस्स संदेसं । खिज्जेयव्वं न तए जायं जं वरणयं मज्झ ॥८५॥

जओ-

पुव्वाणुरायविसरिसमणुचिट्ठिस्सं न नाह ! मरणे वि । किंतु मह चित्तभावं न य जाणइ गुरुयणो जेण ॥८६॥

वज्जित्तु तुमं भत्ता नऽन्नो मह होइ इह भवे नाह ! । जइ एयमन्नहा कह वि होइ पविसेमि ता जलणे ॥८७॥

तं सोउं सो हरिसियहियओ एवं पयंपिउं लग्गो । एस गई अम्हाण वि भणिऊणं तं विसज्जेइ ॥८८॥

एवं त ताण पइदिणसमागमोवायदिन्नहिययाण । जा जाइ कोई कालो ता पत्ता तत्थ जन्नत्ता ॥८९॥

तत्तो वसंतदेवो तव्वीवाहं सुणित्तु दुक्खत्तो । नयराओ नीहरिओ उज्जाणगओ विचिंतेइ ॥९०॥

अन्यथैव विचिन्त्यन्ते पुरुषेण मनोरथाः । दैवा(दा) हितसद्भावाः कार्याणां गतयोऽन्यथा ॥९१॥

ता पेच्छ केरिसमिणं संजायं[१] कम्मपरिणइवसेण ? । मह दंसिऊण दइया दइवेणुद्दालिया जेण ॥९२॥

हृदय ! निधुतं क्लामय नित्यमेव खेदयात्मनाम् । परवशजनानुलग्न ! बहुकं खलु त्वया सोढव्यम् ॥ ८० ॥

रे हृदय ! किं विषीदसि ? किं ताम्यसि ? किं खलु भग्न ! कलमलसि ? । दुर्लभलम्भे जनेऽनुवन्ध इदृशं भवति ॥८१॥

हा हृदय ! निरन्तर स्नेहपेशले मानुष्ये गते । कथं विसहसे विरहोत्पन्नदुःखकरपत्रकल्पनम् ? ॥ ८२ ॥

दुःखेषु यदि विरागो यदि रागः सौरव्यजीवितव्ये । तव हृदय ! हितं भणामि तस्मिञ्जने मुञ्च प्रतिबन्धम् ॥ ८३ ॥

इति स वसन्तदेवो विलपद्यावत्तिष्ठति तत्र । अत्रान्तरे प्राप्ता प्रियङ्करा प्रेषिता तया ॥ ८४ ॥

स्वस्थीकृता तकं कथयति सा तस्यास्तस्य सन्देशम् । रुष्टव्यं न त्वया जातं च वरणकं मम ॥ ८५ ॥

यतः -

पूर्वानुरागविसदृशमनुचरिष्यामि न नाथ ! मरणेऽपि । किन्तु मम चित्तभावं न च जानाति गुरुजनो येन ॥ ८६ ॥

वर्जयित्वा त्वां भर्ता नाऽन्यो ममेह भवे नाथ ! । यद्येतदन्यथा कथमपि भविष्यति प्रविशामि तदा ज्वलने ॥ ८७ ॥

तच्छ्रुत्वा स हर्षितहृदय एवं प्रजल्पितुं लग्नः । एषा गतिरस्माकमपि भणित्वा तां विसर्जयति ॥ ८८ ॥

एवं च तयोः प्रतिदिनसमागमोपायदत्तहृदययोः । यावद्याति कश्चित्कालस्तावत्प्राप्ता तत्र [२]जन्ययात्रा ॥ ८९ ॥

ततो वसन्तदेवस्तद्विवाहं श्रुत्वा दुःखार्तः । नगरान्निसृत उद्यानगतो विचिन्तयति ॥ ९० ॥

तावत्पश्य कीदृशमिदं सञ्जातं कर्मपरिणतिवशेन ? । मम दर्शयित्वा दयिता दैवेनाच्छिन्ना येन ॥ ९२ ॥

---

१. संजायइ कम्म० रं० । २. 'जान' इति भाषायाम् ।

अवरं च पुव्वपडिवन्नभावओ तीए जा न अमणुन्नं । आयन्नेमि सयं चिय ता मह मरणं हवउ सरणं ॥९३॥
इय चिंतिऊण उव्बंधिऊण अप्पा असोयसाहाए । जा मुक्को ता भमियं अजसेण समं दिसाचक्कं ॥९४॥
लोयणजुयलेण समं निमीलियं तस्स सयलभुवणयलं । रुद्धो गलसरणिपहो सद्धिं सिव-सग्गमग्गेण ॥९५॥
एत्थंतरम्मि मा साहसं ति मा साहसं ति भणिरेण । उल्ललिऊणं केणइ छिन्नो छुरियाए तप्पासो ॥९६॥
वत्थंचलानिलेणं सत्थीकाउं पयंपए एसो । भद्द ! तए किं विहियं जं जुत्तं विलयवग्गस्स ? ॥९७॥
अलमेत्थ मह कहाए सुपुरिस ! सप्पुरिसकयविरायाए । गुरुदुक्खजलणजालाकलावकवलणसरूवाए ॥९८॥
भणियं पुणो वि तेणं जइ एवं भद्द ! तह वि मह कहसु । विन्नायतस्सरूवो जेण उवायं विचिंतेमि ॥९९॥
कहिओ वसंतदेवेण तस्स उवयाररंजियमणेण । सव्वो वि केसराए वुत्तंतो भणइ तो इयरो ॥१००॥
अत्थि उवाओ तुह जेण होइ निच्चं पि दंसणं तीए । मज्झ अहन्नस्स पुणो न उवाओ दंसणं नेय ॥१०१॥
न परिच्चयामि पाणे तह वि अहं जेण पावए भद्दं । जीवंतो एत्थ नरो कइया[1] वि जओ इमं भणियं ॥१०२॥
सत्या लोकश्रुतिरियं जीवन् भद्राणि पश्यति । वासुदेवसहायोऽपि यो मृतो एव सः ॥१०३॥
जंपइ वसंतदेवो दुक्खं तुह केरिसं कह व जायं ? । को य तुमं ? इय भणिए भणइ तओ सो वि निसुणेसु ॥१०४॥
कत्तियपुरवत्थव्वो इब्भसुओ कामपालनामो हं । जोव्वणभयउम्मत्तो विणिग्गओ देसियालीए ॥१०५॥
पत्तो य संखनयरे तत्थ तया संख(ग्रं. १०००)पालजक्खस्स । जत्तानिरूवणत्थं विणिग्गओ सयलपुरलोओ ॥१०६॥

अपरं च पूर्वप्रतिपन्नभावतस्तस्या यावन्नामनोज्ञम् । आकर्णयामि स्वयमेव तावन्मम मरणं भवतु शरणम् ॥ ९३ ॥
इति चिन्तयित्वोद्बध्यात्माऽशोकशाखायाम् । यावन्मुक्तस्तावद्भ्रमितमयशसा समं दिक्चक्रम् ॥ ९४ ॥
लोचनयुगलेन समं निमिलितं तस्य सकलभुवनतलम् । रुद्धो गलसरणिपथःसार्द्धं शिव-स्वर्गमार्गेण ॥ ९५ ॥
अत्रान्तरे मा साहसमिति मा साहसमिति भणता । उल्लप्य केनचिच्छिन्नश्छुरिकया तत्पाशः ॥ ९६ ॥
वस्त्राञ्चलानिलेन स्वस्थीकृत्य प्रजल्पत्येषः । भद्र ! त्वया किं विहितं यद्युक्तं वनितावर्गस्य ? ॥ ९७ ॥
अलमत्र मम कथया सुपुरुष ! सुपुरुषकृतविरागया । गुरुदुःखज्वलनज्वालाकलापकवलनस्वरुपया ॥ ९८ ॥
भणित पुनरपि तेन यद्येवं भद्र ! तथापि मम कथय । विज्ञाततत्स्वरुपो येनोपायं विचिन्तयामि ॥ ९९ ॥
कथितो वसन्तदेवेन तस्योपकाररञ्जितमनसा । सर्वोऽपि केसराया वृत्तान्तो भणति तदेतरः ॥ १०० ॥
अस्त्युपायस्तव येन भवति नित्यमपि दर्शनं तस्याः । ममाधन्यस्य पुन र्नोपायो दर्शनं नैव ॥ १०१ ॥
न परित्यजामि प्राणांस्तथाप्यहं येन प्राप्नोति भद्रम् । जीवन्नत्र नरः कदाचिदपि यत इदं भणितम् ॥ १०२ ॥
जल्पति वसन्तदेवो दुःखं तव कीदृशं कथं वा जातम् ? । कश्च त्वम् ? इति भणिते भणति ततःसोऽपि निशृणु ॥१०४॥
कार्तिकपुरवास्तव्य इभ्यसुतः कामपालनामोऽहम् । यौवनमदोन्मत्तो विनिर्गतो [2]देशकाल्या ॥ १०५ ॥
प्राप्तश्च शङ्खनगरे तत्र तदा शङ्खपालयक्षस्य । यात्रानिरुपणार्थं विनिर्गतः सकलपुरलोकः ॥ १०६ ॥

१. कयाइ वि रा० । २. 'देशाटन' इति भाषायाम् ।

अहयं पि तत्थ पत्तो कीलारसनिब्भरे अह पयट्टे । सहयारतरुतलम्मि दिट्ठा बाला मए एक्का ॥१०७॥

जाव निरिक्खेमि तयं ताव य रइसरिसरूय[1]भंतीए । ईसाइ व मयणेणं विद्धो हिययम्मि बाणेहिं ॥१०८॥

दट्ठूण मम सा वि हु नवनेहुक्कंठिया सहत्थेण । जा पेसइ तंबोलं हलबोलो ता समुच्छलिओ ॥१०९॥

एत्थंतरम्मि तीए पलाइयं सहियणेण सा कह वि । जाव न सक्कइ गंतुं संपत्तो ताव मत्तकरी ॥११०॥

गयपयडो वररयणो निरंकुसो पवरपउमकयसोहो । भग्गवरमत्तवारणवावारो पवरआरक्खो ॥१११॥

अप्पडियारो भूसासमन्निओ निहयनियडमाहप्पो । एवंविहगुणजुत्तो दुहा वि सव्वत्थ वत्तव्वो ॥११२॥

तो सुंडादंडेणं जा किर तं गिण्हए पलवमाणिं । दढमुट्ठिपहारेणं पहओ पट्ठीए ताव मए ॥११३॥

तत्तो तं मोत्तूणं वलियो मह सम्मुहो करी तुरियं । तं वंचिऊण नियदक्खयाए गहिया मए कन्ना ॥११४॥

अइनेहनिब्भरेणं भयभीया किर करिंदरक्खट्ठा । परिरंभिऊण गाढं नीया निरुवद्दवे ठाणे ॥११५॥

मुक्का अमुंचमाणी हियएणं परियणम्मि । बहुमन्निओ य तेणं जीवियदाणेण कन्नाए ॥११६॥

एत्थंतरम्मि वंतरपओगओ वरिसिउं समाढत्तो । सम्मुच्छिमसप्पेहिं अकालमेहो महाघोरो ॥११७॥

लग्गो पलाइउं तो लोगो कत्थइ कहिं पि [2]सत्थो वि । सा वि हु कहं पि नट्ठा न मए दिट्ठा अहन्नेणं ॥११८॥

अप्पत्ततप्पउत्ती य हिंडिओ पुरवरीए सयलाए । तम्मोहमोहियमई संपत्तो मित्त ! इहइं ति ॥११९॥

अहमपि तत्र प्राप्तः क्रीडारसनिर्भरेऽथ प्रवृत्ते । सहकारतरुतले दृष्टा बाला मयैका ॥ १०७ ॥

यावन्निरीक्षे तकां तावच्च रति सदृशरुपभ्रान्त्या । ईर्ष्ययेव मदनेन विद्धो हृदये बाणैः ॥ १०८ ॥

दृष्ट्वा मां सापि खलु नवस्नेहोत्कण्ठिता स्वहस्तेन । यावत्प्रेषयति ताम्बूलं हलबोलस्तावत्समुच्छलितः ॥ १०९ ॥

अत्रान्तरे तया पलायितं सखीजनेन सा कथमपि । यावन्नशक्नोति गन्तुं संप्राप्तस्तावन्मतकरी ॥ ११० ॥

गजप्रकटो वररत्नो निरङ्कुशः प्रवरपद्मकृतशोभः । भग्नवरमत्तवारणव्यापारः प्रवरारक्षः ॥ १११ ॥

अप्रतिकारो भूषासमन्वितो निहतनिगडमाहात्म्यः । एवंविधगुणयुक्तो द्विधाऽपि सर्वत्र वक्तव्यः ॥ ११२ ॥

तदा शुण्डादण्डेन यावत्किल तां गृह्णाति प्रलपन्तीम् । दृढमुष्टिप्रहारेण प्रहतः पृष्ट्यां तावन्मया ॥ ११३ ॥

ततस्तां मुक्त्वा वलितो मम सम्मुखः करी त्वरितम् । तं वञ्चित्वा निजदक्षतया गृहीता मया कन्या ॥ ११४ ॥

अतिस्नेहनिर्भरेण भयभीता किल करीन्द्ररक्षणार्था । परिरम्भ्य गाढं नीता निरुपद्रवे स्थाने ॥ ११५ ॥

मुक्ताऽमुञ्चन्ती हृदयेन परिजने प्राप्ते । बहुमतश्च तेन जीवितदानेन कन्यायाः ॥ ११६ ॥

अत्रान्तरे व्यन्तरप्रयोगाद्वर्षितुं समारब्धः । समुर्च्छिमसर्पैरकालमेघो महाघोरः ॥ ११७ ॥

लग्नः पलायितुं तदा लोकः कुत्रचित्कथमपि सर्वोऽपि । साऽपि खलु कथमपि नष्टा न मया दृष्टाऽधन्येन ॥ ११८ ॥

अप्राप्ततत्प्रवृत्तिश्च हिण्डितः पुरवर्यां सकलायाम् । तन्मोहितमतिः संप्राप्तो मित्र ! इहेति ॥ ११९ ॥

---

१. रूवभंतीए रं० । २. सव्वो वि रा० ।

तं सोऊणं भणिओ वसंतदेवेण मित्त ! जइ एवं । ता साहेसु उवायं तो जंपइ कामपालो वि ॥१२०॥
नाओ मए उवाओ देसायारो सुओ इमो एत्थ । पविसित्तु कामदेवस्स मंदिरं ढक्किउं दारं ॥१२१॥
लग्गदिणे पढमं चिय नववहुपाओग्गाविहियसिंगारा । एगागिणी निसाए पूएइ वहू मयणपडिमं ॥१२२॥
ता अम्हे पढमं चिय लग्गदिणे कामएवभवणम्मि । चिट्ठिस्सामो पविसिय पुरओ सव्वं भलिस्सामि ॥१२३॥
तो आवासे गंतुं दो वि हु भुंजंति मज्जणं काउं । जाओ महासिणेहो पुव्वभवब्भासओ ताण ॥१२४॥
तत्तो वसंतदेवो सत्थं मोक्कल्लिऊण नियनयरे । तो बीयदिणं बालं आगच्छंतं मुणेऊण ॥१२५॥
कयउब्भडसिंगारा दोन्नि वि कामस्स मंदिरं गंतुं । कामस्स पिट्ठिभाए तिरोहिया जाव चिट्ठंति ॥१२६॥
ता केसरा वि पत्ता मोत्तुं सिबियं सपरियणं दारे । गहियपूओवयारा दारं पिहिऊण मज्झम्मि ॥१२७॥
पूइत्तु तो पयंपइ अणंगमेगागिणी सबहुमाणं । किं भयवं ! रइवल्लह ! मज्झ तए ववसियं एयं ? ॥१२८॥
अवरं च बावकालाओ पूइओ तं मए सुभत्तीए । ता कीस तए अहयं विडंबिया इयरदइएण ? ॥१२९॥
मोत्तुं वसंतदेवं दइयं भयवं ! तमेव जाणासि । अन्नो न मज्झ सुविणे[1] वि माणसे वसइ मणयं पि ॥१३०॥
ता सामिसाल ! सुगहियनामं मुत्तुं वसंतदेवपइं । जम्मंतरे वि अन्नं दइयं मा देज्ज इय भणिउं ॥१३१॥
उत्तरिएणुव्वंधइ तत्तो तत्तोरणम्मि अप्पाणं । जा मेल्लइ ता पत्तो वसंतदेवो पयंपंतो ॥१३२॥

तच्छ्रुत्वा भणितो वसन्तदेवेन मित्र ! यद्येवम् । तदा कथयोपायं तदा जल्पति कामपालोऽपि ॥ १२० ॥
ज्ञातो मयोपायो देशाचारः श्रुतोऽयमत्र । प्रविश्य कामदेवस्य मन्दिरं पिधाय द्वारम् ॥ १२१ ॥
लग्नदिने प्रथममेव नववधूप्रायोग्यविहितशृङ्गारा । एकाकिनी निशायां पूजयति वधू मदनप्रतिमाम् ॥ १२२ ॥
तत आवाभ्यां प्रथममेव लग्नदिने कामदेवभवने । स्थास्यावः प्रविश्य पुरतः सर्वं भलिष्यामि ॥ १२३ ॥
तत आवासे गत्वा द्वावपि खलु भुञ्जेते मज्जनं कृत्वा । जातो महास्नेहः पूर्वभवाभ्यासात्तयोः ॥ १२४ ॥
ततो वसन्तदेवः सार्थं विसृज्य निजनगरे । ततो द्वितीयदिने बालामागच्छन्तीं मुणित्वा ॥ १२५ ॥
कृतोद्भटशृङ्गारौ द्वावपि कामस्य मन्दिरं गत्वा । कामस्य पृष्टभागे तिरोहितौ यावत्तिष्ठतः ॥ १२६ ॥
तावत्केसराऽपि प्राप्ता मुक्त्वा शिबिकां सपरिजनां द्वारे । गृहीतपूजोपचारा द्वारं पिधाय मध्ये ॥ १२७ ॥
पूजयित्वा ततः प्रजल्पत्यनङ्गमेकाकिनी सबहुमानम् । किं भगवन् । रतिवल्लभ ! मम त्वया व्यवसितमेतत् ॥१२८॥
अपरं च बालकालात्पूजितस्त्वं मया सुभक्त्या । ततः कथं त्वयाहं विडम्बितेरदयितेन ? ॥ १२९ ॥
मुक्त्वा वसन्तदेवं दयितं भगवन् । त्वमेव जानासि । अन्यो न मम स्वप्नेऽपि मानसे वसति मनागपि ॥ १३० ॥
ततः स्वामिशाल ! सुगृहीतनाम मुक्त्वा वसन्तदेवपतिम् । जन्मान्तरेऽप्यन्यं दयितं मा देहीति भणित्वा ॥ १३१ ॥
उत्तरियेणोद्बध्नाति ततस्तत्तोरण आत्मानम् । यावन्मुञ्चति तावत्प्राप्तो वसन्तदेवः प्रजल्पन् ॥ १३२ ॥

---

१. सुमिणे रं० ।

मा साहसं ति गाढं परिरंभिय वामबाहुदंडेण । इयरेण तओ सहसा छिन्नो छुरियाए तप्पासो ॥१३३॥
तत्तो मोत्तुं भूमीए वीइया अंचलेण वत्थस्स । उवलद्धचेयणा सा चिंतइ सो एस साणंदा ॥१३४॥
कत्तो संभवइ इहं सविसाया एगगो ? त्ति तरलच्छी । रूवेणऽहिओ एसो मं परिणेही ? न वा ? सभया ॥१३५॥
नायमणेणं उव्बंधणाइ मम चेट्ठियं ति सविलक्खा । मुच्छाविवसविसंठुलदेहावयव त्ति कयलज्जा ॥१३६॥
इय एवंविहपाउब्भवंतरसहरियहिययवावारा । भणिया वसंतदेवेण केसरा केसरमणीया ॥१३७॥
सो हं वसंतदेवो सुंदरि ! किं एत्थ विविहचिंताए ? । तुह हरणत्थं पुव्वं पि आगओ कामभवणम्मि ॥१३८॥
तत्तो य कामदेवं सक्खि काऊण कामपालेण । कारवियं परिणयणं वसंतदेवस्स सह तिए ॥१३९॥
भणिया य कामपालेण केसरा ! गिण्ह मह अलंकारे । जेणाहं तुह वेसं घेत्तुं गच्छामि तुह भवणं ॥१४०॥
एत्तो पलाइयव्वं तुब्भेहिं अहं तु इह भलिस्सामि । नवपरिणिएहिं भणियं एवं होही तुह अणत्थो ॥१४१॥
एत्थंतरम्मि केणइ छड त्ति छीयम्मि कामपालो वि । जंपइ न मज्झ चिंता तुब्भेहिं खणं पि कायव्वा ॥१४२॥
जम्हा छीयासउणो सउणो मह कहइ तत्थ पियलाभं । एवं ति पभणिऊणं तं सव्वमणुट्ठियं तेहिं ॥१४३॥
काऊण कामपालो कामिणिवेसं विसालनीरंगिं । नीहरिय मंदिराओ आरुहिउं पवरसिबियाए ॥१४४॥
वज्जंतसजलजलहरगभीरजयतूरपूरियदियंतो । पत्तो गिहम्मि तत्तो उवविट्ठो पवरपल्लंके ॥१४५॥
संखउराओ एत्थंरम्मि तम्माउभाउणो धूया । तरुणमणुम्मायकरी मइरा मइर व्व संपत्ता ॥१४६॥

मा साहसमिति गाढं परिरम्भ्य वामबाहुदण्डेन । इतरेण ततः सहसा छिन्नश्च्छूरिकया तत्पाशः ॥ १३३ ॥
ततो मुक्त्वा भूमौ वीजिताऽञ्चलेन वस्त्रस्य । उपलब्धचेतना सा चिन्तयति स एष सानन्दा ॥ १३४ ॥
कुतः सम्भवतीह सविषादैकक इति तरलाक्षी । रुपेणाधिक एष मां परिणेष्यति ? न वा ? सभया ॥ १३५ ॥
ज्ञातमनेनोब्दन्धनादि मम चेष्टितमिति सविलक्षा । मूर्च्छाविवशविसंस्थूलदेहावयवेति कृतलज्जा ॥ १३६ ॥
इत्येवंविधप्रादुर्भवद्रसहृतहृदयव्यापारा । भणिता वसन्तदेवेन केसरा केशरमणीया ॥ १३७ ॥
सोऽहं वसन्तदेवः सुन्दरि ! किमत्र विविधचिन्तया ? । तव हरणार्थं पूर्वमप्यागतः कामभवने ॥ १३८ ॥
ततश्च कामदेवं साक्षिणं कृत्वा कामपालेन । कारितं परिणयनं वसन्तदेवस्य सह तया ॥ १३९ ॥
भणिता च कामपालेन केसरा ! गृहाण ममालङ्कारान् । येनाहं तव वेशं गृहीत्वा गच्छामि तव भवनम् ॥ १४० ॥
इतः पलायितव्यं युवाभ्यामहं त्वेह भलिष्यामि । नवपरिणिताभ्यां भणितमेवं भविष्यति तवानर्थः ॥ १४१ ॥
अत्रान्तरे केनचिच्छटिति क्षुते कामपालोऽपि । जल्पति न मम चिन्ता युवाभ्यां क्षणमपि कर्तव्या ॥ १४२ ॥
यस्मात्क्षुताशकुनः शकुनो मम कथयति तत्र प्रियालाभम् । एवमिति प्रभण्य तत्सर्वमनुष्ठितं तैः ॥ १४३ ॥
कृत्वा कामपालः कामिनिवेशं विशालनीरङ्गिगम् । निसृत्य मन्दिरादारुह्य प्रवरशिबिकाम् ॥ १४४ ॥
वाद्यत्सजलजलधरगम्भीरजयतूर्यपूरितदिगन्तः । प्राप्तो गृहे तत उपविष्टः प्रवरपल्यङ्के ॥ १४५ ॥
शङ्खपुरादत्रान्तरे तन्मातृभ्रातुर्दुहिता । तरुणमनोन्मादकरी मदिरा मदिरेव संप्राप्ता ॥ १४६ ॥

गंतूण तओ एसा उवविट्ठा कामपालपल्लंके । पभणइ बहिणि ! मए तुह निसुओ निस्सेसवुत्तंतो ॥१४७॥
संखउरमागयाए सयासओ तुह सहीए कमलाए । जह केसराए गरुओ वसंतदेवम्मि अणुराओ ॥१४८॥
सो तुज्झ विहिवसेणं संजाओ जइ वि अन्नहा इण्हिं । तह वि हु गुरुयणवयणाणुवत्तणे नियमणं कुणसु ॥१४९॥
जम्हा जं जेण जया पावेयव्वं सुहं व दुक्खं वा । सो पुव्वकम्मपरिणइवसेण पावेइ तं नियमा ॥१५०॥
अणुरूवरूव-जोव्वण-संपय-विन्नाण-नाणविसएसु । जायइ जए पवित्ती परम्मुहा हयपयावइणो ॥१५१॥
इय जंपिऊण नियपियसंभरणसमुच्छलंतगुरुसोया । मोत्तुं मुणालदीहरनिस्सासं भणइ पुण मइरा ॥१५२॥
जत्ताए पवित्ताए संखउरे संखवालजक्खस्स । कमणीयकामपाले अणुराओ मज्झ संजाओ ॥१५३॥
तम्मि वि कयाणुराए परोप्परं पेसियम्मि तंबोले । हलबोलो संजाओ संपत्तो तत्थ मत्तकरी ॥१५४॥
नट्ठो समग्गलोगो गइंदभयकंपिरा अहं तेण । आलिंगिऊण गाढं नीया निरुवद्दवे ठाणे ॥१५५॥
कयसम्माणो मह गुरुयणेण जा तत्थ चिट्ठए ताव । वुट्ठो अकालदारुणविसहरनियरेहिं नीरधरो ॥१५६॥
नियपाणे घेत्तूणं नट्ठो लोगो भुयंगभयभीओ । सुइरं निरिक्खिओ वि हु तप्पभिइ न सो कहिं दिट्ठो ॥१५७॥
तयणंतरं च विहिणा तेण समं दंसणं पि मह हरियं । जलबिंब पि तरंगा हरंति अहवा रहंगस्स ॥१५८॥
तं सोउं नीरंगी अवणीया ज्झति कामपालेण । कहमेसो सो ? त्ति ससंभमाए न हु जंपियमिमीए ॥१५९॥
तो नियकरकमलेणं घेत्तूणं पाणिपल्लवं तीए । भणियं तेण न एसो लज्जाकालो कुरंगच्छि ! ॥१६०॥

गत्वा तत एषोपविष्टा कामपालपल्यङ्के । प्रभणति भगिनि ! मया तव निश्रुतो निःशेषवृत्तान्तः ॥ १४७ ॥
शङ्खपुरमागतया सकाशात्तव सख्या कमलया । यथा केसराया गुरुको वसन्तदेवेऽनुरागः ॥ १४८ ॥
स तत विधिवशेन सञ्जातो यद्यप्यन्यथेदानीम् । तथापि खलु गुरुजनवचनानुवर्तने निजमनः कुरु ॥ १४९ ॥
यस्माद्यद्येन यदा प्राप्तव्यं सुखं वा दुःखं वा । स पूर्वकर्मपरिणतिवशेन प्राप्नोति तन्नियमा ॥ १५० ॥
अनुरुपरुप-यौवन-संपद्विज्ञान-ज्ञानविषयेषु । जायते जगति प्रवृत्तिः पराम्मुखा हतप्रजापतेः ॥ १५१ ॥
इति जल्पित्वा निजप्रियस्मरणसमुच्छलद्गुरुशोका । मुक्त्वा मुणालदीर्धनिश्वासं भणति पुनर्मदिरा ॥ १५२ ॥
यात्रायां पवित्रायां शङ्खपुरे शङ्खपालयक्षस्य । कमनीयकामपालेऽनुरागो मम सञ्जातः ॥ १५३ ॥
तस्मिन्नपि कृतानुरागे परस्परं प्रेषिते ताम्बुले । हलबोलः सञ्जातः संप्राप्तस्तत्र मत्तकरी ॥ १५४ ॥
नष्टः समग्रलोको गजेन्द्रभयकम्पमानाऽहं तेन । आलिङ्ग्य गाढं नीता निरुपद्रवे स्थाने ॥ १५५ ॥
कृतसन्मानो मम गुरुजनेन यावत्तत्र तिष्ठति तावत् । वृष्टोऽकालदारुणविषधरनिकरैर्नीरधरः ॥ १५६ ॥
निजप्राणान्गृहीत्वा नष्टो लोको भुजङ्गभयभीतः । सुचिरं निरीक्षितोऽपि खलु तत्प्रभृति न स कुत्र दृष्टः ॥ १५७ ॥
तदनन्तरं च विधिना तेन समं दर्शनमपि मम हृतम् । जलबिम्बमपि तरङ्गा हरन्त्यथवा रथाङ्गस्य ॥ १५८ ॥
तच्छ्रुत्वा नीरङ्ग्यपनीता झटिति कामपालेन । कथमेष स ? इति ससम्भ्रमया न खलु-जल्पितमनया ॥ १५९ ॥
ततो निजकरकमलेन गृहीत्वा पाणिपल्लवं तस्याः । भणितं तेन नैष लज्जाकालः कुरङ्गाक्षि ! ॥ १६० ॥

ता लज्जं मोत्तूणं निग्गमणोवायमेत्थ चिंतेहि । जेण लहुं गच्छामो वीवाहक्खित्तसयलजणे ॥१६१॥

अवरं च केसरा वि य मिलिया दइयस्स इय पओगेण । तो हरिसियहिययाए मइराए [1] पयंपियं एवं ॥१६२॥

काउं सरीरचिंतावएसं नियअसोगवणियाए । दारेण पगच्छाभो तो तेहिं कयं तह च्चेव ॥१६३॥

तत्तो वसंतदेवस्स गयउरे ताणि तत्थ मिलियाणि । इय चत्तारि वि नेहेण तत्थ भुंजंति विसयसुहं ॥१६४॥

नायं अम्मा-पियरेहिं केसरा जह वसंतदेवेण । उव्वूढा मइरा वि य ससिणेहं कामपालेण ॥१६५॥

तो संतुट्ठाइं मणम्मि ताइं अणुरूववरनिओगेण । एत्तो वसंतदेवाइएहिं दविणं बहु विढत्तं ॥१६६॥

उत्तुंगतोरणाइं गिहाणि काराविऊण नियगाणि । तत्थाऽऽणियाणि अम्मा-पियराणि सिणेहसारेहिं ॥१६७॥

रन्नो य तत्थ कोसल्लियाणि ढुक्कंति पंचसंखाए । नवरं कुओ वि न सयं परिभुंजइ ताणमेगं पि ॥१६८॥

मिलियाण ताण तेणं तेसिं परिभाइउं चउण्हं पि । उवभुत्ताणि सहरिसं सिणेहसारं समग्गेहिं ॥१६९॥

जाओ महासिणेहो जम्मंतरनेहसंगइवसेणं । कुरुचंदराइणा सह तेसिं कालो अइक्कमइ ॥१७०॥

एत्थंतरे सुरा-ऽसुर-खेयर-नरनियरनमियकमकमलो । तन्नयरवरुज्जाणे समोसढो संतिजिणनाहो ॥१७१॥

वद्धाविओ नरिंदो तत्तो उज्जाणपालपुरिसेहिं । दाऊण पारितोसियदाणं तो ताण नरनाहो ॥१७२॥

आरुहिय पट्टहत्थिं निस्सेसनरिंदनियरपरियरिओ । सद्धिं वसंतदेवाइएहिं पत्तो समवसरणे ॥१७३॥

ततो लज्जां मुक्त्वा निर्गमनोपायमत्र चिन्तय । येन लघु गच्छावो विवाहाक्षिप्ते सकलजने ॥ १६१ ॥

अपरं च केसराऽपि च मिलिता दयितस्येति प्रयोगेण । ततो हर्षितहृदयया मदिरया प्रजल्पितमेवम् ॥ १६२ ॥

कृत्वा शरीरचिन्ताव्यपदेशं निजाशोकवनिकायाः । द्वारेण प्रगच्छावस्ततस्ताभ्यां कृत तथा चैव ॥ १६३ ॥

ततो वसन्तदेवस्य गजपुरे तानि तत्र मिलितानि । इति चत्वारि अपि स्नेहेन तत्र भुञ्जन्ति विषयसुखम् ॥ १६४ ॥

ज्ञातमम्बा-पितृभिः केसरा यथा वसन्तदेवेन । उद्वोढा मदिराऽपि च सस्नेहं कामपालेन ॥ १६५ ॥

तदा संतुष्टानि मनसि तान्यनुरुपवरनियोगेन । इतो वसन्तदेवादिकै र्द्रविणं बह्वर्जितम् ॥ १६६ ॥

उत्तुङ्गतोरणानि गृहाणि कारयित्वा निजकानि । तत्राऽऽनीतान्यम्बा-पितराणि स्नेहसारैः ॥ १६७ ॥

राज्ञश्च तत्र कोशलिकानि ढौकन्ते पञ्चसंख्यया । नवरं कुतोऽपि न स्वयं परिभुनक्ति तेषामेकमपि ॥ १६८ ॥

मिलितानां तेषां तेन तेभ्यःपरिभाज्य चतुर्भ्योऽपि । उपयुक्तानि सहर्षं स्नेहसारं समग्रैः ॥ १६९ ॥

जातो महास्नेहो जन्मान्तरस्नेहसंगतिवशेन । कुरुचन्द्रराज्ञा सह तेषां कालोऽतिक्रामति ॥ १७० ॥

अत्रान्तरे सुराऽसुर-खेचर-नरनिकरनतक्रमकमलः । तन्नगरवरोद्याने समवसृतः शान्तिजिननाथः ॥ १७१ ॥

वर्धापितो नरेन्द्रस्तत उद्यानपालपुरुषैः । दत्त्वा पारितोषिकदानं ततस्तेभ्यो नरनाथः ॥ १७२ ॥

आरुह्य पट्टहस्तीं निःशेषनरेन्द्रनिकरपरिकरितः । सार्द्ध वसन्तदेवादिकैः प्राप्तः समवसरणे ॥ १७३ ॥

---

१. जंपियं रं० ।

कयपंचविहाभिगमो विरइयतिपयाहिणो पणयचलणो । सिरिसंतिसमोसरणे उवविट्ठो उचियठाणम्मि ।।१७४।।

भयवं पि सजलजलहरगंभीरसरेण देसणं कुणइ । तो अवसरम्मि राया पुच्छइ पणमित्तु जिणनाहं ।।१७५।।

भयवं ! किं अम्हाणं पंचण्ह वि एरिसा महापीई ? । तो भयवया वि कहिओ पुव्वभवो ताण सव्वो वि ।।१७६।।

जह तुब्भे पुव्वभवे परोप्परं नेहनिब्भरा आसि । सुधणधणवइ-धणीसर-धणया तह दोणकम्मयरो ।।१७७।।

मुणिदाणेणं दोणो नरिंद ! पुहईसरो तुमं जाओ । तद्दाणेणं भोया एयाण वि एरिसा जाया ।।१७८।।

इच्चाइ निसुणिऊणं अवलोएऊण जाइसरणेण । पुव्वभवं सव्वे वि हु वेरग्गगया गया सगिहं ।।१७९।।

नियरायलच्छिभारे कुमारमभिसिंचिऊण नरनाहो । इयरे वि नियसुएसुं कुडुंबभारं समप्पेउं ।।१८०।।

सकलत्ता निक्खंता तिन्नि वि सिरिसंतिनाहपासम्मि । समहिज्जियसुत्त-ऽत्था काउं घोरं तवच्चरणं ।।१८१।।

निहयघणाघाइकम्मा उप्पाडेऊण केवलं नाणं । पडिबोहिऊण भविए संपत्ता सासयं ठाणं ।।१८२।।

।। द्रोणाद्याख्यानकं समाप्तम् ।। ७ ।।

इदानीं शालिभद्राख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

सालीणजणसमिद्धे सालिग्गामम्मि आसि कुलपुत्तो । आबालकालदालिद्ददुक्खिओ कुणइ ओलग्गं ।।१।।

धन्ना य तस्स भज्जा तेसिं संगमयनामओ पुत्तो । अह अन्नया य तीए भत्ता भवियव्वयाए मओ ।।२।।

सा परगिहेसु कम्मं काऊणं कुणइ निययनित्थारं । संगमओ पुण चारइ सग्गामे वच्छरूवाइं ।।३।।

कृतपञ्चविधाभिगमो विरचितत्रिप्रदक्षिणः प्रणतचरणः । श्रीशान्तिसमवसरण उपविष्ट उचितस्थाने ।। १७४ ।।

भगवानपि सजलजलधरगम्भीरस्वरेण देशनां करोति । तदावसरे राजा पृच्छति प्रणम्य जिननाथम् ।। १७५ ।।

भगवन् । किमस्माकं पञ्चानामपीदृशी महाप्रीतिः ? । ततो भगवताऽपि कथितः पूर्वभवस्तेषां सर्वोऽपि ।। १७६ ।।

यथा यूयं पूर्वभवे परस्परं स्नेहनिर्भरा आसन् । सुधन-धनपति-धनेश्वर-धनदास्तथा द्रोणकर्मकरः ।। १७७ ।।

मुनिदानेन द्रोणो नरेन्द्र ! पृथिवीश्वरस्त्वं जातः । तद्दानेन भोगा एतेषामपीदृशा जाताः ।। १७८ ।।

इत्यादि निश्रुत्याऽवलोक्य जातिस्मरणेन । पूर्वभवं सर्वेऽपि खलु वैराग्यगता गताः स्वगृहम् ।। १७९ ।।

निजराजलक्ष्मीभारे कुमारमभिषिञ्च्य नरनाथः । इतरेऽपि निजसुतेषु कुटुम्बभारं समर्प्य ।। १८० ।।

सकलत्रा निष्क्रान्तास्त्रयोरपि श्रीशान्तिनाथपार्श्वे । समधीत्यसूत्राऽर्थाः कृत्वा घोरं तपश्चरणम् ।। १८१ ।।

निहतघनघातिकर्माण उत्पाद्य केवलं ज्ञानम् । प्रतिबोध्य भविकान् संप्राप्ताः शाश्वतं स्थानम् ।। १८२ ।।

।। द्रोणाद्याख्यानकं समाप्तम् ।। ७ ।।

इदानीं शालिभद्राख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम् -

शालिनजनसमृद्धे शालिग्राम आसीत्कुलपुत्रः । आबालकालदारिद्रदुःखितः करोत्यवलग्नम् ।। १ ।।

धन्या च तस्य भार्या तयोः संगमकनामकः पुत्रः । अथान्यदा च तस्या भर्ता भवितव्यतया मृतः ।। २ ।।

सा परगृहेषु कर्म कृत्वा करोति निजकनिस्तारम् । संगमकः पुनश्चारयति स्वग्रामे वत्सरूपाणि ।। ३ ।।

सो अन्नया वणम्मी दट्ठुं उस्सग्गसंठियं साहुं । भत्तीए पणमिऊणं खणमेक्कं पज्जुवासेइ ॥४॥
पइदिणपणामपडिहयपावप्पसरस्स तस्स गच्छंति । दिवसाणि मुणीसरचरणकमलसेवाभिरत्तस्स ॥५॥
परमूसवम्मि कम्मि वि विहिया अह तत्थ पइगिहं खीरी । दट्ठूण तयं सो भणइ अंब ! मह देसु परमन्नं ॥६॥
उप्पन्नमन्नुभारा सुयराहाडिं सुणित्तु सा रुयइ । दट्ठूण तयं आसन्नभवणमहिलाओ मिलियाओ ॥७॥
संपुच्छिया य ताहिं भद्दे ! किं रुयसि ? तीए तो कहियं । अमुणियनियभवणधणो मह पुत्तो मग्गए खीरिं ॥८॥
तं निसुणिऊण संजायगरुयकरुणारसाहिं रमणीहिं । दुद्ध-घय-सालि-सक्करउवगरणं तीए उवणीयं ॥९॥
तो तीए कया खीरी थालं भरियं च निययपुत्तस्स । घय-सक्करासमेयं जा एसो भुंजिउं लग्गो ॥१०॥
ता पउरपुव्वपुन्नेण मुणिवरो मासखवणपारणए । धरणियलनिहियनयणो गिहंगणे तस्स अल्लीणो ॥११॥
दट्ठूण तयं उब्भूयभत्तिरोमंचअंचियसरीरो । उट्ठित्तु तं नमंसइ महिमंडलललुलियभालयलो ॥१२॥
उप्पाडिऊण थालं उच्छलियाखंडपरमपरिणामो । वियरइ परमन्नमसेसयं पि साहुस्स परितुट्ठो ॥१३॥
दव्वाइविसुद्धिं भाविऊण धम्मन्तरायभयमीरू । घेत्तूण मुणिवरिंदो तओ गओ गामउज्जाणे ॥१४॥
उत्तमपत्तविसेसियतिकालवुट्ठीविसिट्ठदाणेण । बंधइ सुकुलुप्पत्तीपुन्नं सुहभोगकम्मं च ॥१५॥
आकंठं तो पच्छा खीरी घेत्तूण भुंजिओ एसो । रयणी विसूइयाए सुहपरिणामेण कालगओ ॥१६॥
रायगिहे उववन्नो महिब्भगोभद्दसेट्ठिभज्जाए । भद्दाए कुक्खिकुहरम्मि सूइओ सालिसुमिणेण ॥१७॥

सोऽन्यदा वने दृष्ट्वोत्सर्गसंस्थितं साधुम् । भक्त्या प्रणम्य क्षणमेकं पर्युपासते ॥ ४ ॥
प्रतिदिनप्रणामप्रतिहतपापप्रसरस्य तस्य गच्छन्ति । दिवसानि मुनीश्वरचरणकमलसेवाभिरतस्य ॥ ५ ॥
परमोत्सवे कस्मिन्नपि विहिताऽथ तत्र प्रतिगृहं क्षीरी । दृष्ट्वा तकं स भणत्यम्ब ! मम देहि परमान्नम् ॥ ६ ॥
उत्पन्नमन्युभारा सुतारार्टी श्रुत्वा सा रोदिति । दृष्ट्वा तकांमासन्नभवनमहिला मिलिताः ॥ ७ ॥
सम्पृष्टा च ताभि र्भद्रे ! किं रोदिसि ? तया ततः कथितम् । अमुणितनिजभवनधनो मम पुत्रो मार्गयति क्षीरम् ॥८ ॥
तन्निश्रुत्य सञ्जातगुरुककरुणारसाभीरमणिभिः । दुग्ध-घृत-शालि-शर्करोपकरणं तस्या उपनीतम् ॥ ९ ॥
ततस्तया कृता क्षीरी स्थालं भृतं च निजपुत्रस्य । घृत-शर्करासमेतं यावदेष भोक्तुं लग्नः ॥ १० ॥
तदा प्रचूरपूर्वपुण्येन मुनिवरो मासक्षपणपारणके । धरणितलनिहितनयनो गृहाङ्गणं तस्यालीनः ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा तकमुद्भुतभक्तिरोमाञ्चाञ्चितशरीरः । उत्थाय तं नमति महिमण्डललुलितभालतलः ॥ १२ ॥
उत्पाद्य स्थालमुच्छलिताखण्डपरमपरिणामः । वितरति परमान्नमशेषकमपि साधोः परितुष्टः ॥ १३ ॥
द्रव्यादिविशुद्धिं भावयित्वा धर्मान्तरायभयभीरुः । गृहीत्वा मुनिवरेन्द्रस्ततो गतो ग्रामोद्याने ॥ १४ ॥
उत्तमपात्रविशेषितत्रिकालवृष्टिविशिष्टदानेन । बध्नाति सुकुलोत्पत्तिपुण्यं शुभभोगकर्म च ॥ १५ ॥
आकण्ठं ततः पश्चात्क्षीरी गृहीत्वा भुङ्क्त एषः । रजन्यां विसूचिकया शुभपरिणामेन कालगतः ॥ १६ ॥
राजगृह उत्पन्नो महेभ्यगोभद्रश्रेष्ठिभार्यायाः । भद्रायाः कुक्षिकुहरे सूचितः शालिस्वप्नेन ॥ १७ ॥

तीए पवड्ढइ गब्भो अत्थोवज्जणनिमित्तमिब्भो वि । संचलिओ परतीरे भिन्नं जंतस्स बोहित्थं ॥१८॥

मणि-कणग-रयणरासिं मज्जंतं पेच्छिऊण जलहिम्मि । बहुविहविसायजुत्तो संपत्तो सो वि पंचत्तं ॥१९॥

एत्तो य सुओ जाओ भद्दाए तस्स सुविणए साली । जं दिट्ठो तं विहियं नामं से सालिभद्दो त्ति ॥२०॥

एत्थंतरम्मि सोऊण नियदइयस्स उवरमं भद्दा । संजायगरुयसोया अक्कंदइ करुणसद्देण ॥२१॥

हा हा पिययम ! एत्तियधणेण तुह आसि किं न पज्जतं ? । जं दविणज्जणकज्जे गंतूणं निहणिओ अप्पा ॥२२॥

हा हा हयास ! निक्करुण ! देव्व ! विहियं किमेरिसं तुमए ? । दाऊण मज्झ पुत्तं जमेवमुद्दालिओ दइओ ॥२३॥

हा हा गुणरयणायर ! हा हा हा दीणजणसमुद्धरण ! । हा हिययदइय ! पिययम ! पुणो वि तं कत्थ दीसिहसि ? ॥२४॥

इय एवं विलवंती भद्दा नियसयणमित्तलोएण । कहकहमवि संठविया जाया कालेण अवसोया ॥२५॥

जाओ य सालिभद्दो कमेण जोग्गो कलाकलावस्स । उवझायस्सुवणीओ धणियं जाओ कलाकुसलो ॥२६॥

पत्तो य हरिणनयणीमणहरणं जोव्वणं कमेण इमो । सोहग्ग-रूय-लायन्नसंजुओ सव्वजणइट्ठो ॥२७॥

असरिसदक्खिन्ननिही करुणारससायरो महुरवाणी । परउवयारेक्करओ किं बहुणा ? सयलगुणकलिओ ॥२८॥

घणकसिणकुडिलकोमलकेसकलावाओ हरिणनयणीओ । नवपउमरायरत्ताहराओ छणचंदवयणाओ ॥२९॥

मणहरसिणिद्धपीवरपओहराओ तरंगतिवलीओ । गंभीरनाहिकूवाओ गिरिसिलापिहुनियंबाओ ॥३०॥

कंकेल्लिकिसलयारुणपाणीओ करेणुकरसमोरूओ । नवकमलकोमलारुणचरणाओ करेणुगमणाओ ॥३१॥

तस्याः प्रवर्धते गर्भोऽर्थोपार्जननिमित्तमिभ्योऽपि । सञ्चलितः परतीरे भिन्नं यातो बोहित्थम् ॥ १८ ॥

मणि-कनक-रत्नराशिं मज्जन्तं दृष्ट्वा जलधौ । बहुविधविषादयुक्तः सम्प्राप्तःसोऽपि पञ्चत्वम् ॥ १९ ॥

इतश्च सुतो जातो भद्रायास्तस्य स्वप्ने शालिः । यद्दृष्टस्तद्विहितं नामे तस्य शालिभद्र इति ॥ २० ॥

अत्रान्तरे श्रुत्वा निजकदयितस्योपरमं भद्रा । सञ्जातगुरुकशोकाऽऽक्रन्दति करुणशब्देन ॥ २१ ॥

हा हा प्रियतम ! एतावद्धनेन तवासीत्किं न पर्याप्तम् ? । यद्द्रविणार्जनकार्ये गत्वा निहत आत्मा ॥ २२ ॥

हा हा हताश ! निष्करुण ! दैव ! विहितं किमीदृशं त्वया ? । दत्वा मम पुत्रं यमेवाच्छिन्नो दयितः ॥ २३ ॥

हा हा गुणरत्नाकर ! हा हा हा दीनजनसमुद्धरण ! । हा हृदयदयित ! प्रियतम ! पुनरपि त्वं कुत्र द्रक्ष्यसे ? ॥२४॥

इत्येवं विलपन्ती भद्रा निजस्वजनमित्रलोकेन । कथंकथमपि संस्थापिता जाता कालेनापशोका ॥ २५ ॥

जातश्च शालिभद्रः क्रमेण योग्यः कलाकलापस्य । उपाध्यायस्योपनीतो गाढं जातः कलाकुशलः ॥ २६ ॥

प्राप्तश्च हरिणनयनीमनोहरणं यौवनं क्रमेणायम् । सौभाग्य-रूप-लावण्यसंयुक्तः सर्वजनेष्टः ॥ २७ ॥

असदृशदाक्षिण्यनिधिः करुणरससागरो मधुरवाक् । परोपकारेकरतः किं बहुना ? सकलगुणकलितः ॥ २८ ॥

घनकृष्णकुटिलकोमलकेशकलापा हरिणनयनाः । नवपद्मरागरक्ताधराः क्षणचन्द्रवदनाः ॥ २९ ॥

मनोहरस्निग्धपीवरपयोधरास्तरङ्गवत्रिलिकाः । गम्भीरनाभिकूपाः गिरिशिलापृथुनितम्बाः ॥ ३० ॥

कङ्केलिकिसलयारुणपाणयः करेणुकरसमोरुकाः । नवकमलकोमलारुणचरणाः करेणुगमनाः ॥ ३१ ॥

आरूढपढमजोव्वणकंतिकडक्खियसुरिंदघरिणीओ । उत्तमकुलुब्भवाओ वत्तीसं इब्भकन्नाओ ॥३२॥

एगदिवसम्मि तेणं परिणीयाओ महाविभूईए । नच्चिरवारविलासिणिजयजयरवमणहरसरेण ॥३३॥

गोभद्दो वि हु जाओ तइया मरिउं सुरो भवणवासी । अवहिं पउंजमाणो सकलत्तं नियइ नियपुत्तं ॥३४॥

मुणिदाणसमयसज्जियपुन्नेणाऽऽगरिसिओ समागंतुं । विरएइ सत्तभूमियपासायं सालिभद्दस्स ॥३५॥

सुरवरविमाणरुइरं विचित्तमणिमत्तवारणाइन्नं । अवरं च तस्स परिसरधराए सव्वत्तुवणसंडं ॥३६॥

सिसिरजलजंतवाहयपुत्तलियाविलसिरं पवरवाविं । जलअंदोलयकीलानिमित्तमेयस्स विरएइ ॥३७॥

नवणीयमसिणबत्तीसतूलियाकलियपवरपल्लंकं । सयणनिमित्तं उवणेइ सुरवरो सालिभद्दस्स ॥३८॥

केऊर-हार-कंकण-रसणा-मंजीरपभिइआभरणं । वत्थंगराग-तंबोल-पुप्फपमुहं च भोगंगं ॥३९॥

पइवासरं पि अमरो देइ सभज्जस्स सालिभद्दस्स । सो वि हु तब्भोगसुही गयं पि कालं न याणेइ ॥४०॥

सव्वं गिहवावारं चिंतइ भद्दा अहऽन्नया वणिया । घेत्तुं कंबलरयणाणि आगया लक्खमोल्लाणि ॥४१॥

जाव न[१] इ को वि गिण्हइ ताणि महग्घत्तणेण नयरजणो । ता अत्थाणे गंतुं सेणियरायस्स दरिसंति ॥४२॥

मोल्लं पुच्छइ राया ते वि पयंपंति लक्खमोल्लाणि । आह निवो न हु कज्जं एएहिं महग्घमोल्लेहिं ॥४३॥

संजायबहुविसाया नीहरिया ते नरिंदभवणाओ । रिद्धिं सुणित्तु पत्ता पासाए सालिभद्दस्स ॥४४॥

आरुढप्रथमयौवनकान्तिकटाक्षितसुरेन्द्रगृहिण्यः । उत्तमकुलोद्भवा द्वात्रिंशदिभ्यकन्याः ॥ ३२ ॥

एकदिवसे तेन परिणिता महाविभूत्या । नृत्यद्वारविलासिनिजयजयरवमनोहरस्वरेण ॥ ३३ ॥

गोभद्रोऽपि खलु जातस्तदा मृत्वा सुरो भवनवासी । अवधिं प्रयुञ्ज्यमानः सकलत्रं पश्यति निजपुत्रम् ॥ ३४ ॥

मुनिदानसमयसर्जितपुण्येनाऽऽकृष्टं समागत्य । विरचयति सप्तभूमिप्रासादं शालिभद्रस्य ॥ ३५ ॥

सुरवरविमानरुचिरं विचित्रमणिमत्तवारणाकीर्णम् । अपरं च तस्य परिसरधरायां सर्वर्तुवनखण्डम् ॥ ३६ ॥

शिशिरजलयन्त्रवाहकपुत्तलिकाविलसितां प्रवरवापिम् । जलान्दोलनक्रीडानिमित्तमेतस्य विरचयति ॥ ३७ ॥

नवनीतमसृणद्वात्रिंशत्तुलिकाकलितप्रवरपल्यङ्कम् । शयननिमित्तमुपनयति सुरवरः शालिभद्रस्य ॥ ३८ ॥

केयूर-हार-कङ्कण-रसना-मञ्जिरप्रभृत्याभरणम् । वस्त्राङ्गराग-ताम्बूल-पुष्पप्रमुखं च भोगाङ्गम् ॥ ३९ ॥

प्रतिवासरमप्यमरो ददाति सभार्यस्य शालिभद्रस्य । सोऽपि खलु तद्भोगसुखी गतमपि कालं न जानाति ॥ ४० ॥

सर्वं गृहव्यापारं चिन्तयति भद्राऽथान्यदा वणिजः । गृहीत्वा कम्बलरत्नानि आगता लक्षमूल्यानि ॥ ४१ ॥

यावन्न कोऽपि गृह्णाति तानि महार्घ्यत्वेन नगरजनः । तावदास्थाने गत्वा श्रेणिकराजस्य दर्शयन्ति ॥ ४२ ॥

मूल्यं पृच्छति राजा तेऽपि प्रजल्पन्ति लक्षमूल्यानि । आह नृपो न खलु कार्यमेतैर्महार्घ्यमूल्यैः ॥ ४३ ॥

सञ्जातबहुविषादा निसृतास्ते नरेन्द्रभवनात् । ऋद्धिं श्रुत्वा प्राप्ताः प्रासादे शालिभद्रस्य ॥ ४४ ॥

---

१. न उ कोइ गिण्हइ रं० ।

भद्दाए तओ अवलोइऊण गहियाणि कहियमोल्लेण । वणिणो वि हिट्ठहियया सव्वे वि गया नियावासे ॥४५॥

कम्बलरयणसरूवं मुणिउं विन्नवइ चेल्लणा निवइं । पिययम ! किं मज्झ कए न तए एक्कं पि संगहियं ? ॥४६॥

एरिसरिद्धिजुयस्स वि चिट्ठा किं एरिसी तुह नरिंद ! । अहवा न तुज्झ भावइ मह दिन्नं उत्तमं वत्थुं ॥४७॥

अवरं च तुज्झ किर्त्ति सुणिऊण इहं समागया वणिणो । एवं नु ताण पुरओ देसेसु वि लहुइओ अप्पा ॥४८॥

जइ तुह न अत्थि दविणं ता गिण्हसु मज्झ रयणमालाए । कंबलरयणं ताण वि पुज्जउ आसा वरायाण ॥४९॥

जाहेवमुवालद्धो राया दइयाए तयणु वाणियए मग्गइ तो ते वि कहंति देव ! भद्दाए गहियाणि ॥५०॥

तं निसुणिऊण देवी सुट्ठुयरं कोवमुवगया भणइ । वाणिगिणीए समं पि य न अत्थि सत्तं तुह नरिंद ! ? ॥५१॥

तो भूवइणा भद्दा भणाविया देहि मज्झ मोल्लेण । संपइ संगहियाणं कंबलरयणाणमेगं ति ॥५२॥

तीए पडिभणियमेयं नरिंद ! नियपुत्तसालिभद्दस्स । बत्तीसभारियाणं विहिया पयलूहणा तेहिं ॥५३॥

गिण्हउ चिरंतणाइं देवोऽणुग्गहउ मं विणा मोल्लं । निसुणित्तु निवो पुच्छइ अभयं को सालिभद्दवणी ? ॥५४॥

तेणावि अमरनिम्मियपासायप्पभिइ सव्वमक्खायं । तो विम्हिओ नरिंदो तच्चरिएणं विचिंतेइ ॥५५॥

अहमेव इह कयत्थो जस्स पुरे संति एरिसा वणिणो । इय चिंतिऊण संजायकोउहल्लेण नरवइणा ॥५६॥

भद्दाए समाइसियं संपेससु सालिभद्दनियपुत्तं । रायभवणम्मि जेणं हरिसेण अहं पलोएमि ॥५७॥

पडिभणियं भद्दाए मज्झ सुओ सिरिसकुसुमसुकुमालो । ससि-सूरे वि न पेच्छइ निग्गच्छइ न हु गिहाओ बहिं ॥५८॥

भद्रया ततोऽवलोक्य गृहीतानि कथितमूल्येन । वणिजोऽपि हृष्टहृदया सर्वेऽपि गता निजावासे ॥ ४५ ॥

कम्बलरत्नस्वरुपं मुणित्वा विज्ञापयति चेल्लणा नृपतीम् । प्रियतम ! किं मम कृते न त्वयैकमपि सङ्गृहीतम् ? ॥४६॥

ईदृगृद्धियुक्तस्यापि चेष्टा किमीदृशी तव नरेन्द्र ! । अथवा न तव रोचते मम दत्तमुत्तमं वस्तु ॥ ४७ ॥

अपरं च तव कीर्तिं श्रुत्वेह समागता वणिजः । एवं नु तेषां पुरत देशेष्वपि लघ्वीकृत आत्मा ॥ ४८ ॥

यदि तव नास्ति द्रविणं ता गृहाण मम रत्नमालायाः । कम्बलरत्नं तेषामपि पूर्यतु आशा वराकाणाम् ॥ ४९ ॥

यदेवमुपालब्धो राजा दयितया तदनु वणिजः । मार्गन्ते तदा तेऽपि कथयन्ति देव ! भद्रया गृहीतानि ॥ ५० ॥

तन्निश्रुत्य देवी सुष्ठुतरं कोपमुपागता भणति । वणिज्या सममपि च नास्ति सत्त्वं तव नरेन्द्र ! ? ॥ ५१ ॥

तदा भूपतिना भद्रा भाणिता देहि मम मूल्येन । सम्प्रति सङ्गृहीतानां कम्बलरत्नानामेकमिति ॥ ५२ ॥

तया प्रतिभणितमेतन्नरेन्द्र ! निजपुत्रशालिभद्रस्य । द्वात्रिंशद्भार्याणां विहिता पादप्रोच्छनकास्तैः ॥ ५३ ॥

गृह्णातु चिरन्तनानि देव ! अनुगृह्णातु मां विना मूल्यम् । निश्रुत्य नृपः पृच्छत्यभयं कः शालिभद्रवणिक् ? ॥५४॥

तेनामरनिर्मितप्रासादप्रभृति सर्वमाख्यातम् । ततो विस्मितो नरेन्द्रस्तच्चरितेन विचिन्तयति ॥ ५५ ॥

अहमेवेह कृतार्थो यस्य पुरे सन्त्येदृशा वणिजः । इति चिन्तयित्वा सञ्जातकौतूहलेन नरपतिना ॥ ५६ ॥

भद्रायाः समादेशितं संप्रेषय शालिभद्रनिजपुत्रम् । राजभवने येन हर्षेणाहं प्रलोकयामि ॥ ५७ ॥

प्रतिभणितं भद्रया मम सुतः शिरिषकुसुमसुकुमालः । शशि-सूर्यावपि न पश्यति निर्गच्छति न खलु गृहाद् बहिः ॥५८॥

ता कहि तुम्ह सयासे मज्झ सुओ सामि ! कुणउ आगमणं ? । इय नाउं नरनाहो मा अपसायं कुणउ अम्ह ॥५९॥
तो भूवइणा भणियं तत्थेव अहं समागमिस्सामि । तुह सालिभद्ददंसमसमुस्सुओ आह तो भद्दा ॥६०॥
एसो महापसाओ जमिहाऽऽगमणे समुस्सुओ सामी । किंतु विलंवउ कइय वि दिवसे जं होमि पउणा हं ॥६१॥
अणुमन्निआ नरिंदेण रायभवणाओ जाव नियभवणं । सम्मज्जिऊण पडमंडवेहिं संछाइओ मग्गो ॥६२॥
कत्थइ डज्झंतागरुघडिमुहउग्गिन्नधूमपडलेहिं । अंधारियं नहयलं जलहरसोहं समुव्वहइ ॥६३॥
कत्थइ तलियातोरणमालानवतरणिकिरिणसंवलिया । रेहइ पलयसमुग्गयदिणयरसेणि व्व दुप्पेच्छा ॥६४॥
कत्थइ मोत्तियहारावलीण किरिणावलिं पलोयंता । ससिजोन्हपाणलोला हिंडंति य चउरनिउरुंबा ॥६५॥
गिहमवि भद्दाए कयं कमणीयं दारतोरणतिएण । आबद्धरयणमालाकिरिणावलिरंजियदियंतं ॥६६॥
जाणाविओ नरिंदो सेयगयमहागइंदमारूढो । संचलिओ बहुकुंकुमकद्दमिलपहं पलोयंतो ॥६७॥
ठाणट्ठाणविलासिणीविरइयवरपेच्छणाणि पेच्छंतो । भद्दाभवणे गंतुं उवविट्ठो चंदणचउक्के ॥६८॥
हरिसियहियया भद्दा मुत्ताहल-वत्थ-रयणरासीओ । उवणेइ रायपुरओ गिन्हइ न हु किं पि नरनाहो ॥६९॥
जंपइ पुत्तं दंससु पभणइ गंतूण सालिभद्दं सा । उत्तरसु पुत्त ! भवणाओ आगओ सेणिओ जम्हा ॥७०॥
सो भणइ कयाणाणं मोल्लं न मुणेमि गिण्हसु सयं पि । जाय ! कयाणयमेयं न होइ भद्दा पयंपेइ ॥७१॥
किंतु इमो तुह सामी मज्झ विइह देसमाणवाणं पि । मज्झ वि अन्नो सामि त्ति सालिभद्दो सुणित्तु इमं ॥७२॥

ततः कथं तव सकाशे मम सुतः स्वामिन् ! करोत्वागमनम् ? । इति ज्ञात्वा नरनाथो माऽप्रसादं करोत्वस्माकम् ॥५९॥
ततो भूपतिना भणितं तत्रैवाहं समागमिष्यामि । तव शालिभद्रदर्शनसमुत्सुक आह ततो भद्रा ॥ ६० ॥
एष महाप्रासादो यदिहाऽऽगमने समुत्सुकः स्वामी । किन्तु विलम्बतु कतिपयानपि दिवसान् यद्भवामि प्रगुणाहम् ॥६१॥
अनुमता नरेन्द्रेण राजभवनाद्यावन्निजभवनम् । सम्मार्ज्य पटमण्डपैः सञ्छादितो मार्गः ॥ ६२ ॥
कुत्रचिद् दह्यमानागुरुघटिमुखोद्गीर्णधूम्रपटलैः । अन्धकारितं नभस्तलं जलधरशोभं समुद्वहति ॥ ६३ ॥
कुत्रचित्तलिकातोरणमालानवतरणिकिरणसम्बलिता । राजते प्रलयसमुद्गतदिनकरश्रेणिरिव दुष्प्रेक्ष्या ॥ ६४ ॥
कुत्रचिन्मौक्तिकहारावलीनां किरणावलिं प्रलोकयन्तः । शशिज्योत्सनापानलोला हिण्डन्ति च चतुरनिकुरम्बाः ॥ ६५ ॥
गृहमपि भद्रया कृतं कमनीयं द्वारतोरणत्रिकेन । आबद्धरत्नमालाकिरणावलिरञ्जितदिगन्तम् ॥ ६६ ॥
ज्ञापितो नरेन्द्रः सेचनकमहागजेन्द्रमारुढः । सञ्चलितो बहुकुङ्कुमकर्दमिलपथं प्रलोकयन् ॥ ६७ ॥
स्थानस्थानविलासिनिविरचितवरप्रेक्षणानि पश्यन् । भद्राभवने गत्वोपविष्टश्चन्दनचतुष्के ॥ ६८ ॥
हर्षितहृदया भद्रा मुक्ताफल-वस्त्र-रत्नराशयः । उपनयति राजपुरतो गृह्णाति न खलु किमपि नरनाथः ॥ ६९ ॥
जल्पति पुत्रं दर्शय प्रभणति गत्वा शालिभद्रं सा । उत्तर पुत्र ! भवनादागतः श्रेणिको यस्मात् ॥ ७० ॥
स भणति क्रयाणानां मूल्यं न मुणोमि गृहाण स्वयमपि । जात ! क्रयाणकमेतन्न भवति भद्रा प्रजल्पति ॥ ७१ ॥
किन्त्वयं तव स्वामी ममापीह देशमानवानामपि । ममाप्यन्यः स्वामीति शालिभद्रः श्रुत्वेदम् ॥ ७२ ॥

चिंतेइ गुरुविसाओ पेच्छ अहो ? अकयपुन्नपब्भारा । पुरिसा परस्स सेवाविडंबणं कमवि पाविंति ।।७३।।

भणियं च-

न करिंति जे तवं संजमं च ते तुल्लपाणि-पायाणं । पुरिसा समपुरिसाणं अवस्सपेसत्तणमुविंति ।।७४।।

ते चेव जए जीवंतु मुणिवरा बालकालगहियवया । मोत्तुं जे देव-गुरुं परस्स पाए न पणमंति ।।७५।।

जइ पुव्वं पि हु दुच्चरतव-चरणकयुज्जमो अहं हुंतो । ता इण्हिं निवपणमणविडंबणं नेय पाविंतो ।।७६।।

विसयमहाविसमोहियमणाण मणुयाण निव्विवेयाणं । जिणनाहभणियधम्मो मणयं पि मणं न विप्फुरइ ।।७७।।

एवं विचिंतऊणं कलिउं वेरग्गकारणं तं पि । अभिमाणधणो धम्मेक्कमाणसो उट्ठिओ सहसा ।।७८।।

पसरंतदिसिविसप्पिरपरिमलपरिभमिरभमरनिउरुंबो । सकलत्तो उत्तरिओ करेणुकलिओ करिंदो व्व ।।७९।।

रायचरणारविंदे पणओ आलिंगिऊण नरवइणा । उच्छंगे विणिवेसिय सच्चविओ तेण सव्वंगं ।।८०।।

चिंतेइ नो असज्झं सुचरियकम्माण किं पि भुवणयले । जं अमरसिरिं विलसइ पेच्छ इमो मणुयमेत्तो वि ।।८१।।

संभासिओ निवेणं न पयंपइ होइ सामुहच्छाओ । अंसुजलोल्लियनयणो भद्दाए तओ निवो भणिओ ।।८२।।

अणुवासरं पि अमरोवणीयभोएहिं लालिओ एसो । नरपरिमलं न सक्कइ सहिउं ता मुयसु नरनाह ! ।।८३।।

तो मुक्को नरवइणा भणिऊणं गच्छ वच्छ ! नियठाणं । आरूढो सो भवणे गंतुमणो नरवरिंदो वि ।।८४।।

विन्नत्तो भद्दाए सपणामं बद्धपाणिपउमाए । देव ! पडिच्छह सागयकिच्चं काउं गुरुपसायं ।।८५।।

चिन्तयति गुरुविषाद: पश्याहो ! अकृतपुण्यप्राग्भारा: । पुरुषा: परस्य सेवाविडम्बनं कमपि प्राप्नुवन्ति ॥ ७३ ॥

भणितञ्च -

न कुर्वन्ति ये तप: संयमं च ते तुल्यपाणि-पादानाम् । पुरुषा: समपुरुषाणामवश्यं प्रेष्यत्त्वमुपयन्ति ॥ ७४ ॥

ते चैव जगति जीवन्तु मुनिवरा बालकालगृहीतव्रता: । मुक्त्वा ये देव-गुरू परस्य पादे न प्रणमन्ति ॥ ७५ ॥

यदि पूर्वमपि खलु दुश्चरतपश्चरणकृतोद्यमोऽहमभवम् । तदेदानीं नृपप्रणमनविडम्बनं नैव प्राप्नवम् ॥ ७६ ॥

विषयमहाविषमोहितमनसां मनुष्याणां निर्विवेकानाम् । जिननाथभणितधर्मो मनागपि मनसि न विस्फुरति ॥ ७७ ॥

एवं विचिन्त्य कलयित्वा वैराग्यकारणं तदपि । अभिमानधनो धर्मैकमानस उत्थित: सहसा ॥ ७८ ॥

प्रसरद्दिग्विसर्पत्परिमलपरिभ्रमद्भ्रमरनिकुरम्ब: । सकलत्र उत्तीर्ण: करेणुकलित: करीन्द्र इव ॥ ७९ ॥

राजचरणाविन्दे प्रणत आलिङ्ग्य नरपतिना । उत्सङ्गे विनिवेश्य दृष्टस्तेन सर्वाङ्गम् ॥ ८० ॥

चिन्तयति नासाध्यं सुचरितकर्माणां किमपि भुवनतले । यदमरश्रियं विलसति पश्यायं मनुष्यमात्रोऽपि ॥ ८१ ॥

सम्भाषितो नृपेण न प्रजल्पति भवति श्याममुखच्छाय: । अश्रुजलार्द्रितनयनो भद्रया ततो नृपो भणित: ॥ ८२ ॥

अनुवासरमप्यमरोपनीतभोगै र्लालित एष: । नरपरिमलं न शक्नोति सोढुं ततो मुञ्च नरनाथ ! ॥ ८३ ॥

तदा मुक्तो नरपतिना भणित्वा गच्छ वत्स ! निजस्थानम् । आरुढ: स भवने गन्तुमना नरवरेन्द्रोऽपि ॥ ८४ ॥

विज्ञप्तो भद्रया सप्रणामं बद्धपाणिपद्मया । देव ! प्रतीच्छ स्वागतकृत्यं कृत्वा गुरुप्रसादम् ॥ ८५ ॥

उवरोहेणं राएण मन्निए तयणु वाररमणीहिं । अब्भंगण-उव्वट्टणपुव्वं वावीजले ण्हविओ ॥८६॥
वावीजलम्मि पडियं मुद्दारयणं नरिंदहत्थाओ । तो संभंतो राया जोयइ तरलेहिं नयणेहिं ॥८७॥
भद्दाए तओ भणियं किं नियह नरिंद ! एत्थ संभंता ? । कहियं तीए नरिंदेण मुद्दियारयणजलपडणं ॥८८॥
सिग्धं चिय भद्दाए जंतपओगेण तीए वावीए । दासिं भणित्तु सलिलं संकामियमन्नावावीए ॥८९॥
तो तीए तले पेच्छइ फुरंतकिरणं विहूसणसमूहं । इंगालं व पलोयइ तम्मज्झे मुद्दियारयणं ॥९०॥
चिंतइ (? पुच्छइ) य कोउहल्लेण [1]नरवई किं इमं ? ति तो भद्दा । विन्नवइ देव ! एयंनिम्मल्लं सालिभद्दस्स ॥९१॥
जम्हा अणुदिणममरो आभरणमिमस्स पणइणिजुयस्स । वियरइ तो निम्मल्लं खिप्पइ वावीए मज्झम्मि ॥९२॥
विम्हियहियओ घेत्तुं मुद्दारयणं मणुन्नसिंगारो । नंदणवणमवलोइय नियइ समग्गं पि पासायं ॥९३॥
तो देवालयपडिमं भत्तिभरुब्भूयभूरिरोमंचो । न्हवइ विलेवइ पूयइ पणमइ संथवइ नरनाहो ॥९४॥
भद्दाए तओ भणियो भोयणभवणे गओ पुहइवालो । भुत्तो य सपरिवारो कयसम्माणो गओ राया ॥९५॥
चिट्ठइ य सालिभद्दो जा विसयपरम्मुहो सुधम्ममई । ता धम्मघोससूरी समागओ नयरउज्जाणे ॥९६॥
तव्वंदणवडियाए विणिग्गओ रायपभिइपुरलोगो । आपुच्छिऊण जणणिं तत्थ गओ सालिभद्दो वि ॥९७॥
वंदित्तु समुवविट्ठाए रायपमुहाए सयलपरिसाए । भयवं पि महुरवाणीए देसणं काउमारद्धो ॥९८॥

उपरोधेन राज्ञा मन्यते तदनु वाररमणिभिः । अभ्यङ्गनोद्वर्तनपूर्वं वापीजले स्नापितः ॥ ८६ ॥
वापीजले पतितं मुद्रारत्नं नरेन्द्रहस्तात् । ततः सम्भ्रान्तो राजा पश्यति तरलाभ्यां नयनाभ्याम् ॥ ८७ ॥
भद्रया ततो भणितं किं पश्यथ नरेन्द्र ! अत्र सम्भ्रान्ताः ? । कथितं तस्या नरेन्द्रेण मुद्रिकारत्नजलपतनम् ॥ ८८ ॥
शीघ्रमेव भद्रया यन्त्रप्रयोगेन तस्या वाप्याः । दासीं भणित्वा सलिलं सङ्क्रामितमन्यवाप्याम् ॥ ८९ ॥
तदा तस्यास्तले पश्यति स्फुरत्किरणं विभूषणसमूहम् । इंगालमिव प्रलोकयति तन्मध्ये मुद्रिकारत्नम् ॥ ९० ॥
चिन्तयति (? पृच्छति) च कौतूहलेन नरपतिः किमिदमिति ? तदा भद्रा । विज्ञापयति देव ! एतन्निर्माल्यं शालिभद्रस्य ॥९१॥
यस्मादनुदिनममर आभरणमेतस्य प्रणयिनियुक्तस्य । वितरति ततो निर्माल्यं क्षिपति वाप्या मध्ये ॥ ९२ ॥
विस्मितहृदयो गृहीत्वा मुद्रारत्नं मनोज्ञशृङ्गारः । नन्दनवनमवलोकय पश्यति समग्रमपि प्रासादम् ॥ ९३ ॥
ततो देवालयप्रतिमां भक्तिभरोद्भुतभूरिरोमाञ्चः । स्नापयति विलेपति पूजयति संस्तौति नरनाथः ॥ ९४ ॥
भद्रया ततो भणितो भोजनभवने गतः पृथिवीपालः । भुक्तश्च सपरिवारः कृतसन्मानो गतो राजा ॥ ९५ ॥
तिष्ठति च शालिभद्रो यावद्विषयपराङ्मुखः सुधर्ममतिः । तावद्धर्मघोषसूरिः समागतो नगरोद्याने ॥ ९६ ॥
तद्वन्दनवर्त्तिकया विनिर्गतो राजप्रभृतिपुरलोकः । आपृच्छ्य जननीं तत्र गतः शालिभद्रोऽपि ॥ ९७ ॥
वन्दित्वा समुपविष्टायां राजप्रमुखायां सकलपर्षदि । भगवानपि मधुरवाण्यां देशनां कर्तुमारब्धः ॥ ९८ ॥

---

१. नरवरो किं रं० ।

जलहिजलगलियमुत्ताहलं व दुलहं लहित्तु मणुयत्तं । कायव्वा धम्ममई भवभयभीरूहिं भविएहिं ॥९९॥

इय निसुणिऊण संविग्गमाणसा देसणं मुणिंदस्स । पत्ता नियनियभवणे संविग्गो सालिभद्दो वि ॥१००॥

गंतूणं नियभवणे जणणिं नमिऊण भणइ अंब ! मए । निसुओ जिणिंदधम्मो सुट्ठु कयं वच्छ ! सा भणइ ॥१०१॥

अंब ! ममं अणुजाणह पव्वज्जामि त्ति निसुणिउं भद्दा । मुच्छानिमीलियच्छी धस त्ति धरणीयले पडिया ॥१०२॥

चंदणजलसित्तंगी ससलिलवीयणयवीइया संती । उवलद्धचेयणा सा रुयमाणी भणिउमाढत्ता ॥१०३॥

वच्छ ! तमेक्को पुत्तो अब्भहियो मज्झ जीवियस्सावि । मा गिण्ह ताव दिक्खं जाव अहं जाय ! जीवेमि ॥१०४॥

सो भणइ न अंब ! इमं नज्जइ को जियइ ? अहव को मरइ ? । जम्हा न बाल-तरूणा थविरा वि जमस्स छुट्टंति ॥१०५॥

सा जंपइ जाय ! इमं नवजोव्वणसुंदरं सुरूवं च । नियसरीरं पालसु ता विविहविलासकरणेण ॥१०६॥

सो आह अंत-वस-किमि-पुरीसपरिपूरियस्स अथिरस्स । तवचरणमिमस्स फलं अंब ! असारस्स देहस्स ॥१०७॥

माता- उव्वूढजोव्वणभरा अहिणवअणुरायरंजिया जाया । बत्तीसमिमाहिं समं उवभुंजसु जाय ! विसयसुहं ॥१०८॥

पुत्र- मुहमहुररसा परिणामदारुणा विसमविससमा विसया । ता अंब ! एरिसेसुं विसएसु बुहा न रज्जंति ॥१०९॥

माता- रयण-मणि-कणय-रुप्पय-मुत्ताहलपमुहपउरधणरिद्धिं । भोगोवभोग-बंदियणदाणकज्जेहिं विलसेसु ॥११०॥

पुत्र- राय-जल-जलण-तक्करं-वंतर-दायायसाहिया लच्छी । मणपरिणइ व्व अथिरा ता अंब ! इमीए को मोहो ॥१११॥

माता- जाय ! करवालधाराचंकमणसमं सुदुक्करं चरणं । भूसयण-लोय-भिक्खऽन्नपाण-बंभव्वयाईहिं ॥११२॥

जलधिजलगलितमुक्ताफलमिव दुर्लभं लब्ध्वा मनुष्यत्वम् । कर्तव्या धर्ममति र्भवभयभीरुभि र्भविकैः ॥ ९९ ॥

इति निश्रुत्य संविग्नमानसा देशनां मुनीन्द्रस्य । प्राप्ता निजनिजभवने संविग्नः शालिभद्रोऽपि ॥ १०० ॥

गत्वा निजभवने जननीं नत्वा भणत्यम्ब ! मया । निश्रुतो जिनेन्द्रधर्मः सुष्ठु कृतं वत्स ! सा भणति ॥ १०१ ॥

अम्ब ! मामनुजानीहि प्रव्रजामीति निश्रुत्य भद्रा । मूर्च्छानिमीलिताक्षी धसेति धरणितले पतिता ॥ १०२ ॥

चन्द्रनजलसिक्ताङ्गी ससलिलवीजनकवीजीता सती । उपलब्धचेतना सा रुदन्ती भणितुमारब्धा ॥ १०३ ॥

वत्स ! त्वमेकः पुत्रोऽभ्यधिको मम जीवितस्यापि । मा गृहाण तावद्दिक्षां यावदहं जात ! जीवामि ॥ १०४ ॥

स भणति नाम्ब ! इदं ज्ञायते को जीवति ? अथवा को म्रियते ? । यस्मान्न बाल-तरुणाः स्थविरा अपि यमान्मुञ्चन्ति ॥१०५॥

सा जल्पति जात ! इदं नवयौवनसुन्दरं सुरुपं च । निजकशरीरं पालय तावद्विविधविलासकरणेन ॥ १०६ ॥

स आह अन्तर्वसा-कृमि-पुरिषपरिपूरितस्यास्थिरस्य । तपश्चरणमेतस्य फलमम्ब ! असारस्य देहस्य ॥ १०७ ॥

माता-उद्वोढयौवनभरा अभिनवानुरागरञ्जिता जायाः । द्वात्रिंशदिमाभिः सममुपभुङ्क्ष्व जात ! विषयसुखम् ॥ १०८ ॥

पुत्र-मुखमधुररसाः परिणामदारुणा विषमविषसमा विषयाः । ततोऽम्ब ! इदृक्षु विषयेषु बुधा न रज्यन्ति ॥ १०९ ॥

माता-रत्न-मणि-कनक-रुप्यक-मुक्ताफलप्रमुखप्रचूरधनर्द्धिम् । भोगोपभोग-बन्दिजनदानकार्यै-र्विलस ॥ ११० ॥

पुत्र-राज-जल-ज्वलन-तस्कर-व्यन्तर-दायादस्वाधीना लक्ष्मीः । मनः परिणतिरिवास्थिरा ततोऽम्ब ! अनया को मोहः ? ॥१११॥

माता-जात ! करवालधाराचङ्क्रमणसमं सुदुष्करं चरणम् । भूशयन-लोच-भिक्षान्न-पान-ब्रह्मव्रतादिभिः ॥ ११२ ॥

पुत्र- विसयसुहपरवसाणं कायरपुरिसाण निव्विवेयाण । दुक्करमिह तव-चरणं न कयाइ वि धीरपुरिसाण ॥११३॥

माता- अमुणियदुहसब्भावो वच्छ ! तुमं केलिगब्भसुकुमालो । किह विसहिसि अइदुस्सहउवसग्ग-परीसहे घोरे ? ॥११४।

पुत्र- नरयम्मि अंब ! असिपत्त-जंत-करवत्तकप्पणाइदुहे । सहिउं इह उवसग्गा [1]केत्तियमित्तं किलिस्संति ॥११५॥

माता- जइ जाय ! तए एवं कायव्वं वासराणि ता कइवि । अप्पाणं परिकम्मसु पच्छा तं कुणसु तव-चरणं ॥११६॥

उवरोहेणं जणणीपयंपियं मन्निउं स पासायं । गंतूण पणइणीणं पडिबोहत्थं इमं भणइ ॥११७॥

निच्चं परभवचिंता नरेण नियमेण होइ कायव्वा । न हु विसयलालसेहिं हारेयव्वो मणुयजम्मो ॥११८॥

जम्हा न होइ तित्ती नराण विसएसु निव्विवेयाण । ता विसए परिचइउं पव्वज्जमहं करिस्सामि ॥११९॥

जा तुम्हाण ससल्ला का वि हु अहवा अवच्चसंजुत्ता । ता गिहिधम्मं कुव्वंतु सेसया दिक्खमिच्छाए ॥१२०॥

दइयाओ एवमणुसासिऊण भज्जाओ तह य भोगंगे । परिहरमाणो चिट्ठइ तव-चरणसमुस्सुओ मइमं ॥१२१॥

इयो य-

तत्थेव य परिणीया भइणी धन्नेण सालिभद्दस्स । अब्भंगंती कंतं साममुही मुयइ अंसूणि ॥१२२॥

संपुच्छिया य धन्नेण सुयणु ! किं सोयकारणं तुज्झ ! सा भणइ सालिभद्दो पव्वजं घेत्तुकामो त्ति ॥१२३॥

परिकम्मणं कुणंतो दिणे दिणे पणइणिं च तूलिं च । एक्केक्कं परिमेल्लइ बोल्लइ तयणंतरं धन्नो ॥१२४॥

पुत्र-विषयसुखपरवशानां कातरपुरुषाणां निर्विवेकानाम् । दुष्करमिह तपश्चरणं न कदाचिदपि धीरपुरुषाणाम् ॥ ११३ ॥

माता-अमुणितदुःखस्वभावो वत्स ! त्वं कदलीगर्भसुकुमालः । कथं विषहसे अतिदुस्सहोपसर्ग-परिषहान्घोरान् ? ॥ ११४॥

पुत्र-नरकेऽम्ब ! असिपत्र-यन्त्र-करपत्रकल्पानादिदुःखान् । सहित्वेहोपसर्गाःकेचिन्मात्रं क्लिष्यन्ति ॥ ११५ ॥

माता-यदि जात ! त्वयैवं कर्तव्यं वासराणि तावत्कानिचिदपि । आत्मानं परिकर्म पश्चात्त्वं कुरुत्र तपश्चरणम् ॥ ११६ ॥

उपरोधेन जननी प्रजल्पितं मत्वा स प्रासादम् । गत्वा प्रणयिनीनां प्रतिबोधनार्थमिदं भणति ॥ ११७ ॥

नित्यं परभवचिन्ता नरेण नियमेन भवति कर्तव्या । न खलु विषयलालसै र्हारितव्यो मनुष्यजन्म ॥ ११८ ॥

यस्मान्न भवति तृप्ति र्नराणां विषयेषुनिर्विवेकानाम् । ततो विषयान्परित्यज्य प्रव्रज्यामहं करिष्यामि ॥ ११९ ॥

या युष्माकं सशल्या काऽपि खल्वथवाऽपत्यसंयुक्ता । ता गृहिधर्मं कुर्वन्तु शेषका दिक्षामिच्छया ॥ १२० ॥

दयिता एवमनुशास्य भार्यास्तथा च भोगाङ्गान् । परिहरंस्तिष्ठति तपश्चरणसमुत्सुको मतिमान् ॥ १२१ ॥

इतश्च -

तत्रैव परिणीता भगिनी धन्येन शालिभद्रस्य । अभ्यङ्गन्ती कान्तं श्याममुखी मुञ्चत्यश्रूणि ॥ १२२ ॥

सम्पृष्टा च धन्येन सुतनु ! किं शोककारणं तव ? । सा भणति शालिभद्रः प्रव्रज्यां गृहीतुकाम इति ॥ १२३ ॥

परिकर्मकुर्वन् दिने दिने प्रणयिनिं च तूलिं च । एकैकं परिमुञ्चति वक्ति तदनन्तरं धन्यः ॥ १२४ ॥

---

१. कित्तयमेत्तं रा०

जो गिण्हइ जिणदिक्खं काउं परिकम्मणं स काउरिसो । सप्पुरिसो पुण सुंदरि ! तणं व रिद्धिं परिच्चयइ ॥१२५॥
जय धण-रिद्धी सुचया ता किं न तुमं पि चयसि ? सा भणइ । इय निसुणिऊण एसो अहिमाणी भणिउमाढत्तो ॥१२६॥
पेच्छंतो तुह वयण ठिओ म्हि इण्हिं तु पेच्छ जं होइ । अह सा जंपइ पिययम ! एयं मह खमह परिहासं ॥१२७॥
किं भणिएणं बहुणा ? स आह भइणि व्व तं इयाणिं मे । अह जइ तुज्झ वि इच्छा तुमं पि ता गिण्ह पवज्जं ॥१२८॥
तम्मि समयम्मि तिहुयणसामी सिरिवद्धमाणजिणइंदो । संपत्तो सुररइए उवविट्ठो समवसरणम्मि ॥१२९॥
सेणियपमुहो लोगो गओ जिणिंदस्स वंदणनिमित्तं । विणिजुंजइ धन्नो वि हु धणरिद्धिं धम्मकज्जेसु ॥१३०॥
पव्वज्जासामग्गीनिरयं नाऊण धन्नयं दइया । गंतूणं वुत्तंतं सबंधुणो कहइ रुयमाणी ॥१३१॥
अंतरिओ हं धन्नेण चिंतिउं संठवित्तु नियभइणिं । जणणिं भज्जाओ वि य संभासिय सालिभद्दो वि ॥१३२॥
घोसाविऊण अभयं दाणं दीणाइयाण दाऊण । काउं जिणिंदमहिमं सम्माणिय समणसंघं च ॥१३३॥
नियसयण-जणणि-पणइणिपरिकलिओ आरुहित्तु सिवियाए । सलहिज्जंतो नायरजणेण तित्थं पभाविंतो ।१३४।
सुरलोयसरिसरिद्धिं सणंकुमारो व्व उज्झिउं ज्झत्ति । महया महूसवेणं समागओ समवसरणम्मि ॥१३५॥
पुरओ पहुत्तधन्नेण संगओ तयणु तत्थ भयवंतं । काउं पयाहिणतियं सधन्नओ थुणियमाढत्तो ॥१३६॥
जय जय परमेसर ! चरमजिणेसर ! पुन्नमससिनिम्मलवयण ! ।
जय धम्मपयासण !, कुगइपणासण !, वियसियसियपंकयनयण ! ॥१३७॥

यो गृह्णाति जिनदिक्षां कृत्वा परिकर्मणं स कापुरुषः । सत्पुरुषः पुनः सुन्दरि ! तृणमिवर्द्धिं परित्यजति ॥ १२५ ॥
यदि धनर्द्धिः सुत्यक्ता तदा किं न त्वमपि त्यजसि ? सा भणति । इति निश्रुत्येषोऽभिमानी भणितुमारब्धः ॥१२६॥
पश्यंस्तव वदनं स्थितोऽस्मीदानीं तु पश्य यद्भवति । अथ सा जल्पति प्रियतम ! एतन्मम क्षमध्व परिहासम् ॥१२७ ॥
किं भणितेन बहुना ? स आह भगिनीव त्वमिदानीं मे । अथ यदि तवापीच्छा त्वमपि तावद्गृहाण प्रव्रज्याम् ॥१२८॥
तस्मिन्समये त्रिभुवनस्वामी श्रीवर्धमानजिनेन्द्रः । संप्राप्तः सुररचित उपविष्टः समवसरणे ॥ १२९ ॥
श्रेणिकप्रमुखो लोको गतो जिनेन्द्रस्य वन्दननिमितम् । विनियुञ्जति धन्योऽपि खलु धनर्द्धिं धर्मकार्येषु ॥ १३० ॥
प्रव्रज्यासामग्रीनिरतं ज्ञात्वा धन्यकं दयिता । गत्वा वृत्तान्तं स्वबन्धोः कथयति रुदन्ती ॥ १३१ ॥
अन्तरितो ऽहं धन्येन चिन्तयित्वा संस्थाप्य निजभगिनीम् । जननीं भार्या अपि च संभाष्य शालिभद्रोऽपि ॥ १३२ ॥
घोषयित्वाभयं दानं दीनादिकेभ्यो दत्त्वा । कृत्वा जिनेन्द्रमहिमां सन्मान्य श्रमणसङ्घं च ॥ १३३ ॥
निजस्वजन-जननि-प्रणयिनिपरिकलित आरुह्य शिबिकाम् । श्लाघ्यमानो नागरजनेन तीर्थं प्रभावयन् ॥ १३४ ॥
सुरलोकसदृशर्द्धिं सनत्कुमार इवोज्झित्वा झटिति । महता महोत्सवेन समागतः समवसरणे ॥ १३५ ॥
पुरतः प्रभुतधन्येन सङ्गतस्तदनु तत्र भगवन्तम् । कृत्वा प्रदक्षिणात्रिकं सधन्यकः स्तोतुमारब्धः ॥ १३६ ॥
जय जय परमेश्वर ! चरमजिनेश्वर ! पूर्णिमाशशिनिर्मलवदन ! ।
जय धर्मप्रकाशन ! कुगतिप्रणाशन ! विकसितसितपङ्कजनयन ! ॥ १३७ ॥

जय वीरजिणेसर ! दिव्वनाण ! संपत्तपरमसिवसुहनिहाण ! ।
जय चक्क-कमललंछियसुपाय ! सिद्धत्थनरेसरअंगजाय! ॥१३८॥

जय कोहहुयासणअम्बुवाह ! दुट्ठट्ठकम्मवणगहणदाह ! ।
जयमाणसेलनिद्दलणवज्ज ! परिचत्तसयलसंसारकज्ज ! ॥१३९॥

जय मायाभूमिविणाससीर ! जर-जम्मपंकनिट्ठवणनीर ! ।
जय लोहपिसायपयंडमंत ! वरनिम्मल-सम-सियकुंददंत! ॥१४०॥

जय रायमहाकरिहरिकिसोर ! सन्नयजणआवयहरणचोर ! ।
जय दोसरेणुवियरणसमीर ! संसारमहोयहिलद्धतीर ! ॥१४१॥

जय मोहितिमिरनिद्दलणभाणु ! तुह नमइ जिणेसर ! सुरपहाणु ।
जय मयणसुहडनिम्महणवीर ! ससुरासुरनमिय ! जिणिंद ! वीर ॥ १४२ ॥

जय मच्छररहिय ! विमुक्कसंग ! नियसत्तिविहियसंसारभंग ! ।
जय संगमकयदुट्ठोवसग्गनिक्कंप ! पयासियमोक्खमग्ग! ॥१४३॥

जय अमरविणिम्मियसमवसरण ! सरणागयवच्छलदरियहरण ! ।
जय वीरजिणेसर ! करि पसाउ महु देहि सामि ! सिवपुरिहिं ठाउ ॥ १४४ ॥

जय वीरजिनेश्वर ! दिव्यज्ञान ! संप्राप्तपरमशिवसुखनिधान ! ।
जयचक्र-कमललञ्छितसुपाद ! सिद्धार्थनरेश्वराङ्गजात ! ॥१३८॥

जय क्रोधहुताशनाम्बुवाह ! दुष्टाष्टकर्मवनगहनदाह ! ।
जय मानशैलनिर्द्दलनवज्र ! परित्यक्तसकलसंसारकार्य ! ॥ १३९॥

जय मायाभूमिविनाशसीर ! जरा-जन्मपङ्कनिष्ठवननीर ! ।
जय लोभपिशाचप्रचण्डमन्त्र ! वरनिर्मल-सम-सितकुन्ददन्त ! ॥ १४० ॥

जय रागमहाकरिहरिकिशोर ! सन्नयजनापद्धरणचोर ! ।
जय दोषरेणुविदारणसमीर ! संसारमहोदधिलब्धतीर ! ॥१४१॥

जय मोहतिमिरनिर्दलनभानु ! त्वां नमति जिनेश्वर ! सुरप्रधान ! ।
जय मदनसुभटनिर्मथनवीर ! ससुरासुरनत ! जिनेन्द्र ! वीर! ॥ १४२ ॥

जय मत्सररहित ! विमुक्तसङ्ग ! निजशक्तिविहितसंसारभङ्ग ! ।
जय सङ्गमकृतदुष्टोपसर्गनिष्कम्प ! प्रकाशितमोक्षमार्ग ! ॥ १४३ ॥

जयामरविनिर्मितसमवसरण ! शरणागतवत्सलदूरितहरण ! ।
जय वीरजिनेश्वर ! कृत्वा प्रसादो मम देहि स्वामिन् ! शिवपुरे स्थानम् ॥ १४४ ॥

इय जयपूरियास ! चंदाणण ! विविहतवग्गिदड्ढभवकाणण ! ।
सिरिसिद्धत्थरायवरनंदण ! पसिय मज्झ जणनयणाणंदण! ॥१४५॥
पुणरवि पणमिय सामिं भणंति भयवं ! भवोहनिम्महणिं । दिक्खं देहि जिणेसर ! जायइ दुक्खक्खओ जीए ॥१४६॥
भणियं भद्दाए वि हु जामाउय-पुत्तया इमे मज्झ । पहु ! धन्न-सालिभद्दा दिक्खादाणेणऽणुग्गहह ॥१४७॥
तत्तो तिहुयणनाहेण दिक्खिया पंचमुट्ठिकयलोया । सिक्खविया य समग्गं आयारं साहुवग्गस्स ॥१४८॥
गीयत्था संजाया अइरेण य नायसयलसुत्त-ऽत्था । विहरंति जिणेण समं कुव्वंता तिव्वतव-चरणं ॥१४९॥
पुणरवि रायगिहम्मि समागया भुवणसामिणा सद्धिं । तिव्वतव-चरणसुक्का किडिकिडिभूया महासत्ता ॥१५०॥
नरनाहपमुहपरिसाए सामिणा देसियं भवसरूवं । जायाए भिक्खवेलाए पत्थिया दो वि भिक्खट्ठा ॥१५१॥
छट्ठस्स पारणम्मि पणामपुव्वं जिणस्स आणाए । ते धन्न-सालिभद्दा पयंपिया जिणवरिंदेण ॥१५२॥
तुह सालिभद्द ! जणणी काही हरिसेण अज्ज पारणयं । तो ते तवसुसियंगा भद्दाए गिहं समणुपत्ता ॥१५३॥
सिरिवीरजिणागमणं नाउं तह धन्न-सालिभद्दाणं । भद्दाइयो गिहजणो सव्वो वि समुस्सुओ जाओ ॥१५४॥
तत्थाऽऽगया वि मुणिणो केणावि न याणिया ठिया य खणं । तत्तो य अदीणमणा महाणुभावा पडिनियत्ता ॥१५५॥
भणियं च-
सुंदर-सुकुमाल-सुभोइएण विविहेहिं तवविसेसेहिं । तह सोसविओ अप्पा जह न वि नाओ सभवणे वि ॥१५६॥

इति जगत्पूरिताश ! चन्द्रानन ! विविधतपोऽग्निदग्धभवकानन !
श्री सिद्धार्थराजवरनन्दन ! प्रसीद मम जननयनानन्दन ! ॥ १४५ ॥
पुनरपि प्रणम्य स्वामिं भणतो भगवन् ! भवौघनिर्मथनीम् । दिक्षां देहि जिनेश्वर ! जायते दुःखक्षयो यस्याः ॥१४६॥
भणितं भद्रयाऽपि खलु जामातृ-पुत्रकाविमौ मम । प्रभो ! धन्य-शालिभद्रौ दिक्षादानेनानुगृह्णात ॥ १४७ ॥
ततस्त्रिभुवननाथेन दिक्षितौ पञ्चमुष्ठिकृतलोचौ । शिक्षयितौ च समग्रमाचारं साधुवर्गस्य ॥ १४८ ॥
गीतार्थौ सञ्जातावचिरेण च ज्ञातसकलसूत्राऽर्थौ । विहरतो जिनेन समं कुर्वन्तौ तीव्रतपश्चरणम् ॥ १४९ ॥
पुनरपि राजगृहे समागतौ भुवनस्वामिना सार्द्धम् । तीव्रतपश्चरणशुष्कौ किडिकिडिभूतौ महासत्त्वौ ॥ १५० ॥
नरनाथप्रमुखपर्षदि स्वामिना देशितं भवस्वरुपम् । जातायां भिक्षावेलायां प्रस्थितौ द्वावपि भिक्षार्थौ ॥ १५१ ॥
षष्टस्य पारणे प्रणामपूर्वं जिनस्याज्ञया । तौ धन्य-शालिभद्रौ प्रजल्पितौ जिनवरेन्द्रेण ॥ १५२ ॥
तव शालिभद्र ! जननी करिष्यति हर्षेणाद्य पारणकम् । ततः तौ तपःशोषिताङ्गौ भद्राया गृहं समनुप्राप्तौ ॥ १५३ ॥
श्रीवीरजिनागमनं ज्ञात्वा तथा धन्य-शालिभद्रयोः । भद्रादयो गृहजनः सर्वोऽपि समुत्सुको जातः ॥ १५४ ॥
तत्राऽऽगतावपि मुनी केनापि न जानितौ स्थितौ च क्षणम् । ततश्चादीनमनसौ महानुभावौ प्रतिनिवृत्तौ ॥ १५५ ॥
भणितं च -
सुन्दर-सुकुमाल-सुभोगितेन विविधैस्तपोविशेषैः । तथा शोषित आत्मा यथा नापि ज्ञातः स्वभवनेऽपि ॥ १५६ ॥

पडिलाहिया य गोउलथेरीए पहम्मि पवरदहिएण । जुगमेत्तनिहियनयणे समागया सामिणो पासे ॥१५७॥
आलोइऊण विहिणा पुच्छंति जिणेसरं कयपणामा । भयवं ! न अम्ह विहियं पारणयं निययजणणीए ॥१५८॥
जंपइ सामी जीए दिन्नं दहियं पहम्मि तुम्हाणं । सा सालिभद्दजणणी पुव्वभवे आसि धन्न त्ति ॥१५९॥
सव्वो वि य पुव्वभवो कहिओ जा साहुदाणओ भोगा । सुमरइ पुराणजम्मं तं सोउं सालिभद्दो वि ॥१६०॥
तं चिय पारित्तु दहिं संविग्गा पुच्छिऊण जिणनाहं । खामेवि समणसंघं गहियाणसणा समाहीए ॥१६१॥
गंतुं वेभारसिलायलम्मि आराहणाए कयकिच्चा । उल्लसिरसुक्कलेसा पाउवगमणं पवज्जंति ॥१६२॥
एत्थंतरम्मि भद्दा समागया वीरवंदणनिमित्तं । नमिउं पुच्छइ धन्नो सामि कहिं सालिभद्दो य ? ॥१६३॥
परिकहिओ वुत्तंतो जिणेण सव्वो वि तो ससोया सा । ताण सयासम्मि गया निच्चलगत्ते नियइ ते वि ॥१६४॥
वारं वारं वंदिय संभासइ ते न दिंति पडिवयणं । निस्संगा तयणु इमा गुरुसोया रुयइ अइकरुणं ॥१६५॥
हा पुत्त ! पावकम्माए आगओ नियगिहे वि न हु नाओ । पडिलाहिओ न दिट्ठो न भासिओ मंदपुन्नाए ॥१६६॥
हा पुत्त ! अमरउवणीयभोयणं भुंजिऊण कह तुमए । भुत्तं भिक्खं भमिऊण अंतपंता-ऽरसाहारं ? ॥१६७॥
हा पुत्त ! मसिणवत्तीसतूलियाउवरि आसि कयनिद्दो । इण्हिं पुण खरकक्कससिलायले किह सुहं सुयसि ? ॥१६८॥
हा पुत्त ! घुसिण-हरियंदणेहिं विरइयविलेवणो आसि । इण्हिं किह घम्मजलावणद्धमल-पंकमुव्वहसि ? ॥१६९॥
हा पुत्त ! सवणसुहयरकागलिगीयप्पिओ सया आसि । इण्हिं सिवफेक्कारवमिस्से किह सुणसि घूयरवे ? ॥१७०॥

प्रतिलाभितौ च गोकुलस्थविर्या पथि प्रवरदध्ना । युगमात्रनिहितनयनौ समागतौ स्वामिनः पार्श्वे ॥ १५७ ॥
आलोच्य विधिना पृच्छतो जिनेश्वरं कृतप्रणामौ । भगवन् ! नावयोर्विहितं पारणकं निजजनन्या ॥ १५८ ॥
जल्पति स्वामी यथा दत्तं दधि पथि युवयोः । सा शालिभद्रजननी पूर्वभव आसीद्धन्येति ॥ १५९ ॥
सर्वोऽपि च पूर्वभवः कथिते यावत्साधुदानतो भोगाः । स्मरति पुराणजन्म तच्छ्रुत्वा शालिभद्रोऽपि ॥ १६० ॥
तदेव पारयित्वा दधि संविग्नौ पृष्ट्वा जिननाथम् । क्षमयित्वा श्रमणसङ्घं गृहीतानशनौ समाधिना ॥ १६१ ॥
गत्वा वैभारशिलातले आराधनया कृतकृत्यौ । उल्लसितशुक्ललेश्यौ पादपोपगमनं प्रपद्येते ॥ १६२ ॥
अत्रान्तरे भद्रा समागता वीरवन्दननिमित्तम् । नत्वा पृच्छति धन्यः स्वामिन् कुत्र शालिभद्रश्च ? ॥ १६३ ॥
परिकथितो वृत्तान्तो जिनेन सर्वोऽपि ततः सशोका सा । तयोः सकाशे गता निश्चलगात्रौ पश्यति तावपि ॥ १६४ ॥
वारं वारं वन्दित्वा संभाषते तौ न ददतः प्रतिवचनम् । निस्सङ्गौ तदन्विमा गुरुशोका रोदित्यतिकरुणम् ॥ १६५ ॥
हा पुत्र ! पापकर्मयाऽऽगतो निजगृहेऽपि न खलु ज्ञातः । प्रतिलाभितो न दृष्टो न भाषितो मन्दपुण्यया ॥ १६६ ॥
हा पुत्र ! अमरोपनीतभोजनं भुक्त्वा कथं त्वया । भुक्तं भिक्षां भ्रान्त्वाऽऽन्त-प्रान्तारसाहारम् ? ॥ १६७ ॥
हा पुत्र ! मसृणद्वात्रिंशत्तूलिकोपरि आसीत्कृतनिद्रः । इदानीं पुनःखरकर्कशशिलातले कथं सुखं स्वपिषि ? ॥ १६८ ॥
हा पुत्र ! घृसृणहरिचन्द्रनै र्विरचितविलेपन आसीत् । इदानीं कथं धर्मजलावनद्धमल-पङ्कमुद्वहसि ? ॥ १६९ ॥
हा पुत्र ! श्रवणसुखकरकाकलिगीतप्रियः सदाऽऽसीत् । इदानीं शिवाफुत्काररवमिश्रान् कथं शृणोसि घूकरवान् ? ॥१७०॥

हा पुत्त ! सत्तभूमियपासाए सव्वया सुहं वसिउं । किह विहरिओ सि दिणयरकरतत्ते धरणिवीढम्मि ? ॥१७१॥
हा पुत्त ! जंतवावीए गिम्हमइवाहिऊण अणुवरिसं । किह चरियं तव-चरणं नयणे निहिउं दिणयरम्मि ? ॥१७२॥
हा पुत्त ! तुह सिणेहो तारिसओ आसि मज्झ विसयम्मि । इण्हिं किं दीणाए न देसि मह[1] वयणमेत्तं पि ? ॥१७३॥
इय एवं विलवंती तेसिं वंदणसमागयनिवेण । पडिबोहिया सुहासियवयणेहिं इमं भणंतेण ॥१७४॥
भद्दे ! धन्ना एए जेहिं दुहाणं विमोइओ अप्पा । तं पि कयत्था जीए जाएणाऽऽराहणा विहिया ॥१७५॥
वयण-चलणाइयं न हु कुणंति पाओवगमणपडिवन्ना । ता मा कुणसु अकारणखेयं मणयं पि नियमेण ॥१७६॥
एमाइमहुरवयणेहिं तत्थ सा सेणिएण संठविया । नीया य नियगिहम्मि भद्दा वहुययणसंजुत्ता ॥१७७॥
ते वि हु मुणिणो मरिऊण पंचपंचोत्तरेसु उववन्ना । चविउं तओ विदेहे उववज्जिय उत्तमकुलम्मि ॥१७८॥
भोगसमिद्धि उवभुंजिऊण घेत्तूण पवरपव्वज्जं । निट्ठवियअट्ठकम्मा तयणु गमिस्संति सिद्धिपुरिं ॥१७९॥

॥ शालिभद्राख्यानकं समाप्तम् ॥८॥

अन्यच्चास्मिन्नेव जन्मनि सुपात्रदानं कल्याणवहमित्यत आह-

दिन्नं सुपत्तदानं इहेव कल्लाणकारगं होइ ।
चक्कयर-चंदणज्जा समूलदेवा उदाहरणं ॥ ६ ॥

व्याख्या - 'दत्तं' वितीर्णं सुपात्रे - गुणवत्साध्वादौ दानं-वित्तवितरणं सुपात्रदानम् 'इहैव' अस्मिन्नेव जन्मनि आस्तां परभवे 'कल्याणकारकं' सुखसमृद्धिजनकं 'भवति' जायते । निदर्शनमाह-चक्रचरश्च-चक्रचराभिधानो ब्राह्मणः, स च चन्दनार्या च-दधिवाहनराजपुत्री भगवतो महावीरस्य शिष्यका चक्रचर-चन्दनार्ये । किम्भूते ? स(ह) मूलदेवेन राजपुत्रेण वर्तेते ये ते तथोक्ते । 'उदाहरणं' दृष्टान्त इत्यक्षरार्थः ॥ ६ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकेभ्यो-ऽवसेयः । तानि चामूनि ।

हा पुत्र ! सप्तभूमिप्रासादे सर्वदा सुखमुषित्वा । कथं विहृतोऽसि दिनकरकरतप्ते धरणिपीठे ? ॥ १७१ ॥
हा पुत्र ! यन्त्रवाप्यां ग्रीष्ममतिवाह्यानुवर्षम् । कथं चरितं तपश्चरणं नयने निधाय दिनकरे ? ॥ १७२ ॥
हा पुत्र ! तव स्नेहस्तादृश आसीन्मम विषये । इदानीं किं दीनाया न देहि मम वचनमात्रमपि ? ॥ १७३ ॥
इत्येवं विलपन्ती तयोर्वन्दनसमागतनृपेण । प्रतिबोधिता सुभाषितवचनैरिदं भणता ॥ १७४ ॥
भद्रे ! धन्यौ एतौ याभ्यां दुःखानां विमोचित आत्मा । त्वमपि कृतार्था यस्या जातेनाऽऽराधना विहिता ॥ १७५ ॥
वचन-चलनादिकं न खलु कुर्वन्ति पादोपगमनप्रतिपन्नाः । ततो मा कुर्वकारणखेदं मनागपि नियमेन ॥ १७६ ॥
एवमादिमधुरवचनैस्तत्र सा श्रेणिकेन संस्थापिता । नीता च निजगृहे भद्रा वधूजनसंयुक्ता ॥ १७७ ॥
तावपि खलु मुनी मृत्वा पञ्चपञ्चोत्तरेषूत्पन्नौ । च्युत्वा ततो विदेह उत्पद्योत्तमकुले ॥ १७८ ॥
भोगसमृद्धिमुपभुज्य गृहीत्वा प्रवरप्रव्रज्याम् । निष्ठापिताष्टकर्माणौ तदनु गमिष्यतः सिद्धिपुरिम् ॥ १७९ ॥

॥ शालिभद्राख्यानकं समाप्तम् ॥ ८ ॥

---

१. मं खं० ।

तत्रापि क्रमायातं प्रथमं तावत् चक्रचराख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्

आसि नररयणरोहणगिरि व्व मणिरयणचक्कनयरं ति । समुवज्जियगुणचक्को चक्कयरो दियवरो तत्थ ॥१॥

करकलियतरुणदिणयरकिरणारुणतंबभायणो एसो । नयरब्भंतरभवणेसु भमइ कणभिक्खकज्जेण ॥२॥

अह अवरदिणे केणावि तस्स दिन्ना महेसरसुएण । वरसुरहिघय-गुडाविलनवसत्तुगपिंडिया दोन्नि ॥३॥

गंतूण तओ सो वि य गिहम्मि कयनित्ततारणविहाणो । उवविट्ठो जा चिट्ठइ संतुट्ठो भोयणट्ठाए ॥४॥

ता तस्स पुव्वपुन्नाणुभावओ मासखमणपारणए । एगो महातवस्सी संपत्तो [१]भवणदारम्मि ॥५॥

दट्ठूण मुणिं तवतेयभासुरं फुरियगरुयपरिओसो । उट्ठित्तु तस्स एगं सत्तुगपिंडं पयच्छेइ ॥६॥

सहस त्ति तओ पडिया हिरण्णवुट्ठी मुणिप्पभावेण । विम्हियमणेण तो दियवरेण सव्वा वि संगहिया ॥७॥

मुणिदाणसमयसज्जियपकिट्ठपुन्नाणुभावओ नियमा । उवभुंजिऊण नर-सुरसुहाइं सो पाविही सिद्धिं ॥८॥

॥ चक्कचराख्यानकं समाप्तम् ॥९॥

इदानीं चन्दनार्याख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

अत्थि इह भरहवासे चंपा नामेण विस्सुया नयरी । कोसंबिनयरिसामी चउरंगबलेण कइया वि ॥१॥

[२]दहिवाहणगहणत्थं चंपं वेढइ सयाणियो राया । एगागी रत्तीए नावाकडगेण गंतूण ॥२॥

आसीन्नररत्नरोहणगिरिरिव मणिरत्नचक्रनगरमिति । समुपार्जितगुणचक्रश्चक्रचरो द्विजवरस्तत्र ॥ १ ॥

करकलिततरुणदिनकरकिरणारुणताम्रभाजन एषः । नगराभ्यन्तरभवनेषु भ्रमति कणभिक्षाकार्येण ॥ २ ॥

अथाऽपरदिने केनापि तस्मै दत्ते महेश्वरसुतेन । वरसुरभिघृत-गुडाविलनवसक्तुकपिण्डिके द्वे ॥ ३ ॥

गत्वा ततः सोऽपि च गृहे कृतनित्यतारणविधानः । उपविष्टो यावत्तिष्ठति संतुष्टो भोजनार्थे ॥ ४ ॥

तावत्तस्य पूर्वपुण्यानुभावतो मासक्षमणपारणके । एको महातपस्वी संप्राप्तो भवनद्वारे ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा मुनिं तपस्तेजोभासुरं स्फुरितगुरुकपरितोषः । उत्थाय तस्यैकं सक्तुकपिंडं प्रयच्छति ॥ ६ ॥

सहसेति ततः पतिता हिरण्यवृष्टि र्मुनिप्रभावेन । विस्मितमनसा ततो द्विजवरेण सर्वाऽपि सङ्गृहीता ॥ ७ ॥

मुनिदानसमयसर्जितप्रकृष्टपुण्यानुभावतो नियमा । उपभुज्य नर-सुरसुखानि स प्राप्स्यति सिद्धिम् ॥ ८ ॥

॥ चक्रचराख्यानकं समाप्तम् ॥ ९ ॥

इदानीं चन्दनार्याख्यानकमारभ्यते ।

अस्तीह भरतवर्षे चम्पा नाम्ना विश्रुता नगरी । कोशाम्बीनगरीस्वामी चतुरङ्गबलेन कदाचिदपि ॥ १ ॥

दधिवाहनग्रहणार्थं चम्पां वेष्टयति शतानिको राजा । एकाकी रात्र्यां नावाकटकेन गत्वा ॥ २ ॥

---

१. दारदेसम्मि-रा० । २. इत आरभ्य ६३ पर्यन्ताः कथागाथाः श्रीनेमिचन्द्रीय-श्रीमहावीरचरित्रे १२७३ तः १३३४ पर्यन्तं वर्त्तन्त इति टीकाकृता स्वरचनायां तत एवाऽऽहृता इति ज्ञेयम् । सूचितं चाप्येतद् वृत्तिकृता स्वयमप्येत्कथाप्रान्ते ६६तमगाथायामिति ।

दहिवाहणो विनट्ठो चंपाए जग्गहो नरिंदेण । घोसाविओ य सेणालोगेण य लूसिया नयरी ॥३॥

दहिवाहणस्स रन्नो वसुमइधूयाए संजुया गहिया । भयभीया एगेणे वंठेणं धारिणी देवी ॥४॥

वलिओ सयाणियनिवो सो वंठो भणइ एस मे भज्जा । होही इमाए धूयं एयं पुण विक्किणिस्सामि ॥५॥

तो धारिणी विचिंतइ एसा बाला अणज्जहत्थगया । कमवत्थं पाविस्सइ ? न नज्जइ हा ! विहिविलासो ॥६॥

मज्झं पि सीलखलियं होही तं तु जस-धम्मनासणयं । सुद्धस्स वरं मरणं मा जीयं सीलखलियस्स ॥७॥

हा हियय ! किं न फुट्टसि बंधु विउत्ताए वसणवडियाए । मज्झ तुमं ? इय दुस्सहदुक्खेणं सा उ कालगया ॥८॥

अव्वत्तसरं रोयइ जणणीमरणेण वसुमई दीणा । तो सो वंठो चिंतइ मरिही एसा वि जइ किंचि ॥९॥

जंपामि अजुत्तमहं तो मोल्लं पि हु न होइ इय नाउं । अणुयत्तंतेण दढं कोसंबिपुरीए आणीया ॥१०॥

वीहीए[१] उड्डिया सा दिट्ठा य धणावहेण इब्भेणं । अणलंकिया वि लावन्नपुन्नसव्वंगसोहिल्ला ॥११॥

आगीए चेव नज्जइ ईसरधूया नरिंदधूया वा । एसा विसमं पत्ता हंत ! अवत्थं विहिवसेणं ॥१२॥

ता मा वसणं दीहं पावउ करुणापवन्नच्चित्तेणं । जम्मग्गियमोल्लेणं गहिया सा सेट्ठिणा तेणं ॥१३॥

नीया नियघरम्मि का सि तुमं ? पुच्छिया न साहेइ । रुयइ परं पव्वालियगंडयला अंसुधाराहिं ॥१४॥

पियवयणेहिं सणेहं संठविया बेट्टिय त्ति पडिवन्ना । मज्जण-भोयण-वत्थाइएहिं सम्माणिया धणियं ॥१५॥

दधिवाहनो विनष्टश्चम्पाया यद्ग्रहो नरेन्द्रेण । घोषयितश्च सेनालोकेन च मुषिता नगरी ॥ ३ ॥

दधिवाहनस्य राज्ञो वसुमतिदुहित्रा संयुक्ता गृहीता । भयभीतैकेन वण्ठेन धारिणी देवी ॥ ४ ॥

वलितः शतानिकनृपः स वण्ठो भणत्येष मे भार्या । भविष्यत्यस्या दुहितरमेनां पुनर्विक्रीणिष्यामि ॥ ५ ॥

तदा धारिणी विचिन्तयत्येषा बालाऽनार्यहस्तगता । कामवस्थां प्राप्स्यति ? न ज्ञायते हा ! विधिविलासः ॥ ६ ॥

ममापि शीलस्खलितं भविष्यति तत्तु यशोधर्मनाशनकम् । शुद्धस्य वरं मरणं मा जीवितं शीलस्खलितस्य ॥ ७ ॥

हा हृदय ! किं न स्फुटसि बन्धुवियुक्ताया व्यसनपतितायाः । मम त्वं ? इति दुस्सहदुःखेन सा तु कालगता ॥८ ॥

अव्यक्तस्वरं रोदिति जननीमरणेन वसुमती दीना । तदा स वण्ठश्चिन्तयति मरिष्यत्येषापि यदि किञ्चित् ॥ ९ ॥

जल्पाम्ययुक्तमहं ततो मूल्यमपि खलु न भविष्यतीति ज्ञात्वा । अनुवर्तता दृढं कोशाम्बीपूर्यामानीता ॥ १० ॥

वीथ्यां विक्रीयमाणा सा दृष्टा च धनावहेनेभ्येन । अनलङ्कृतापि लावण्यपुण्यसर्वाङ्गशोभवती ॥ ११ ॥

आकृत्या चैव ज्ञायत ईश्वरदुहिता नरेन्द्रदुहिता वा । एषा विषमां प्राप्ता हन्त ! अवस्थां विधिवशेन ॥ १२ ॥

तावन्मा व्यसनं दीर्घं प्राप्नोतु करुणाप्रपन्नचित्तेन । यन्मार्गितमूल्येन गृहीता सा श्रेष्ठिना तेन ॥ १३ ॥

नीता निजकगृहे काऽसि त्वं ? पृष्टा न कथयति । रोदिति परं प्लावितगण्डस्थलाऽश्रुधाराभिः ॥ १४ ॥

प्रियवचनैः सस्नेहं संस्थापिता पुत्रीति प्रतिपन्ना । मज्जन-भोजन-वस्त्रादिकैः सन्मानिता गाढम् ॥ १५ ॥

---

१. वीहीय उड्डिया-रं० ।

मूला य नियय‌भज्जा भणिया धूया तुहेस ता सम्मं । तह कायव्वं जह सरइ नेय नियजणणि-जणयाणं ॥१६॥
चिट्ठइ य कुलघरम्मि व सा नेव्वुयमाणसा गिहे तम्मि । विणएणं सीलेण य सव्वो वि य रंजिओ लोओ ॥१७॥
गिहवासी पुरवासी भणइ अहो सीलचंदणा एसा । तो तीए बीयनामं संजायं चंदण त्ति फुडं ॥१८॥
एवं वच्चइ कालो मूला पुण मच्छरिज्जए हियए । तीए उवरि धणावहबहुमाणं पेच्छमाणी य ॥१९॥
चिंतइ य-
सव्वो वि जणो पायं अहिणववत्थुम्मि कुणइ अणुरायं । चिरपरिचियमवहीरइ ता जइ एसो इमं भज्जं ॥२०॥
कुणइ गुरुरायरत्तो गेहस्स असामिणी अहं होमि । इय सा तीए पावा चिट्ठइ छिड्डाइं जोयंती ॥२१॥
सो सेट्ठी मज्झण्हे वीहीओ आगओ गिहे विजणे । एगम्मि दिणे नत्थि उ कोइ वि जो सोयई चलणे ॥२२॥
ताहे चंदणबाला तत्थ पाणियं घेत्तुं । वारंतस्स वि य बला आढत्ता सोइउं चलणे ॥२३॥
एत्थंतरम्मि तीए छुट्टा केसा सहावसोहिल्ला । पडिहिंति कद्दमे इय चिंतेउं सेट्ठिणा झत्ति ॥२४॥
हत्थट्ठियलीलाजट्ठियाए धरिया तहेव बद्धा य ओलोवणोवविट्ठा मूला चिंतेइ तं दट्ठुं ॥२५॥
नूण विणट्ठं कज्जं ता तरुणो चेव छिज्जए वाही । जइ पुण परिणेइ इमं ता मज्झ मुहे भवइ छारो ॥२६॥
अन्नं च-
वरि हउं मुय वरि हउं म जाय वरि विसहरि खद्धी, वरि उब्भिय सूलियहिं भिन्न वरि हुयवहि दद्धी ।

मूला च निजकभार्या भणिता दुहिता तवैषा ततः सम्यक् । तथा कर्तव्यं यथा स्मरति नैव निजजननी-जनकौ ॥१६॥
तिष्ठति च कुलगृह इव सा निवृत्तमानसा गृहे तस्मिन् । विनयेन शीलेन च सर्वोऽपि च रञ्जितो लोकः ॥ १७ ॥
गृहवासी पुरवासी भणत्यहो शीलचन्दनैषा । ततस्तस्या द्वितीयनामं सञ्जातं चन्दनेति स्फुटम् ॥ १८ ॥
एवं व्रजति कालो मूला पुनर्मत्सरिते हृदये । तस्या उपरि धनावहबहुमानं पश्यन्ती च ॥ १९ ॥ चिन्तयति च—
सर्वोऽपि जनः प्रायोऽभिनववस्तुनि करोत्यनुरागम् । चिरपरिचितमवधीरति ततो यद्येष इमां भार्याम् ॥ २० ॥
करोति गुरुरागरक्तो गृहस्यास्वामिन्यहं भवामि । इति सा तस्याः पापा तिष्ठति छिद्राणि पश्यन्ती ॥ २१ ॥
स श्रेष्ठिर्मध्याह्ने वीथ्या आगतो गृहे विजने । एकस्मिन्दिने नास्ति तु कोऽपि यः शुच्यति चरणौ ॥ २२ ॥
तदा चन्दनबालोपस्थिता तत्र पानीयं गृहीत्वा । वार्यमाणस्यापि च बालाऽऽरब्धा शोचितुं चरणौ ॥ २३ ॥
अत्रान्तरे तस्या मुत्कलाः केशाः स्वभावशोभमानाः । पतिष्यन्ति कर्दम इति चिन्तयित्वा श्रेष्ठिना शीघ्रम् ॥ २४ ॥
हस्तस्थितलीलायष्ट्या धृतास्तथैव बद्धाश्च । अवलोकनोपविष्टा मूला चिन्तयति तद्दृष्ट्वा ॥ २५ ॥
नूनं विनष्टं कार्यं ततस्तरुण एव छिद्यते व्याधिः । यदि पुनःपरिणयतीमां ततो मम मुखे भवति क्षारः ॥ २६ ॥
अन्यच्च -
वरं भवतु मृतं वरंभवतुमा जातं वरं विषधर खादितम्, वरमुद्भिन्नशूलिकाभिर्भिन्नं वरं हुतवहे दग्धम् ।

वरि उब्बंधिय रुक्खडालि वरि खड्डुहिं घल्लिय । मँ मइं दिट्ठु सवत्तिजुत्तु पिउ हियडासल्लिय ॥२७॥

इय एवमाइ चिंतिय सेट्ठम्मि विणिग्गए गरुयरोसा । निद्दयचित्ता पहणइ सिरं च मुंडावए तीए ॥२८॥

नियलेहि य बंधावइ चलणेसुं ओयरम्मि पक्खिवइ । पभणइ जो सेट्ठिस्सा साहिस्सइ सो ममं वइरी ॥२९॥

गिहमागओ य पुच्छइ सेट्ठी भो ? चंदणा कहिं चिट्ठे । मूलाए य भएणं न परियणो साहई कोइ ॥३०॥

सो मुणइ रमइ कत्थइ रत्तिं जाणाइ नवरि सा सुत्ता । बीयदिवसे न दिट्ठा पुट्ठा य न केणई सिट्ठा ॥३१॥

तइयदिणे परिकुविओ भणइ य मारेमि जइ न साहेह । ताहे एगा थेरी चिंतइ किं जीएण ? ॥३२॥

सा जियउ महाभागा मज्झ वि जीएण पाविया एसा । मूला जं सियबीयाससिलेहानिक्कलंकाए ॥३३॥

एइए इमं ववसइं[१] नरयनिमित्तं तओ य थेरीए । सेट्ठिस्स जहावत्थं मूलाए चेट्ठियं कहियं ॥३४॥

सेट्ठी वि अहो ! पावा मूला निद्धम्म-निद्दयसहावा । इस चिंतन्तो ओवरगदारमुग्धाडए सिग्धं ॥३५॥

दट्ठुं तं सुसियंगिं तिस-भुक्खकिलामियं सुदीणमुहं । रे जीव ! सहसु दुक्कयकम्मफलं एव भावंती ॥३६॥

बाहजलभरियनयणो गुरुदुक्खो पायए जलं थोयं । नियइ य भोयणजायं नत्थि य भवियव्वयवसेणं ॥३७॥

कुम्मास च्चिय दिट्ठा न य दिट्ठं तत्थ भायणं किं पि । उस्सुगभावेणं चिय सुप्पे काऊण कुम्मासे ॥३८॥

पासेसु पुत्ति ! एए तुह भंजावेमि जाव नियले हं । इय भणिय ते पणामिय लोहारघरं गओ सेट्ठी ॥३९॥

वरमुद्बद्धं वृक्षशाखायां वरं गर्तायां क्षिप्तम् । मां मति दृष्ट्वा सपत्नियुक्तं प्रियं हृदयशल्यिता ॥ २७ ॥

इत्येवमादि चिन्तयित्वा श्रेष्ठिनि विनिर्गते गुरुकरोषा । निर्दयचित्ता प्रहन्ति शिरश्च मुण्डापयति तस्या: ॥ २८ ॥

निगडैश्च बन्धयतिचरणयोरपवरके प्रक्षिपति । भणति य: श्रेष्ठिन: कथिष्यति स मम वैरी ॥ २९ ॥

गृहमागतश्च पृच्छति श्रेष्ठी भो ! चन्दना कुत्र तिष्ठति ? । मूलायाश्चभयेन न परिजन: कथयति कोऽपि ॥ ३० ॥

स मुणाति रमते कुत्रचिद्रात्रिं जानाति नवरि सा सुप्ता । द्वितीयदिवसे न दृष्टा पृष्टा च न केनचिच्छिष्टा ॥ ३१ ॥

तृतीयदिने परिकुपितो भणति च मारयामि यदि न कथयत । तदैका स्थविरी चिन्तयति किं मम जीवितेन ? ॥३२॥

सा जीवतु महाभागा ममापि जीवितेन प्राप्तैषा । मूला यत् सितद्वितीयाशशिलेखानिष्कलङ्काया: ॥ ३३ ॥

एतस्या इदं व्यवसति नरकनिमित्तं ततश्च स्थविर्या । श्रेष्ठिनो यथावस्थं मूलायाश्चेष्टितं कथितम् ॥ ३४ ॥

श्रेष्ठ्यप्यहो ! पापा मूला निर्धर्म-निर्दयस्वभावा । इति चिन्तयन्नपवरकद्वारमुद्धाट्यति शीघ्रम् ॥ ३५ ॥

दृष्ट्वा तां शोषिताङ्गीं तृड्बुभुक्षाक्लामितां सुदीनमुखाम् । रे जीव ! सहस्व दृष्कृतकर्मफलमेव भावयन्तीम् ॥ ३६ ॥

बाष्पजलभृतनयनो गुरुदु:ख: पाययति जलं स्तोकम् । पश्यति च भोजनजातं नास्ति च भवितव्यतावशेन ॥ ३७ ॥

कुल्माषाश्चैव दृष्टा न च दृष्टं तत्र भाजनं किमपि । उत्सुकभावेनैव सूर्पे कृत्वा कुल्माषान् ॥ ३८ ॥

पारय पुत्री ! एतांस्तव भञ्जयामि यावन्निगडानहम् । इति भणित्वा तानर्पयित्वा लोहकारगृहं गत: श्रेष्ठी ॥ ३९ ॥

---

१. विलसइइ-खं० ।

सा तयवत्था सुमरिय पिउगेहं हत्थिणीव नियजूहं । मुत्ताहलसरिसाइं रोयइ अंसूणि मुयमाणी ॥४०॥
जणयविओगं पत्त जणणीमरणं च बंधुविरहं च । परदेसमिममवत्थं हा हा ! देवस्स परिणामो ॥४१॥
तारिसकुलजायाए तारिससीलाए एरिसं वसणं । ता नत्थि सा अवत्था कम्मवसा जा न संपडइ ॥४२॥
एवं चिंतेमाणी उद्धठिया गरुयदुक्खपभारा । पुरओ कयसुप्पा सा चिट्ठइ पुरओ पलोयन्ती ॥४३॥
जइ कोइ एज्ज अतिही ता अट्ठमपारणं करेमि अहं । एए च्चिय कुम्मासे दाउमवत्थोचिए तस्स ॥४४॥
एवं चिंतंतीए तीए पुन्नाणुभावओ सामी । संपत्तो तं दट्ठुं खणेण जाया विगयदुक्खा[१] ॥४५॥
गुरुहरिसभरा चिंतइ दरिद्दगेहे हिरन्नवुट्ठि व्व । संपत्तो मे भयवं कयपुन्नाए इहावसरे ॥४६॥
तो सुप्पं दरिसित्ता पयमेगं काउमेलुगाबाहिं । बीयं चंऽतो पभणइ भयवमणुग्गहह कुम्मासे ॥४७॥
पुन्नो अभिग्गहो मे दव्वाइचउव्विहो वि इय नाउं । कुम्मासग्गहणत्थं पसारिओ सामिणा पाणी ॥४८॥
दिन्ना य चंदणाए पंच य दिव्वाणि पाउभूयाणि । जिणपारणगं जायं पंचदिणेणूण छम्मासे ॥४९॥
देवा य सन्निवइया केसा तीए य वरतरा जाया । तुट्टा तडत्ति नियला सुवन्नमणिनेउरा जाया ॥५०॥
अमरेहि य सा विहिया सव्वालंकारभू[२]सियावयवा । पहयमहिरेणु उदयं वुट्ठं हरिचंदणुम्मीसं ॥५१॥
मुक्काइं अइभरेणं दसद्धवन्नाइं सुरहिकुसुमाइं । पहयाओ दंदुहीओ चेलुक्खेवो कओ परमो ॥५२॥

सा तदवस्था स्मृत्वा पितृगृहं हस्तीनीव निजयूथम् । मुक्ताफलसदृशानि रोदित्यश्रूणि मुञ्चन्ती ॥ ४० ॥
जनकवियोगं प्राप्ता जननीमरणं च बन्धुविरहं च । परदेशमिमामवस्थां हा हा ! दैवस्य परिणामः ॥ ४१ ॥
तादृशकुलजातायास्तादृशशीलाया ईदृशं व्यसनम् । ततो नास्ति साऽवस्था कर्मवशा या न संपतति ॥ ४२ ॥
एवं चिन्तयन्त्युर्ध्वस्थिता गुरुकदुःखप्राग्भारा । पुरतः कृतसूर्पा सा तिष्ठति पुरतः प्रलोकयन्ती ॥ ४३ ॥
यदि कोऽपीयेदतिथिस्तदाऽष्टमपारणं करोम्यहम् । एतांश्चैव कुल्माषान्दत्वाऽवस्थोचितांस्तस्य ॥ ४४ ॥
एवं चिन्तयन्त्यास्तस्याः पुण्यानुभावतः स्वामी । संप्राप्तस्तं दृष्ट्वा क्षणेन जाता विगतदुःखा ॥ ४५ ॥
गुरुहर्षभृता चिन्तयति दरिद्रगृहे हिरण्यवृष्टिरिव । संप्राप्तो मे भगवान् कृतपुण्याया इहावसरे ॥ ४६ ॥
ततः सूर्पं दर्शयित्वा पदमेकं कृत्वेलुकाबहिः । द्वितीयं चान्तः प्रभणति भगवन्नुगृह्णीत कुल्माषान् ॥ ४७ ॥
पूर्णोऽभिग्रहो मे द्रव्यादिचतुर्विधोऽपीति ज्ञात्वा । कुल्माषग्रहणार्थं प्रसारितः स्वामिना पाणिः ॥ ४८ ॥
दत्ताश्च चन्दनया पञ्च च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि । जिनपारणकं जातं पञ्चदिनेनोने षण्मासे ॥ ४९ ॥
देवाश्च सन्निपातिकाः केशास्तस्याश्च वरतराजाताः । त्रुटितास्तडिति निगडाः सुवर्णमणिनेपूरा जाताः ॥ ५० ॥
अमरैः सा विहिता सर्वालङ्कारभूषितावयवा । प्रहतमहिरेणुमुदकं वृष्टं हरिचन्दनोन्मिश्रम् ॥ ५१ ॥
मुक्तान्यतिभारेण दशार्द्धवर्णानि सुरभिकुसुमानि । प्रहता दुन्दुभ्यश्चेलोत्क्षेपः कृतः परमः ॥ ५२ ॥

---

१. विगयसोला-रं० । २. ब्भूसिया बाला-रं० ।

घुट्ठं च 'अहो दाणं' गयणे सक्को समागओ तुट्ठो । कोडीओ अद्धतेरस तहिं सुवन्नस्स वुट्ठाओ ॥५३॥
गायंति य नच्चंति य वायंति पढंति तह य मुंचंति । उक्किट्ठनायममरा पारणए तम्मि वीरस्स ॥५४॥
जाओ पुरे पघोसो चंदणबालाए पुन्नकलियाए । पाराविओ मुणिंदो धणावहो तो समावन्नो ॥५५॥
राया मिगावई वि य नंदाऽमच्चो य आगया तत्थ । दट्ठुं पारणमहिमं परमपमोयं गया सव्वे ॥५६॥
दहिवाहणस्स रन्नो संपुलओ नाम कंचुइज्जो उ । बंदित्तेणाऽऽणीओ सो पेच्छिय चंदणकुमारिं ॥५७॥
चलणेसु पडिय रोवइ रन्ना पुट्ठो य का इमा कन्ना ? । दहिवाणस्स रन्नो एसा धूय त्ति सो आह ॥५८॥
तं आलिंगिय पभणइ मिगावई एस भइणिधूया मे । राया हिरन्नवुट्ठिं गेण्हंतो वारिओ हरिणा ॥५९॥
जस्सेसा भो ! वियरइ तस्स इमा होइ पुच्छिया सा य । तायस्स मए दिन्नं हिरन्नमेयं ति सा भणइ ॥६०॥
सक्केण निवो भणिओ एसा वीरस्स सिस्सिणी पढमा । होही चरमसरीरा केवलनाणम्मि उप्पन्ने ॥६१॥
ता संगोवाहि तुमं परिवालसु आयरेण परमेणं । रन्ना तह त्ति भणिउं कन्नंतेउरगिहे नीया ॥६२॥
मूला धणावहेणं निच्छूढा धाडिया तह जणेणं । निंदित्ता खिंसित्ता विगोइया नयरमज्झम्मि ॥६३॥
सो वि हु चंदणबाला उप्पन्ने केवलम्मि वीरस्स । संविग्गा पव्वइया ठविया य पवित्तिणिपयम्मि ॥६४॥
ता एसा इहइं चिय जाया कल्लाणभायणं तत्तो । उप्पन्नविमलनाणा संपत्ता सासयं ठाणं ॥६५॥
एयं च चंदणज्जाकहाणयं सुत्तकारिकविरइयं । सव्वं तयक्खरं चिय गुरुबहुमाणाओ लिहियं ति ॥६६॥

॥ चन्दनार्याख्यानकं समाप्तम् ॥१०॥

घृष्टं 'चाहोदानं' गगने शक्र: समागतस्तुष्ट: । कोटयोऽर्द्धत्रयोदश तत्र सुवर्णस्य वृष्टा: ॥ ५३ ॥
गायन्ति च नृत्यन्ति च वाद्यन्ति पठन्ति तथा च मुञ्चन्ति । उत्कृष्टनादममरा: पारणके तस्मिन्वीरस्य ॥ ५४ ॥
जात: पुरे प्रघोषश्चन्दनबालया पुण्यकलितया । पारयितो मुनीन्द्रो धनावहस्तत: समापन्न: ॥ ५५ ॥
राजा मृगावत्यपि च नन्दाऽमात्यश्चागतास्तत्र । दृष्ट्वा पारणमहिमां परमप्रमोदं गता: सर्वे ॥ ५६ ॥
दधिवाहनस्य राज्ञ: संपुलकोनाम कञ्चुकी तु । बन्दित्वेनाऽऽनीत: स दृष्ट्वा चन्दनाकुमारीम् ॥ ५७ ॥
चरणयो: पतित्वा रोदिति राज्ञा पृष्टश्च केमा कन्या ? । दधिवाहनस्य राज्ञो दुहितेति स आह ॥ ५८ ॥
तामालिङ्ग्य प्रभणति मृगावत्येषा भगिनीदुहिता मे । राजा हिरण्यवृष्टिं गृह्णन् वारितो हरिणा ॥ ५९ ॥
यस्यैषा भो ! वितरति तस्येमा भवति पृष्टा सा च । तातस्य मया दत्तं हिरण्यमेतदिति सा भणति ॥ ६० ॥
शक्रेण नृपो भणित एषा वीरस्य शिष्या प्रथमा । भविष्यति चरमशरीरा केवलज्ञान उत्पन्ने ॥ ६१ ॥
तत: संगोपय त्वं परिपालयादरेण परमेण । राज्ञा तथेति भणित्वा कन्यान्त:पुरगृहे नीता ॥ ६२ ॥
मूला धनावहेन निष्कासिता तथा जनेन । निन्दिता खिंसिता विगोपिता नगरमध्ये ॥ ६३ ॥
सापि खलु चन्दनबालोत्पन्ने केवले वीरस्य । संविग्ना प्रव्रजिता स्थापिता च प्रवर्तिनिपदे ॥ ६४ ॥
तावदेषेहैव जाता कल्याणभाजनं तत: । उत्पन्नविमलज्ञाना संप्राप्ता शाश्वतं स्थानम् ॥ ६५ ॥
एतच्च चन्दनार्याकथानकं सूत्रकारिकविरचितम् । सर्वं तदक्षरमेव गुरुबहुमानतो लिखितमिति ॥ ६६ ॥

॥ चन्दनार्याख्यानकं समाप्तम् ॥ १० ॥

इदानीं मूलदेवाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

पउरपुर-गरुयपव्वयफणिवइकयभार भारहे वासे । अत्थि विदेहाविसए कुसुमपुरं नाम नयर-न्ति ॥१॥

दीसंति जत्थ निच्चं नरमणिसंदोहभूसियाऽऽवासा । नयनायसंपयओ नयपरमो नरवई तत्थ ॥२॥

विक्खायसयलनरवइसिरोमणी कुसुमसेहरो नाम । दुव्वारवइरिवारणनिवारण जस्स भुयदंडा ॥३॥

जम्मि जयलालसम्मि वसुंधराभारमुव्वहंतम्मि । उत्तिन्नभरो कमढो रइसुहलीलं समुव्वहइ ॥४॥

सयलंतेउरसारा विसालकुलसंभवा विसालच्छी । नियरूवोवहसियतियससुंदरी सुंदरी भज्जा ॥५॥

तीए सह विसयसोक्खं अणुहवमाणस्स तस्स सुहियस्स । अइकमइ कोइ कालो रज्जधुराधरणधवलस्स ॥६॥

कालेण समुप्पन्नो पुन्नज्जियसव्वसुंदरावयवो । सुहसुमिणसूइयासेसलक्खणजुओ सुओ तस्स ॥७॥

कयमूलदेवनामो सुललियकरपंचधाइदुल्ललिओ । पणइयणमणभिरामो स बालभावं अइक्कन्तो ॥८॥

निस्सेसकलाकुसलो विलसिरलायन्नमणहरसरीरो । तरूणियणमणभिरामं संपत्तो जोव्वणारंभं ॥९॥

अह अन्नया कयाई अणेगभडकोडिसंकडत्थाणे । जा चिट्ठइ नरनाहो ता पडिहारेण विन्नत्तं ॥१०॥

पहु ! पउरपउरलोगो रायदुवारम्मि चिट्ठइ [१]निसिद्धो । पहुपायपउमदंसणसमुस्सुओ को समाएसो ? ॥११॥

अह भणइ नरवरिंदो दसणावलिकिरणधवलियदियन्तो । रे ! झत्ति तं पवेससु मह पुरओ पउरपुरलोयं ॥१२॥

इदानीं मूलदेवाख्यानकमारभ्यते ।

प्रचूरपुरगुरुकपर्वतफणिपतिकृतभारे भारते वर्षे । अस्ति विदेहाविषये कुसुमपुरं नाम नगरमिति ॥ १ ॥

दृश्यन्ति यत्र नित्यं नरमणिसंदोहभूषितावासाः । नयन्यायसंपत्पदो नयपरमो नरपतिः तत्र ॥ २ ॥

विख्यातसकलनरपतिशिरोमणी कुसुमशेखरो नाम । दुर्वारवैरिवारणनिवारणौ यस्य भूजदण्डौ ॥ ३ ॥

यस्मिञ्जयलालसे वसुन्धराभारमुद्ववहति । उत्तीर्णभारः कमठो रतिसुखलीलां समुद्वहति ॥ ४ ॥

सकलान्तःपुरसारा विशालकुलसम्भवा विशालाक्षी । निजरुपोपहसितत्रिदशसुन्दरी सुन्दरी भार्या ॥ ५ ॥

तस्याः सह विषयसौख्यमनुभवतस्तस्य सुखितस्य । अतिक्रामति कोऽपि कालो राज्यधूराधरणधवलस्य ॥ ६ ॥

कालेन समुत्पन्नः पुण्यार्जितसर्वसुन्दरावयवः । शुभस्वप्नसूचिताशेषलक्षणयुक्तः सुतस्तस्य ॥ ७ ॥

कृतमूलदेवनामः सुललितकरपञ्चधात्रीदुर्ललितः । प्रणयिजनमनोऽभिरामः स बालभावमतिक्रान्तः ॥ ८ ॥

निःशेषकलाकुशलो विलसल्लावण्यमनोहरशरीरः । तरुणिजनमनोऽभिरामं संप्राप्तो यौवनारम्भम् ॥ ९ ॥

अथान्यदा कदाचिदनङ्गभटकोटिसंकीर्णस्थाने । यावत्तिष्ठति नरनाथस्तावत्प्रतिहारेण विज्ञप्तम् ॥ १० ॥

प्रभो ! प्रचूरपौरलोको राजद्वारे तिष्ठति निषिद्धः । प्रभुपादपद्मदर्शनसमुत्सुकः कः समादेशः ? ॥ ११ ॥

अथ भणति नरवरेन्द्रो दशनावलिकिरणधवलितदिगन्तः । रे ! शीघ्रं तं प्रवेशय मम पुरतः प्रचूरपुरलोकम् ॥ १२ ॥

---

१. निविट्ठों-रं० ।

नरवइआएसेणं पवेसिओ विहियउचियसम्माणो । धरणीयलमिलियनिडालमंडलो पणमिय निविट्ठो ॥१३॥
तो भणइ नरवरिंदो किं मह दंसणसमुस्सुओ लोओ । परचक्क-चोर-चरडाइडामरं किं नु मह रज्जे ? ॥१४॥
किं वा को वि हु असरिसपसायसंपत्तिदाणदुल्ललिओ । कुणइ पराभवमासंधिओ[१] जणो रायउलठाई ॥१५॥
एवं जाव पयंपइ नरनाहो विहियपणयसम्माणो । ता मउलिमिलियकरकमलसंपुडो पभणए सेट्ठी ॥१६॥
तइ पालंते जयपहु ! अइपयडपयावपहयपडिवक्खे । सुविणे वि देव ! नऽन्नो अम्हं भुवणे वि भयहेऊ ॥१७॥
किंतु परदाररसिओ नयपालियपरियणो महियमित्तो । परमायायाररओ बंदीकयसयलपउरजणो ॥१८॥
खत्तेण गहियरह-गय-माणिक्को हयपहाणपत्तियणो । रायचरिएहिं कुमरो एवं नयरं महइ देव ! ॥१९॥
इय निसुणिय पउरजणे विसज्जए विहियउचियपडिवत्ती । अंतगुरुकोवहुयवहधूमसिहासामलच्छाओ ॥२०॥
एत्थंतरम्मि कुमरो हारविरायंतवियडवच्छयलो । पिउपायपणमणकए समागओ तत्थ अत्थाणे ॥२१॥
पणमंतसयलसामंतमउलिमणिरयणकिरणकच्छुरिए । पयकमले मिलियनिडालमंडलो पणमइ कुमारो ॥२२॥
जंपेइ महीवालो कयभिउडीभंगभासुरनिडालो । खत्तियणगोत्तखंपण ! अवसर मह दिट्ठिपसराओ ॥२३॥
कुमरो वि गुरुपराभवमन्नुभरुप्पन्नअसरिसामरिसो । पिइपरुसवयणपरिभवमसहंतो चिंतए हियए ॥२४॥
उज्झंति धणं मुंचंति परियणं महियलं परिचयंति । मरणे वि महासत्ता न उणो माणं परिहरंति ॥२५॥

नरपत्यादेशेन प्रवेशितो विहितोचितसन्मानः । धरणीतलमिलितनिडालमण्डलः प्रणम्य निविष्टः ॥ १३ ॥
ततो भणति नरवरेन्द्रः किं मम दर्शनसमुत्सुको लोकः । परचक्रचौर-चरटादिडमरं किं नु मम राज्ये ? ॥ १४ ॥
किं वा कोऽपि खलु असदृशप्रसादसंप्राप्तिदानदुर्ललितः । करोति पराभवं[१] विश्वस्तो जनो राजकुलस्थायी ॥ १५ ॥
एवं यावत्प्रजल्पति नरनाथो विहितप्रणतसन्मानः । ततो मौलिमिलितकरकमलसम्पुटः प्रभणति श्रेष्ठी ॥ १६ ॥
त्वयि पालयति जगत् प्रभो ! अतिप्रकटप्रतापप्रहतप्रतिपक्षे । स्वप्नेऽपि देव ! नान्योऽस्माकं भुवनेऽपि भयहेतुः ॥ १७ ॥
किन्तु परदाररसिको नयपालितपरिजनो महितमित्रः । परमायाचाररतो बन्दीकृतसकलपौरजनः ॥ १८ ॥
क्षात्रेण गृहीतरथ-गज-माणिक्यो हयप्रधानपत्तिजनः । राजचरित्रैः कुमार एवं नगरं काङ्क्षति देव ! ॥ १९ ॥
इति निश्रुत्य पौरजनं विसर्जति विहितोचितप्रतिपत्तिः । अन्तर्गुरुकोपहुतवहधुम्रशिखाश्यामलच्छायः ॥ २० ॥
अत्रान्तरे कुमारो हारविराजद्विकटवक्षःस्थलः । पितृपादप्रणमनकृते समागतस्तत्राऽऽस्थाने ॥ २१ ॥
प्रणमत्सकलसामन्तमौलिमणिरत्नकिरणकच्छुरिते[२] । पदकमले मिलितनिडालमण्डलः प्रभणति कुमारः ॥ २२ ॥
जल्पति महीपालः कृतभृकुटीभङ्गभासुरनिडालः । क्षत्रिजनगोत्रक्षम्पन ! अपसर मम दृष्टिप्रसरात् ॥ २३ ॥
कुमारोऽपि गुरुपराभवमन्युभरोत्पन्नासदृशामर्षः । पितृपरुषवचनपरिभवमसहमानश्चिन्तयति हृदि ॥ २४ ॥
उज्झन्ति धनं मुञ्चन्ति परिजनं महितलं परित्यजन्ति । मरणेऽपि महासत्त्वा न पुन र्मानं परिहरन्ति ॥ २५ ॥

---

१. ओसंधिअ-विश्वस्त । २. व्याप्त इत्यर्थः ।

अवि मरणमसमसाहसगिरिभइरवपडणवड्डियुच्छाहे । अहिलसइ महासत्तो न उणो माणं परिच्चयइ ॥२६॥
इय चिंतिऊण कुमरो पणमित्ता पायपंकयं रन्नो । अत्थाणाओ नियत्तो तत्तो रयणीए जायाए ॥२७॥
अहिमाणधणो नयराओ निग्गओ असमसाहससहाओ । वइरिकरिकुम्भदारणकरकलियकरालकरवालो ॥२८॥
अणवरयमक्कमंतो गामाऽऽगरनगरमंडियं वसुहं । गुडियकयवामणंगो संपत्तो नयरिमुज्जेणिं ॥२९॥
तत्थ दुरोदरदइओ निच्चं कलगीयदिन्नमइपसरो । अन्नायकुल-परक्कमपरमत्थो निवसइ सुहेण ॥३०॥
अह अन्नया य दिट्ठो किन्नरकलगीयवावडो तत्थ । नियभवणमत्तवारणपरिविलसिरदेवदत्ताए ॥३१॥
गीयाणुरायरत्ता वामणए तम्मि पेसए दासिं । साणुणयं सप्पणयं ससिणेहं सा वि तं भणइ ॥३२॥
वामणय ! तुम्ह दंसणसमुस्सुया सामिणी समाइसइ । मह किन्नर ! मणहरणो होसि तुमं गिहपवेसेण ॥३३॥
तो भणइ मूलदेवो का सा तुह सामिणी ? तओ भणइ । सोहग्गजयपडाया पणंगणा देवदत्त त्ति ॥३४॥
अह भणइ मूलदेवो विस्सासो मह न अत्थि वेसासु । खणरत्त-विरत्तासुं अवरा-ऽवरहरियचित्तासुं ॥३५॥
इयरासु वि जुवईसुं न वीससेयव्वमेत्थ कुडिलासु । विसमविससन्निभासुं किं पुण वेसासु विस्सासो ? ॥३६॥
अन्नोन्ननेहनिब्भररसाणुविद्धो न जत्थ सब्भावो । रूवावहरियदेहो न वामणो तत्थ अल्लियइ ॥३७॥
जा एवं नाऽऽगच्छइ ता साहइ सामिणीए सा गंतुं । सा वि पुणो वि भणावइ दासीवयणेण वयणमिणं ॥३८॥
आगच्छ एक्कवारं उवरोहेणावि मज्झ गेहम्मि । दक्खिन्ननीरनिहिणो हवंति जेणेत्थ सप्पुरिसा ॥३९॥

अपि मरणमसमसाहसगिरिभैरवपतनवर्धितोत्साहान् । अभिलषति महासत्त्वो न पुन र्मानं परित्यजति ॥ २६ ॥
इति चिन्तयित्वा कुमरः प्रणम्य पादपङ्कजं राज्ञः । आस्थानान्निवृतःस्ततो रजन्यां जातायाम् ॥ २७ ॥
अभिमानधनो नगरान्निर्गतोऽसमसाहससहायः । वैरिकरिकुम्भदारणकरकलितकरालकरवालः ॥ २८ ॥
अनवरतमाक्रामन्ग्रामाऽऽकरनगरमण्डितां वसुधाम् । गुटिकाकृतवामनाङ्गः सम्प्राप्तो नगरीमुज्जैनीम् ॥ २९ ॥
तत्र दूरोदरदयितो नित्यं कलगीतदत्तमतिप्रसरः । अज्ञातकुल-पराक्रमपरमार्थो निवसति सुखेन ॥ ३० ॥
अथान्यदा च दृष्टः किन्नरकलगीतव्यापृतस्तत्र । निजभवनमत्तवारणपरिविलसद्देवदत्तया ॥ ३१ ॥
गीतानुरागरक्ता वामनके तस्मिन्प्रेषयति दासीम् । सानुनयं सप्रणयं सस्नेहं साऽपि तं भणति ॥ ३२ ॥
वामनक ! तव दर्शनमुत्सुका स्वामिनी समादिशति । मम किन्नर ! मनोहरणो भव त्वं गृहप्रवेशेन ॥ ३३ ॥
ततो भणति मूलदेवः का सा तव स्वामिनी ? ततो भणति । सौभाग्यजयपताका पण्यांगना देवदत्तेति ॥ ३४ ॥
अथ भणति मूलदेवो विश्वासो मम नास्ति वेश्यासु । क्षणरक्त-विरक्तासु अपरा-परहृतचितासु ॥ ३५ ॥
इतरास्वपि युवतिषु न विश्वसितव्यमत्र कुटिलासु । विषमविषसन्निभासु किं पुनर्वेश्यासु विश्वासः ? ॥ ३६ ॥
अन्योन्यस्नेहनिर्भररसानुविद्धो न यत्र सद्भावः । रुपापहृतदेहो न वामनस्तत्रालिनाति ॥ ३७ ॥
यावदेवं नाऽऽगच्छति तावत्कथयति स्वामिन्याः सा गत्वा । सापि पुनरपि भणयति दासीवचनेन वचनमिदम् ॥३८॥
आगच्छैकवारमुपरोधेनापि मम गृहे । दाक्षिण्यनीरनिधयो भवन्ति येनात्र सत्पुरुषाः ॥ ३९ ॥

तो अणुमन्नियगमणो जा जाइ खणंतरं तमणुलग्गो । ता मुट्ठिपहारेणं झड त्ति पउणीकया खुज्जा ॥४०॥

विन्नाण-वयणपगरिस-किन्नरकलगीयं[1]-गुणविसेसं च । कलिऊण तस्स गणिया अहिययरं रंजिया हियए ॥४१॥

ताहे वामणगो वि हु पेच्छइ सव्वंगसुंदरावयवं । सो देवदत्तगणियं रइगुणमाणिक्कभंडारं ॥४२॥

तथा हि-

सिंगारजलहिलहरी सयलजुवाणेक्कमणवसीकरणं । जयविजयवेजयंती जयेक्ककामस्स कामस्स ॥४३॥

सयलजणनयणअंजणअमियसलाया विलासरइभवणं । विहिविन्नाणपगरिसो मुत्तिमई मोहवल्लि व्व ॥४४॥

एवं संपेच्छंतो संपत्तो तीए वासभवणम्मि । कयसमुचियोवयारो उवविट्ठो तीए पासम्मि ॥४५॥

तो कुसलवत्तपुव्वं आउच्छइ सव्वमेव वुत्तंतं । सो वि समयाणुरूवं पयासए किं पि तप्पुरओ ॥४६॥

एत्थंतरम्मि सा वि हु तप्पच्चक्खं पयासइ पहिट्ठा । नियगीयपरमपगरिसमणुरंजियनिययपरिवारा ॥४७॥

अह जंपइ वामणओ परियणकयचाडुरंजियं गणियं । अप्पुव्वगेयपगरिसपरिस्समो तुह परं किंतु ॥४८॥

वालाणुविद्ध तंती वंसो सुद्धो न तुम्ह वीणाए । विउसाण वन्नणिज्जो सद्दो न हु तेण रमणीओ ॥४९॥

तव्वयणजायकोऊहलेण सम्मं निरूवए जाव । ता तंतीए पेच्छइ वालं वंसे य पाहाणं ॥५०॥

तग्गुणरंजियचित्ता पणंगणा भणइ देवदत्ता सा । वामणय ! मणो मह गयलालसं कुणसु सकयत्थं ॥५१॥

ततोऽनुमतगमनो यावद्याति क्षणान्तरं तामनुलग्नः । तावन्मुष्टिप्रहारेण शीघ्रं प्रगुणीकृता कुब्जा ॥ ४० ॥

विज्ञान-वचनप्रकर्ष-किन्नरकलगीत-गुणविशेषं च । कलयित्वा तस्य गणिकाधिकतरं रञ्जिता हृदि ॥ ४१ ॥

तदा वामनोऽपि खलु पश्यति सर्वाङ्गसुन्दरावयवाम् । स देवदत्तागणिकां रतिगुणमाणिक्यभण्डागारम् ॥ ४२ ॥

तथा हि -

श्रृङ्गारजलधिलहरी सकलयुवानैकमनोवशीकरणम् । जयविजयवैजयन्तीजयैककामस्य कामस्य ॥ ४३ ॥

सकलजननयनाञ्जनामृतशलाका विलासरतिभवनम् । विधिविज्ञानप्रकर्षो मूर्तिमती मोहवल्लीव ॥ ४४ ॥

एवं सम्पश्यन्सम्प्राप्ततस्या वासभुवने । कृतसमुचितोपचार उपविष्टस्तस्याः पार्श्वे ॥ ४५ ॥

ततः कुशलवार्तापूर्वमापृच्छति सर्वमेव वृत्तान्तम् । सोऽपि समयानुरुपं प्रकाशते किमपि तत्पुरतः ॥ ४६ ॥

अत्रान्तरे सापि खलु तत्प्रत्यक्षं प्रकाशते प्रहृष्टा । निजगीतपरमप्रकर्षमनुरञ्जितनिजकपरिवारा ॥ ४७ ॥

अथ जल्पति वामनकः परिजनकृतचाटुरञ्जितां गणिकाम् । अपूर्वगेयप्रकर्षपरिश्रमस्तव परं किन्तु ॥ ४८ ॥

वालानुविद्धा तन्त्री वंशः शुद्धो न तव वीणायाः । विदुषाणां वर्णनीयः शब्दो न खलु तेन रमणीयः ॥ ४९ ॥

तद्वचनजातकौतूहलेन सम्यक् पश्यति यावत् । तावत्तन्त्र्यां पश्यति वालं वंशे च पाषाणम् ॥ ५० ॥

तद्गुणरञ्जितचित्ता पणाङ्गणा भणति देवदत्ता सा । वामनक ! मनो मम गीतलालसं कुरु सकृतार्थम् ॥ ५१ ॥

---

१. व्यमुणिविसेसं रं० ।

उद्दामरणंगणवीरपुरिसचरियाणुसारिचरिएण । सर-गामविहियमुच्छेण तेण आसारिया वीणा ॥५२॥

तो कुमरगीयसंजायपरवसा हरियमाणसा सहसा । तड्डुवियकन्नजुयला करिणी परिहरिय करकवलं ॥५३॥

संजायविम्हया सा चिंतइ हिययम्मि अत्तणो गणिया । एवंविहगुणकलिओ सामन्नो होइ न हु एस ॥५४॥

ता कारणेण केणइ होयव्वमवस्स एत्थ रूवम्मि । इय चिंतिऊण हियए वामणओ तीए भोयविओ ॥५५॥

तो भोयणावसाणे एगंते नेहनिब्भरं भणिओ । कहसु नियकुल-परक्कमपरमत्थं मज्झ एत्ताहे ॥५६॥

तो तेण नेहरंजियमणेण सव्वं पयासियं तीए । उग्गलियगुडियभावा संजायसहावरूवेण ॥५७॥

सब्भावरूयरंजियमणाए तो तीए देवदत्ताए । तरुणियणजणियकामो कामो व्व रईए सो दिट्ठो ॥५८॥

पभमइ य नेहसारं सा रंजियमाणसा विणयनियरा । सह रयणाहरणेहिं जीयं पि हु मह तुहाऽऽयत्तं ॥५९॥

अवहरियपरोप्परमाणसाण अन्नोन्ननेहसाराण । जा जाइ कोइ कालो परिवज्जिअवरकज्जाण ॥६०॥

तो तीए अइपसंगं नाऊण कुट्टणी[१] भणइ इवं । परिहरसु पुत्ति ! एयं धणहीणं नाणदुवियड्ढं ॥६१॥

जेण-

पाएण इयररमणी वि रच्चए उत्तमे वि न दरिद्दे । वेसाण पुण विसेसो नियदेहविढत्तदविणाण ॥६२॥

तथा च-

कयकूडकवडचाडुयरइकलिया कोढियं पि कामेइ । परिहरइ रइविरत्ता धणहीणं कामएवं पि ॥६३॥

उद्दामरणाङ्गणवीरपुरुषचरितानुसारिचरितेन । स्वरग्रामविहितमूर्च्छेन तेनासारिता वीणा ॥ ५२ ॥

ततः कुमरगीतसञ्जातपरवशा हृतमानसा सहसा । ताडितकर्णयुगला करिणी परिहृत करकवलम् ॥ ५३ ॥

सञ्जातविस्मया सा चिन्तयति हृदये आत्मनो गणिका । एवंविधगुणकलितः सामान्य भवति न खल्वेषः ॥ ५४ ॥

ततः कारणेन केनचिद्भवितव्यमवश्यमत्र रुपे । इति चिन्तयित्वा हृदये वामनकस्तया भोजितः ॥ ५५ ॥

ततो भोजनावसाने एकान्ते स्नेहनिर्भरं भणितः । कथय निजकुलपराक्रमपरमार्थं ममेदानीम् ॥ ५६ ॥

तदा तेन स्नेहरञ्जितमनसा सर्वं प्रकाशितं तस्याः । उद्गालितगुटिकाभावात्सञ्जातस्वभावरुपेण ॥ ५७ ॥

स्वभावरुपरञ्जितमनसा ततस्तया देवदत्तया । तरुणिजनजनितकामः काम इव रत्या स दृष्टः ॥ ५८ ॥

प्रभणति च स्नेहसारं सा रञ्जितमानसा विनयनिकरा । सह रत्नाभरणै र्जीवितंमपि खलु मम तवाऽऽयत्तम् ॥ ५९ ॥

अपहृतपरस्परमानसयोरन्योन्यस्नेहसारयोः । यावद्याति कोऽपि कालः परिवर्जितापरकार्ययोः ॥ ६० ॥

ततस्तस्या अतिप्रसङ्गं ज्ञात्वा कुट्टिनी भणत्येवम् । परिहर पुत्रि ! एनं धनहीनं ज्ञानदुर्विग्धम् ॥ ६१ ॥

येन -

प्रायेणेतररमण्यपि रचयत्युतमेऽपि न दरिद्रे । वेश्यानां पुनर्विशेषो निजदेहार्जितद्रविणानाम् ॥ ६२ ॥

कृत कूटकपटचाटूकरतिकलिता कुष्टिनमपि कामयति । परिहरति रतिविरक्ता धनहीनं कामदेवमपि ॥ ६३ ॥

---

१. कुट्टिणी-रं० ।

वीणा-विणोय-विन्नाणपगरिसुप्पन्नकित्तिरमणीयं । जइ वि हु एयं तह विं हु धणहीणं पुत्ति ! परिहरसु ॥६४॥
तो भणइ देवदत्ता बहुवेणिपरंपरागया एसा । किं अम्मो ! किज्जिस्सइ रिद्धीकारट्टए तुज्झ ? ॥६५॥
एत्तो य तत्थ निवसइ [१]सुरवइअयलो व्व अयलवरसेट्ठी । सइभद्दसालकलिओ वररयणो कणयकडओ य ॥६६॥
सो अन्नया य गणियं वसंतमासम्मि विविहकीलाहिं । उज्जाणे कीलंतिं पेच्छइ सह मूलदेवेण ॥६७॥
तो चिंतइ सो हियए कह होही संगमो मह इमाए ? । अहवा दव्वुवयारो पणंगणाणं वसीकरणं ॥६८॥
इय चिंतिउं पयट्टो तीए उवयरिउमत्थजाएण । उवरोहकयसिणेहा सा वि हु अभिरमइ तं अयलं ॥६९॥
एवं च जंति दियहा सद्धिं अयलेण देवदत्ताए । परमच्चंतसिणेहा सया वि सा मूलदेवम्मि ॥७०॥
अह सा पुणरवि भणिया अक्काए निद्धणेण किह वच्छे । ससएण व खोडेणं अणेण वणवाडओ रुद्धो ? ॥७१॥
तो भणइ देवदत्ता गुणेहिं रत्ता धणम्मि न हु अंब ! । अंबा वि भणइ वच्छे ! अयलो वि हु गुणगमावासो ॥७२॥
तो भणइ देवदत्ता जइ एवं अंब ! किज्जउ परिक्खा । इय भणिए नियदासिं चवलं अयलम्मि पेसेइ ॥७३॥
भणइ तओ सा गंतुं पुरओ सेट्ठिस्स वयणमिणमेवं । जह तुज्झ वल्लहाए इक्खूहिं पओयणं अज्ज ॥७४॥
तो अयलो इक्खूणं सगडं भरिऊण पेसए तीए । तो भणइ देवदत्ता पेच्छाहं अम्ब ! किं करिणी ? ॥७५॥
जेण सडाल-समूलयइक्खूणं सगडयं भरेऊणं । मह पेसिय-न्ति विन्नाणपगरिसं पेच्छ अयलस्स ॥७६॥
संपइ पुण विन्नाणं [२]अम्ब ! निरिक्खेसु मूलदेवस्स । इय भणिउं तं दासिं संपेसइ मूलदेवम्मि ॥७७॥

वीणा-विनोद-विज्ञानप्रकर्षोत्पन्नकीर्तिरमणीयम् । यद्यपि खलु एनं तथापि खलु धनहीनं पुत्रि ! परिहर ॥ ६४ ॥
ततो भणति देवदत्ता बहुवेणिपरम्परागतेषा । किमम्ब ! करिष्यते ऋद्धिः कारट्टके तव ? ॥ ६५ ॥
इतश्च तत्र निवसति सुरपत्यचल इवाचलवरश्रेष्ठी । सदाभद्रशालकलितो वररत्नः कनककटकश्च ॥ ६६ ॥
सोऽन्यदा च गणिकां वसन्तमासे विविधक्रीडाभिः । उद्याने क्रीडन्तीं पश्यति सह मूलदेवेन ॥ ६७ ॥
तदा चिन्तयति स हृदि कथं भविष्यति सङ्गमो ममानया ? । अथवा द्रव्योपचारः पण्याङ्गनानां वशीकरणम् ॥६८॥
इति चिन्तयित्वा प्रवृत्तस्तस्या उपचरितुमर्थजातेन । उपरोधकृतस्नेहा सापि खल्वभिरमते तमचलम् ॥ ६९ ॥
एवं च यान्ति दिवसा सार्द्धमचलेन देवदत्तायाः । परमत्यन्तस्नेहा सदापि सा मूलदेवे ॥ ७० ॥
अथ सा पुनरपि भणिताऽऽक्कया निर्धनेन कथं वत्से ! । शशकेनेव खञ्जेनानेन वनवाटको रुद्धः ? ॥ ७१ ॥
तदा भणति देवदत्ता गुणै रक्ता धने न खल्बम्बा । अम्बापि भणति वत्से ! अचलोऽपि खलु गुणगणावासः ॥७२ ॥
ततो भणति देवदत्ता यद्येवमम्ब ! क्रियते परीक्षा । इति भणिते निजदासीं चपलामचले प्रेषयति ॥ ७३ ॥
भणति ततः सा गत्वा पुरतः श्रेष्ठिनो वचनमिदमेवम् । यथा तव वल्लभाया इक्षुभिः प्रयोजनमद्य ॥ ७४ ॥
ततोऽचल इक्षूणां शकटं भृत्वा प्रेषयति तस्याः । तदा भणति देवदत्ता पश्याहमम्ब ! किं करिणी ? ॥ ७५ ॥
येन सशाख-समूलकेक्षूणां शकटकं भृत्वा । मम प्रेषितमिति विज्ञानप्रकर्षं पश्याचलस्य ॥ ७६ ॥
सम्प्रति पुनर्विज्ञानमम्ब ! निरीक्षस्व मूलदेवस्य । इति भणित्वा तां दासीं संप्रेषयति मूलदेवे ॥ ७७ ॥

---

१. सुरपतिश्चचलः-मेरुः । २. ओज्ज रं० ।

तो सा साहइ गंतु जूयप्फलयम्मि मूलदेवस्स । जह तुज्झ अज्ज दइया इच्छूवंछं समुव्वहइ ॥७८॥

तो तेण वराडगदसदुगेण एगं गहाय वरलट्ठिं । सिग्धमसिधेणुछोल्लियगंडलए काउमचिरेण ॥७९॥

अवरवराडगदसदुगसंगहियसरावसंपुडे खिवइ । पक्खिविय चाउजायं सूलासुं पोइउं तत्तो ॥८०॥

पट्ठवइ तीए तग्गुणरंजियहियया पजंपए सा वि । जूयार-अयलविन्नाणअंतरं एरिसं अंब ॥८१॥

तो कुट्टणी[1] विचिंतइ केण उवाएण मज्झ गेहाओ । नीहरिही ? इय चिंतिय एगंते भणइ तं अयलं ॥८२॥

जहेसा अच्चंतं अणुरत्ता मूलदेवजूयारे । वत्थालंकाराइ भरभोगं तीए तं वहसि ॥८३॥

ता किं एसो वि तए निक्कासिज्जइ न मज्झ भवणाओ ? अयलो वि भणइ मह दिट्ठिगोयरं कह णु सो होही ? ॥८४॥

अक्का वि भणइ एवं नीसंकं तुह भएण न हु एइ । ता कवडगामगमणं करित्तु संझाए पुण एज्ज ॥८५॥

जेण तुमं नीसंकं विलसंतं मूलदेवजूयारं । सह देवदत्तगणियाए पेच्छसे मज्झ गेहम्मि ॥८६॥

तेण तह च्चिय विहिए रंजियहियया पणंगणा पच्छा । वाहरिय मूलदेवं नीसंकं जाव अभिरमइ ॥८७॥

लल्लक्कभिउडिभीसणपाइक्कपमुक्कहक्कदुप्पेच्छो । विज्जुच्छड व्व सहसा ता अयलो तत्थ संपत्तो ॥८८॥

तो तीए तयणु तुरियं तूलीए तलम्मि तं खिवेऊणं । अब्भुट्ठिय भणियमिणं किं गमणं तुम्ह न हु जायं ? ॥८९॥

अवसउणो त्ति भणंतो उवविट्ठो तम्मि चेव पल्लंके । गोविज्जंतो दिट्ठो जस्संते देवदत्ताए ॥९०॥

ततः सा कथयति गत्वा द्युतफलके मूलदेवस्य । यथा तवाद्य दयितेक्षुवाञ्छां समुद्वहति ॥ ७८ ॥

ततस्तेन वराटकदशद्विकेनेकं गृहीत्वा वरयष्टीम् । शीघ्रमसिधेनुच्छोलितगण्डलकान् कृत्वाचिरेण ॥ ७९ ॥

अपरवराटकदशद्विकसङ्गृहीतशरावसम्पुटे क्षिपति । प्रक्षिप्य चातुजार्तं शूलासु पोत्वा ततः ॥ ८० ॥

प्रस्थापयति तस्यास्तद्गुणरञ्जितहृदया प्रजल्पति सापि । द्युतकाराऽचलविज्ञानान्तरमीदृशमम्ब ! ॥ ८१ ॥

ततः कुट्टिनी विचिन्तयति केनोपायेन मम गृहात् । निसरिष्यति ? इति चिन्तयित्वैकान्ते भणति तमचलम् ॥ ८२ ॥

यथैषात्यन्तमनुरक्ता मूलदेवद्युतकारे । वस्त्रालङ्कारादि भरभोगं तस्यास्त्वं वहसि ॥ ८३ ॥

ततः किमेषोऽपि त्वया निष्काष्यते न मम भवनात् ? । अचलोऽपि भणति मम दृष्टिगोचरं कथं नु स भविष्यति ? ॥८४॥

अक्कापि भणत्येवं निःशङ्कं तव भयेन न खल्वेति । ततः कपटग्रामगमनं कृत्वा सन्ध्यायां पुनरायाः ॥ ८५ ॥

येन त्वं निःशङ्कं विलसन्तं मूलदेवद्युतकारम् । सह देवदत्तागणिकायाः पश्यसि मम गृहे ॥ ८६ ॥

तेन तथा चैव विहिते रञ्जितहृदया पणाङ्गना पश्चात् । व्याहृय मूलदेवं निःशङ्कं यावदभिरमते ॥ ८७ ॥

भयानकभृकूटिभीषणपादातिप्रमुक्तहक्कारदुष्प्रेक्ष्यः । विद्युच्छटेव सहसा तावदचलस्तत्र सम्प्राप्तः ॥ ८८ ॥

ततस्तया तदनुत्वरितं तूल्यास्तले तं क्षिप्त्वा । अभ्युत्थाय भणितमिदं किं गमनं तव न खलु जातम् ? ॥ ८९ ॥

अपशकुन इति भणन्नुपविष्टस्तस्मि चैव पल्यङ्के । गोपायमानो दृष्टो यस्यान्ते देवदत्तया ॥ ९० ॥

---

१. कुट्टिणी-रं० ।

ण्हाएयव्वं नियमा अज्ज मए एत्थ चेव पल्लंके । सा भणइ पट्टतूलिं निरत्थयं किं विणासेसि ? ।।९१।।
सो भणइ तुज्झ पिउणो न विणस्सइ किंतु मज्झ इय भणिए । तप्परियणेण अयलो सिग्धं अब्भंगिओ तत्तो ।।९२।।
अइमइलखलिखरंटियपल्हत्थियकलससलिलसंसित्तो । चिंतेइ मूलदेवो धिरत्थु मह जीवियव्वस्स ।।९३।।
धन्ना हु जए जइणो जइणो कंदप्पसप्पदप्पस्स । मरणे वि जाण मुसियो न माणमाणिक्कभंडारो ।।९४।।
परिहासपरंपरपासपरवसा नेहवागुरायत्ता । हरिण व्व कुसुमसरवाहबाणनिहया न के एत्थ ? ।।९५।।
अहव इह परभवम्मि य परिभवतरुकुसुममंजरी महिला । कामुयजणस्स सुइरं निम्मविया हयपयावइणा ।।९६।।
इय चिंतिऊण सहसा निग्गच्छइ जाव तूलिहेट्ठाओ । दट्ठोट्ठभिउडिभासुरअयलो केसेसु संगहिय ।।९७।।
निब्भच्छिऊण पभणइ कोवपरामुसियकूरकरवालो । किं रे ? कीरउ अवयारकारिणो वइरिणो तुज्झ ?
तो भणइ मूलदेवो अदीणचित्तो अभिन्नमुहराओ । जं किं पि तुज्झ चित्तस्स सम्मयं कुणसु तं चेव ।।९९।।
चिंतेइ तओ अयलो सामन्नो एस होइ न हु पुरिसो । न हि हीणकुलुप्पन्नाण धीरिमा एरिसा होइ ।।१००।।
इय चिंतिऊण पभणइ आवइपडियं ममं पि कइया वि । रक्खिज्जत्ति सतोसं मुक्को सम्माणिउं तत्तो ।।१०१।।
कह णु मए वसियव्वं इह परिभवगुरुकलंककलिएण ? । इय चिंतंतो चित्ते चलिओ बिन्नायडाभिमुहं ।।१०२।।
संबल-सहायरहिओ सव्वुत्तमबुद्धिसाहससहाओ । लंघंतो लंघंतो गिरि-सरियाइन्नमहिवीढं ।।१०३।।
वायामेत्तसहायं पि पेच्छए जाव नेय अडवीए । अइकविलेसकाओ दिट्ठो ता बंभणो एगो ।।१०४।।

स्नातव्यं नियमाद्य मयात्रैव पल्यङ्के । सा भणति पट्टतूलिं निरर्थकं किं विनाशयसि ? ।। ९१ ।।
सभणति तव पितु र्न विनश्यति किन्तु ममेति भणिते । तत्परिजनेनाचलः शीघ्रमभ्यङ्गितस्ततः ।। ९२ ।।
अतिमलखलिखरण्टितपर्यस्तकलशसलिलसंसिक्तः । चिन्तयति मूलदेव धिगस्तु मम जीवितव्यस्य ।। ९३ ।।
धन्याः खलु जगति यतयः कन्दर्पसर्पदर्पस्य । मरणेऽपि येषां मुषितो न मानमाणिक्यभण्डागारः ।। ९४ ।।
परिहासपरम्परापाशपरवशाः स्नेहवागुरायत्ताः । हरिण इव कुसुमसरव्याधबाणनिहता न केऽत्र ? ।। ९५ ।।
अथवेह परभवे च परिभवतरुकुसुममञ्जरि महिला । कामुकजनस्य सुचिरं निर्मापिता हतप्रजापतिना ।। ९६ ।।
इति चिन्तयित्वा सहसा निर्गच्छति यावत्तूलिकाधस्तात् । दष्टौष्टभृकूटिभासुराचलः केशेषु संगृह्य ।। ९७ ।।
निर्भर्त्स्य प्रभणति कोपपरामुषितक्रूरकरवालः । किं रे ? क्रियतामपकारकारिणो वैरिणस्तव ? ।। ९८ ।।
ततो भणति मूलदेवोऽदीनचित्तोऽभिन्नमुखरागः । यत्किमपि तव चित्तस्य सम्मतं कुरु तदेव ।। ९९ ।।
चिन्तयति ततोऽचलः सामान्य एष भवति न खलु पुरुषः । न हि हीनकुलोत्पन्नानां धीरीमेदृशी भवति ।। १०० ।।
इति चिन्तयित्वा प्रभणति आपदि पतितं ममापि कदापि । रक्षिष्येरिति सतोषं मुक्तः सन्मान्य ततः ।। १०१ ।।
कथं नु मया वसितव्यमिह परिभवगुरुकलङ्ककलितेन ? । इति चिन्तयंश्चित्ते चलितो बेन्नातटाभिमुखम् ।। १०२ ।।
सम्बलसहायरहितः सर्वोत्तमबुद्धिसाहससहायः । लङ्घयल्लङ्घयन् गिरि-सरिदाकीर्णमहीपीठम् ।। १०३ ।।
वाचामात्रसहायमपि प्रेक्षते यावन्नैवाटव्याम् । अतिकपिलेशकायोदृष्टस्तावद्ब्राह्मण एकः ।। १०४ ।।

किवणाण चक्कवट्टी टक्को जाईए सद्धडो नाम । जणकयनिग्घिणसम्माभिहाणओ निग्घिणत्तणओ ॥१०५॥
संबलबलमवलंबिय एयस्स अहं सुहेण लंघिस्सं । इय चिंतिय संचलिओ कयसंभासेण सह तेण ॥१०६॥
तो पहरदुगे सलिलप्पएसमासज्ज सद्धडो तुरियं । अवलोडिऊण सलिलेण सत्तुए जिमइ एगागी ॥१०७॥
अह तेण मूलदेवो वयणेण वि न हु निमंतिओ जाव । चिंतेइ नूणमिण्हि विस्सरियमिमस्स मह सुहिणो ॥१०८॥
अवरण्हे उण नियमा न वंचिही एस चिंतए जाव । चित्तम्मि मूलदेवो तो भोच्चा बंभणो पत्तो ॥१०९॥
तुंदं परामुसंतो मलमाणो हत्थजुयलमणवरयं । दाढियमवलूहंतो उड्डुग्गारे पमुंचंतो ॥११०॥
अह बहलतरुतलम्मि खणमेत्तं ताव विस्समामो त्ति । खरकिरणतावियतणू मज्झत्थो जाव दिवसयरो ॥१११॥
पच्छा पुरओ गमणं काहामो इय कुमारभणियम्मि । वीसमिउं खणमेक्कं पुणो पयट्टा पहे गंतुं ॥११२॥
एत्थंतरम्मि कुमरं आवइकलियं वियाणिउं रन्नो । मित्तो अत्थनिमित्तं व दूरमवगाहए जलहिं ! ॥११३॥
तो सद्दडेण भुत्तं तहेव एगागिणा वियाले वि । न य वायामेत्तेण वि निमंतिओ कढिणहियएण ॥११४॥
बीयदियहे वि तह वि हु निमंतिओ तेण न य मणागं पि । तइयम्मि दिणे अडविं अइकंता दो वि ते कह वि ॥११५॥
संपत्तवसिमदेसो तस्साऽऽसाधरियनिययपाणधणो । चिंतेइ मूलदेवो उवयारी बंभणो मज्झ ॥११६॥
पभणइ वच्च जहिच्छं भद्द ! तुमं किंतु एज्ज कइया वि । मह रज्जसंपयं जाणिऊण जं देमि ते गामं ॥११७॥
इय भणिय मूलदेवो पहरदुगे गाममागओ संतो । करकलियपत्तपुडओ भिक्खं भमिउं समाढत्तो ॥११८॥

कृपणानां चक्रवर्ती टक्कोजात्या सद्धडो नाम । जनकृतनिर्घृणशर्माभिधानको निर्घृणत्वात् ॥ १०५ ॥
शम्बलबलमवलम्ब्यैतस्याहं सुखेन लङ्घिष्यामि । इति चिन्तयित्वा सञ्चलितः कृतसम्भाषेण सह तेन ॥ १०६ ॥
ततः प्रहरद्विके सलिलप्रदेशमासाद्य सद्धडस्त्वरितम् । अवमिश्रित्य सलिलेन सक्तुना जेमत्येकाकी ॥ १०७ ॥
अथ तेन मूलदेवो वचनेनापि न खलु निमन्त्रितो यावत् । चिन्त्यति नूनमीदानीं विस्मृतमेतस्य मम मित्रस्य ॥१०८॥
अपराह्णेपुनर्नियमा न वञ्चिष्यत्येष चिन्तयति यावत् । चित्ते मूलदेवस्तदा भुक्त्वा ब्राह्मणः प्राप्तः ॥ १०९ ॥
तुन्दं परामृशन्मलमानो हस्तयुगलमनवरतम् । कुर्चमपमृशन्नुद्दगारान्प्रमुञ्चन् ॥ ११० ॥
अथ बहलतरुतले क्षणमात्रं तावद्विश्राम्याव इति । खरकिरणतापिततनू र्मध्यस्थो यावद्दिवसकरः ॥ १११ ॥
पश्चात्पुरतो गमनं करिष्याव इति कुमारभणिते । विश्रम्य क्षणमेकं पुनःप्रवृत्तौ पथि गन्तुम् ॥ ११२ ॥
अत्रान्तरे कुमारमापत्कलितं विज्ञाय राज्ञः । मित्रोऽर्थनिमित्तं च दूरमवगाहते जलधिम् ॥ ११३ ॥
तदा सद्धडेन भुक्तं तथैवैकाकिना विकालेऽपि । न च वाचामात्रेणापि निमन्त्रितः कठिनहृदयेन ॥ ११४ ॥
द्वितीयदिवसेऽपि तथापि खलु निमन्त्रितस्तेन न च मनागपि । तृतीये दिनेऽटवीमतिक्रान्तौ द्वावपि तौ कथमपि ॥११५ ॥
सम्प्राप्तवसतिदेशस्तस्याशाधृतनिजकप्राणधनः । चिन्तयति मूलदेव उपकारी ब्राह्मणो मम ॥ ११६ ॥
प्रभणति गच्छ यथेच्छं भद्र ! त्वं किन्त्वायाः कदापि । मम राज्यसंपज्ज्ञात्वा यद् ददामि तुभ्यं ग्रामम् ॥ ११७ ॥
इति भणित्वा मूलदेवः प्रहरद्विके ग्राममागतः सन् । करकलितपत्रपुटको भिक्षां भ्रान्तुं समारब्धः ॥ ११८ ॥

---

१. मित्र – सूर्य इत्यर्थः ।

केवलकुम्मासेहिं भरित्तु पुडयं तडागमणुसरिउं । जा निग्गच्छइ तत्तो संपेच्छइ मुणिवरं एगं ॥११९॥
मासोववाससोसियसरीरसंपत्तिमसमसुहलेसं । पारणगपत्तदिवसं पविसंतं गाममज्झम्मि ॥१२०॥
दट्ठुण मूलदेवो चिंतइ मह पुन्नपरिणई एसा । मरुरन्नम्मि व एसो जं दिट्ठो कप्परुक्खो व्व ॥१२१॥
इय चिंतिऊण पभणइ भत्तिभरुल्लसियबहलरोमंचो । गिण्हसु करुणं काउं कुम्मासे मज्झ मुणिनाह ! ॥१२२॥
दव्वाइचउहसुद्धिं पउंजिउं गिण्हए मुणिवरो वि । एत्थंतरम्मि कुमरो रंजियहियओ भणइ एवं ॥१२३॥
धन्नाणं खु नराणं कुम्मासा हुंति साहुपारणए । इय भणिए भणइ तओ मुणिभत्ता देवया गयणे ॥१२४॥
मग्गसु वरं महायस ! जं रोयइ तुज्झ उत्तरद्धेण । गणियं च देवदत्तं दंतिसहस्सं च रज्जं च ॥१२५॥
इय भणइ जाव कुमरो भणइ तओ देवया पहिट्ठमणा । मुणिदाणपुन्नपायवफलमिणमचिरेण तुह होही ॥१२६॥
उव्वरियसेसकुम्मासभोयणाणंतरं पसत्थगई । मुणिदाणपुन्नकलिओ चलिओ विन्नायडाभिमुहं ॥१२७॥
पइदियहपयाणेहि वेन्नायडनयरमागओ संतो । सुत्तो देसिकुडीए सुमिणं पेच्छइ निसासेसे ॥१२८॥
अमयमयकिरणनिम्महियतावमसमाणकंति जणसुहयं । पविसंतं नियवयणं केरविणीरमणपडिविंवं ॥१२९॥
कप्पडिओ वि हु पासित्तु तारिसं कहइ सुमिणमियराण । ते वि हु भणंति गुड-नेहमंडियं मंडयं लहसि ॥१३०॥
तो तेण वीयदिवसे छाइज्जंतम्मि कम्मिवि घरम्मि । भिक्खाए पविट्ठेणं लद्धो गुडमंडओ एगो ॥१३१॥
कुमरो वि मणे मुणिउं मणोरहाणं अपावणिज्जं ति । सुमिणमिणं मणहरणं पहाणपुरिसाण कहणीयं ॥१३२॥

केवलकुल्माषै भृत्वा पुटकं तडाकमनुसृत्य । यावन्निर्गच्छति ततः सम्प्रेक्षते मुनिवरमेकम् ॥ ११९ ॥
मासोपवासशोषितशरीरसंपत्तिमसमसुखलेशम् । पारणकप्राप्तदिवसं प्रविशन्तं ग्राममध्ये ॥ १२० ॥
दृष्ट्वा मूलदेवश्चिन्तयति मम पुण्यपरिणतिरेषा । मरुरण्ये इवैष यद् दृष्टः कल्पवृक्ष इव ॥ १२१ ॥
इति चिन्तयित्वा प्रभणति भक्तिभरोल्लसितबहलरोमाञ्चः । गृहाण करुणां कृत्वा कुल्माषान् मम मुनिनाथ ! ॥१२२॥
द्रव्यादिचतुर्धाशुद्धिं प्रयुज्य गृह्णाति मुनिवरोऽपि । अत्रान्तरे कुमारो रञ्जितहृदयो भणत्येवम् ॥ १२३ ॥
धन्यानां खलु नराणां कुल्माषा भवन्ति साधुपारणके । इति भणिते भणति ततो मुनिभक्ता देवतागगने ॥ १२४ ॥
मार्गय वरं महायश ! यद्रोचते ततोत्तरार्द्धेन । गणिकां च देवदत्तां दन्तिसहस्रं च राज्यं च ॥ १२५ ॥
इति भणति यावत्कुमारो भणति ततो देवता प्रहृष्टमना । मुनिदानपुण्यपादपफलमिदमचिरेण तव भविष्यति ॥१२६ ॥
उद्धृताशेष कुल्माषभोजनानन्तरं प्रशस्तगतिः । मुनिदानपुण्यकलितश्चलितो बेन्नातटाभिमुखम् ॥ १२७ ॥
प्रतिदिवसप्रयाणै र्बेन्नातटनगरमागतस्सन् । सुप्तो देशीकुट्यां स्वप्नं पश्यति निशाशेषे ॥ १२८ ॥
अमृतमयकिरणनिर्मथिततापमसमानकान्ति जनसुभगम् । प्रविशन्तं निजवदने कैरविणिरमणप्रतिबिम्बम् ॥ १२९ ॥
कार्पटिकोऽपि खलु दृष्ट्वा तादृशं कथयति स्वप्नमितराणाम् । तेऽपि खलु भणन्ति गुडस्नेहमण्डितं मण्डकं लभसे ॥१३०॥
ततस्तेन द्वितीयदिवसे छाद्यमाणे कस्मिन्नपि गृहे । भिक्षायां प्रविष्टेन लब्धो गुडमण्डक एकः ॥ १३१ ॥
कुमारोऽपि मनसि मुणित्वा मनोहराणामप्रापनीयमिति । स्वप्नमिदं मनोहरणं प्रधानपुरुषाणां कथनीयम् ॥ १३२ ॥

अह उग्गयम्मि सूरे कुमरो कुसुमाणमंजलिं भरिउं । सुविणन्नुयस्स पासे संपत्तो परमविणएण ॥१३३॥

पूइत्तु पायकमलं पणामपुव्वं पयासए सुमिणं । अह चिंतइ सुविणविऊ रज्जफलो एस सुमिणो त्ति ॥१३४॥

लायन्नपुन्नकलियं अह तं परिणाविऊण नियधूयं । साहइ जह तुह होही सत्तदिणब्भंतरे रज्जं ॥१३५॥

एयं निसामिऊणं थक्को सो तम्मि चेव नयरम्मि । कोउगअक्खित्तमणो दिणे दियन्तो नयरसोहं ॥१३६॥

कहमेत्थ निद्धणो हं विलसिस्सं चिंतिऊण नयरीए । ईसरगिहम्मि खत्तं खणिऊणं गहियगिहसारो ॥१३७॥

जा निगच्छइ तत्तो पत्तो आरक्खिएहिं सहस त्ति । तो बंधिऊण नीओ करणे मंतिस्स पासम्मि ॥१३८॥

चोरो त्ति काउमेसो भणियममच्चेण देहचायस्स । ता निंति वज्झभूमीए किंकरा लद्धआएसा ॥१३९॥

पुव्वुत्तमलियमेयं किं होही जाव चिंतए कुमरो । ता दुग्गसूलवेयणविवसो तन्नयरनरनाहो ॥१४०॥

मरइ अपुत्तो तो मंतिपमुहसामंत-पउरलोएण । अहिवासिऊण सम्मं गयपभिई पंचदिव्वाइं ॥१४१॥

मग्गिज्जइ नररयणं पुव्वभवुप्पन्नपुन्नपब्भारं । रज्जनिमित्तं नयरे तिय-चच्चर-देउलाईसु ॥१४२॥

तो जंताइं ताइं दिव्वाइं नयरबाहिरुद्देसे । पेच्छंति खरारूढं रत्तंदणलित्तसव्वंगं ॥१४३॥

सिरिउवरिधरियछित्तिरमारोवियगलसरावमालं च । वज्जंतवज्झडिंडिममुग्घोसिज्जंतचोरवहं ॥१४४॥

तं मूलदेवचोरं गलगज्जी ता गएण पारद्धा । गुरुहरिसपरवसेणं हएण हेसारवो विहिओ ॥१४५॥

अथोद्गते सूर्ये कुमारः कुसुमानामञ्जलिं भृत्वा । स्वप्नज्ञस्य पार्श्वे संप्राप्तः परमविनयेन ॥ १३३ ॥

पूजयित्वा पादकमलं प्रणामपूर्वं प्रकाशते स्वप्नम् । अथ चिन्तयति स्वप्नविद् राज्यफल एष स्वप्न इति ॥ १३४ ॥

लावण्यपुण्यकलितामहं तां परिणाय्य निजदुहितरम् । कथयति यथा तव भविष्यति सप्तदिनाभ्यन्तरे राज्यम् ॥१३५॥

एतन्निशम्य स्थितःस तस्मिंश्चैव नगरे । कौतुकाक्षिप्तमना दिने पश्यन्नगरशोभाम् ॥ १३६ ॥

कथमत्र निर्धनोऽहं विलसिष्यामि चिन्तयित्वा नगर्याः । ईश्वरगृहे क्षात्रं खनित्वा गृहीतगृहसारः ॥ १३७ ॥

यावन्निर्गच्छति ततः प्राप्त आरक्षकैः सहसेति । ततो बद्ध्वानीतः करणे[१] मन्त्रिणः पार्श्वे ॥ १३८ ॥

चौर इति कृत्वैष भणितममात्येन देहत्यागस्य । तत नयन्ति वध्यभूमौ किङ्करा लब्धादेशाः ॥ १३९ ॥

पूर्वोक्तमलिकमेतत्किं भविष्यति यावच्चिन्तयति कुमारः । तावदग्रशूलवेदनाविवशस्तन्नगरनरनाथः ॥ १४० ॥

म्रियतेऽपुत्रस्ततो मन्त्रिप्रमुखसामन्त-पौरलोकेन । अधिवास्य सम्यग्गजप्रभृतिनि पञ्चदिव्यानि ॥ १४१ ॥

मार्ग्यते नररत्नं पूर्वभवोत्पन्नपुण्यप्राग्भारम् । राज्यनिमित्तं नगरे त्रिक-चत्वर-देवकुलादिषु ॥ १४२ ॥

तदा यान्ती तानि दिव्यानि नगरबाह्योद्देशे । पश्यन्ति खरारूढं रक्तचन्दनलिप्तसर्वाङ्गम् ॥ १४३ ॥

शिरोपरिधृतसूर्पकमारोपितगलशरावमालं च । वाद्यद्वध्यडिंडिममुद्घोष्यमाणचौरवधम् ॥ १४४ ॥

तं मूलदेवचौरं गलगर्जी तावद्गजेन प्रारब्धा । गुरुहर्षपरवशेन हयेन हेषारवो विहितः ॥ १४५ ॥

---

१. न्यायालय इत्यर्थः ।

कलसं घेत्तूण करी अहिसिंचिय नेइ खंधदेसम्मि । ढलियं चामरजुयलं उवरि ठियं सेयवरछत्तं ॥१४६॥

उच्छलिओ तूररवो जयजयसद्दो पवड्डिओ झत्ति । उद्दामबंदिविंदेण परिगओ पउरलोएण ॥१४७॥

रायसहाए पत्तो मुत्तामणिमंडिए चउक्कम्मि । सिंहासणे निविट्ठो पणओ सामंत-मंतीहिं ॥१४८॥

अह देवयाए गयणे भणिया सामंत-मंतिणो सव्वे । जह एस पुन्नकलिओ विक्कमराओ महाराओ ॥१४९॥

जो आणाए वट्टइ न सम्ममेयस्स तस्स न खामामि । तप्पभिइ अमच्चाई संजाया आणतल्लिच्छा ॥१५०॥

जाओ महानरिंदो पडुपयडपयावपत्तमाहप्पो । निट्ठवियवइरिविंदो जहत्थमणुपालए रज्जं ॥१५१॥

अह अन्नया कयाई राया चित्तम्मि चिंतए एवं । सह दंतिसहस्सेणं लद्धं रज्जं जहुद्दिट्ठं ॥१५२॥

किन्तु-

किमणेण देवदत्तारहिएणं सुंदरेण रज्जेण ? । जेण पियसंपओगो रज्जं कज्जं किमन्नेण ? ॥१५३॥

तो पट्ठविओ लेहो उज्जेणिनराहिवस्स नरवइणा । भणिओ य मज्झ नेहो एईए देवदत्ताए ॥१५४॥

जइ पडिहासइ तीए तुम्हाणं सव्वहा अभिमयं च । मह जीयनिव्विसेसं ता पेससु तं सिणेहेण ॥१५५॥

इय वाइऊण लेहं रन्ना लेहारिया इमं भणिया । भो भो ! किमेवमेयं विन्नायडसामिणा लिहियं ? ॥१५६॥

किं अम्हाणं तस्स य कोइ विसेसो समत्थि रज्जम्मि ? । जेणाहं नियरज्जं सव्वमिणं तस्स कप्पेमि ॥१५७॥

हक्कारिऊण भणिया गणिया रन्ना जहा तए भद्दे ! । विन्नत्तमासि पुव्वं जह मोत्तुं मूलदेवं मे ॥१५८॥

कलशं गृहीत्वा कर्यभिषिञ्च्य नयति स्कन्धदेशे । वीजितं चामरयुगलमुपरि स्थितं श्वेतवरच्छत्रम् ॥ १४६ ॥

उच्छलितस्तूर्यरवो जयजयशब्दः प्रवर्धितः झटितिम् । उद्दामबन्दिवृन्देन परिगतः पौरलोकेन ॥ १४७ ॥

राजसभायां प्राप्तो मुक्तामणिमण्डिते चतुष्के । सिंहासने निविष्टः प्रणतः सामन्त-मन्त्रिभिः ॥ १४८ ॥

अथ देवतया गगने भणिताः सामन्त-मन्त्रिणः सर्वे । यथैष पुण्यकलितो विक्रमराजो महाराजः ॥ १४९ ॥

य आज्ञायां वर्तते न सम्यगेतस्य तस्य न क्षमे । तत्प्रभृति अमात्यादयः सञ्जाता आज्ञातत्पराः ॥ १५० ॥

जातो महानरेन्द्रः पटुप्रकटप्रतापप्राप्तमाहात्म्यः । निष्ठापितवैरिवृन्दो यथार्थमनुपालयति राज्यम् ॥ १५१ ॥

अथान्यदा कदाचिद्राजा चिते चिन्तयत्येवम् । सह दन्तिसहस्रेण लब्धं राज्यं यथोदिष्टम् ॥ १५२ ॥

किन्तु -

किमनेन देवदत्तारहितेन सुन्दरेण राज्येन ? । येन प्रियसम्प्रयोगो राज्यं कार्यं किमन्येन ? ॥ १५३ ॥

ततः प्रस्थापितो लेख उज्जैनीनराधिपस्य नरपतिना । भणितश्च मम स्नेहोऽस्यां देवदत्तायाम् ॥ १५४ ॥

यदि प्रतिभाषते तस्या युष्माकं सर्वथाभिमतं च । मम जीवनिर्विशेषं ततः प्रेषय तां स्नेहेन ॥ १५५ ॥

इति वाचित्वा लेखं राज्ञा लेखार्या इदं भणिताः । भो भो ! किमेवमेतद्विन्नातटस्वामिना लिखितम् ? ॥ १५६ ॥

किमस्माकं तस्य च कोऽपि विशेषः समस्ति राज्ये ? । येनाहं निजराज्यं सर्वमिदं तस्य कल्पामि ॥ १५७ ॥

आकार्य भणिता गणिका राज्ञा यथा त्वया भद्रे ! । विज्ञप्तमासीत् पूर्वं यथा मुक्त्वा मूलदेवं मे ॥ १५८ ॥

अन्नो न पेसियव्वो पुरिसो ता एस सो महाराया । संजाओ पुव्वज्जियपुन्नमहापरिणइवसेण ॥१५९॥
तो तुज्झाऽऽणयणत्थं नियपुरिसा पेसिया इहं तेण । ता जाहि तस्स पासे पडिहासइ तुज्झ जइ चित्ते ॥१६०॥
तो भणइ देवदत्ता देव ! सया वि हु मणोरहो आसि । संपुण्णो पुण इण्हि तुम्हाणुन्नाए अम्हाणं ॥१६१॥
विभवेण पूइऊणं पट्ठविया मूलदेवपासम्मि । पत्ता य तत्थ तेण वि पवेसिया गुरुविभूईए ॥१६२॥
तीए सह विसयसोक्खं उवभुंजंतस्स जाइ जा कालो । ता सद्धडभट्टेणं निसुया रज्जस्स संपत्ती ॥१६३॥
तत्थाऽऽगओ पविट्ठो पडिहारनिवेइओ निवसमीवे । दिन्नो गामो रन्ना वि तस्स भणिउं इमं वयणं ॥१६४॥
पलिज्जसु नियगामं अज्जप्पभिइं परं तुमं किंतु । मह नयणगोयरे मा हवेज्ज कइया वि जाजीवं ॥१६५॥
अह अन्नया य अयलो उज्जेणीए धणज्जणनिमित्तं । बिन्नायडम्मि नयरे पत्तो बहुलोगपरियरिओ ॥१६६॥
मंजिट्ठाइकयाणगमज्झे गोवित्तु परमवत्थूणि । मंजिट्ठाईण पुणो सुकं पाडेउमारद्धो ॥१६७॥
नाओ सुंकियलोएण कह वि तो दंसिओ नरवइस्स । जह देव ! सुंकचोरीए वाणिओ सावराहु त्ति ॥१६८॥
राया वि संभमब्भंतलोयणो जा पलोयए सम्मं । कह अयलसत्थवाहो ? अव्वो ! अच्छरियमेयं ति ॥१६९॥
तो भणियं नरवइण परियाणसि को अहं ? भणइ अयलो । नियकित्तिभरियभुवणं देव ! तुमं को न याणेइ ॥१७०॥
तो नरवइणा साहियनियवुत्तंतो विसज्जिओ अयलो । सम्माणदाणपरिओसपुव्वयं सुंकपरिमुक्को ॥१७१॥
अह मूलदेवराया नएण परिपालिऊण नियरज्जं । सावगधम्मं च तहा मरिउं देवेसु उववन्नो ॥१७२॥

॥ मूलदेवाख्यानकं समात्तम् ॥११॥

अन्यो न प्रेषितव्यः पुरुषस्तावदेष स महाराजा । सञ्जातः पूर्वार्जितपुण्यमहापरिणतिवशेन ॥ १५९ ॥
ततस्तवानयनार्थं निजपुरुषाः प्रेषिता इह तेन । ततो याहि तस्य पार्श्वे प्रतिभाषते तव यदि चित्ते ॥ १६० ॥
ततो भणति देवदत्ता देव ! सदापि खलु मनोरथ आसीत् । सम्पूर्णः पुनरीदानीं तवानुज्ञयास्माकम् ॥ १६१ ॥
विभवेन पूजयित्वा प्रस्थापिता मूलदेवपार्श्वे । प्राप्ता च तत्र तेनापि प्रवेशिता गुरुविभूत्या ॥ १६२ ॥
तस्याः सह विषयसौख्यमुपभुञ्जतो याति यावत्कालः । तावत्सद्धडभटेन निश्रुता राज्यस्य संप्राप्तिः ॥ १६३ ॥
तत्राऽऽगतः प्रविष्टः प्रतिहारनिवेदितो नृप समीपे । दत्तो ग्रामो राज्ञापि तस्य भणित्वेदं वचनम् ॥ १६४ ॥
पालय निजग्राममद्यप्रभृति परं त्वं किन्तु । मम नयनगोचरे मा भवेः कदापि यावज्जीवम् ॥ १६५ ॥
अथान्यदा चाचल उज्जैन्यां धनार्जननिमित्तम् । बेन्नातटे नगरे प्राप्तो बहुलोकपरिकरितः ॥ १६६ ॥
मञ्जिष्ठादिक्रयाणकमध्ये गोपयित्वा परमवस्तूनि । मञ्जिष्ठादीनां पुनः शुल्कं पातितुमारब्धः ॥ १६७ ॥
ज्ञातः शुल्कितलोकेन कथमपि ततो दर्शितो नरपतेः । यथा देव ! शुल्कचौर्याद् वणिक् सापराध इति ॥ १६८ ॥
राजापि सम्भ्रमभ्रान्तलोचनो यावत्प्रलोकयति सम्यक् । कथमचलसार्थवाहो ? अहो ! आश्चर्यमेतदिति ॥ १६९ ॥
ततो भणितं नरपतिना परिजानासि कोऽहम् ? भणत्यचलः । निजकीर्तिभृतभुवनं देव ! त्वां को न जानाति ॥ १७० ॥
तदा नरपतिना कथितनिजवृत्तान्तो विसर्जितोऽचलः । सन्मानदानपरितोषपूर्वकं शुल्कपरिमुक्तः ॥ १७१ ॥
अथ मूलदेवराजा नयेन परिपाल्य निजराज्यम् । श्रावकधर्मं च तथा मृत्वा देवेषूत्पन्नः ॥ १७२ ॥

॥ मूलदेवाख्यानकं समाप्तम् ॥ ११ ॥

इदं च सुपात्रदानं कल्याणावहमप्यशुभपरिणामेनासुन्दरं दत्तं प्रत्युत भवभ्रमणाय भवतीत्यत आह

जो अमणुन्नं असणाइ देइ साहूण दुट्ठपरिणामो ।
सो किर नागसिरी विव दुहपउरे भमइ संसारे ॥ ७ ॥

व्याख्या-यः कश्चिद् 'अमनोज्ञम्' असुन्दरम् 'अशनादि' ओदनादि 'ददाति' वितरति 'साधुभ्यः' मुनिभ्यः 'दुष्टपरिणामः' अशुभभावः 'सः' जीवः 'किल' इति आप्तोक्तौ 'नागश्रीरिव' ब्राह्मणभार्येव 'दुःखप्रचुरे' प्रभूतदुःखे 'भ्रमति' पर्यटति 'संसारे' भवे इत्यक्षरार्थः ॥ ७ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः ॥ तच्चेदम्-

चंपाए पुरवरीए निवसंति सहोयरा दिया तिन्नि । सुपवित्तो पवरकलो सोमो सोमो व्व ताणेगो ॥१॥
सोमो विभूइभासी हरो व्व तह सोमदत्तनामो त्ति । तइओ य सोमभूई गुरुभरणरूई सुसीसो व्व ॥२॥
नागसिरी भूयसिरी जक्खसिरी ताण भारिया कमसो । सव्वेसिं पि सुहेणं वच्चइ कालो अहऽन्नादिणे ॥३॥
नागसिरीए महुरयतुंबयवामोहओ उवक्खडियं । कडुयविसतुंबयं घय-गुडाइसुसिणिद्धदव्वेहिं ॥४॥
नायं च कह वि विसतुंबयं तओ कहमिमं परिचएमि ? । उत्तमदव्वविमीसियमिय चिंतिय मुयइ एगत्थ ॥५॥
अह तत्थ सयलसिद्धंतपारगा धम्मधोसमुणिवसभा । निरुवममुणिपरिवारा पत्ता अह तेसिमेगमुणी ॥६॥
समहिज्जियसुत्तत्थो परियाणियसयलसुत्तपरमत्थो । जीवाणं करुणारसनिज्झरणगिरिंदसमरूवो ॥७॥
आबालकालपालियसामन्नो सीलसंगओ सोमो । पारइ सया वि काउं मासक्खमणं महाभागो ॥८॥
अह अट्ठि-मिंजपेम्माणुरायरत्तो जिणिंदधम्मम्मि । धम्मरुई धम्मरुई अणगारो मासपारणए ॥९॥
उच्चवयभवणेसुं परिब्भमंतो पसंत-थिरचित्तो । नागसिरीए गेहे गओ तओ तीए सो दिट्ठो ॥१०॥

चम्पायां पुर्वर्यां निवसन्ति सहोदरा द्विजास्त्रयः । सुपवित्रः प्रवरकलः सोमः सोमइव तेषामेकः ॥ १ ॥
सोमो विभूतिभाषी हर इव तथा सोमदत्तनामेति । तृतीयश्च सोमभूति र्गुरुभरणरुचिः सुशिष्य इव ॥ २ ॥
नागश्री भूतश्री र्यक्षश्रीस्तेषां भार्याः क्रमशः । सर्वेषामपि सुखेन गच्छति कालोऽथान्यदिने ॥ ३ ॥
नागश्रिया मधुरकतुम्बकव्यामोहत उपस्कृतम् । कटुकविषतुम्बकं घृत-गुडादिसुस्निग्धद्रव्यैः ॥ ४ ॥
ज्ञातं च कथमपि विषतुम्बकं ततः कथमिदं परित्यजामि ? । उत्तमद्रव्यविमिश्रितमिति चिन्तयित्वा मुञ्चत्येकत्र ॥५॥
अथ तत्र सकलसिद्धान्तपारगा धर्मघोषमुनिवृषभाः । निरुपममुनिपरिवाराः प्राप्ता अथ तेषामेकमुनिः ॥ ६ ॥
समधीतसूत्रार्थः परिजानितसकलसूत्रपरमार्थः । जीवानां करुणारसनिर्झरणगिरीन्द्रसमरुपः ॥ ७ ॥
आबालकालपालितश्रामण्यः शीलसङ्गतः सोम्यः । पारयति सदापि कृत्वा मासक्षपणं महाभागः ॥ ८ ॥
अथास्थि-मज्जाप्रेमानुरागरक्तो जिनेन्द्रधर्मे । धर्मरुचि र्धर्मरुचिरणगारो मासपारणके ॥ ९ ॥
उच्चावचभवनेषु परिभ्रमन्प्रशान्त-स्थिरचित्तः । नागश्रिया गृहे गतस्ततस्तया स दृष्टः ॥ १० ॥

चिंतइ य कडुयविसतुंबयम्मि जाया पभूयधणहाणी । ता किं परिचत्तेणं इमिणा ? वियरिज्जउ इमस्स ।।११।।
इय चिंतिऊण पावाए तीए दिन्नं तवस्सिणो सो वि । तं दव्वाइविसुद्धं कलिउं पडिगाहिय नियत्तो ।।१२।।
पत्तो य गुरुसमीवे आलोएउं पडिग्गहं गुरुणो । दंसइ गंधं अग्घाइऊण सो जायसिरवियणो ।।१३।।
पभणइ अहो महासय ! कडुयं विसतुंवयं परिट्ठवसु । कत्थइ गवेसिऊणं उवभुंजसु सुद्धमाहारं ।।१४।।
इच्छं ति पभणिऊणं धम्मरुई सुद्धथंडिलं पत्तो । तत्तो परिट्ठवंतस्स निवडिओ कहवि तब्बिदू ।।१५।।
तग्गंधेण पभूया पिपीलिया आगया तओ तम्मि । बिंदुम्मि जा विलग्गइ रसेण सा तक्खणा मरइ ।।१६।।
तत्तो पिपीलियानियरमरणसंजायगरुयवेरग्गो । परिभाविउं पवत्तो धम्मरुई हा ! महापावं ।।१७।।
जइ एक्कबिंदुमित्ते वि एत्तियाओ मरंति एयाओ । ता सव्वपरिच्चाए बहुजीवखओ धुवं होही ।।१८।।
इच्छंति न एगस्स वि कीडियमेत्तस्स साहुणो मरणं । ता किह परिठविउमिमं वहुयाण वहं करेमि अहं ? ।।१९।।
जायस्स धुवं मरणं होही कइया वि कह वि कस्सावि । ता जीवदयाकरणे जुज्जइ इण्हिं पि मह मरणं ।।२०।।
इय चिंतिऊण पडिलेहिऊण मुहपोत्तियं महासत्तो । उवभुंजइ परमन्नं व समयविहिणा विसुद्धमणो ।।२१।।
तम्मि उ परिणममाणे सा का वि हु तस्स वेयणा जाया । जा कहिउं पि न तीरइ किं पुण सहिउं ? तओ सुमुणी ।।२२।।
संथरिउमणालोयम्मि थंडिले दब्भसंत्थरं तत्तो । पणमइ जिणकमकमलं भत्तिब्भरनिब्भरो तयणु ।।२३।।
जेसिं पसायाओ हं उत्तिन्नो भीमभवसमुद्दाओ । पममामि ताण सिरिधम्मघोससूरीण कमकमलं ।।२४।।

चिन्तयति च कटुकविषतुम्बके जाता प्रभूतधनहानी । ततः किं परित्यक्तेनानेन ? वितीर्यत एतस्य ॥ ११ ॥
इति चिन्तयित्वा पापया तया दत्तं तपस्विनः सोऽपि । तद्द्रव्यादिविशुद्धं कलयित्वा प्रतिग्राह्य निवृत्तः ॥ १२ ॥
प्राप्तश्च गुरुसमीप आलोच्य पतद्ग्रहं गुरोः । दर्शयति गन्धमाघ्राय स जातशिरोवेदनः ॥ १३ ॥
प्रभणति अहो ! महायशः ! कटुकं विषतुम्बकं परिष्ठापय । कुत्रचिद्गवेष्योपभुङ्क्ष्व शुद्धमाहारम् ॥ १४ ॥
इच्छामीति प्रभण्य धर्मरुचिः शुद्धस्थण्डिलं प्राप्तः । ततः परिष्ठापयतो निपतितः कथमपि तद्बिन्दुः ॥ १५ ॥
तद्गन्धेन प्रभूताः पिपीलका आगतास्ततस्तस्मिन् । बिन्दौ या विलगति रसेन सा तत्क्षणान्म्रियते ॥ १६ ॥
ततः पिपिलिकानिकरमरणसञ्जातगुरुकवैराग्यः । परिभावयितुं प्रवृतो धर्मरुचि र्हा ! महापापम् ॥ १७ ॥
यद्येकबिन्दुमात्रेऽपि एतावन्त्यो म्रियन्त एताः । ततः सर्वपरित्यागे बहुजीवक्षयो ध्रुवं भविष्यति ॥ १८ ॥
इच्छन्ति नैकस्यापि कीटिकामात्रस्य साधवो मरणम् । ततः कथं परिष्ठाप्येदं बहूनां वधं करोम्यहम् ? ॥ १९ ॥
जातस्य ध्रुवं मरणं भविष्यति कदापि कथमपि कस्यापि । ततो जीवदयाकरणे युज्यत इदानीमपि मम मरणम् ॥२०॥
इति चिन्तयित्वा प्रतिलेख्य मुखवस्त्रिकां महासत्त्वः । उपभुङ्क्ते परमान्नमिव समयविधिना विशुद्धमनाः ॥ २१ ॥
तस्मिंस्तु परिणममाने सा कापि खलु तस्य वेदना जाता । या कथयितुमपि न शक्यते किं पुनः सोढुं ? ततः सुमुनिः ॥२२॥
संस्तीर्यानालोके स्थण्डिले दर्भसंस्तारं ततः । प्रभणति जिनक्रमकमलं भक्तिभरनिर्भरस्तदनु ॥ २३ ॥
येषां प्रसादादहमुत्तीर्णो भीमभवसमुद्रात् । प्रणमामि तेषां श्रीधर्मघोषसूरीणां क्रमकमलम् ॥ २४ ॥

सिद्धाण पणमिऊणं वियरइ आलोयणं पुरो ताण । रोमंचअंचियंगो उच्चरइ महव्वए पंच ॥२५॥
खामेइ सव्वसत्ते इहलोए परभवे य दुक्खविए । आहारं पच्चक्खइ चउव्विहं पि हु समयविहिणा ॥२६॥
जह जह पभूयपीडापरव्वसं तस्स जायइ सरीरं । तह तह धम्मज्झाणे थिरचित्तो ठाइ स महप्पा ॥२७॥
आगमभावियहिययस्स जीव तुह केत्तिया इमा वियणा ? । सहिया अणंतवारा उ वेयणा घोरनरएसु ॥२८॥
लद्धो जिणिंदधम्मोसुइरं परिपालियं पि सामन्नं । वियणमिममसहमाणो सव्वं पि निरत्थयं कुणसि ॥२९॥
अहियासंतो विसतुंबयुब्भवं वेयणं महासत्तो । हिययब्भंतरविप्फुरियगरुयसंवेगसंजुत्तो ॥३०॥
पंचपहुनमोक्कारा सुमरंतो सत्तु-मित्तसमचित्तो । मरिऊण समुप्पन्नो सव्वट्ठे भासुरो अमरो ॥३१॥
गुरुणा वि गरुयवेल त्ति कलिय बाहिं गयस्स तवनिहिणो । पडिजागरणनिमित्तं पट्ठविया साहुणो तस्स ॥३२॥
आगंतूण गुरूणं पणमियचरणा कहंति ते साहू । कालगयं तो गुरूणो उवओगं दिंति पुव्वेसु ॥३३॥
परियाणियपरमत्था वाहरिउं साहु-साहुणीवग्गं । नागसिरीकडुतुंबयदाणा मरणं पयासंति ॥३४॥
जाओ जा सव्वट्ठे अमरो ता साहु-साहुणीवग्गो । निंदइ नागसिरीए दुच्चरियं थुणइ मुणिचरियं ॥३५॥
जाओ जणाववाओ नयरीमज्झम्मि तीए पावाए । भत्तार-देवरेहिं वि चत्ता रिसिधाइणि त्ति तओ ॥३६॥
निंदिज्जंती नयरीजणेण डिंभेहिमभिहणिज्जंती । सव्वत्थ दीणवयणा[१] भिक्खं पि न पावइ भमंती ॥३७॥

सिद्धान्प्रणम्य वितरत्यालोचनं पुरस्तेषाम् । रोमाञ्चाञ्चिताङ्ग उच्चरति महाव्रतानि पञ्च ॥ २५ ॥
क्षामयति सर्वसत्वानिहलोके परभवे च दुःखायितान् । आहारं प्रत्याख्याति चतुर्विधमपि खलु समयविधिना ॥२६॥
यथा यथा प्रभूतपीडापरवशं तस्य जायते शरीरम् । तथा तथा धर्मध्याने स्थिरचित्तस्तिष्ठति स महात्मा ॥ २७ ॥
आगमभावितहृदयस्य जीव ! तव कियतीमावेदना ? । सोढाऽनन्तवारा तु वेदना घोरनरकेषु ॥ २८ ॥
लब्धो जिनेन्द्रधर्मः सुचिरं परिपालितमपि श्रामण्यम् । वेदनामिमामसहमानः सर्वमपि निरर्थकं करोषि ॥ २९ ॥
अध्यासमानविषतुम्बकोद्भवां वेदनां महासत्त्वः । हृदयाभ्यन्तरविस्फुरितगुरुकसंवेगसंयुक्तः ॥ ३० ॥
पञ्चप्रभुनमस्कारान् स्मरन् शत्रुमित्रसमचितः । मृत्वा समुत्पन्नः सर्वार्थे भासुरोऽमरः ॥ ३१ ॥
गुरुणापि गुरुकवेलेति कलयित्वाबहिर्गतस्य तपोनिधेः । प्रतिजागरणनिमित्तं प्रस्थापिताः साधवस्तस्य ॥ ३२ ॥
आगत्य गुरुणां प्रणमितचरणाः कथयन्ति ते साधवः । कालगतं ततो गुरव उपयोगं ददाति पूर्वेषु ॥ ३३ ॥
परिज्ञातपरमार्था व्याहृत्य साधु-साध्वीवर्गम् । नागश्रीकटुकतुम्बकदानान्मरणं प्रकाशन्ते ॥ ३४ ॥
जातो यावत्सर्वार्थेऽमरस्तावत्साधु-साध्वीवर्गः । निन्दति नागश्रिया दुश्चरितं स्तौति मुनिचरितम् ॥ ३५ ॥
जातो जनापवादो नगरीमध्ये तस्याः पापायाः । भर्ता-देवरैरपि त्यक्ता ऋषिघातिनीति ततः ॥ ३६ ॥
निन्द्यमाना नगरीजनेन डिम्भैरभिहन्यमानी । सर्वत्र दीनवदना भिक्षामपि न प्राप्नोति भ्रमन्ती ॥ ३७ ॥

१. वइणां रं ।

इहलोए च्चिय पावा अक्कंता सोलसेहिं रोगेहिं । ते पुण सोलस रोगा सिद्धंते वन्निया एवं ॥३८॥
सासे कासे जरे दाहे जोणीसूले भगंदरे । अरिसा अजीरए दिट्ठी-मुहसूले अरोयए ॥३९॥
अच्छि-कन्नाण वियणा कंडू अवरे जलोदरे । कुट्ठवाही य दुहए एए सोलस वाहिणो ॥४०॥
अणुभविऊणं एए रोए सा तम्मि चेव य भवम्मि । मरिऊण समुप्पन्ना परलोए छट्ठपुढवीए ॥४१॥
तत्तो तंदुलमच्छत्तणाइभवभमणदुक्खमणुभविउं । उप्पन्ना अइबहुसो सव्वासु वि नरयपुढवीसु ॥४२॥
तत्तो परिब्भमंती संसारे तिरियजोणिलक्खेसु । कह कह वि हु मणुयत्तं पत्ता चंपाए नयरीए ॥४३॥
धूयत्ताए जाया सागरदत्तस्स सेट्ठिणो भवणे । भद्दाए भरियाए नामं सुकुमालिया तीसे ॥४४॥
सा जोव्वणमणुपत्ता विलसिरलायन्नपूरियसरीरा । जिणदत्तेणं गंतुं वरिया सागरसुयस्स कए ॥४५॥
सागरएण सपणयं परिणीया सा महाविभूईए । संपत्तो वासगिहं तो तीए अंगफासेण ॥४६॥
तिक्खतरवारिधारासंगेण व छिज्जमाणसव्वंगो । पत्तो य नियं गेहं दुहपत्थारिं व तं मोत्तुं ॥४७॥
गंतूणमुवालद्धो सागरदत्तेण तयणु जिणदत्तो । किं तुह कुलाणुरूवं निद्दोसं चइय मज्झ सुयं ॥४८॥
जं एस समायाओ तुह तणओ सिग्घमेव नियगेहं । जिणदत्तेण वि तणओ पयंपिओ एवमुल्लवइ ॥४९॥
वरमहमुज्झामि गिहं तणं व धण-सयण-मित्तकलियं पि । न उणो करवत्तसमं तीए तणुफासमिच्छामि ॥५०॥
वच्चामि वा विएसं छुहा-पिवासाभिभूयसव्वंगो । न उणो करवत्तसमं तीए तणुफासमिच्छामि ॥५१॥

इहलोके चैव पापाऽऽक्रान्ता षोडशै रोगैः । ते पुनः षोडश रोगाः सिद्धान्ते वर्णिता एवम् ॥ ३८ ॥
श्वासः कासो ज्वरो दाहो योनीशूलं भगन्दरः । अर्षा अजीर्णं दृष्टिमुखशूलमरोचकम् ॥ ३९ ॥
अक्षि-कर्णानां वेदना कन्डू अपरं जलोदरम् । कुष्टव्याधिश्च दुःखयति एते षोडश व्याधयः ॥ ४० ॥
अनुभूयैतान् रोगान् सा तस्मिंश्चैव च भवे । मृत्वा समुत्पन्ना परलोके षष्ठपृथिव्याम् ॥ ४१ ॥
ततस्तन्दुलमत्स्यत्वादिभवभ्रमणदुःखमनुभूय । उत्पन्नातिबहुशः सर्वास्वपि नरकपृथिविषु ॥ ४२ ॥
ततः परिभ्रमन्ती संसारे तिर्यग्योनिलक्षेषु । कथं कथमपि खलु मनुष्यत्वं प्राप्ता चम्पायां नगर्याम् ॥ ४३ ॥
दुहितृत्वे जाता सागरदतस्य श्रेष्ठिनो भवने । भद्राया भार्याया नाम सुकुमालिका तस्याः ॥ ४४ ॥
सा यौवनमनुप्राप्ता विलसल्लावण्यपूरितशरीरा । जिनदत्तेन गत्वा वृता सागरसुतस्य कृते ॥ ४५ ॥
सागरेण सप्रणयं परिणीता सा महाविभूत्या । संप्राप्तो वासगृहं ततस्तस्या अङ्गस्पर्शेन ॥ ४६ ॥
तीक्ष्णतरवारिधारासङ्गेनेव छिद्यमानसर्वाङ्गः । प्राप्तश्चनिजं गृहं दुःखप्रस्तारिकामिव तां मुक्त्वा ॥ ४७ ॥
गत्वोपालब्धः सागरदत्तेन तदनु जिनदत्तः । किं तव कुलानुरुपं निर्दोषां त्यक्त्वा मम सुताम् ॥ ४८ ॥
यदेष समायातस्तव तनयः शीघ्रमेव निजगृहम् । जिनदत्तेनापि तनयः प्रजल्पित एवमुल्लपति ॥ ४९ ॥
वरमहमुज्झामि गृहं तृणमिव धन-स्वजन-मित्रकलितमपि । न पुनः करपत्रसमं तस्यास्तनुस्पर्शमिच्छामि ॥ ५० ॥
गच्छामि वा विदेशं क्षुधा-पिपासाभिभूतसर्वाङ्गः । न पुनः करपत्रसमं तस्यास्तनुस्पर्शमिच्छामि ॥ ५१ ॥

पज्जलियजलणजालाकलावदुसहं चियं पि पविसामि । न उणो करवत्तसमं तीए तणुफासमिच्छामि ॥५२॥
तिव्वतरवारिधारासंचरणसमं वयं पि गिण्हामि । न उणो करवत्तसमं तीए तणुफासमिच्छामि ॥५३॥
इय जामाउयभणियं कुड्डंतरिओ समग्गमवि सोउं । सागरदत्तो पत्तो सविलक्खमणो सभवणम्मि ॥५४॥
कहमवि न महइ वच्छे ! तुज्झ पई तुज्झ संगमं गुणवं । ता वीसत्था होउं उवभुंजसु मज्झ धणरिद्धिं ॥५५॥
मिच्छत्तमोहिया सा सोहग्गकएऽणुवासरं कुणइ । मयरद्धयस्स पूयं अच्चइ तह गउरिपडिमं पि ॥५६॥
धूयण-विलेवण-तिलय-मूलिया-मन्त-जन्त-तन्ताणि । जाणगजणोवइट्ठाणि कुणइ सव्वाणि न तहा वि ॥५७॥
संजायं सोहग्गं दोहग्गं वड्ढए सकोवं व । नेहपरव्वसहियया आदन्ना जणणि-जणया से ॥५८॥
चिंतंति य कस्सइ भिक्खवित्तिणो वियरिमो अहऽन्नदिणे । कच्छोट्टयपरिहाणो लिल्लिरियावेढियसिरग्गो ॥५९॥
धूलीधूसरगत्तो अंगुलपिहुपयवियाउयाविवरो । सिप्पउडसरिसनहरो कुरूवयाकलियसव्वंगो ॥६०॥
जुन्नकुसरज्जलंबिरमक्कडियाधरण (वग्ग) वामकरो । साणाइवारणत्थं दाहिणकरकलियढंखरओ ॥६१॥
भिक्खयरो भिक्खकए समागओ तयणु सेट्ठिणा भणिओ । को भद्द ! तुमं ? कत्थ व निवससि ? तो भणइ सो एवं ॥६२॥
परिहीणबंधुवग्गो वणियसुआ भिक्खमेत्तधणकलिओ । अनियययवासी साहु व्व खोणिवीढम्मि वियरामि ॥६३॥
सोऊण तस्स वयणं सेट्ठी चिंतइ जहा हवउ एसो । महदुहियाए दोहग्गदुक्खदूमियमणाए वरो ॥६४॥

प्रज्वलितज्वलनज्वालाकलापदुःसहां चितामपिप्रविशामि । न पुनः करपत्रसमं तस्यास्तनुस्पर्शमिच्छामि ॥ ५२ ॥
तीव्रतरवारिधारासञ्चरणसमं व्रतमपि गृह्णामि । न पुनः करपत्रसमं तस्यास्तनुस्पर्शमिच्छामि ॥ ५३ ॥
इति जामातृभणितं कुड्यान्तरितः समग्रमपि श्रुत्वा । सागरदत्तः प्राप्तः सविलक्षमनाः स्वभवने ॥ ५४ ॥
कथमपिन काङ्क्षते वत्से ! तव पतिस्तव सङ्गमं गुणवान् । ततो विश्वस्ता भूत्वोपभुङ्ग्ध मम धनर्द्धिम् ॥ ५५ ॥
मिथ्यात्वमोहिता सा सौभाग्यकृतेऽनुवासरं करोति । मकरध्वजस्य पूजामर्चयति तथा गौरिप्रतिमामपि ॥ ५६ ॥
धूपन-विलेपन-तिलक-मूलिका-मन्त्र-यन्त्र-तन्त्राणि । ज्ञापकजनोपदिष्टानि करोति सर्वाणि न तथापि ॥ ५७ ॥
सञ्जातं सौभाग्यं दौर्भाग्यं वर्धते सकोपमिव । स्नेहपरवशहृदयावादर्णौ जननी-जनकौ तस्याः ॥ ५८ ॥
चिन्तयतश्च कस्यचिद्भिक्षावृत्तिने वितरावोऽथान्यदिने । कच्छोटकपरिधानो चीरिकावेष्टितशिराग्रः ॥ ५९ ॥
धूलिधूसरगात्रोऽङ्गुलपृथुपदविपादिका[1]विवरः । सूर्पपुटसदृशनरवरः कुरुपकाकलितसर्वाङ्गः ॥ ६० ॥
जीर्णकुशरज्जुलम्बन्मर्कटिकाधरण (व्यग्र) वामकरः । श्वानादिवारणार्थं दक्षिणकरकलितढंखर[2]ओ ॥ ६१ ॥
भिक्षाचरो भिक्षाकृते समागतस्तदनु श्रेष्ठिना भणितः । को भद्र ! त्वं ? कुत्र वा निवसति ? ततो भणति स एवम् ॥६२॥
परिहीणबन्धुवर्णो वणिक्सुतो भिक्षामात्रधनकलितः । अनियतवासी साधुरिव क्षोणिपीठे विचरामि ॥ ६३ ॥
श्रुत्वा तस्य वचनं श्रेष्ठी चिन्तयति यथा भवत्येषः । मम दुहितु दौर्भाग्यदुःखदवितमनसः वरः ॥ ६४ ॥

---

१. 'बिवाई-रोग' इति भाषायाम् । २. 'डफली' भाषायाम् (दे.) ।

भणइ य भद्दय ! परिहरसु सयलभिक्खोवगरणमसुहमिमं । तुह वियरेमि नियसुयं तं सोउं चिंतए दमओ ॥६५॥
कम्मेहिं मज्झ विवरं दिन्नं दिव्वो वि अभिमुहो जाओ । फलियं च सुहमणोरहमालावल्लीवियाणेण ॥६६॥
जं मह भिक्खयरस्स वि रूवविहूणस्स बंधुरहियस्स । अमुणियकुलक्कमस्स वि एसो वियरइ नियं धूयं ॥६७॥
इय चिंतिऊण संजायगरुयहरिसेण तेण पडिवन्नं । तो सेट्ठिणा पहिट्ठेण ण्हाविओ तक्खणे दमओ ॥६८॥
परिहाविओ य सुंदरवत्थाइं तओ मणुन्नमाहारं । भुंजाविऊण विहियं परिनहपरिकम्मणं तस्स ॥६९॥
अणुवासरं पि ण्हाणुव्वट्टणपरिकम्मणेण संजाओ । सो जच्चकंचणनिभो दमओ वि हु देव्वकुमरो व्व ॥७०॥
सेट्ठी सुपसत्थदिणम्मि तस्स सुकुमालियं समप्पेइ । तो तीए संगमुस्सुयचित्तो पत्तो स वासगिहं ॥७१॥
अन्नोन्ननेहनिब्भरमणेहिमवरोप्परं तओ तत्थ । निवडियकयभुयजुयलेहिं तेहिं परिरंभमं विहियं ॥७२॥
तो तीए सरीरलयाफासेण वि सव्वओ समुच्छलिओ । तस्स सरीरे मुम्मुरहुयाससरिसो महादाहो ॥७३॥
चिंतइ विसन्नचित्तो जइ एसा सोक्खकारिणी होज्जा । ता किं धण-सयणजुयाण वणियपुत्ताण न हु दिन्ना ? ॥७४॥
जीए सरीरफासे वि दारुणो जायए महादाहो । संगेण तीए नियमेण होइ मरणं न संदेहो ॥७५॥
वररूवसालिणी वि य महरिहवंसुब्भवा वि फासेण । असुहेण न परिणीया केणावि सुहत्थिपुरिसेण ॥७६॥
नूणं भिक्खयराणं थीरयणं को वि देइ न कया वि । ता एयारिसफासेण संजुया वियरिया मज्झ ॥७७॥
जइ एयारिसफासो सव्वस्स वि होज्ज नारिनियरस्स । ता नामं पि न पुरिसो गिण्हेज्ज इमाण किमु संगं ? ॥७८॥

भणति च भद्रक ! परिहर सकलभिक्षोपकरणमशुभमिदम् । तुभ्यं वितरामि निजसुतां तच्छ्रुत्वा चिन्तयति द्रमकः ॥६५॥
कर्मभि र्मम विवरं दत्तं दिव्योऽप्यभिमुखो जातः । फलितं च शुभमनोरथमालावल्लीवितानेन ॥ ६६ ॥
यन्मम भिक्षाचरस्यापि रुपविहीनस्य बन्धुरहितस्य । अमुणितकुलक्रमस्याप्येष वितरति निजां दुहितरम् ॥ ६७ ॥
इति चिन्तयित्वा सञ्जातगुरुकहर्षेण तेन प्रतिपन्नम् । ततः श्रेष्ठिना प्रहृष्टेन स्नापितस्तत्क्षणे द्रमकः ॥ ६८ ॥
परिधापितश्च सुन्दरवस्त्राणि ततो मनोज्ञमाहारम् । भोजयित्वा विहितं परिणहपरिकर्म तस्य ॥ ६९ ॥
अनुवासरमपि स्नानोद्ध्वर्तनपरिकर्मणो सञ्जातः । स जात्यकञ्चननिभो द्रमकोऽपि खलु देवकुमार इव ॥ ७० ॥
श्रेष्ठी सुप्रशस्तदिने तस्य सुकुमालिकां समर्पयति । ततस्तस्याः सङ्गमोत्सुकचित्तः प्राप्तः स वासगृहम् ॥ ७१ ॥
अन्योन्यस्नेहनिर्भरमनोभ्यामपरापरं ततस्तत्र । निवर्तितकृतभुजयुगलाभ्यां ताभ्यां परिरम्भणं विहितम् ॥ ७२ ॥
ततस्तस्याः शरीरलतास्पर्शेनापि सर्वतः समुच्छलितः । तस्य शरीरं मुर्मुरहुताशसदृशो महादाहः ॥ ७३ ॥
चिन्तयति विषण्णचित्तो यद्येषा सौख्यकारिणी भवेत् । तदा किं धन-स्वजनयुतानां वणिक्पुत्राणां न खलु दत्ता ? ॥७४॥
यस्याः शरीरस्पर्शेऽपि दारुणो जायते महादाहः । सङ्गेन तस्या नियमेन भवति मरणं न सन्देहः ॥ ७५ ॥
वररुपशालिन्यपि च महार्हवंशोद्भवापि स्पर्शेन । अशुभेन न परिणीता केनापि सुखार्थी पुरुषेण ॥ ७६ ॥
नूनं भिक्षाचराणां स्त्रीरत्नं कोऽपि ददाति न कदापि । तत एतादृशस्पर्शेन संयुक्ता वितरिता मम ॥ ७७ ॥
यद्येतादृशस्पर्शः सर्वस्यापि भवेन्नारिनिकरस्य । तदा नाममपि न पुरुषो गृह्णीयादासां किमु सङ्गम् ? ॥ ७८ ॥

ता सव्वहा वि वरि मज्झ होउ आबालकालिया भिक्खा । मा संपज्जउ फासो इमाए धणरिद्धिजुत्तो वि ॥७९॥
इय चिंतिऊण काउं कडीए कच्छोट्टयं तओ झत्ति । नीहरिओ रुयमाणिं तणं व चइऊण तं दमओ ॥८०॥
भणिओ य सेट्ठिणा वच्छ ! पढमपेम्मे वि रूसणारंभो । किं तुज्झ ? तओ सो भणइ मज्झ न हु रूसणं किं पि ॥८१॥
किंतु तुह अंगयाअंगसंगसंतावमसहमाणो हं । गच्छामि न भोगेहिं पओयणं मज्झ एयाए ॥८२॥
जइ अहिलसेमि विसए इमाए ता होइ नित्तूलं मरणं । जीवंतो पुण सीयलसलिलं सव्वत्थ वि पिएमि ॥८३॥
तो सहसा जुन्नतणं धेत्तूणं भामिऊण नियसीसे । पक्खिविय तीए समुहं विणिग्गओ झति भवणाओ ॥८४॥
दमएण वि परिचत्ता तो य संजायगरुयवेरग्गा । पव्वइया अइघोरं चरिउं सुचिरं तवच्चरणं ॥८५॥
दट्ठुं गणियं पंचहि विलासिपुरिसेहिं आलविज्जंतिं । परिहासचाडुवयणेहिं तयणु संभरियदोहग्गा ॥८६॥
कुणइ नियाण इमेयं जइ मज्झ तवस्स किं पि होज्ज फलं । ता होज्ज पंचपुरिसाण पणइणी हिययदइया य ॥८७॥
मरिऊण समुप्पन्ना ईसाणं वाररमणिरूवेण । अणुहविउं विसयसुहं पंचपयारं सह सुरेहिं ॥८८॥
चविऊण तओ कंपिल्लपुरवरे दुवयपुहइपालस्स । धूया जाया वररूवसालिणी दोवई नाम ॥८९॥
नवजोव्वणमारूढाए तीए पंचण्ह पंडुपुत्ताण । पक्खित्ता वरमाला निययनियाणाणुभावेण ॥९०॥
जाया य ताण इट्ठा अहऽन्नया नारएण कुविएण । धायइसंडे भरहम्मि राइणो पउमनाहस्स ॥९१॥
कहिउं रूवाइगुणे हराविया दोवई तओ तत्थ । छट्ठतव कुणमाणी ठिया तहाऽऽयामपारणया ॥९२॥

ततः सर्वथापि वरा मम भवतु आबालकालिका भिक्षा । मा सम्पद्यतां स्पर्शोऽनया धनर्द्धियुक्तोऽपि ॥ ७९ ॥
इति चिन्तयित्वा कृत्वा कट्यां कच्छोटकं ततः शीघ्रम् । निसृतो रुदन्तीं तृणमिव त्यक्त्वा तां द्रमकः ॥ ८० ॥
भणितश्च श्रेष्ठिना वत्स ! प्रथमप्रेमेऽपि रोषणारम्भः । किं तव ? ततः स भणति मम न खलु रोषणं किमपि ॥८१॥
किन्तु तवाङ्गजाङ्गसङ्गसन्तापमसहमानोऽहम् । गच्छामि न भोगैः प्रयोजनं ममैतस्याः ॥ ८२ ॥
यद्यभिलषामि विषयानेतस्यास्तदा भवति निस्तूलं मरणम् । जीवन्पुनः शीतलसलिलं सर्वत्रापि पिबामि ॥ ८३ ॥
ततः सहसा जीर्णतनं गृहीत्वा भ्रामयित्वा निजशीर्षे । प्रक्षिप्य तस्याः सम्मुखं विनिर्गतः शीघ्रं भवनात् ॥ ८४ ॥
द्रमकेनापि परित्यक्ता ततश्च सञ्जातगुरुकवैराग्या । प्रव्रजितातिघोरं चरित्वा सुचिरं तपश्चरणम् ॥ ८५ ॥
दृष्ट्वा गणिकां पञ्चभि विलासपुरुषैरालप्यमानी । परिहासचाटुवचनैस्तदनु स्मृतदौर्भाग्या ॥ ८६ ॥
करोति निदानमिमायंयदि मम तपसः किमपि भवेत्फलम् । ता भवेः पञ्चपुरुषाणां प्रणयिनी हृदयदयिता च ॥८७॥
मृत्वा समुत्पन्नेशाने वाररमणिरुपेन । अनुभूय विषयसुखं पञ्चप्रकारं सह सुरैः ॥ ८८ ॥
च्युत्वा ततः काम्पिल्यपुरवरे द्रुपदपृथिवीपालस्य । दुहिता जाता वररुपशालिनी द्रौपदी नाम ॥ ८९ ॥
नवयौवनमारुढया तया पञ्च पाण्डुपुत्राणाम् । प्रक्षिप्ता वरमाला निजनिदानानुभावेन ॥ ९० ॥
जाता च तेषामिष्टाऽथान्यदा नारदेन कुपितेन । धातकीखण्डे भरते राज्ञः पद्मनाभस्य ॥ ९१ ॥
कथयित्वा रूपादिगुणान्हारिता द्रौपदी ततस्तत्र । षष्टतपः क्रियमाणी स्थिता तथा चाम्लपारणका ॥ ९२ ॥

अक्खंडियनियसीला छट्ठे मासम्मि वासुदेवेण । रहपहमणुजाणाविय देवं तरिऊण जलरासिं ॥९३॥

निज्जिणिय पउमनाहं पच्चाणीया य पंडुमहुराए । तत्थ ठिया बहुकालं उवभुंजंती विसयसोक्खं ॥९४॥

तो पंडुसेणकुमरे अहिसित्ते पंडवेहिं नियरज्जे । तेहिं सह गहियदिक्खा अकलंकं पालिऊण वयं ॥९५॥

मरिऊण बंभलोए उप्पन्ना तत्थ भुंजिउं भोए । चविउं महाविदेहे पव्वइउं पाविही सोक्खं ॥९६॥

॥ नागश्रीब्राह्मण्याख्यानकं समाप्तम् ॥१२॥

दिन्नं सुपत्तदाणं विहीए धण-धन्नायाइमणुयाण । भत्तिकलियाण जायं कल्लाणपरंपराजणयं ॥१॥

नागसिरिए संसारकारणं तं पि अविहिणा दिन्नं । तम्हा विहीए देयं दाणं सिवमोक्खकामेहिं ॥२॥

यत् प्राप्तवांस्त्रिदशसार्थपतित्वमिन्द्रः, पातालराज्यमपि शास्ति यदत्र शेषः ।

यच्चक्रवतिपदवीं परिपाति चक्री, तत् पात्रदानजनितं फलमामनन्ति ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे सुपात्रदानवर्णनो नाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः ॥२॥

अखण्डितनिजशीला षष्टे मासे वासुदेवेन । रथपथमनुज्ञाप्य देवं तीर्त्वा जलराशिम् ॥ ९३ ॥

निर्जित्य पद्मनाभं प्रत्यानीता च पाण्डुमथुरायाम् । तत्र स्थिता बहुकालमुपभुञ्जन्ती विषयसौख्यम् ॥ ९४ ॥

ततः पाण्डुसेनकुमारेऽभिषिक्ते पाण्डवै निजराज्ये । तैः सह गृहीतदिक्षाऽकलङ्कं पालयित्वा व्रतम् ॥ ९५ ॥

मृत्वा ब्रह्मलोक उत्पन्ना तत्र भुक्त्वा भोगान् । च्युत्वा महाविदेहे प्रव्रज्य प्राप्स्यति सौख्यम् ॥ ९६ ॥

॥ नागश्रीबाह्मण्याख्यानकं समाप्तम् ॥ १२ ॥

दत्तं सुपात्रदानं विधिना धन-धान्यादिमनुष्याणाम् । भक्तिकलितानां जातं कल्याणपरम्पराजनकम् ॥ १ ॥

नागश्रियाः संसारकारणं तदप्यविधिना दत्तम् । तस्माद्विधिना देयं दानं शिवमोक्षकामिभिः ॥ २ ॥

● ● ●

[३. शीलमाहात्म्यवर्णनाधिकारः ।]

व्यख्यातं विध्यविधिप्रकाराभ्यां शुभा-ऽशुभफलप्रदं दानम् । अधुना क्रमप्राप्तं शीलमाख्यायते । तच्चेह यद्यपि देश-सर्व-संवररुपं समये शीलं प्रसिद्धं तथापीह तदवयवभूतं स्त्रियोऽधिकृत्य परपुरुषपरिहार स्वरुपमेवाह -

सीलं सुगइनिहाणं नमन्ति देवा वि सीलमंताणं ।
दवदंति-सीय-रोहिणि-मणोरमसुभद्दनाएणं ॥ ८ ॥

व्याख्या - 'शीलं' करणनिग्रहस्वरूपं सुगतेः- सुदेवत्व सुमानुषत्वरुपाया निधानं-स्थानम् । 'नमन्ति' प्रणिपतन्ति देवा अपि आसतां मानवादयः, 'शीलवद्भ्यः' शीलसम्पन्नेभ्यः । दृष्टान्तानाह-दवदन्ती च -नलकलत्रं सीता च - रामदेवदयिता रोहिणी च श्रेष्ठिभार्या मनोरमा च - सुदर्शनपत्नी सुभद्रा च - वणिग्जाया दवदन्ती-सीता-रोहिणी-मनोरमा-सुभद्राः, ता एव ज्ञातम् तेन ॥ ८ ॥

तत्र तावद् दवदन्त्याख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

अत्थि वियब्भादेसस्स मंडणा कुंडिणाभिहाणपुरी । निज्जिणियपुरंदरनयरिविब्भमा निययरिद्धीए ॥१॥

जत्थ अदब्भवियंभियभवणुब्भवनीलरयणकिरणेहिं । अहिणवजलहरसंका जायइ गिहिगयसिहंडीणं ॥२॥

जत्थ तिउरारिनयणानलाओ भीएण कामदेवेण । विहिया पुरंगणाणं नयणिंदीवरवणेसु ठिई ॥३॥

तं परिपालइ राया भीमरहो भीमसमरसंरंभो । बंदीकयारिकामिणिसंचालिज्जंतसियचमरो ॥४॥

॥ ३. शीलमाहात्म्यवर्णनाधिकारः ॥

तत्र तावद् दवदन्त्याख्यानकमाख्यायते ।

अस्ति विदर्भदेशस्य मण्डना कुण्डिनाभिधानपुरी । निर्जितपुरन्दरनगरीविभ्रमा निजकर्द्धया ॥ १ ॥

यत्रादर्भविजृम्भितभवनोद्भवनीलरत्नकिरणैः । अभिनवजलधरशङ्का जायते गृहगतशिखण्डीनाम् ॥ २ ॥

यत्र त्रिपुरारिनयनानलाद्भीतेन कामदेवेन । विहिता पुराङ्गनानां नयनीन्दीवरवनेषु स्थितिः ॥ ३ ॥

तां परिपालयति राजा भीमरथो भीमसमरसंरम्भः । बन्दीकृतारिकामिनिसञ्चाल्यमानश्वेतचामरः ॥ ४ ॥

तस्सऽत्थि पुप्फदंती सिंगारलयाविलासिपुप्फं व । हरिमुत्ति व्व पवित्ता भज्जा गउरि व्व [१] सुकुमारा ॥५॥

रइकेलिविसयसुहसारमणुहवंतस्स तस्स तीए समं । गच्छंति वासरा कमलचंचुणो पणइकमलाण ॥६॥

अह अन्नया य देवी रयणीए पच्छिमम्मि जामम्मि । दट्ठुं सुमिणं साहइ पहायसमयम्मि दइयस्स ॥७॥

जाणामि पेरिओ वणदवेण दंती सुरिंदकरिधवलो । संपत्तो पिययम ! तुज्झ मंदिरे तयणु भणइ निवो ॥८॥

दइए तुज्झ भविस्सइ कुमरो कुमरी व जे सगुणनियरा । भुवणमिणं रययसलायपंजरत्थं करिस्संति ॥९॥

जाव इमं भणइ निवो सो दंती ताव तत्थ संपत्तो । आरोवित्तु सखंधे देवीसहियं निवं तत्तो ॥१०॥

भमिऊण नयरिमज्झे उत्तारेऊण खंधदेसाओ । गेहम्मि दोन्नि वि तओ पत्तो आलाणखंभम्मि ॥११॥

पडिया तत्तो गयणाओ कुसुमवुट्ठी पयंपई लोओ । पुन्नेहिं निव्वुइदेवयाए इह एस आणीओ ॥१२॥

तप्पभिइं देवीए संजाओ गब्भसंभवो सुहओ । हियइच्छियपूरिज्जंत डोहला पसवसमयम्मि ॥१३॥

सोयामिणिम्व जलहरमाला जुण्हं व रयणिवरमुत्ती । दिणयरतणु व्व सुपहं सुहं पसूया सुयं देवी ॥१४॥

सह जम्मेणं तीए भालयले तरुणतरणिसच्छाओ । पाउब्भूओ तिलओ उदयधरे वालतरणि व्व ॥१५॥

अइगरुयविभूईए वद्धावणयं करित्तु नरवइणा । दवदंति त्ति कयं से नामं सुमिणाणुसारेण ॥१६॥

अणुदियहं वड्ढंती कलाकलावेण चंदलेह व्व । संपत्ता मयणविलासमंदिरं जोव्वणारंभं ॥१७॥

तस्यास्ति पुष्पदन्ती शृङ्गारलताविलासिपुष्पमिव । हरिमूर्तिरिव पवित्रा भार्या गौरिरिव सुकुमारा ॥ ५ ॥

रतिकेलिविषयसुखसारमनुभवतस्तस्य तया समम् । गच्छन्ति वासराः कमलचञ्चुनः प्रणतिकमलानाम् ॥ ६ ॥

अथान्यदा च देवी रजन्यां पश्चिमे यामे । दृष्ट्वा स्वप्नं कथयति प्रभातसमये दयितस्य ॥ ७ ॥

जानामि प्रेरितो वनदेवेन दन्ती सुरेन्द्रकरिधवलः । संप्राप्तःप्रियतम ! तवमन्दिरे तदनुभणति नृपः ॥ ८ ॥

दयिते तव भविष्यति कुमारः कुमारी वा ये स्वगुणनिकरात् । भुवनमिदं रजतशलाकापञ्जरस्थं करिष्यन्ति ॥ ९ ॥

यावदिमं भणति नृपःस दन्ती तावत्तत्र सम्प्राप्तः । आरोप्य स्वस्कन्धे देवीसहितं नृपं ततः ॥ १० ॥

भ्रान्त्वा नगरीमध्ये उत्तार्य स्कन्धदेशाद् । गृहे द्वावपि ततः प्राप्त आलानस्तम्भे ॥ ११ ॥

पतिता ततो गगनात्कुसुमवृष्टिः प्रजल्पति लोकः । पुण्यैर्निर्वृत्तिदेवतयेहैष आनीतः ॥ १२ ॥

तत्प्रभृति देव्याः सञ्जातो गर्भसम्भवः सुभगः । हृदयेच्छितपूर्यमाणदोहदा प्रसवसमये ॥ १३ ॥

सौदामिनीव जलधरमाला ज्योत्स्नामिव रजनीवरमूर्तिः । दिनकरतनूरिव सुप्रभां सुखं प्रसूता सुतां देवी ॥ १४ ॥

सह जन्मना तस्या भालतलं तरुणतरणिसच्छायः । प्रादुर्भूतस्तिलक उदयधरे बालतरणिरिव ॥ १५ ॥

अतिगुरुकविभूत्या वर्द्धापनकं कृत्वा नरपतिना । दवदन्तीति कृतं तस्या नाम स्वप्नानुसारेण ॥ १६ ॥

अनुदिवसं वर्धमानी कलाकलापेन चन्द्रलेखेव । सम्प्राप्ता मदनविलाशमन्दिरं यौवनारम्भम् ॥ १७ ॥

---

१. मुपवित्ता रं०।

सम्मोहणं व तिहुयणजणाण संतावणं व तरुणाण । उम्मायणं व एक्कग्गमाणसाणं मुणीणं पि ॥१८॥
निस्सेसलोयउवसमपल्लववेल्लीए सोसणं व इहं । संहारणं व परमं कामुयजणजीवियस्सावि ॥१९॥
जो पंचवाणमइयाए तीए विद्धो कडक्खभल्लीहिं । वच्छत्थलम्मि सो जियइ कामुओ कहवि किच्छेण ॥२०॥
तं दट्ठुं नरनाहो असरिसलायन्न-रूव-गुणजलहिं । चिंतइ कत्थ भविस्सइ एयाए वरो गुणेहिं समो ? ॥२१॥
ता एयाए निमित्तं सयंवरामंडवं करावेमि । तत्थ निवकुमरमज्झे वरेउ जो रोयइ मणस्स ॥२२॥
इय चिंतिय वाहरिया सव्वे वि नरेसरा नरिंदेण । निम्माविओ य नयरे सयंवरामंडवो रुइरो ॥२३॥
वेल्लहलधवलधयवडरणंतमणिकणयकिंकिणिकलावो । मंचाइमंचकलिओ निरुद्धरवितुरयसंचारो ॥२४॥
एगत्थ मेघडंबरवचूलमुत्ताकलावनियरेण । अणुहरइ सरयनिम्मलतारावलिसहियगयणस्स ॥२५॥
नीलमणिथंभनिणिहियनाणामणिकिरणजालसंवलिओ । अणुहरइ कहवि हरिचावजट्ठिजुयजलयपडलस्स ॥२६॥
अवरत्थ पंडुपट्टउलवत्थउल्लोयविहियगुरुसोहो । आगामिनलकुमारस्स पसरिओ कित्तिपडओ व्व ॥२७॥
थंभनिवेसिडज्झन्तधूमधडियासमुत्थधूमसिहो । भाविपरकुमरअवमाणकोवसिहिफुरियधूमो व्व ॥२८॥
परितुलियपुरंदरधामविब्भमो धाम रामणीयस्स । निस्सेसदेसलच्छीविलासरमणीयगेहं व ॥२९॥
आगंतुं पडिहारेण नमिय वद्धाविओ महीनाहो । रायाणो देव ! इहं पत्ता लेहारिएहिं समं ॥३०॥
समुहं गंतुं गुरुबलभारपकंपंतधरणिवीढेण । अइगरुयविभूईए तेसि पवेसो कओ रन्ना ॥३१॥

सम्मोहनमिव त्रिभुवनजनानां सन्तापनमिव तरुणानाम् । उन्मादनमिवैकाग्रमानसानां मुनीनामपि ॥ १८ ॥
निःशेषलोकोपशमपल्लवल्ल्याशोषणमिवेह । संहारणमिव परमं कामुकजनजीवितस्यापि ॥ १९ ॥
यः पञ्चबाणमतिकया तया विद्धः कटाक्षभल्लीभिः । वक्षःस्थले स जीवति कामुकः कथमपि कृच्छ्रेण ॥ २० ॥
तां दृष्ट्वा नरनाथोऽसदृशलावण्य-रुप-गुणजलधिम् । चिन्तयति कुत्र भविष्यत्येतस्या वरो गुणैः समः ? ॥ २१ ॥
तत एतस्या निमित्तं स्वयंवरमण्डपं कारयामि । तत्र नृपकुमारमध्ये वरतु यो रोचते मनसः ॥ २२ ॥
इति चिन्तयित्वा व्याहृताः सर्वेऽपि नरेश्वरा नरेन्द्रेण । निर्मापितश्च नगरे स्वयंवरमण्डपो रुचिरः ॥ २३ ॥
धुर्णद्धवलध्वजपटरणन्मणिकनककिङ्किणिकलापः । मञ्चातिमञ्चकलितो निरुद्धरवितुरगसञ्चारः ॥ २४ ॥
एकत्र मेघडम्बरावचूलमुक्ताकलापनिकरेण । अनुहरति शरदनिर्मलतारकावलिसहितगगनस्य ॥ २५ ॥
नीलमणिस्तम्भविनिहितनानामणिकिरणजालसंवलितः । अनुहरति कथमपि हरिचापयष्टियुतजलदपटलस्य ॥ २६ ॥
अपरत्र पाण्डुपट्टकुलवस्त्रोल्लोचविहितगुरुशोभः । आगामिनलकुमारस्य प्रसृतः कीर्तिपट इव ॥ २७ ॥
स्तम्भनिवेशितदह्यमानधूम्रघटिकासमुत्थधूमशिखः । भाविपरकुमारापमानकोपशिखिस्फुरितधूम्र इव ॥ २८ ॥
परितोलितपुरन्दरधामविभ्रमो धाम रामणीयस्य । निःशेषदेशलक्ष्मीविलासरमणीयगेहमिव ॥ २९ ॥
आगत्य प्रतिहारेण नत्वा वर्धापितो महीनाथः । राजानो देव ! इह प्राप्ता लेखाचार्यैः समम् ॥ ३० ॥
सम्मुखं गत्वा गुरुबलभारप्रकम्पद्मानधरणिपीठेन । अतिगुरुकविभूत्या तेषां प्रवेशः कृतो राज्ञा ॥ ३१ ॥

उवविट्ठेसु महारिहमणिमयसिंघासणेसु निवईसु । तुलिया सयंवरेणं इंदसमा णियसहा सोही ॥३२॥
अह वेयब्भनिवसुया सव्वालंकारसुंदरावयवा । रमणईयसयंवरमंडवम्मि पत्ता निवाइन्ने ॥३३॥
उत्तत्तकणयगोरी कज्जलसामलकरेणुमारूढा । रेहंती नवजलहरमालंकगया तडिलय व्व ॥३४॥
अह करकलियसयंवरमाला बाला करेणुगइगमणी । निस्सेसनरिंदेहिं निरुविया साणुराएहिं ॥३५॥
तो तीए नरिंदाणं नयणेहिं समं गयाइं हिययाइं । सह कामवियारेहिं मणोरहा चिय पवड्ढन्ति ॥३६॥
अणुरायजुया रेहंति के वि दवदंतिचलणजुयलं व । अन्ने उण उव्वित्ता तीए च्चिय ऊरुखंभ व्व ॥३७॥
सारसणा संजाया इयरे तीए नियंबबिबं व । गंभीरा संजाया अन्ने तन्नाभिकूवो व्व ॥३८॥
तुच्छत्तं संपत्ता के वि निवा तीए मज्झदेसो व्व । साममुहा संजाया के वि हु तीए घणथण व्व ॥३९॥
अंगयकलिया जाया नरवइणो के वि तब्भूयलय व्व । के वि समुद्दासोहं तीए करकमलजुयलं व ॥४०॥
रेहंति तत्थ अन्ने वराहरा तीए वयणकमलं व । इयरे सरला तीए नासावंसो व्व सोहंति ॥४१॥
तरलत्तं संपत्ता के वि हु तन्नेत्तनलिणजुयलं व । के वि हु कुडिला जाया तीए कुंतलकलावो व्व ॥४२॥
परिमलमिलंतभमरउलरुणझुणारावमुहलियदियंतं । काऊण करे सियकुसुममालियं बालिया तयणु ॥४३॥
नवजोव्वणं पि सुकुलुग्गयं पि सूरं पि परिहरेऊण । निस्सेसरायमंडलमणुपत्ता नलकुमारम्मि ॥४४॥
सव्वंगसुंदरावयवमणहरं कुसुमबाणसमरूवं । दट्ठूण तयं पारूढपरमनवजोव्वणारंभं ॥४५॥

उपविष्टेषु महार्हमणिमयसिंहासनेषु नृपतिषु । तोलिता स्वयंवरेणेन्द्रसमा निजसभा शोधिन् ॥ ३२ ॥
अथ वैदर्भनृपसुता सर्वाऽलङ्कारसुन्दरावयवा । रमणीयस्वयंवरमण्डपे प्राप्ता नृपाकीर्णे ॥ ३३ ॥
उत्तप्तकनकगौरी कज्जलश्यामलकरेणुमारुढा । राजमानी नवजलधरमालाङ्कगता तडिल्लतेव ॥ ३४ ॥
अथ करकलितस्वयंवरमाला बाला करेणुगतिगामिनी । निःशेषनरेन्द्रै र्निरुपिता सानुरागैः ॥ ३५ ॥
ततस्तस्या नरेन्द्राणां नयनैः समं गतानि हृदयानि । सह कामविकारै र्मनोरथा एव प्रवर्धन्ते ॥ ३६ ॥
अनुरागयुता राजन्ते केऽपि दवदन्तिचरणयुगलमिव । अन्ये पुनरुद्विक्तास्तस्याश्चैवोरुस्तम्भमिव ॥ ३७ ॥
सारसनाः सञ्जाता इतरे तस्या नितम्बबिम्बमिव । गम्भीराः सञ्जाता अन्ये तन्नाभिकूप इव ॥ ३८ ॥
तुच्छत्वं सम्प्राप्ताः केऽपि नृपास्तस्या मध्यदेश इव । श्याममुखाः सञ्जाताः केऽपि खलु तस्याः घनस्तन इव ॥३९॥
अङ्गदकलिता जाता नरपतयःकेऽपि तद्भूजलतेव । केऽपि समुद्राशोभं तस्याः करकमलयुगलमिव ॥ ४० ॥
राजन्ते तत्रान्ये वराधरास्तस्या वदनकमलमिव । इतरे सरलास्तस्यानासावंशमिव शोभन्ते ॥ ४१ ॥
तरलत्वं सम्प्राप्ताः केऽपि खलु तन्नेत्रनलिनयुगलमिव । केऽपि खलु कुटिला जातास्तस्याः कुन्तलकलाप इव ॥४२॥
परिमलमिलद्भ्रमरकुलरुणझुणारावमुखरितदिगन्तम् । कृत्वा करे श्वेतकुसुममालिकां बालिका तदनु ॥ ४३ ॥
नवयौवनामपि सुकुलोद्गतमपि शूरमपि परिहृत्य । निःशेषराजमण्डलमनुप्राप्ता नलकुमारे ॥ ४४ ॥
सर्वाङ्गसुन्दरावयवमनोहरं कुसुमबाणसमरुपम् । दृष्ट्वा तकं प्रारुढपरमनवयौवनारम्भम् ॥ ४५ ॥

एएण मयणबाणेहिं[1] पीडिया हं ति जायकोवाए । बद्धो व्व जणसमक्खं कंठे घेत्तूण वरमालं ।।४६।।

एत्थंतरम्मि एगो समुट्ठिओ कोवदंतदट्ठोट्ठो । कन्हडदेवकुमारो जंपतो फरुसवयणाइं ।।४७।।

रयणाणि मही लच्छी कुलक्कमेणं न हुंति कस्साvि । खग्गेण वसीकाउं उवभुंजइ जो महासत्तो ।।४८।।

ता एसो मं जुज्झेण निज्जिउं कुणउ पाणिगहणं ति । नो एवं तो मुंचउ सह दवदंतीए महिवलयं ।।४९।।

तं निसुणित्तु पयंपइ फुरंतकोवारुणच्छिदुप्पेच्छो । आबद्धभिउडिभासुरभालयलो नलकुमारो वि ।।५०।।

किं रे ! इमिणा गलगज्जिएण जलवज्जिएण व घणस्स । वायाडंबरमेत्तेण जंपिएणं जणसमक्खं ।।५१।।

जइ का वि तुज्झ सत्ती फुरइ मणे ता भवेसु सन्नद्धो । अवणेमि तुज्झ जेणं रणकंडु बाहुदंडाणं ।।५२।।

इय जंपत्तो तत्तो समुट्ठिओ कोवभिउडिदुप्पेच्छो । पेच्छंताण निवाणं आयड्ढियनिसियकरवालो ।।५३।।

इयरो विमंडलग्गंगिण्हित्तु समुट्ठिओ समरधीरो । एत्थंतरम्मि दुण्ह वि सन्नद्धं चाउरंगवलं ।।५४।।

तरलतुरंगमखुरखुन्नखोणिउच्छलियबहलरयपसरं । उवसामिंतो गंडयलगलियमयजलपवाहेण ।।५५।।

उत्तुङ्गपयडपोओ कयलीवणराइरेहिरसरीरो । जंगमपव्वयपुञ्ज व्व सज्जिओ गयघडावीढो ।।५६।।

निट्ठुरखुरपहारकंपावियमहिहर-खोणिमंडलं, उवणियसेसरायगुरुमणहरु पसरिउ तुरयमंडलं ।
सेल्ल-मुसुंढि-कुंत-वावल्ल-सरासणभरियसंदणा, चोइय चडिय समरदप्पुद्धरकंधर रायनंदणा ।।५७।।

एतेन मदनबाणैः पीडिताहमिति जातकोपया । बद्ध इव जनसमक्षं कण्ठे गृहीत्वा वरमालाम् ॥ ४६ ॥

अत्रान्तर एकः समुत्थितः कोपदन्तदष्टौष्ठः । कर्नाटदेवकुमारो जल्पन्परुषवचनानि ॥ ४७ ॥

रत्नानि मही लक्ष्मीः कुलक्रमेण न भवन्ति कस्यापि । खड्गेनवशीकृत्वोपभुनक्ति यो महासत्त्वः ॥ ४८ ॥

तत एष मां युधेन निजीत्य करोतु प्राणिग्रहणमिति । नैवं तदा मुञ्चतु सह दवदन्त्या महिवलयम् ॥ ४९ ॥

तन्निश्रुत्य प्रजल्पति स्फुरत्कोपारुणाक्षिदुष्प्रेक्ष्यः । आबद्धभृकूटिभासुरभालतलो नलकुमारोऽपि ॥ ५० ॥

किं रे ! अनेना गलगर्जितेन जलवर्जितेनेव घनस्य । वाचाऽम्बरमात्रेण जल्पितेन जनसमक्षम् ॥ ५१ ॥

यदि कापि तव शक्तिः स्फुरति मनसि ततो भव सन्नद्धः । अपनयामि तव येन रणकण्डुं बाहुदण्डयोः ॥ ५२ ॥

इति जल्पंस्ततः समुत्तिष्ठत्कोपभृकूटिदुष्प्रेक्ष्यः । पश्यतां नृपाणामाकृष्टनिसितकरवालः ॥ ५३ ॥

इतरोऽपि मण्डलाग्रं गृहीत्वा समुत्थितःसमरधीरः । अत्रान्तरे द्वयोरपि सन्नद्धं चातुरङ्गबलम् ॥ ५४ ॥

तरलतुरङ्गमखुरक्षुण्णक्षोण्युच्छलितबहलरजःप्रसरम् । उपशामयन् गण्डतलगलितमदजलप्रवाहेण ॥ ५५ ॥

उत्तुङ्गप्रकटपोतः कदलीवनराजिराजमानशरीरः । जङ्गमपर्वतपुञ्ज इव सर्जितो गजघटापीठः ॥ ५६ ॥

निष्ठुरक्षुरप्रहारकम्पायितमहिधरक्षोणिमण्डलम्, उपनीतशेषराजगुरुमनोहरप्रसृततुरगमण्डलम् ।
शल्य-मुसुण्ढि-कुन्त-वावल्ल[2] शरासनभृतस्यन्दनाः, चोदितारोहितसमरदर्पोद्धुरकन्धरराजनन्दनाः ॥ ५७ ॥

---

१. नयण रं० । २. शास्त्रविशेषः ।

सुहडा परिफुरंतरणदुज्जयविक्कमबाहुपंजरा, संचलिय करालकरवालवियारियमत्तकुंजरा ।
कियअन्नोन्नबहलहलबोलसमाउलभुवणकंदरं, दलमब्भिट्टु समरि उद्धाइय पडिभडसुहडसुंदरं ॥५८॥
अब्भिट्ट गएहिं गया तुरया तुरएहिं रहवरेहिं रहा । सुहडा सुहडेहिं समं अन्नोन्नसमच्छरं जाव ॥५९॥
तत्तो दवदंतीए कंचणकलसं करेण जलभरियं । गिण्हित्ता उल्लवियं निव्वुइदेविं मणे काउं ॥६०॥
जइ हं जिणपवयणऽनन्नमाणसा निच्चला य सम्मत्ते । तो दोण्ह वि कुमरबलाणमुवसमं कुणसु तं देवि ॥६१॥
इय जंपिऊण तत्तो चुलुयतिगं कणयकलससलिलस्स । उभयबलेसुं पक्खिवइ जाव नवकारपुव्व-न्ति ॥६२॥
उवसमियवइरभावो कन्हडदेवो समागओ ताव । उम्मुक्कमंडलग्गो आसन्नं नलकुमारस्स ॥६३॥
चलणेसु निवडिऊणं आबद्धकरंजली भणइ एवं । सप्पुरिस ! मेऽवराहं खमसु तुमं जो कओ पुव्विं ॥६४॥
अज्जप्पभिइं तं मज्झ सामिओ किंकरो अहं तुज्झ । तं दट्ठूणं चरियं रायाणो विम्हिया सव्वे ॥६५॥
खणमेत्तं जा चिट्ठइ नरनाहो सिद्धपुत्तओ तत्थ । विमलो विमलसहावो आगंतुं सो इमं भणइ ॥६६॥
देव ! इमा दवदंतीपाणिग्गहणस्स वट्टए वेला । तो वच्च वेइयाए वीसत्थो एत्थ मा चिट्ठ ॥६७॥
निस्सेसजणो मिलिओ दोण्ह वि पक्खाण वेइयाए तहिं । वित्तं पाणिग्गहणं दिन्नं कुमरस्स नरवइणा ॥६८॥
दंतिसहस्सं पढमम्मि मंगले बीयए तुरयलक्खं । तइए सुवन्नकोडी तुरिए पट्टउलकोडिसयं ॥६९॥
धरिओ दस दिवसाइं कुमरो आबद्धकंकणो रन्ना । सम्माणिऊण अन्ने विसज्जिया निययदेसेसु ॥७०॥

सुभटाः परिस्फुरद्रणदुर्जयविक्रमबाहुपञ्जराः, सच्चलितकरालकरवालविदारितमत्तकुञ्जराः ।
कृतान्योन्यबहलसम्भ्रमसमाकुलभुवनकन्दरम्, दलं प्रवृत्तं समरोद्धातितप्रतिभटसुभटसुन्दरम् ॥ ५८ ॥
प्रवृत्ता गजैर्गजास्तुरगास्तुरगै रथवरै रथाः । सुभटाः सुभटैः सममन्योन्यसमत्सरं यावत् ॥ ५९ ॥
ततो दवदन्त्या कञ्चनकलशं करेण जलभृतम् । गृहीत्वोल्लपितं निर्वृत्तिदेवीं मनसि कृत्वा ॥ ६० ॥
यद्यहं जिनप्रवचनानन्यमानसा निश्चला च सम्यक्त्वे । तदा द्वयोरपि कुमारबलानामुपशमं कुरु त्वं देवि ! ॥ ६१ ॥
इति जल्पित्वा ततश्चुलुकत्रिकं कनककलशसलिलंस्तत्र । उभयबले प्रक्षिपति यावन्नवकारपूर्वमिति ॥ ६२ ॥
उपशमितवैरभावः कर्णाटदेवः समागतस्तावद् । उन्मुक्तमण्डलाग्र आसन्नं नलकुमारस्य ॥ ६३ ॥
चरणयोर्निपत्याबद्धकराञ्जलिं भणत्येवम् । सत्पुरुष ! मेऽपराधं क्षमस्व त्वं यः कृत पूर्वे ॥ ६४ ॥
अद्यप्रभृति त्वं मम स्वामी किङ्करोऽहं तव । तं दृष्ट्वा चरितं राजानो विस्मिताः सर्वे ॥ ६५ ॥
क्षणमात्रं यावत्तिष्ठति नरनाथः सिद्धपुत्रकस्तत्र । विमलो विमलस्वभाव आगत्य स इदं भणति ॥ ६६ ॥
देव ! इमा दवदन्तीपाणिग्रहणस्य वर्तते वेला । ततो गच्छ वेदिकायां विश्वस्तोऽत्र मा तिष्ठ ॥ ६७ ॥
निःशेषजनो मिलितो द्वयोरपि पक्षयो र्वेदिकायां तत्र । वृत्तं पाणिग्रहणं दत्तं कुमाराय नरपतिना ॥ ६८ ॥
दन्तिसहस्रं प्रथमे मङ्गले द्वितीये तुरगलक्षम् । तृतीये सुवर्णकोटिश्चतुर्थे पट्टकुलकोटिशतम् ॥ ६९ ॥
धृतो दशदिवसानि कुमार आबद्धकङ्कणो राज्ञा । सन्मान्यान्या विसर्जिता निजकदेशेषु ॥ ७० ॥

अह वासरे पसत्थे जोकारेऊण ससुरवग्गं सो । दवदंतीए सहिओ संचलिओ नियपुराभिमुहं ॥७१॥

नलकुमारो सह पिउणा कुव्वंतो बलभरेण भूमितलं । विसमं पि समं असमं जलपूरेणेव जलरासी ॥७२॥

अणवरयपयाणेहिं संपत्तो कोसलाए नयरीए । चउरंगबलसमेओ दिन्नावासो य उज्जाणे ॥७३॥

तत्तो सोहणदिवसे दइयाए समं रहे समारूढो । अइगरुयविभूईए पविसइ जा निवइमग्गेण ॥७४॥

हल्लप्फलेण धावइ रमणियणो मिहुणमुस्सुओ दट्ठुं । हरिसाऊरियदेहो पयडियअन्नन्न[१]वावारो ॥७५॥

तथा हि-

अबला वियरइ एक्का अहरदले कज्जलं पवालनिभं । नयणजुयलम्मि अन्ना लायइ आलत्तयं रहसा ॥७६॥

अवरा बंधइ मुद्धा नियंबबिंबम्मि तारहारलयं । पक्खिवइ का वि कंठे रसणादामं सुवन्नमयं ॥७७॥

कलसिंजियरमणीयं पक्खिवइ करम्मि नेउरं का वि । फुरियमणिकिरणकंकणमवरा पायम्मि पक्खिवइ ॥७८॥

कडियलकयमज्जारा पुत्तं मोत्तुं विणिग्गया का वि । दरलिहियसहियसुहपत्तवल्लिया चल्लिया अवरा ॥७९॥

दरल्हसियपडियसंवरियपरिहणग्गहणवावडकरग्गा । अइरभसगमणकंपिरथण[२]वट्टलुलंतहारलया ॥८०॥

ओसरसु मज्झ पुरओ त्ति का वि कलहंतिया व णिक्खंता । पेल्लंती थणवट्टेण पहिजणं[३] का वि संचलिया ॥८१॥

रमणीओ रमणियणो परिचत्तसमग्गनिययवावारो । संपत्तो रायपहम्मि पभणए एवमन्नोन्नं ॥८२॥

अथ वासरे प्रशस्ते जोत्कार्य श्वसुरवर्गं स: । दवदन्त्या सहित: सञ्चलितो निजपुराभिमुखम् ॥ ७१ ॥

नलकुमार: सह पित्रा कुर्वन्बलभरेण भूमितलम् । विसममपि सममसमं जलपूरेणेव जलराशि: ॥ ७२ ॥

अनवरतप्रयाणै: सम्प्राप्त: कोशलायां नगर्याम् । चतुरङ्गबलसमेतो दत्तावासश्चोद्याने ॥ ७३ ॥

तत: शोभनदिवसे दयितया समं रथे समारुढ: । अतिगुरुकविभूत्या प्रविशति यावन्नृपति मार्गेण ॥ ७४ ॥

औत्सुक्येन धावति रमणिजनो मिथुनमुत्सुको द्रष्टुम् । हर्षापूरितदेह: प्रकटितान्योन्यव्यापार: ॥ ७५ ॥

तथा हि -

अबला विरचयत्येकाऽधरदले कज्जलं प्रवालनिभे । नयनयुगलेऽन्या लिखत्यालक्तकं सहसा ॥ ७६ ॥

अपरा बध्नाति मुग्धा नितम्बबिम्बे तारहारलताम् । प्रक्षिपति काऽपि कण्ठे रसनादाम सुवर्णमयाम् ॥ ७७ ॥

कलशि[४]ञ्जितरमणीयं प्रक्षिपति करे नपुरं कापि । स्फुरितमणिकिरणकङ्कणमपरा पादे प्रक्षिपति ॥ ७८ ॥

कटितलकृतमार्जारा पुत्रं मुक्त्वा विनिर्गता कापि । ईषल्लिखितसखीसुखपत्रवल्लिकाचलितापरा ॥ ७९ ॥

ईषत्स्रंसितपतितसंवरितपरिधानग्रहणव्यापृतकराग्रा । अतिरभसगमनकम्पमानत्स्तनपट्टलुलद्धारलता ॥ ८० ॥

अपसर मम पुरत इति काऽपि कलहन्तीव निष्क्रान्ता । पीडन्ती स्तनपृष्टेन पथिजनं कापि सञ्चलिता ॥ ८१ ॥

रमणीयो रमणीजन: परित्यक्तसमग्रनिजकव्यापार: । सम्प्राप्तो राजपथि प्रभणत्यन्योन्यम् ॥ ८२ ॥

---

१. अन्नोन्न० रं० ॥ २. वट्टलुलंत० रं० ॥ ३. वट्टेण रं० ॥ ४. अस्फुट अवाज भाषायाम् ।

धन्नो जए कुमारो जस्सेसा निवसुया लवणिमाए । उवहसियतियसमहिला महिलासद्दं समुव्वहइ ॥८३॥
एएसिं संजोगं अन्नोन्नमनन्नरूवसाराणं । कुव्वंतेणं विहियं चंगं भुवणे पयावइणा ॥८४॥
वीइज्जंतो वत्थंचलेहिमसरिसथुईहिं थुव्वंतो । झाइज्जंतो चित्तेण परममन्तो व्व रमणीहिं ॥८५॥
पिज्जंतो गुरुनयणंजलीहि सवणोयरे (हि) सुव्वंतो । दंसिज्जंतो अंगुलिसएहिं चरिएहिं गिज्जंतो ॥८६॥
पेच्छिज्जंतो सुमणोरहेहिं हियएहिं संभरिज्जंतो । अणुगमंतो संतो संपत्तो रायभवणम्मि ॥८७॥
संसारियविसयसुहं तिवग्गसारं समं पिययमाए । भुंजंतस्स कुमारस्स कोइ कालो अइक्कंतो ॥८८॥
अन्नम्मि दिणे पुहईसरेण पव्वइउमुज्जमंतेण । संसारविरत्तेणं आपुच्छित्ता समंतियणं ॥८९॥
रज्जाहिसेयपुव्वं निक्खित्तो नल कुमारबाहुम्मि । भुयदंडकंकणसमो समग्गविस्संभराभारो ॥९०॥
परिहरिय रायलच्छि सयं पुणो पालिऊण पव्वज्जं । नरनाहो सुहचित्तो संपत्तो देवलोगम्मि ॥९१॥
संजाओ पुहइवई सुरो सुरो व्व अखलियपयावो । रिवुवंसदाहदावानलोवमो नलकुमारो वि ॥९२॥
सोमत्तणेण ससिणा फुरियपयावत्तणेण दिणमणिणा । सेविज्जइ तस्स तणू धणवइणा धणनिहित्तेण ॥९३॥
जे न वि सिद्धा तप्पुव्वयाणमिह पत्थिवा अइदुगेज्झा । समरे निज्जिणिऊणं नियआणं कारिया ते वि ॥९४॥
सव्वगुणाणं निलयस्स पणइकमलायरस्स दिणमणिणो । परमत्थि जूयदोसो अहवा सव्वे गुणा दुलहा ॥९५॥
जुवरन्ना कुब्बरभाउणा समं रमइ निच्चमक्खेहिं । परिहरियरज्जकज्जो दुरोदरव्वसणरसियमणो ॥९६॥

धन्यो जगतिकुमारो यस्यैषा नृपसुता लवणिमया । उपहसितत्रिदशमहिला महिलाशब्दं समुद्वहति ॥ ८३ ॥
अनयोः संयोगमन्योन्यरुपसारयोः । कुर्वता विहितं सुन्दरं भुवने प्रजापतिना ॥ ८४ ॥
वीज्यमानो वस्त्रांऽचलैरसदृशस्तुतिभिस्स्तुयमानो । ध्यायमानश्चित्तेन परममन्त्र इव रमणिभिः ॥ ८५ ॥
पीयमानोगुरुनयनाञ्जलिभिः श्रवणोदरैःश्रूयमानः । दर्श्यमाणोङ्गुलिशतैश्चरित्रैर्गीयमानः ॥ ८६ ॥
प्रेक्ष्यमानःसुमनोरथै र्हृदयैः स्मर्यमाणः । अनुगच्छन् सन् संप्राप्तो राजभवने ॥ ८७ ॥
सांसारिकविषयसुखं त्रिवर्गसारं समं प्रियतमया । भुनक्तः कुमारस्य कोऽपि कालोऽतिक्रान्तः ॥ ८८ ॥
अन्यस्मिन् दिने पृथिवीश्वरेण प्रव्रजितुमुद्यमता । संसारविरक्तेनापृच्छ्य समन्त्रिजनम् ॥ ८९ ॥
राज्याभिषेकपूर्वं निक्षिप्तो नलकुमारबाहौ । भुजदण्डकङ्कणसमः समग्रविश्वंभराभारः ॥ ९० ॥
परिहृतराजलक्ष्मीं स्वयं पुनः पालयित्वा प्रव्रज्याम् । नरनाथः शुभचितः संप्राप्तो देवलोके ॥ ९१ ॥
सञ्जातः पृथिवीपती शूर सूर्य इवास्खलितप्रतापः । रिपुवंशदाहदावानलोपमो नलकुमारोऽपि ॥ ९२ ॥
सौम्यत्वेन शशिना स्फुरितप्रतापत्वेन दिनमणिना । सेव्यते तस्य तनू र्धनपतिना धननिधित्वेन ॥ ९३ ॥
ये नापि सिद्धास्तत्पूर्वजानामिह पार्थिवा अतिदुर्ग्राह्याः । समरे निर्जित्य निजाज्ञां कारितास्तेऽपि ॥ ९४ ॥
सर्वगुणानां निलयस्य प्रणतिकमलाकरस्य दिनमणेः । परमस्ति द्युतदोषोऽथवा सर्वे गुणा दुर्लभाः ॥ ९५ ॥
युवराज्ञा कुबरभ्रात्रा समं रमते नित्यमक्षैः । परिहृतराज्यकार्यो द्युतव्यसनरसिकमनाः ॥ ९६ ॥

पइदिवसं कीलंतेण हारियं तेण सयलमहिवलयं । रज्जं रसाऽवरोहं चउरंगबलं सकोट्ठारं ॥९७॥
किं बहुणा ? निवसणयं मोत्तुं सव्वं पि हारियं अन्नं । जाव न थक्कइ तह वि हु तो भणियं कुब्बरेण इमं ॥९८॥
भो भो निवमंतियणा ! पच्चक्खं तुम्ह निज्जिओ एसो । जूएणमिमं भणिउं निस्सारेउं समाढत्तो ॥९९॥
चिंतइ मंतिवग्गो सबंधवाओ वि पाणिणो एत्थ । जूयवसणम्मि गिद्धा किं दुक्खं जं न पावंति ? ॥१००॥
अत्थविणासं नियकुलकलंकणं सयण-मित्तनासं च । माणमलणं पि पावंति पाणिणो जूयवसणेण ॥१०१॥
पावंति बंधणं गोत्ति[१]गोयरं भाररोवणं सिरसा । किं जंपिएण बहुणा ? अवि कत्तणमुत्तमंगस्स ॥१०२॥
कज्जाऽकज्जं न मुणंति नेयऽवेक्खंति दुक्खरिंछोलिं । जह मम कएण इमिणा होहि त्ति अणत्थपत्थारी ॥१०३॥
एसो वि महाराया समग्गनरनाहनमियपयकमलो । सव्वगुणाण निवासो अणन्नासामन्नवलकलिओ ॥१०४॥
रज्जाओ पब्भट्ठो जस्स पसाएण मलियमाहप्पो । दोससहस्सनिवासं ता धिद्धीधी ! इमं वसणं ॥१०५॥
नियबंधुणो वि जेणं कुणंति सत्तुत्तणं निरवसेसं । वज्जियकज्जाऽकज्जा ता धिद्धीधी ! इमं वसणं ॥१०६॥
गुरुदुहतरुणो वीयं सयलअणत्थाण मंदिरं विउलं । कुलकित्तिविणासकरं ता धिद्धीधी ! इमं वसणं ॥१०७॥
गुरुदारं नरयपुरस्स सच्चनलिणीवणस्स हिमपडणं । निस्सेसदोसगेहं ता धिद्धीधी ! इमं वसणं ॥१०८॥
इह-परलोयविरुद्धे अणत्थहेउम्मि को रमेज्ज इहं ? । इय नाउं सविवेया जूयस्स परम्मूहा जाया ॥१०९॥

प्रतिदिवसं क्रीडता हारितं तेन सकलमहिवलयम् । राज्यं रसावरोधं चतुरङ्गबलं सकोष्ठागारम् ॥ ९७ ॥
किं बहुना ? निवसनं मुक्त्वा सर्वमपि हारितमन्यत् । यावन्न* तिष्ठति तथापि खलु तदा भणितं कुबेरेणेदम् ॥९८ ॥
भो भो ! नृपमन्त्रिजना ! प्रत्यक्षं युष्माकं निर्जित एषः । द्युतेनेदं भणित्वा निसारितुं समारब्धः ॥ ९९ ॥
चिन्तयति मन्त्रिवर्गो सबान्धवा अपि प्राणिनोऽत्र । द्युतव्यसने गृद्धा किं दुःखं यन्न प्राप्नुवन्ति ? ॥ १०० ॥
अर्थविनाशं निजकुलकलङ्कनं स्वजनमित्रनाशं च । मानमलनमपि प्राप्नुवन्ति प्राणिनो द्युतव्यसनेन ॥ १०१ ॥
प्राप्नुवन्ति बन्धनं योक्त्रीगोचरं भाररोपणं शिरसा । किं जल्पितेन बहुना ? अपि कर्तनमुत्तमाङ्गस्य ॥ १०२ ॥
कार्याकार्यं न मुणन्ति नैवापेक्षन्ते दुःखपङ्क्तिम् । यथा मम कृतेनानेन भविष्यतीत्यनर्थप्रस्तारी ॥ १०३ ॥
एषोऽपि महाराजा समग्रनरनाथनमतपदकमलः । सर्वगुणानां निवासोऽनन्यसामान्यबलकलितः ॥ १०४ ॥
राज्यात्प्रभ्रष्टो यस्य प्रसादेन मलितमाहात्म्यः । दोषसहस्रनिवासं ततो धिग्धिगिदं व्यसनम् ॥ १०५ ॥
निजबन्धोरपि येन कुर्वन्ति शत्रुत्वं निरवशेषम् । वर्जितकार्याकार्यास्ततो धिग्धिगिदं व्यसनम् ॥ १०६ ॥
गुरुदुःखतरो बीजं सकलानर्थानां मन्दिरं विपुलम् । कुलकीर्त्तिविनाशकर ततो धिग्धिगिदं व्यसनम् ॥ १०७ ॥
गुरुद्वारं नरकपुरस्य सत्यनलिनीवनस्य हिमपतनम् । निःशेषदोषगृहं ततो धिग्धिगिदं व्यसनम् ॥ १०८ ॥
इह-परलोकविरुद्धेऽनर्थहेतौ को रमेतेह ? । इति ज्ञात्वा सविवेका द्युतस्य पराङ्मुखा जाताः ॥ १०९ ॥

---

*थक्कइ (दे.) (स्था) सि.हे.सू. ४/१६ तिष्ठति । १. गोत्ति (दे.) योक्त्री - 'धुंसरी' भाषायाम् ।

नलनरनाहो वि तओ निवलच्छीमुज्झिऊण नीहरिओ । तयणु पयट्टा गंतुं दवदंती जाव तेण समं ॥११०॥

ता कुब्बरेण धरिया जूएणं हारिय त्ति कलिऊणं । जंपइ तो मंतिजणो मा मा असमंजसं कुणसु ॥१११॥

सीमा महासईणं ति तुज्झ जणणि त्ति सामिणि त्तिऽम्हं । पाणप्पिय त्ति रन्नो न हु जुत्तं तेणिमं धरिउं ॥११२॥

अन्नं च-

जोन्ह व्व चंदविरहे जलहरविरहे तडिल्लयसिरि व्व । चंदणतरुविरहे तल्लय व्व जाल व्व सिहिविरहे ॥११३॥

छाय व्व वच्छविरहे दिणयरविरहम्मि दिवसलच्छि व्व । वेल व्व जलहिविरहे सुह-दुहपंति व्व जियविरहे ॥११४॥

रिद्धि व्व पुन्नविरहे सुरगिरिविरहम्मि तस्स चूल व्व । घणसंगयगयणंगणविरहे हरिचावजट्ठि व्व ॥११५॥

पाणप्पियस्स मणवल्लहस्स विरहम्मि नलनरिंदस्स । खणमेत्तं पि न चिट्ठइ एसा वि महासई एत्थ ॥११६॥

सम्माणिऊण वत्थाइएहिं अवराहमवि खमावेउं । तत्तो इमं विसज्जसु तयणुवरोहेण एवं ति ॥११७॥

काऊण तयं सव्वं करुणाए समप्पिओ रहो एक्को । सो वि निसिद्धो रन्ना पउरजणो भणइ तो एवं ॥११८॥

विसमो मग्गो नरनाह ! कह णु चरणेहिं तरसि तं गंतुं ? । देवी सिरीससुकुमालतणुलया कह णु वच्चिहिही ? ॥११९॥

तम्हा गिण्हसु सामिय ! महापसायं करित्तु रहमेगं । उवरोहेणं नायरजणस्स तो रहवरारूढो ॥१२०॥

चंदो इव जोण्हाए फुरियपहाए सहस्सकिरिणो व्व । सुरनाहो व्व सईए लच्छीए वासुदेवो व्व ॥१२१॥

गउरीए वामदेवो व्व कामदेवो व्व कामघरिणीए । अमरकरि व्व वसाए हंसीए रायहंसो व्व ॥१२२॥

नलनरनाथोऽपि ततो नृपलक्ष्मीमुज्झित्वा निस्सृतः । तदनु प्रवृत्ता गन्तुं दवदन्ती यावत्तेन समम् ॥ ११० ॥

तावत्कुबेरेण धृता द्युतेन हरितेति कलित्वा । जल्पति तदा मन्त्रिजनो मा माऽसमञ्जसं कुरु ? ॥ १११ ॥

सीमा महासतीनामिति तव जननीति स्वामीनीत्यस्माकम् । प्राणप्रियेति राज्ञो न खलु युक्तं तेनेमं धर्तुम् ॥ ११२ ॥

ज्योत्स्नेव चन्द्रविरहे जलधरविरहे तडिल्लताश्रीरिव । चन्द्रनतरुविरहे तल्लतेव ज्वालेव शिखिविरहे ॥ ११३ ॥

छायेव वृक्षविरहे दिनकरविरहे दिवसलक्ष्मीरिव । वेलेव जलधिविरहे सुखदुःखपङ्क्तिरिव जीवविरहे ॥ ११४ ॥

ऋद्धिरिव पुण्यविरहे सुरगिरिविरहे तस्य चूलैव । घनसङ्गतगगनाङ्गणविरहे हरिचापयष्टिरिव ॥ ११५ ॥

प्राणप्रियस्य मनोवल्लभस्य विरहे नलनरेन्द्रस्य । क्षणमात्रमपि न तिष्ठत्येषापि महासत्यत्र ॥ ११६ ॥

सन्मान्य वस्त्रादिभिरपराधमपि क्षामयित्वा । तत इमां विसर्जय तदनुपरोधेनैवमिति ॥ ११७ ॥

कृत्वा तकं सर्वं करुणया समर्पितो रथ एकः । सोऽपि निषिद्धो राज्ञा पौरजनो भणति तत एवम् ॥ ११८ ॥

विषमो मार्गो नरनाथ ! कथं नु चरणैशक्नोषि त्वं गन्तुम् ? । देवी शिरीषसुकुमालतनुलता कथं नु व्रजिष्यति ? ॥११९॥

तस्माद्गृहाण स्वामिन् ! । महाप्रसादं कृत्वा रथमेकम् । उपरोधेण नागरजनस्य ततो रथवरारूढः ॥ १२० ॥

चन्द्र इवज्योत्स्नया स्फुरितप्रभया सहस्रकिरण इव । सुरनाथ इव शच्या लक्ष्म्या वासुदेव इव ॥ १२१ ॥

गौर्या वामदेव इव कामदेव इव कामगृहिण्या । अमरकरीव वसया हंसया राजहंस इव ॥ १२२ ॥

गच्छंतो देवीए समं सकामाहिं नयणबाणेहिं । भिज्जंतो सव्वंगं नायरजणतरुणरमणीहिं ॥१२३॥
संपत्तो य कमेणं नयरीमज्झे अभिन्नमुहराओ । तम्मि पएसे दिट्ठो अइप्पमाणो महाथंभो ॥१२४॥
उत्तरिऊण रहाओ लीलाए चालिओ जणसमक्खं । जो पुरिससहस्सेण वि न तीरए चालिउं कह वि ॥१२५॥
उप्पाडियम्मि तम्मि तो पउरजणस्स पच्चओ जाओ । एसो होही भरहद्धसामिओ नमियसेसनिवो ॥१२६॥
एयस्स बालभावे उज्जाणगयस्स सह नरिंदेण । पुच्छावसरे चउनाणसूरिणा कहियमेयं ति ॥१२७॥
जो नयरीमज्झगयं थंमं उप्पाडिउं[१] पुणो ठविही । सो भरहद्धनरिन्दो होहि त्ति न एत्थ संदेहो ॥१२८॥
तोऽवस्सं एसो च्चिय होही तिक्खंडसामिओ जम्हा । मिलिओऽम्ह पच्चओ सो वयणं च न अन्नहा मुणिणो ॥१२९॥
इय वयणं निसुणंतो पत्तो य पुरीए परिसरपएसे । वेयब्भविसयसमुहो संचलिओ साहससहाओ ॥१३०॥
वणवासं वच्चंते नलम्मि नयरी पउत्थवइय व्व । पवसियजण व्व निज्जायसयलसोह व्व संजाया ॥१३१॥
परिहरियसमग्गाराममविविहकीलाविलासवावारा । उवरयविवित्तचच्चर-चउक्क-चउमूहजहिच्छकहा ॥१३२॥
विरमंतमंजुसिंजियमद्दलरवमुहलपेच्छणच्छणया । विणिवत्तियवेयालियसुललियकव्वाभिलासा य ॥१३३॥
अक्कीलिय व्व घडिय व्व चित्तलिहिय व्व कट्ठमइय व्व । अवहरियरयणसार व्व तह य सुन्न व्व वुन्न व्व ॥१३४॥
झाणट्ठिय व्व मोणट्ठिय व्व चिट्ठइ मणम्मि झायंती । मोक्खं व नलं गुरुदुक्खवारणं मुणिजणो व्व सया ॥१३५॥

गच्छन्देव्यासमं सकामैर्नयनबाणैः । भिद्यमानसर्वाङ्गं नागरजनतरुणरमणिभिः ॥ १२३ ॥
संप्राप्तश्च क्रमेण नगरीमध्ये अभिन्नमुखरागः । तस्मिन्प्रदेशे दृष्टोऽतिप्रमाणो महास्तम्भः ॥ १२४ ॥
उत्तीर्य रथाल्लीलया चालितो जनसमक्षम् । यः पुरुषसहस्रेणापि न शक्यते चालयितुं कथमपि ॥ १२५ ॥
उत्पातिते तस्मिंस्ततः पौरजनस्य प्रत्ययो जातः । एष भविष्यति भरतार्धस्वामी नतशेषनृपः ॥ १२६ ॥
एतस्य बालभाव उद्यानगतस्य सह नरेन्द्रेण । पृच्छावसरे चतुर्ज्ञानसूरिणा कथितमेवमिति ॥ १२७ ॥
यो नगरीमध्यगतं स्तम्भमुत्पाट्य पुनःस्थाप्यसि । स भरतार्धनरेन्द्रो भविष्यतीति नात्रसन्देहः ॥ १२८ ॥
ततोऽवश्यमेष भविष्यति त्रिखण्डस्वामी यस्मात् । मिलितोऽस्माकं प्रत्यय स वचनं नान्यथा मुनेः ॥ १२९ ॥
इदं वचनं निश्रुण्वन् प्राप्तश्च पूर्याः परिसरप्रदेशे । विदर्भविषयसंमुखः सञ्चलितः साहससहायः ॥ १३० ॥
वनवासं व्रजति नले नगरी प्रौषितपतिकेव । प्रोषितजन इव निर्यातसकलशोभैव सञ्जाता ॥ १३१ ॥
परिहृतसमग्रारामविविधक्रीडाविलासव्यापारा । उपरतविविक्तचर्चर-चतुष्क-चतुर्मुखयथेच्छकथा ॥ १३२ ॥
विरमन्मञ्जुशिञ्जितमर्दलरवमुखरप्रेक्षणक्षणदा । विनिवर्तितवैकालिकसुललितकाव्याभिलाषा च ॥ १३३ ॥
उत्कीलितेव घटितेव चित्रलिखितेव काष्टमयीव । अपहृतरत्नसारेव तथा च शून्येव दुःखितेव ॥ १३४ ॥
ध्यानस्थितेव मौनस्थितेव तिष्ठति मनसि ध्यायन्ती । मोक्षमिव नलं गुरुदुःखवारणं मुनिजन इव सदा ॥ १३५ ॥

---

१. उप्पाडियं-रं ।

अन्नं च-

ससहररहिया रयणि व्व गयणमुत्ति व्व विगयरविबिंबा । सुत्ति व्व गलियमुत्ता गयहंसउला सुरसरि व्व ॥१३६॥

सरसि व्व कमलमुक्का सुरपरिचत्ता विमाणलच्छि व्व । परिगलियजोव्वणा कामिणि व्व सेण व्व निवरहिया ॥१३७॥

उप्पाडियकप्पतरु व्व वाडिया चुयमणि व्व हत्थलया । नलनिवरहिया नयरी न सोहए गुणसमग्गा वि ॥१३८॥

नलराया वि वयंतो वेयब्भपहेण अडविमइभीमं । पत्तो य तत्थ भिल्ला समुट्ठिया सत्थवग्गकरा ॥१३९॥

रे रे ! गिण्हह गिण्हह इय जंपंते नलो वि ते दट्ठुं । दवदंति-खग्गसहिओ ओयरिउं रहवराओ ठिओ ॥१४०॥

जा जुज्झिउं पवत्तो ता दवदंती विमुक्कहुंकारा । जंपइ सीलपहावा मह हुंतु इमे हयपयावा ॥१४१॥

नट्ठा उत्तट्ठमणा ते भिल्ला रहवरं गहेऊण । राया देवीए समं पाएहिं गंतुमारद्धो ॥१४२॥

निट्ठुर खोणियलेऽदब्भदब्भसूईहि भिन्नचरणा सा । अंगम्मि अमायंतं रुहरिमिसा वमइ निवरायं ॥१४३॥

किच्छेणं गच्छंती वच्छच्छायाए सुइरमच्छंती । तह गंतुमणिच्छंती पेच्छंती रिच्छरिंछोलिं ॥१४४॥

तो गंतुमचायंती नेइ नलो करयलम्मि धरिऊणं । पुरिस्स दुक्खहेऊ सव्वावत्थासु जं नारी ॥१४५॥

उवरिं तवेइ सूरो हेट्ठा धरणी मणम्मि संतावो । वच्चंति जत्थ व खणमेत्तसुहं न पावंति ॥१४६॥

एत्थंतरम्मि मित्तो तेसिं दट्ठूणमावइं पउरं । मित्तत्तमकुणमाणो लज्जाए अदंसणं पत्तो ॥१४७॥

अह पत्थियम्मि कत्थइ रविसिंहे गयणकाणणं मोत्तुं । अप्फुन्नं भवणवणं तमिस्सगयरायवंद्रेहिं ॥१४८॥

अन्यच्च -

शशधररहिता रजनीव गगनमूर्तिरिव विगतरविबिम्बा । शुक्तिरिव गलितमुक्ता गतहंसकुला सुरसरिदिव ॥ १३६ ॥

सर इव कमलमुक्ता सुरपरित्यक्ता विमानलक्ष्मीरिव । परिगलितयौवना कामिनीव सेनेव नृपरहिता ॥ १३७ ॥

उत्क्षिप्तकल्पतरुरिव वाटिका च्युतमणिरिव हस्तलता । नलनृपरहिता नगरी न शोभते गुणसमग्रापि ॥ १३८ ॥

नलराजापि व्रजन्वैदर्भपथाटविमतिभीमाम् । प्राप्तश्च तत्र भिल्लाः समुत्थिताः शस्त्रव्यग्रकराः ॥ १३९ ॥

रे रे ! गृह्णीत गृह्णीतेति जल्पतो नलोऽपि तान्दृष्ट्वा । दवदन्तीखड्गसहितोऽवतीर्य रथवरात् स्थितः ॥ १४० ॥

यावद्योद्धुं प्रवृतस्तावद्दवदन्ती विमुक्तहुंकारा । जल्पति शीलप्रभावान्मम भवन्त्विमे हतप्रतापाः ॥ १४१ ॥

नष्टा उत्तार्थमनास्ते भिल्ला रथवरं गृहीत्वा । राजा देव्या समं पादैर्गन्तुमारब्धः ॥ १४२ ॥

निष्ठुरक्षोणितलेऽदर्भदर्भसुचिभि भिन्नचरणा सा । अङ्गेऽमायन्तं रुधिरमिषाद्वमति नृपरागम् ॥ १४३ ॥

कृच्छ्रेण गच्छन्ती वृक्षच्छायायां सुचिरमासीना । तथा गन्तुमनिच्छन्ती प्रेक्षमाणी ऋक्षपङ्क्तिम् ॥ १४४ ॥

ततो गन्तुमपार्यन्तीं नयति नलः करतले धृत्वा । पुरुषस्य दुःखहेतु सर्वावस्थासु यन्नारी ॥ १४५ ॥

उपरि तपति सूर्योऽधो धरणी मनसि सन्तापः । गच्छतो यत्र तत्र वा क्षणमात्रसुखं न प्राप्नुतः ॥ १४६ ॥

अत्रान्तरे मित्रस्तयो र्दृष्ट्वापत्तिं प्रचूराम् । मित्रत्वमक्रियमाणो लज्जयादर्शनं प्राप्तः ॥ १४७ ॥

अथ प्रस्थिते कुत्रचिद्रविसिंहे गगनकाननं मुक्तवा । आपूर्णं भवनवनं तमिस्रगजराजवृन्दैः ॥ १४८ ॥

सप्पंतसप्प कीलंतकोलकुल-संचरंतमहिसेहिं । बहलतरं संजायं तमपडलं तह तमालेहिं ॥१४९॥

दुहसंतत्तो राया राएणं चेव निव्ववेयव्वो । इय चिंतिउं व राया समुग्गओ तं सुही काउं ॥१५०॥

गाहंतो गयणसरं तारागणकुमुयदंतुरमगाहं । रेहइ रयणीनाहो हरधवलो रायहंसो व्व ॥१५१॥

मग्गपरिस्समिएणं रन्ना तरुपल्लवेहिं रइयाए । सेज्जाए निसन्नेणं पयंपिया पिययमा एवं ॥१५२॥

सुवसु पिए ! तमिह जओ घणसावयभीसणं अरन्नमिमं । जग्गेमि जेण भणियं नत्थि भयं जग्गमाणस्स ॥१५३॥

इय जंपिय आयड्ढियखग्गकरो पहरए ठिओ राया । मग्गपरिस्समपरिसंतरुइरकोमलसरीरा य ॥१५४॥

रन्नो पावरणपडस्स पत्थरेऊण एगदेसम्मि । सुत्ता भीमरहसुया नलो वि अह चिंतिउं लग्गो ॥१५५॥

धिद्धी ! जूयव्वसणे धिरत्थु भोगाण जेसि कज्जम्मि । पुरिसो सहोयरम्मि वि सत्तुत्तेणं व ववहरइ ॥१५६॥

धन्ना ते जियलोए भरहनरिंदाइणो महासत्ता । जेहिं अगंजियमाणेहिं दो वऽवत्थाओ पत्ताओ ॥१५७॥

अणवज्जा रज्जसिरी पव्वज्जसिरी अणउत्तरा चेव । अम्हे पुणो अहन्ना चुक्का दोण्ह वि अवत्थाणं ॥१५८॥

सेवा अहिमाणधणस्स काउमिण्हिं न संगया मज्झ । पव्वज्जा वि न जुज्जइ विसयपिवासापरवसस्स ॥१५९॥

एयाए समं मज्झं परिब्भमंतस्स जायइ विणासो । एसा वि हु पाविस्सइ[1] मुक्का एगागिणी मरणं ॥१६०॥

अहवा महासईमिममुवद्दवेउं न सक्कए कोइ । नियसीलपहावेणं पभायसमयम्मि पडिवुद्धा ॥१६१॥

सर्पत्सर्प-क्रीडत्कोलकुल-सञ्चरन्महिषैः । बहलतरं सञ्जातं तमःपटलं तथा तमालैः ॥ १४९ ॥

दुःखसंतप्तो राजा रागेण चैव निर्वाप्तव्यः । इति चिन्तयित्वैव राजा समुद्गतस्तं सुखी कर्तुम् ॥ १५० ॥

गाह्यङ्गगनसरस्तारागणकुमुददन्तुरमगाधम् । राजते रजनीनाथो हरधवलो राजहंस इव ॥ १५१ ॥

मार्गपरिश्रान्तेन राज्ञा तरुपल्लवै रचितायाम् । शय्यायां निषण्णेन प्रजल्पिता प्रियतमैवम् ॥ १५२ ॥

स्वपिहि प्रिये त्वमिह यतो घनश्वापदभीषणमरण्यमिदम् । जागर्मि येन भणितं नास्ति भयं जागर्यमाणस्य ॥ १५३ ॥

इति जल्पित्वाकृष्टखड्गकरः प्रहरिके स्थितो राजा । मार्गपरिश्रमपरिश्रान्तरुचिरकोमलशरीरा च ॥ १५४ ॥

राज्ञः प्रावरणपटस्य प्रस्तार्यैकदेशे । सुप्ता भीमरथसुता नलोऽप्यथ चिन्तयितुं लग्नः ॥ १५५ ॥

धिग्धिग्द्युतव्यसनं धिगस्तु भोगानां येषां कार्ये । पुरुषः सहोदरेऽपि शत्रुत्वेनेव व्यवहरति ॥ १५६ ॥

धन्यास्ते जीवलोके भरतनरेन्द्रादयो महासत्त्वाः । यैरखण्डितमानै द्वे एवावस्थे प्राप्ते ॥ १५७ ॥

अनवद्या राज्यश्रीः प्रव्रज्याश्रीरनुत्तरैव । वयं पुनरधन्या भ्रष्टा द्वाभ्यामप्यवस्थाभ्याम् ॥ १५८ ॥

सेवाऽभिमानधनस्य कर्तुमीदानीं न सङ्गता मम । प्रव्रज्यापि न युज्यते विषयपिपासापरवशस्य ॥ १५९ ॥

एतया समं मम परिभ्रमतो जायते विनाशः । एषापि खलु प्राप्स्यसि मुक्तैकाकिनी मरणम् ॥ १६० ॥

अथवा महासतीमिमामुपद्रोतुं न शक्यते कोपि । निजशीलप्रभावेन प्रभातसमये प्रतिबुद्धा ॥ १६१ ॥

---

१. इ धिरत्थु एगा-रं० ।

एसा ममपेच्छंती सत्थं लद्धूण कं पि तेण समं । वच्चिस्सइ नियपिउणो भवणं एयाओ रन्नाओ ॥१६२॥

अहयं तु कम्मि वि पुरे गंतूणऽज्जेमि लच्छिविच्छड्डं । पुणरवि संगोविस्सं एयं माहप्पसंपत्तो ॥१६३॥

इय चिंतिऊण रन्ना अंगुलिरुहिरेण पडयपज्जंते । लिहियं गाहाजुयलं सम्मं ललियक्खरेहिमिमं ॥१६४॥

नग्गोहतरुतलेणं वेयब्भं वच्चए पहो एस । वामेण कोसलपुरिं जत्थिच्छा तत्थ गंतव्वं ॥१६५॥

अहयं वसणऽभिभूओ रज्जसिरीवज्जिओ नरिंदाण । सेवं काउमसत्तो तेण विएसम्मि वच्चामि ॥१६६॥

कड्ढिज्जंते वत्थे इमीए देहेण चंपिए सहसा । मा जग्गउ त्ति एसा छेत्तुं छुरियाए पडमद्धं ॥१६७॥

नीहरिओ तरुगहणं लंघंतो मम अजुत्तमेयं ति । भज्जामुयणं मन्ने चिंतेउमदंसणं पत्तो ॥१६८॥

अह वेयब्भनिवसुया पहायसमयम्मि विगयनिद्दा सा । नलरायमपेच्छंती धसक्किया उट्ठिया जाव ॥१६९॥

ता पेच्छइ पडयद्धं छुरियाछिन्नं तदेगदेसम्मि । रुहिरेण लिहियमेगं गाहाजुयलं च संभंता ॥१७०॥

तं घेत्तुं परिभावइ जाव तयत्थं मणम्मि जवजंती । मुच्छानिमीलियच्छी ता झत्ति महीयले पडिया ॥१७१॥

संपाविऊण कहमवि चेयन्नं सिसिरवाउणा तत्तो । कलुणसरेण पलावे सुदुक्खिया काउमारद्धा ॥१७२॥

हा नाह ! हिययवल्लह ! हा सामिय ! हा विसालवच्छयल ! । हा पिययम ! जंपंती निक्करुणं हणइ वच्छयलं ॥१७३॥

एगागिणीमहन्नं मोत्तुमणाहं गओ तुमं कत्थ ? । जीवामि नाह ! खणमवि नाहमरन्नम्मि तुह विरहे ॥१७४॥

जावऽज्ज वि न हु विदलइ हिययं मे सामि ! तुज्झ विरहम्मि । ता धरसु तमागंतुं तुरियं तं दुक्खियमणाए ॥१७५॥

एषा मामपश्यन्ती सार्थं लब्ध्वा कमपि तेन समम् । व्रजिष्यति निजपितुर्भवनमेतस्मादरण्यात् ॥ १६२ ॥

अहं तु कस्मिन्नपि पुरे गत्वार्जयामि लक्ष्मीनिवहम् । पुनरपि सङ्गोपयिष्याम्येनां माहात्म्यसम्प्राप्तः ॥ १६३ ॥

इति चिन्तयित्वा राज्ञाङ्गुलिरुधिरेण पटकपर्यन्ते । लिखितं गाथायुगलं सम्यग्ललिताक्षरैरिदम् ॥ १६४ ॥

न्यग्रोधतरुतलेन वैदर्भं व्रजति पन्था एषः । वामेन कोशलापुरिं यत्रेच्छा तत्र गन्तव्यम् ॥ १६५ ॥

अहं व्यसनाभिभूतो राज्यश्रीवर्जितो नरेन्द्राणाम् । सेवां कर्तुमशक्तस्तेन विदेशे व्रजामि ॥ १६६ ॥

कृष्यमाणे वस्त्रे एतस्या देहेन लग्ने सहसा । मा जागर्त्विति एषा छित्वा छूरिकया पटमर्धम् ॥ १६७ ॥

निहृतस्तरुगहनं लङ्घयन्ममायुक्तमेतदिति । भार्यामोचनं मन्ये चिन्तयित्वादर्शनं प्राप्तः ॥ १६८ ॥

अथ वैदर्भनृपसुता प्रभातसमये विगतनिद्रा सा । नलराजामपश्यन्ती अतिभीतोत्थिता यावत् ॥ १६९ ॥

तावत्प्रेक्षते पटकार्द्धं छूरिकाच्छिन्नं तदेकदेशे । रुधिरेण लिखितमेकं गाथायुगलं च सम्भ्रान्ता ॥ १७० ॥

तद्गृहीत्वा परिभावयति यावत्तदर्थं मनसि दवदन्ती । मूर्च्छानिमिलिताक्षी तावच्छीघ्रं महितले पतिता ॥ १७१ ॥

सम्प्राप्य कथमपि चैतन्यं शिशिरवायुना ततः । करुणस्वरेण प्रलापान् सुदुःखिता कर्तुमारब्धा ॥ १७२ ॥

हा नाथ ! हृदयवल्लभ ! हा स्वामिन् ! हा विशालवक्षःस्थल ! । हा प्रियतम ! जल्पन्तीनिष्करुणं हन्ति वक्षः स्थलम् ॥१७३॥

एकाकिनीमधन्यां मुक्त्वानाथां गतस्त्वं कुत्र ? । जीवामि नाथ ! क्षणमपि नाहमरण्ये तव विरहे ॥ १७४ ॥

यावदद्यापि न खलु विदलति हृदयं मे स्वामिन् ! तव विरहे । ता धर तमागत्य त्वरितं त्वं दुःखितमनसः ॥१७५॥

इच्चाइ विलविऊणं चिंतइ चित्तम्मि कम्मि दिसिभाए। वच्चामि संपयमहं? पियभवणं[१]? अहव सासुरयं? ॥१७६॥
पइ-पुत्तविरहियाणं नारीणं दुसहदुक्खकलियाणं। मोत्तूण जणयभवणं विस्सामो नत्थि अन्नत्थ ॥१७७॥
इय चिंतिय दवदंती गंतुं लग्गा वियब्भदेसस्स। मग्गो जो दइएणं कहिओ गाहादुगेणं ति ॥१७८॥
सरिऊण पुणो पइणओ सिणेहसारं गुणाण पब्भारं। अइकलुणसरं रोयइ तत्तो अच्चंतदुहदुहिया ॥१७९॥
हा हा करुणासायर! हा सुहयसिणेह! हा महाधीर!। हा वीर! पुहइवच्छल! हा पिययम! कत्थ दीसिहसि? ॥१८०॥
पंथाओ पब्भट्ठा वच्चंती जणयदेसमडवीए। अलहंती तं मग्गं तत्थेव ठिया बहुं कालं ॥१८१॥
परिगलियसोयभावा अपुव्वपरिणामभावमणुपत्ता। चिंतइ मोहविनडिओ किं सरसि न जीव! अप्पाणं? ॥१८२॥
जत्तिय मेत्तो नेहो दुक्खाण गणो वि तत्तिओ चेव। ता दुक्खकारणम्मि पडिबंधो तत्थ को तुज्झ[२]? ॥१८३॥
केत्तियमेत्तं एयं इट्ठविओयस्स संतियं दुक्खं? जीवा पावंति अणुत्तराइं दुक्खाइं नरएसु ॥१८४॥
किं तुह दुक्खमपुव्वं संजायं जीव! जं समुव्वियसि?। पियसंजोगविओगा अणंतसो पत्तपुव्व त्ति ॥१८५॥
जं पुण अपत्तपुव्वं सम्मत्तं कप्पपायवऽब्भहियं। तं इण्हि संपत्तं ता पालसु तं चिय विसुद्धं ॥१८६॥
इय संठविय नियमणं गुहाए जिण-साहुवंदणुज्जुत्ता। जा चिट्ठइ ता कइया (वि) सुमरियं[३] जणणिजणयाणं ॥१८७॥
जइ कह वि हु पंथमहं लभामि रन्नम्मि सुत्थसत्थं वा। नियजणयगिहं गंतुं निव्वयहियया करेमि तवं ॥१८८॥

इत्यादि विलप्य चिन्तयति चित्ते कस्मिन् दिग्भागे। व्रजामि साम्प्रतमहं? पितृभवनमथवा श्वासुरकम्? ॥ १७६ ॥
पति-पुत्रविरहितानां नारीणां दुःसहदुःखकलितानाम्। मुक्त्वा जनकभवनं विश्रामो नास्त्यन्यत्र ॥ १७७ ॥
इति चिन्तयित्वा दवदन्ती गन्तुं लग्ना विदर्भदेशस्य। मार्गो यो दयितेन कथितो गाथाद्विकेनेति ॥ १७८ ॥
स्मृत्वा पुनः पत्युः स्नेहसारं गुणानां प्राग्भारम्। अतिकरुणस्वरं रोदिति ततोऽत्यन्तदुःखदुःखिता ॥ १७९ ॥
हा हा करुणासागर! हा सुभगस्नेह! हा महाधीर!। हा वीर! पृथिवीवत्सल! हा प्रियतम! कुत्र दर्शयिष्यसे? ॥१८०॥
पथात्प्रभ्रष्टा व्रजन्ती जनकदेशमटव्याम्। अलभमाना तं मार्गं तत्रैव स्थिता बहुकालम् ॥ १८१ ॥
परिगलितशोकभावापूर्वपरिणामभावमनुप्राप्ता। चिन्तयति मोहविनटितः किं स्मरसि न जीव! आत्मानम् ॥ १८२ ॥
यावन्मात्रः स्नेहो दुःखानां गणोऽपि तावत एव। ततो दुःखकारणे प्रतिबन्धस्तत्र कस्तव? ॥ १८३ ॥
कतिपयमात्रमेतदिष्टवियोगस्य सत्कं दुःखम्?। जीवा प्राप्नुवन्त्यनुत्तराणि दुःखानि नरकेषु ॥ १८४ ॥
किं तव दुःखमपूर्वं सञ्जातं जीव! समुद्वेयि[४]?। प्रियसंयोगवियोगा अनन्तशः प्राप्तपूर्वेति ॥ १८५ ॥
यत्पुनरप्राप्तपूर्वं सम्यक्त्वं कल्पपादपभ्यधिकम्। तमिदानीं सम्प्राप्तं ततः पालय तच्चैव विशुद्धम् ॥ १८६ ॥
इति संस्थाप्य निजमनो गुहायां जिन-साधुवन्दनोद्यता। यावत्तिष्ठति तावत्कदापि स्मृत्वा जननीजनकयोः ॥ १८७ ॥
यदि कथमपि खलु पन्थानमहं लभेऽरण्ये सुस्थसार्थं वा। निजजनकगृहं गत्वा निर्वृत्तहृदया करोमि तपः ॥ १८८ ॥

---

१. पिउभवणं रं० । २. जीव ! रं० । ३. सुमरिउं रं० । ४. खेद करना ।

इय चिंतिय पुव्वदिसाभाए जा जाइ ताव संजाओ । उदयप्पयावसहिओ सूरो सुयणो व्व मज्झत्थो ॥१८९॥
दिणयरखरकिरणगलंतसेयबिंदू तमालमूलम्मि । निद्दं काऊण पुणो पडिबुद्धा जाव दवदंती ॥१९०॥
तह वि हु वच्छच्छाया तं मुत्तूणं न अन्नओ सरइ । पेच्छइ य दुट्ठसावयसमूहमह सम्मुहं इंतं ॥१९१॥
तं दट्ठुमखुहियमणा मणहरसद्देण भणिउमारद्धा । जइ मज्झ सीलरयणं अगंजियं ता इमे सव्वे ॥१९२॥
गच्छंतु नियावासं तं वयणं अमयसन्निहं सोउं । तिपयाहिणीकरेउं सट्ठाणं ते गया सिग्घं ॥१९३॥
पुणरवि सुत्तविउद्धा नियचलणं पेच्छए अयगरेण । अइकसिणदारुणेणं खज्जंतं भणइ तो एवं ॥१९४॥
भो भो निट्ठुर अइगर ! जइ होमि पइव्वया अहं लोए । ता मुयसु मं महाबल ! निस्सरणमरन्नमज्झम्मि ॥१९५॥
इय जंपिऊण हत्थेण आहओ मत्थए अयगरो सो । सीलस्स पहावेणं सो वि गओ सिग्घमन्नत्थ ॥१९६॥
अन्नतो वच्चंती पत्ता सीहेण जंपए एवं । सीह ! तए पत्ताए सरणं मे नत्थि किं पि इहं ॥१९७॥
मोत्तुण सीलरयणं ता जइ मणयं पि खंडियं एयं । ता खायसु ममम्हिं अह न वि तो वयसु सट्ठाणं ॥१९८॥
इय निसुणिऊण वयणं मुक्का हरिणा पयाहिणीकाउं । एवं हिंडंतीए पभूयकालो वइक्कंतो ॥१९९॥
नवरं कंदफलाइं आहारंतीए सयलमवि देहं । जाव विणट्ठं तत्तो मणम्मि सा चिंतए एवं ॥२००॥
गिण्हिस्सं जिणदिक्खं गंतुं किर जणयमंदिरं अइरा । इण्हिं पुण कहमेयं मज्झ सरीरं विणट्ठं ? ति ॥२०१॥
इहलोय-पारलोइयसुहाण ता वंचिया धुवं अहयं । पढमं सरीरमिह होइ साहणं जेण कज्जाणं ॥२०२॥

इति चिन्तयित्वा पूर्वदिग्भागे यावद्याति तावत्सञ्जातः । उदयप्रतापसहितः सूर्यः सुजन इव मध्यस्थः ॥ १८९ ॥
दिनकरखरकिरणगलत्स्वेदबिन्दु तमालमूले । निद्रां कृत्वा पुनः प्रतिबुद्धा यावद्दवदन्ती ॥ १९० ॥
तथापि खलु वृक्षच्छाया तां मुक्त्वा नान्यतः सरति । पश्यति च दुष्टश्वापदसमूहमथ सम्मुखमेन्तम् ॥ १९१ ॥
तद्दृष्ट्वाक्षुब्धमना मनोहरशब्देन भणितुमारब्धा । यदि मम शीलरत्नमखण्डितं तदेमे सर्वे ॥ १९२ ॥
गच्छन्तु निजावासं तद्वचनममृतसन्निभं श्रुत्वा । त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य स्वस्थानं ते गताःशीघ्रम् ॥ १९३ ॥
पुनरपि सुप्तविबुद्धा निजचरणं प्रेक्षतेऽजगरेण । अतिकृष्णदारुणेन खाद्यमानं भणति तत एवम् ॥ १९४ ॥
भो भो निष्ठुराजगर ! यदि भवामि प्रतिव्रताहं लोके । तदा मुञ्च मां महाबल ! निःशरणामरण्यमध्ये ॥ १९५ ॥
इति जल्पित्वा हस्तेनाहतो मस्तकेऽजगरः सः । शीलस्य प्रभावेन सोऽपि गतः शीघ्रमन्यत्र ॥ १९६ ॥
अन्यतो व्रजन्ती प्राप्ता सिंहेन जल्पत्येवम् । सिंह ! तव प्राप्तायाः शरणं मम नास्ति किमपीह ॥ १९७ ॥
मुक्त्वा शीलरत्नं ततो यदि मनागपि खण्डितमेतत् । तदा खाद मामेदानीमथ नापि तदा व्रज स्वस्थानम् ॥१९८॥
इति निश्रुत्य वचनं मुक्ता हरिणा प्रदक्षिणीकृत्य । एवं हिण्डन्त्याः प्रभूतकालो व्यतीक्रान्तः ॥ १९९ ॥
नवरं कन्दफलान्याहरन्त्याः सकलमपि देहम् । यावद्विनष्टं ततो मनसि सा चिन्तयत्येवम् ॥ २०० ॥
ग्रहिष्यामि जिनदिक्षां गत्वा किल जनकमन्दिरमचिरात् । ईदानीं पुनः कथमेतन्मम शरीरं विनष्टम् ? इति ॥ २०१ ॥
इहलोक-पारलौकिकसुखेभ्यस्तावद्वञ्चिता ध्रुवमहम् । प्रथमं शरीरमिह भवति साधनं येन कार्याणाम् ॥ २०२ ॥

ता जइ माहप्पं पालियस्स सीलस्स अत्थि भुवणम्मि । ता होउ मम सरीरं पुणन्नवं तप्पभावाओ ॥२०३॥

इय जंपिऊण तीए निट्ठुयणं गिण्हिऊण वयणाओ । उव्वट्टियं सरीरं संजायं कंचणच्छायं ॥२०४॥

अन्नत्थ पज्जलंतं पेच्छइ जालाकलावदुप्पेच्छं । वणदावं दहमाणं सव्वत्तो सत्तसंघायं ॥२०५॥

तं दट्ठूणं निस्सेससत्तसंहारकारिणं तीए । सीलेण साविऊणं विज्झविओ सो समग्गो वि ॥२०६॥

अन्नत्तो गच्छंती कोइलकुलकंठकालमरुणच्छं । विसमविसपुन्नवयणं नियइ भुयंगममरन्नम्मि ॥२०७॥

दट्ठूणमखुहियमणा जंपइ चित्तेण वंछिओ न मए । जइ परपुरिसो एसो सट्ठाणं जाउ तो भुयगो ॥२०८॥

तं वयणं सोऊणं भुयगो अन्नत्थ नासिऊण गओ । दवदंती पुण पंथं गवेसमाणी भमइ रन्ने ॥२०९॥

एगम्मि तरुतलम्मि संझासमयम्मि चिट्ठए जाव । ताव अइदीहकाओ निल्लालियदीहजीहमुहो ॥२१०॥

अट्टट्टहासपूरियदियंतरो धूमधूसरसरीरो । पिंगलनयणो कन्नावलंबियासियभुयंगदुगो ॥२११॥

अइनिसिय-दीहदाढो करालवयणो गलंतमुहलालो । निस्साणंतो कत्तियमणवरयं हड्डुखंडम्मि ॥२१२॥

रुहिरारुणकरजुयलो बीडच्छो जणियजणमणुत्तासो । पायडियसिराजालो संपत्तो रक्खसो एगो ॥२१३॥

नियसीलपहावेणं पसन्नवयणेहिं कूरहियओ वि । उवसमिओ तह कहवि हु जह जंपइ रक्खसो एवं ॥२१४॥

तुट्ठो हं तुह भद्दे ! पत्थेसु वरं मणिच्छियं किं पि । जेण जयम्मि अमोहं देवाणं दंसणं होइ ॥२१५॥

सा जंपइ मह संपइ पओयणं नत्थि पत्थियवरेण । पभणइ पुणो वि रक्खो तहा वि मग्गेसु किं पि तुमं ॥२१६॥

तावद्यदि माहात्म्यं पालितस्य शीलस्यास्ति भुवने । तदा भवतु मम शरीरं पुनर्नवं तत्प्रभावात् ॥ २०३ ॥

इति जल्पित्वा तथा निष्ठिवन गृहीत्वा वदनाद् । उद्वर्तितं शरीरं सञ्जातं कञ्चनच्छायम् ॥ २०४ ॥

अन्यत्र प्रज्वलन्तं पश्यति ज्वालाकलापदुष्प्रेक्ष्यम् । वनदवं दह्यमानं सर्वतः सत्त्वसङ्घातम् ॥ २०५ ॥

तं दृष्ट्वा निःशेषस्सत्त्वसंहारकारिणं तया । शीलेन शप्त्वा विध्यातः स समग्रोऽपि ॥ २०६ ॥

अन्यतो गच्छन्ती कोकिलकुलकण्ठकालमरुणाक्षम् । विषमविषपूर्णवदनं पश्यति भुजङ्गमरण्ये ॥ २०७ ॥

दृष्ट्वाऽक्षुब्धमना जल्पति चित्तेन वाञ्छितो न मया । यदि परपुरुष एष स्वस्थानं यातु तदा भुजगः ॥ २०८ ॥

तद्वचनं श्रुत्वा भुजगोऽन्यत्र नंष्ट्वा गतः । दवदन्ती पुनः पथं गवेषमाणा भ्रमत्यरण्ये ॥ २०९ ॥

एकस्मिंस्तरुतले सन्ध्यासमये तिष्ठति यावत् । तावदतिदीर्घकायो निर्लालितदीर्घजिव्हामुखः ॥ २१० ॥

अट्टाट्टहास्यपूरितदिगन्तरो धूम्रधूसरशरीरः । पिङ्गलनयनः कर्णावलम्बितासितभुजङ्गद्विकः ॥ २११ ॥

अतिनिसितदीर्घदंष्ट्रः करालवदनो गलन्मुखलालः । अपवादयन् कर्त्तितमनवरतमस्थिखण्डान् ॥ २१२ ॥

रुधिरारुणकरयुगलो बीभत्सो जनितजनमनोत्त्रासः । प्राकटितशिराजालः संप्राप्तो राक्षस एकः ॥ २१३ ॥

निजशीलप्रभावेन प्रसन्नवचनैः कुरहृदयोऽपि । उपशमितस्तथा कथमपि खलु यथा जल्पति राक्षस एवम् ॥ २१४ ॥

तुष्टोऽहं तव भद्रे ! प्रार्थय वरं मनइच्छितं किमपि । येन जगत्यमोघं देवानां दर्शनं भवति ॥ २१५ ॥

सा जल्पति मम सम्प्रति प्रयोजनं नास्ति प्रार्थितवरेण । प्रभणति पुनरपि राक्षसस्तथापि मार्गय किमपि त्वम् ? ॥२१६॥

तो जंपइ दवदंती जइ एवं ता तुमं मह कहेसु । मह दइएणं सद्धिं समागमो होहिही कइया ? ॥२१७॥
तो भणइ रक्खसो बारसम्मि वरिसम्मि तुज्झ जणयस्स । पासे नलेण सद्धिं होहि त्ति समागमो भद्दे ! ॥२१८॥
पणमित्तु गओ देवो सट्ठाणं सा वि सत्थियनरेहिं । दिट्ठो तत्थुवविट्ठा नीया निययम्मि सत्थम्मि ॥२१९॥
आसन्ने संपत्ता तत्थ वि धणदेवसत्थवाहेण । पुट्ठे तीए कहिओ नियओ सव्वो वि वुत्तंतो ॥२२०॥
संचलिओ सो सत्थो दवदंती वि य गया समं तेण । संपत्तो य कमेणं वच्चंतो अयलपुरनयरं ॥२२१॥
नयराभिमुहं चलिया गच्छंती सलिलपुन्नवावीए । पत्ता तत्थ पविट्ठा सलिलकए कह वि दवदंती ॥२२२॥
पक्खालियकर-चरण सीयलजलविहियतण्हवुच्छेया । उवविट्ठा वावीए तडम्मि जावऽच्छए एसा ॥२२३॥
एत्थंतरम्मि तन्नयरवासिरिउवन्नपुहइपालस्स । दासीओ संपत्ता जलकीलत्थं इमा ताहिं ॥२२४॥
दिट्ठा तो सप्पणयं नीया नियसामिणीसयासम्मि । विहियपणामा देवीए नाइदूरम्मि उवविट्ठा ॥२२५॥
भणिया चंदजसाए संभासेऊण कोमलगिराहिं । वच्छे ! तुमं पि धूया मह चंदमईए सहिय त्ति ॥२२६॥
तम्हा चंदमईए गिहम्मि अच्छसु सुहेण तं वच्छे ! । तीए वि विणयदाणाइणा जणो रंजिओ सव्वो ॥२२७॥
तम्मि पुरे देवीए सत्तागारं करावियं तत्थ । दीणाईणं दाणं अणवरयं दिज्जइ जहिच्छं ॥२२८॥
जइ कहवि कुओ वि नलो आगच्छइ तत्थ इय विचिंतेउं । देवीए सम्मएणं दाणं सा देइ तत्थ ठिया ॥२२९॥
एत्तो वेयब्भनराहिवेण निसुओ नलस्स वुत्तंतो । रज्जब्भंसाईओ जाव अरन्नम्मि संपत्तो ॥२३०॥

ततो जल्पति दवदन्तीत्येव तावत्त्वं मम कथय । मम दयितेन सार्धं समागमो भविष्यति कदा ? ॥ २१७ ॥
ततो भणति राक्षसो द्वादशे वर्षे तव जनकस्य । पार्श्वे नलेन सार्धं भविष्यतीति समागमो भद्रे ! ॥ २१८ ॥
प्रणम्य गतो देवो स्वस्थानं सापि सार्थिकनरैः । दृष्टा तत्रोपविष्टा नीता निजके सार्थे ॥ २१९ ॥
आसन्ने सम्प्राप्ता तत्रापि धनदेवसार्थवाहेन । पृष्टे तया कथितो निजकः सर्वोऽपि वृत्तान्तः ॥ २२० ॥
सञ्चलितः स सार्थो दवदन्त्यपि च गता समं तेन । सम्प्राप्तश्च क्रमेण गच्छन्नचलपुरनगरे ॥ २२१ ॥
नगराभिमुखं चलिता गच्छन्ती सलिलपूर्णवाप्याः । प्राप्ता तत्र प्रविष्टा सलिलकृते कथमपि दवदन्ती ॥ २२२ ॥
प्रक्षालितकर-चरणा शीतलजलविहिततृष्णव्युच्छेदा । उपविष्टा वाप्यास्तटे यावदास्त एषा ॥ २२३ ॥
अत्रान्तरे तन्नगरवासिऋतुपर्णपृथिवीपालस्य । दास्यः सम्प्राप्ता जलक्रीडार्थमिमा ताभिः ॥ २२४ ॥
दृष्टा ततः सप्रणयं नीता निजस्वामिनिसकाशे । विहितप्रणामा देव्या नातिदूर उपविष्टा ॥ २२५ ॥
भणिता चन्द्रयशसा सम्भाष्य कोमलगीर्भिः । वत्से ! त्वमपि दुहिता मम चन्द्रमत्याः सखीति ॥ २२६ ॥
तस्माच्चन्द्रमत्या गृहे आस्स्व सुखेन त्वं वत्से ! । तयापि विनयदानादिना जनो रञ्जितः सर्वः ॥ २२७ ॥
तस्मिन्पुरे देव्या सत्रागारं कारितं तत्र । दीनादीनां दानमनवरतं दीयते यथेच्छम् ॥ २२८ ॥
यथा कथमपि कुतोऽपि नल आगच्छति तत्रेति विचिन्त्य । देव्या सम्मतेन दानं सा ददाति तत्र स्थिता ॥ २२९ ॥
इतो वैदर्भनराधिपेन निश्रुतो नलस्य वृत्तान्तः । राज्यभ्रंशादिको यावदरण्ये सम्प्राप्तः ॥ २३० ॥

जीवंतस्स मयस्स व कुसलपउत्ती वि जाव नो लद्धा । काऊण महासोयं तत्तो रिउवन्नामस्स ॥२३१॥

नरवइणो रहमित्तं विप्पं पेसेइ नलकुमारस्स । कुसलपउत्तिनिमित्तं संपत्तो रायपासम्मि ॥२३२॥

पुट्ठो सो नरवइणा सव्वं रज्जाइकुसलवुत्ततं । तेण वि रन्नो कहियं सकलत्तनलस्स निस्सरणं ॥२३३॥

तं सोऊणं सयलं पि राउलं सोयदुक्खियं जायं । सो भोयणमलहंतो तत्थ गओ दाणसालाए ॥२३४॥

तेण तहिं सा दिट्ठा जायं दोन्हं पि पच्चभिन्नाणं । तत्तो सदुक्खमेसा वुत्ततं पुच्छिया सव्वं ॥२३५॥

तं मुणिऊणं विप्पो चंदजसादेविअंतियं पत्तो । मा खिज्जसु देवि ! जओ लद्धा एत्थेव दवदंती ॥२३६॥

सा कत्थ ? तेण भणियं जा दाणं देइ दाणसालाए । इय सुणिऊणं पत्ता चंदजसा तीए पासम्मि ॥२३७॥

दवदंतीए कहिओ रज्जब्भंसाइसयलवुत्तंतो । चंदजसादेवीए संपत्ता जाव एत्थ अहं ॥२३८॥

तीए वि हु सप्पणयं दवदंति निययमंदिरे नीया । सम्माणिया सहरिसं वत्थाऽलंकारमाईहि ॥२३९॥

रहमित्तेणं भणिओ नरनाहो अन्नवासरे नमिउं । देव ! इमा दवदंती पेसिज्जउ जणयभवणम्मि ॥२४०॥

दवदंतिविओयदुहाउराण भीमरह-पुप्फदंतीणं । संपज्जउ परमसुहं नियतणयादंसणेणं ति ॥२४१॥

एवं पयंपिऊणं पसत्थदिवसम्मि नरवरिंदेण । चउरंगबलं दाउण पेसिया जणयपासम्मि ॥२४२॥

अक्खंडपयाणेहिं गच्छंती जणयसन्तियं नयरिं । संपत्ता भीमरहो वि णिग्गओ सम्मुहो तीए ॥२४३॥

अइगरुयविभूईए पवेसिया नियपुरम्मि दवदंती । पणया य पुप्फदंतीपमुहाणं नियजणणीणं ॥२४४॥

जीवतो मृतस्य वा कुशलप्रवृत्तिरपि यावन्न लब्धा । कृत्वा महाशोकं तत ऋतुपर्णनामस्य ॥ २३१ ॥

नरपते रथमित्रं विप्रं प्रेष्यति नलकुमारस्य । कुशलप्रवृत्तिनिमित्तं संप्राप्तो राजपार्श्वे ॥ २३२ ॥

पृष्टः स नरपतिना सर्वं राज्यादिकुशलवृत्तान्तम् । तेनापि राज्ञः कथितं सकलत्रनलस्य निस्सरणम् ॥ २३३ ॥

तच्छ्रुत्वा सकलमि राजकुलं शोकदुःखितं जातम् । स भोजनमलभमानस्तत्र गतो दानशालायाम् ॥ २३४ ॥

तेन तत्र सा दृष्टा जातं द्वयोरपि प्रत्यभिज्ञानम् । ततः सदुःखमेषा वृत्तान्तं पृष्टा सर्वम् ॥ २३५ ॥

तं मुणित्वा विप्रश्चन्द्रयशोदेव्यन्तिकं प्राप्तः । मा खिद्यस्व देवि ! यतो लब्धात्रैव दवदन्ती ॥ २३६ ॥

सा कुत्र ? तेन भणितं या दानं ददाति दानशालायाम् । इति श्रुत्वा प्राप्ता चन्द्रयशा तस्याः पार्श्वे ॥ २३७ ॥

दवदन्त्या कथितो राज्यभ्रंशादिसकलवृत्तान्तः । चन्द्रयशोदेव्याःसम्प्राप्ता यावदत्राहम् ॥ २३८ ॥

तथापि खलु सप्रणयं दवदन्ती निजकमन्दिरे नीता । सन्मानिता सहर्षं वस्त्रालङ्कारादिभिः ॥ २३९ ॥

रथमित्रेण भणितो नरनाथोऽन्यावसरे नत्वा । देव ! इमा दवदन्ती प्रेष्यतां जनकभवने ॥ २४० ॥

दवदन्ती वियोगदुःखातुरयोर्भीमरथ-पुष्पदन्त्योः । संपद्येतां परमसुखं निजतनयादर्शनेनेति ॥ २४१ ॥

एवं प्रजल्प्य प्रशस्तदिवसे नरवरेन्द्रेण । चतुरङ्गबलं दत्वा प्रेषिता जनकपार्श्वे ॥ २४२ ॥

अखण्डप्रयाणै र्गच्छन्ती जनकसत्कां नगरीम् । संप्राप्ता भीमरथोऽपि निर्गतःसम्मुखस्तस्याः ॥ २४३ ॥

अति गुरुकविभूत्या प्रवेशिता निजपुरे दवदन्ती । प्रणता च पुष्पदन्तीप्रमुखाणां निजजननीनाम् ॥ २४४ ॥

पुट्ठाए नियचरियं रहमित्तमुहेण साहियं सव्वं । अंतेउरमज्झगया वहुविहकीला-विणोएहिं ॥२४५॥

दवदंती तत्थ ठिया मणयं संपन्नमणसमाहाणा । मणचिंतियपूरिज्जंतवत्थुनियरा जणयभवणे ॥२४६॥

(ग्रन्थाग्रम् २०००॥)

एत्तो य नलनरिंदो भमडंतो विडविसंकडं अडविं । जा गच्छइ ता पेच्छइ मसिकसिणं भीसणं भुयगं ॥२४७॥

कीलाविऊण अक्खुहियमाणसो विसहरं बहुपयारं । पक्खिवइ पुरओ दिट्ठिं जाव तओ पेक्खए एक्कं ॥२४८॥

केऊर-कडय-कुंडलविभूसियं जच्चकंचणच्छायं । तियसं नियकंतिपहाए भासयंतं दिसावलयं ॥२४९॥

जंपइ देवो नलकुमार ! तुज्झ जणओ अहं निसढराया । जेण तुह रायलच्छि दाउं तव-चरणमणुचिन्नं ॥२५०॥

मरिऊण समुप्पन्नो तियसो तियसालयम्मि दिव्वम्मि । तत्थ निविट्ठेण मए दिट्ठो तं रज्जपब्भट्ठो ॥१५१॥

हिंडंतो अडवीए गुरुनेहवसा समागओ एत्थ । तुह सत्तपरिक्खत्थं विसहररूवं मए विहियं ॥२५२॥

नियदेहरक्खणकए इण्हिं बहुवइरिओ तुमं जम्हा । ता गिण्ह मह सयासा रूवपरावत्तिणिं गुडियं ॥२५३॥

एवं ति मन्निऊणं गहिया गुडिया नलेण देवो वि । सट्ठाणं संपत्तो हिंडंतो नलध[न]रिंदो वि ॥२५४॥

गुडियकयखुज्जवेसो संपत्तो सुंसुमारनयरम्मि । रायपहं जाव गओ ता दिट्ठो गयवरो एक्को ॥२५५॥

वियरंतो सच्छंदं निरंकुसो मयजलोल्लियकवोलो । आमूलं उम्मूलियनिच्चलआलाणगुरुखंभो ॥२५६॥

पाडेंतो हट्टाइं भंजंतो मंदिराइं सव्वत्तो । कोलाहलो पयट्टो चूरिज्जंतम्मि लोगम्मि ॥२५७॥

पृष्टाया निजचरितं रथमित्रमुखेन कथितं सर्वम् । अन्तःपुरमध्यगता बहुविधक्रीडा-विनोदैः ॥ २४५ ॥

दवदन्ती तत्र स्थिता मनाक् सम्प्राप्तमनःसमाधाना । मनश्चिन्तितपूर्यमाणवस्तुनिकरा जनकभवने ॥ २४६ ॥

इतश्च नलनरेन्द्रो भ्रमन् विटपिसङ्कीर्णामटवीम् । यावद्गच्छति तावत्पश्यतिमसीकृष्णं भीषणं भुजगम् ॥ २४७ ॥

क्रीडयित्वाक्षुब्धमानसो विषधरं बहुप्रकारम् । प्रक्षिपति पुरतो दृष्टिं यावत्ततः प्रेक्षत एकम् ॥ २४८ ॥

केयूर-कटक-कुण्डलविभूषितं जात्यकञ्चनच्छायम् । त्रिदशं निजकान्तिप्रभया भासमानं दिग्वलयम् ॥ २४९ ॥

जल्पति देवो नलकुमार ! तव जनकोऽहं निषधराजा । येन तुभ्यं राजलक्ष्मी दत्वा तपश्चरणमनुचीर्णम् ॥ २५० ॥

मृत्वा समुत्पन्नस्त्रिदशालये दिव्ये । तत्र निविष्टेन मया दृष्टस्त्वं राज्यप्रभ्रष्टः ॥ २५१ ॥

हिण्डमानोऽटव्यां गुरुस्नेहवशात्समागतोऽत्र । तव सत्त्वपरीक्षार्थं विषधररुपं मया विहितम् ॥ २५२ ॥

निजदेहरक्षणकृते इदानीं बहुवैरिणस्त्वं यस्मात् । तावद्गृहाण मम सकाशाद्रुपपरावर्तिनिं गुटिकाम् ॥ २५३ ॥

एवमिति मत्वा गृहीता गुटिका नलेन देवोऽपि । स्वस्थानं संप्राप्तो हिण्डमानो नलध[न]रेन्द्रोऽपि ॥ २५४ ॥

गुटिकाकृतकुब्जवेशः संप्राप्तः सुंसुमारनगरे । राजपथं यावद्गतस्तावद्दृष्टो गजवर एकः ॥ २५५ ॥

विचरन् स्वच्छन्दं निरङ्कुशो मदजलार्द्रीतकपोलः । आमूलमुन्मूलितनिश्चलालानगुरुस्तम्भः ॥ २५६ ॥

पातयन् हट्टानि भञ्जन्मन्दिराणि सर्वतः । कोलाहलः प्रवृत्तश्चूर्यमाणे लोके ॥ २५७ ॥

हलबोलं सुणिऊणं नाणासिक्खाहिं खुज्जयनरेण । काऊण वसे हत्थी नीओ आलाणखंभम्मि ॥२५८॥
लोएणऽणुगम्मंतो पत्तो दहिवन्नरायपासम्मि । दट्ठुं खुज्जयरूवं नरनाहो विम्हओ चित्ते ॥२५९॥
विन्नाणं तुह अन्नं पि अत्थि रन्ना पयंपिओ भणइ । देवऽत्थि रसवइं निम्मवेमहं सूरपागेणं ॥२६०॥
दंसेसु मज्झ रविपागरसवई कोउयं भणइ राया । तेण विहियं तह च्चिय संजाओ गोरवट्ठाणं ॥२६१॥
कत्तो तुह आगमणं ? पुट्ठो रन्ना पुणो वि सो भणइ । नलरन्नो सूयारो हुंडियनामो अहं आसि ॥२६२॥
बाहत्तरी कलाओ तस्स सयासम्मि सिक्खिया य मए । नियविन्नाणगुणेणं संजाओ वल्लहो रन्नो ॥२६३॥
वणवासं संपत्ते नलम्मि जूएण हारिउं वसुहं । कत्थ गओ स न नज्जइ अहं तु तुह पासमल्लीणो ॥२६४॥
अह अन्नया कयाई दहिवन्ननरिंदसंतिओ दूओ । भीमरहस्स सयासं केणइ कज्जेण संपत्तो ॥२६५॥
तत्थगएणं तेणं कहिओ सूयारसंतिओ सव्वो । वुत्तंतो नरवइणो दवदंतीए समेयस्स ॥२६६॥
भणियं दवदंतीए रविपागं रसवइं मुणइ नऽन्नो । मोत्तूण नलनरिंदं ता होज्ज अवस्स मज्झ पिओ ॥२६७॥
ता केण उवाएणं आणेयव्वो इहं स सूयारो । नवरं दहिवन्ननराहिवेण समयं जइ समेइ ॥२६८॥
अलियसयंवरमंडवकवडेणं एत्थ पत्थिवो सो वि । हक्कारिज्जउ इय मंतिऊण बालाए सह रन्ना ॥२६९॥
तो पट्ठविओ दूओ तेणावि सयंवरो समक्खाओ । जह दिणपंचगमज्झे आगंतव्वं तए सिग्घं ॥२७०॥
अह जंपइ दहिवन्नो दूरे देसो त्ति कहणु गंतव्वं । पच्चासन्नो दिवसो तो भणिओ हुंडिएण इमं ॥२७१॥

हलबोलं श्रुत्वा नानाशिक्षाभिः कुब्जकनरेण । कृत्वा वशे हस्ती नीत आलानस्तम्भे ॥ २५८ ॥
लोकेनानुगच्छन्प्राप्तो दधिपर्णराजपार्श्वे । दृष्ट्वा कुब्जकरुपं नरनाथो विस्मितश्चित्ते ॥ २५९ ॥
विज्ञानं तवान्यदप्यस्ति राज्ञा प्रजल्पितो भणति । देवास्ति रसवतीं निर्मापयाम्यहं सूर्यपाकेन ॥ २६० ॥
दर्शय मम रविपाकरसवतीकौतुकं भणति राजा । तेन विहितं तथा चैव सञ्जातो गौरवस्थानम् ॥ २६१ ॥
कुतस्तवागमनं ? पृष्टो राज्ञा पुनरपि स भणति । नलराज्ञः सूपकारो हुण्डिकनामोऽहमासीत् ॥ २६२ ॥
द्वासप्ततिः कलास्तस्य सकाशे शिक्षिताश्च मया । निजविज्ञानगुणेन सञ्जातो वल्लभो राज्ञः ॥ २६३ ॥
वनवासं संप्राप्ते नले द्युतेन हारित्वा वसुधाम् । कुत्र गतः स न ज्ञायतेऽहं तु तव पार्श्वमालीनः ॥ २६४ ॥
अथान्यदा कदाचिद्दधिपर्णनरेन्द्र सत्को दूतः । भीमरथस्य सकाशं केनचित्कार्येण सम्प्राप्तः ॥ २६५ ॥
तत्र गतेन तेन कथितः सूपकारसत्कः सर्वः । वृत्तान्तो नरपते र्दवदन्त्याः समेतस्य ॥ २६६ ॥
भणितं दवदन्त्या रविपाकारसवतीं मुणोति नान्यः । मुक्त्वा नलनरेन्द्रं ततो भवेदवश्यं मम प्रियः ॥ २६७ ॥
ततः केनोपायेनानेतव्य इह स सूपकारः । नवरं दधिपर्णनराधिपेन समकं यदि समैति ॥ २६८ ॥
अलिकस्वयंवरमण्डपकपटेनात्र पार्थिवः सोऽपि । आकार्यतु इति मन्त्रयित्वा बालया सह राज्ञा ॥ २६९ ॥
ततो प्रस्थापितो दूतस्तेनापि स्वयंवरः समाख्यातः । यथा दिनपञ्चकमध्ये आगन्तव्यं त्वया शीघ्रम् ॥ २७० ॥
अथ जल्पति दधिपर्णो दूरे देश इति कथं नु गन्तव्यम् । प्रत्यासन्नो दिवसस्ततो भणितो हुण्डिकेनेदम् ॥ २७१ ॥

देव ! विसन्नो मा होसु नेमि तं तत्थ पहरमेत्ते वि । पभणइ राया कहमाह सो वि सज्जं करेऊण ॥२७२॥
संजमिय तुरयसंदणमारुहसु सहस्सजोहचउसहिओ । एवं ति कए रन्ना सूयारेणं पयत्तेणं ॥२७३॥
अस्सावहारविज्जाए कन्नजावो कओ तुरंगाणं । तो ते निसायकरवालसामलं गयणमुप्पइया ॥२७४॥
अह गच्छंतस्स नरेसरस्स मणपवणजवणरहरयणे । धरणीयलम्मि पडियं वरुत्तरीयं सिरग्गाओ ॥२७५॥
तं जोयंतो उ तरललोयणो हुंडिएण पडिसिद्धो । जोयणसयं सवायं जम्हा तं देव ! परिचत्तं ॥२७६॥
पत्तो य कुंडिणपुरिं पवेसिओ महरिहाए रिद्धीए । सम्माणिओ समाणो पयंपिओ भीमरहरन्ना ॥२७७॥
काउं सयंवरमिमं मए तुमं कोउएण वाहरिओ । सूयारदंसणकए विसेसकज्जं न उण अन्नं ॥२७८॥
ता रविपागरसवईकरणे आइससु निययसूयारं । तो दहिवन्नाएसाणंतरमिमिणा वि सा विहिया ॥२७९॥
भोयविओ भीमरहो सपरियणो तो तयं पलोएउं । उब्भूयभूरिपणया दवदंती चिंतिउं लग्गा ॥२८०॥
नूणमिमो मज्झ पिओ नज्जइ रविपागरसवईकरणा । तह दंसणमेत्तेग वि विप्फुरणाओ सिणेहस्स ॥२८१॥
किंतु न रूवं तारिसमिमस्स इय चिंतिऊण । सा साहइ तं सोउं तेणुत्तमिमं पि संभवइ ॥२८२॥
सा भणइ न रोमं पि हु भिज्जइ परपुरिसफंसओ मज्झ । नलकरफंसेण पुणो पुलइज्जइ सव्वमवि अंगं ॥२८३॥
ता ताय ! परिक्खिज्जउ करयलफंसेणिमस्स तह विहिए । संजाओ सव्वंगं तीए सिणेहेण रोमंचो ॥२८४॥
एसो स एव इय चिंतिऊण चलणेसु लग्गिउं तीए । तह कह वि पभणिओ सो जह नियरूवं कयं तेण ॥२८५॥

देव ! विष्णणो मा भव नयामि त्वां तत्र प्रहरमात्रेणापि । प्रभणति राजा कथमाह सोऽपि सज्जं कृत्वा ॥ २७२ ॥
संयमिततुरगस्यन्दनमारुह सहस्रयोधचतुर्सहितः । एवमिति कृते राज्ञा सूपकारेण प्रयतेन ॥ २७३ ॥
अश्वापहारविद्यया कर्णजापः कृतस्तुरङ्गाणाम् । ततस्ते निषादकरवालश्यामलं गगनमुत्पतिताः ॥ २७४ ॥
अथ गच्छतो नरेश्वरस्य मनःपवनजवनरथरत्ने । धरणितले पतितं वरोत्तरीयं शिरोऽग्रात् ॥ २७५ ॥
तं पश्यंस्तु तरललोचनो हुण्डिकेन प्रतिषिद्धः । योजनशतं सपादं यस्मात्तद् देव ! परित्यक्तम् ॥ २७६ ॥
प्राप्तश्च कुण्डिनपुरिं प्रवेशितो महार्ह्यार्द्धया । सन्मानितस्सन् प्रजल्पितो भीमरथराज्ञा ॥ २७७ ॥
कृत्वा स्वयंवरमिमं मया त्वं कौतुकेन व्याहृतः । सूपकारदर्शनकृते विशेषकार्यं न पुनरन्यत् ॥ २७८ ॥
ततो रविपाकरसवतीकरण आदिश निजकसूपकारम् । ततो दधिपर्णादेशानन्तरमनेनापि सा विहिता ॥ २७९ ॥
भोजितो भीमरथः सपरिजनस्ततस्तकं प्रलोक्य । उद्भूतभूरिप्रणया दवदन्ती चिन्तयितुं लग्ना ॥ २८० ॥
नूनमयं मम प्रियो ज्ञायते रविपाकरसवतीकरणात् । यथा दर्शनमात्रेणापि विस्फुरणात्स्नेहस्य ॥ २८१ ॥
किन्तु न रुपं तादृशमेतस्येति चिन्तयित्वा जनकस्य । सा कथयति तच्छ्रुत्वा तेनोक्तमिममपि सम्भवति ॥ २८२ ॥
सा भणति न रोममपि खलु भिद्यते परपुरुषस्पर्शतो मम । नलकरस्पर्शेन पुनः पुलकायति सर्वमप्यङ्गम् ॥ २८३ ॥
ततस्तात ! परीक्ष्यते करतलस्पर्शेनैतस्य तथा विहिते । सञ्जातः सर्वाङ्गं तस्याः स्नेहेन रोमाञ्चः ॥ २८४ ॥
एष स एवेति चिन्तयित्वा चरणयोर्लगित्वा तया । कथमपि प्रभणितः स यथा निजरुपं कृतं तेन ॥ २८५ ॥

तो भीमरहनिवेणं वद्धावणयं कयं विभूईए । दहिवन्ननरिंदेणावि खामिओ सकयमवराहं ॥२८६॥
वेयब्भवइप्पभिईहिं रायविंदेहिं विहियपरिवारो । संजाओ पुहइवई पुव्वं व नमंतसामंतो ॥२८७॥
अक्कंतेसु दुवालसवासेसु अहऽन्नया नलनरिंदो । नियबलभरभरियमहीवलओ पत्तो नियं नयरिं ॥२८८॥
आवासिओ पुरीए परिसरधरणीयले तओ तेण । पट्ठविउं नियदूयं भणाविओ कुब्बरो एवं ॥ २८९ ॥
मोत्तूणं महरज्जं वच्चसु अहवा पुणोरमसु जूयं । तो खेल्लियम्मि जूए जिणिऊण वसीकयं रज्जं ॥२९०॥
कुब्बरजुवरायस्स वि दिन्नो देसो नलेण नरवइणा । सव्वे वि सुहं भुंजंति रायलच्छि सुइरकालं ॥२९१॥
अन्नम्मि दिणे उज्जाणपालपुरिसेहिं पणमिउं राया । विन्नत्तो संपत्तो चउनाणी देव ! उज्जाणे ॥२९२॥
नामेणं जिणसेणो सूरी दूरीकयंतरारिगणो । सोऊण तयं दाऊण ताण निययंगआभरणं ॥२९३॥
पगलंतमयजलोहं आरुहिउं वारणं महीनाहो । संतेउरो सकुमरो सकुव्बरो पउरपरियरिओ ॥२९४॥
नीहरिओ नयरीओ संपत्तो सूरिपायपासम्मि । पणमियमुणिकमकमलो उवविट्ठो उचियदेसम्मि ॥२९५॥
धम्मकहापज्जंते पत्थावं पाविउं पुहइपालो । पुच्छइ पणामपुव्वं सूरिं सिररइयकरकमलो ॥२९६॥
किं पुव्वभवे भयवं ! मए कयं ? जेण एत्तियं कालं । दवदंतीए समयं संजाओ दुस्सहो विरहो ॥२९७॥
तो पभणइ मुणिनाहो आयन्नसु पुहइपाल ! सम्मं ति । एत्तो पंचमजम्मे अट्ठावयपव्वयसमीवे ॥२९८॥
अक्खायखग्गनिज्जिणियसंगरो सव्वसंगरो राया । संगरपुरनयरम्मी अहेसि तं मम्मणो नाम ॥२९९॥
वीरमईनामेणं एसा वि हु तुज्झ पणइणी आसि । गच्छंतेणं अह अन्नया य आहेडयम्मि तए ॥३००॥

ततो भीमरथनृपेन वर्धापनकं कृतं विभूत्या । दधिपर्णनरेन्द्रेणापि क्षामित: स्वकृतमपराधम् ॥ २८६ ॥
वैदर्भपतिप्रभृतै राजवृन्दै विहितपरिवार: । सञ्जात:पृथिवीपति: पूर्वमिव नमत्सामन्त: ॥ २८७ ॥
आक्रान्तेषु द्वादशवर्षेष्वथान्यदा नलवरेन्द्र: । निजबलभरभृतमहीवलय: प्राप्तो निजां नगरीम् ॥ २८८ ॥
आवासित: पूर्या: परिसरधरणीतले ततस्तेन । प्रस्थाप्य निजदूतं भाणित: कुबर एवम् ॥ २८९ ॥
मुक्त्वा मम राज्यं व्रजाथवा पुना रमस्व द्युतम् । तत: क्रीडति द्युते जित्वा वशीकृतं राज्यम् ॥ २९० ॥
कुबरयुवराज्ञेऽपि दत्तो देशो नलेन नरपतिना । सर्वेऽपि सुखं भुञ्जन्ति राजलक्ष्मीं सुचिरकालम् ॥ २९१ ॥
अन्यस्मिन् दिन उद्यानपालपुरुषै: प्रणम्य राजा । विज्ञप्त: संप्राप्तश्चतुर्ज्ञानी देव ! उद्याने ॥ २९२ ॥
नाम्ना जिनसेन: सूरि दूरीकृतान्तरारिगण: । श्रुत्वा तकं दत्त्वा तेभ्यो निजाङ्गाभरणम् ॥ २९३ ॥
प्रगलन्मदजलौघमारुह्य वारणं महीनाथ: । सान्त:पुर: सकुमार: सकुबर: पौरपरिवारित: ॥ २९४ ॥
नि:सृतो नगर्या: सम्प्राप्त: सूरिपादपार्श्वे । प्रणतमुनिक्रमकमल उपविष्ट उचितदेशे ॥ २९५ ॥
धर्मकथापर्यन्ते प्रस्तावं प्राप्य पृथिवीपाल: । पृच्छति प्रणामपूर्वं सूरिं शिरोरचितकरकमल: ॥ २९६ ॥
किं पूर्वभवे भगवन् ! मया कृतं ? येनैतावन्तं कालम् । दवदन्त्या समकं सञ्जातो दु:सहो विरह: ॥ २९७ ॥
तदा प्रभणति मुनिनाथ आकर्णय पृथिवीपाल ! सम्यगिति । इत: पञ्चमजन्मनि अष्टापदपर्वतसमीपे ॥ २९८ ॥
उत्खातखङ्गनिर्जितसङ्गर: सर्वसङ्गरो राजा । सङ्गरपुरनगरे आसीत्त्वं मम्मणो नाम ॥ २९९ ॥
वीरमतीनाम्नैषाऽपि खलु तव प्रणयिन्यासीत् । गच्छताथान्यदा चाखेटके त्वया ॥ ३०० ॥

दिट्ठो मलमलिणंगो उवसंतो मुणिवरो समुहमिंतो । अवसउणो त्ति विचिंतिय बंधित्तु समंदिरे नीओ ॥३०१॥

धरिओ तओ दुवालस घडियाओ तओ कयाणुतावेणं । छोडेऊणं मुक्को पयंपिओ तं कुओ ? कहसु ॥३०२॥

सो जंपइ रोहेडयनयराओ समागओ इह पुरम्मि । गंतव्वं पुण अट्ठावयम्मि जिणवंदणनिमित्तं ॥३०३॥

पडिलाभिओ य दोहिं वि जणेहिं तुब्भेहिं भत्तिकलिएहिं । तस्स समीवे दोन्नि वि सावगधम्मं पवन्नाइं ॥३०४॥

कइया वि हु वीरमई संपत्ता देवयाणुभावेण । अट्ठावयम्मि सव्वे वि जिणवरा पूइया तीए ॥३०५॥

दट्ठूण तत्थ जत्तं कीरंतिं नमिरअमरनियरेण । तत्तो पहिट्ठहियया समागया नियनयरम्मि ॥३०६॥

काराविया य तीए झलकिरहीरावलीहिं रेहंता । चउवीसं कणगमया तिलया मुत्तावलीकलिया ॥३०७॥

एक्केक्कं उज्जमिउं कमेण आयंबिलाण वीसाए । दिन्ना गंतुं अट्ठावयम्मि तीए जिणिंदाणं ॥३०८॥

भुवणगुरुणो विभूसिय भत्तीए तत्थ तिलयरयणेहिं । नियगेहमागयाए निसुयं निम्मलतवस्स फलं ॥३०९॥

तहा हि-

तवेण उत्तमो जम्मो कंती लायण्णमुत्तमं । तवेण रूव-सामिद्धी तवेण सुहसंपया ॥३१०॥

तवेण वित्थडा कित्ती तवेण सुहगत्तणं । सुरा वि पज्जुवासंति तवोगुणरयं सया ॥३११॥

तवेणं हुंति लद्धीओ सग्गा मोक्खा तवेण य । तं नत्थि एत्थ कल्लाणं तवाओ जं न जायए ॥३१२॥

इय निसुणिऊण तीए भद्द-महाभद्दमाइया विविहा । विहिया तवोविसेसा उज्जमिया जिणमयविहीए ॥३१३॥

दृष्टो मलमलिताङ्ग उपशान्तो मुनिवरः संमुखमायान् । अपशकुन इति विचिन्त्य बद्ध्वा स्वमन्दिरे नीतः ॥ ३०१ ॥

धृतस्ततो द्वादश घटिकास्ततः कृतानुतापेन । छोटयित्वा मुक्तः प्रजल्पितस्त्वं कुतः ? कथय ॥ ३०२ ॥

स जल्पति रोहेटकनगरात्समागत इह पुरे । गन्तव्यं पुनरष्टापदे जिनवन्दननिमित्तम् ॥ ३०३ ॥

प्रतिलाभितश्च द्वाभ्यामपि जनाभ्यां युवाभ्यां भक्तिकलिताभ्याम् । तस्य समीपे द्वावपि श्रावकधर्मं प्रपन्नौ ॥ ३०४ ॥

कदापि खलु वीरमती सम्प्राप्ता देवानुभावेन । अष्टापदे सर्वेऽपि जिनवराः पूजितास्तया ॥ ३०५ ॥

दृष्ट्वा तत्र यात्रां क्रियमाणां नमदमरनिकरेण । ततः प्रहृष्टहृदया समागता निजनगरे ॥ ३०६ ॥

कारिताश्च तया दीप्यद्भिरकावलिभी राजमाणाः । चतुर्विशतिः कनकमयास्तिलका मुक्तावलिकलिताः ॥ ३०७ ॥

एकैकमुद्यम्य क्रमेणाचाम्लानां विंशत्या । दत्ता गत्वाष्टापदे तया जिनेन्द्रेभ्यः ॥ ३०८ ॥

भुवनगुरुन् विभूष्य भक्त्या तत्र तिलकरत्नैः । निजगृहमागतया निश्रुतं निर्मलतपसः फलम् ॥ ३०९ ॥

तथा हि -

तपसोत्तमजन्म कान्ति र्लावण्यमुत्तमम् । तपसा रुपसमृद्धिस्तपसा सुखसम्पत् ॥ ३१० ॥

तपसा विस्तृताकीर्तिस्तपसा सुभगत्वम् । सुरा अपि पर्युपासन्ते तपोगुणरतं सदा ॥ ३११ ॥

तपसा भवन्ति लब्धयः स्वर्गो मोक्षस्तपसा च । तन्नास्त्यित्र कल्याणं तपसो यन्नजायते ॥ ३१२ ॥

इति निःश्रुत्य तया भद्र-महाभद्रादिका विविधाः । विहिता तपोविशेषा उद्यमिता जिनमतविधिना ॥ ३१३ ॥

आउक्खयम्मि मरिउं उप्पन्ना मज्झमाऽऽउया देवी । सोहम्मे सुहभावा नामेणं खीरडिंडीरा ॥३१४॥

पुव्वनिबद्धायुत्तेण पाविउं पत्थिवो वि पंचत्तं । बहलीदेसे पोयणपुरम्मि नयरम्मि उप्पन्नो ॥३१५॥

आभीरधम्मिलाभस्स भारिया रेणुयाए गब्भम्मि । पुत्तत्ताए जायस्स धन्नओ से कयं नामं ॥३१६॥

परिहरियबालभावो अंगीकयजोव्वणो पुरजणस्स । चारेइ सेरहीओ पियपीऊसो सुरो व्व सया ॥३१७॥

अह अन्नया य यमलियनहंगणे नवधणम्मि संपत्ते । गलगज्जंते आसारवारिधाराहिं वरिसंते ॥३१८॥

उत्तत्तकणयसमविज्जुपुंजउज्जोयमाणभुवणयले । विप्फुरियफारमणिकिरणबंधुरं सक्कचावम्मि ॥३१९॥

जाए कद्दमिलपहे नीलंकुररेहिरे धरावलए । दिसिदिसिरडंतदद्दुरकडुरवपरिपूरिए भुवणे ॥३२०॥

मंडियउद्दंडसिहंडिमंडलीतंडवम्मि मणहरणे । नवइंदगोवराईविरायमाणे महीवलए ॥३२१॥

वियसियकयंबमहुपाणमत्तपरिभमिरभमिरनिउरुंबे । फुट्टंतकेयईगंधवासियासेसदिसिचक्के ॥३२२॥

एवंविहधणसमए महिसिसमूहस्स चारणगएणं । दिट्ठो उस्सग्गठिओ साहू नमिऊण भत्तीए ॥३२३॥

भणियं च तेणं भयवं ! सेरहमारुहिय वसिममल्लियह । पभणइ मुणी न कप्पइ साहूणं वाहणारुहणं ॥३२४॥

तो पंकिलम्मि मग्गे मंदं मंदं मुणी समं तेण । इरियावहं नियंतो पत्तो पुरपरिसरुद्देसे ॥३२५॥

भणिओ य तेण भयवं ! वीसमसु खणंतरं तरुतलम्मि ! । जाव कुडुंबनिमित्तं नियवावारं करेमि अहं ॥३२६॥

दुद्धासु सेरहीसुं हिययम्मि पवड्ढमाणपरिणामो । स कयत्थंमन्नंतो अप्पाणं पुलइयसरीरो ॥३२७॥

आयुःक्षये मृत्वोत्पन्ना मध्यमायुष्या देवी । सौधर्मे शुभभावान्नाम्ना क्षीरडिण्डिरा ॥ ३१४ ॥

पूर्वनिबद्धायुस्त्वेन प्राप्य पार्थिवोऽपि पञ्चत्वम् । बहलीदेशे पोतनपुरे नगर उत्पन्नः ॥ ३१५ ॥

आभीरधर्मिलाभस्य भार्याया रेणुकाया गर्भे । पुत्रत्वेन जातस्य धन्यकस्तस्य कृतं नाम ॥ ३१६ ॥

परिहृतबालभावोऽङ्गीकृतयौवनः पुरजनस्य । चारयति शैरभीः पीतपियुषः सुर इव सदा ॥ ३१७ ॥

अथान्यदा च यमलितनभोङ्गणे नवघने सम्प्राप्ते । गलगर्जति आसारवारिधाराभि र्वर्षति ॥ ३१८ ॥

उत्तप्तकनकसमविद्युत्पुञ्जोद्योतमानभुवनतले । विस्फुरितस्फारमणिकिरणबन्धुरे शक्रचापे ॥ ३१९ ॥

जाते कर्दमिलपथे नीलाङ्कुरराजमाने धरावलये । दिशोदिशरटन्तदर्दुरकटुरवपरिपूरिते भुवने ॥ ३२० ॥

मण्डितोद्दण्डसिंहमण्डलिताण्डवे मनोहरणे । नवेन्द्रगोपराजीविराजमाणे महीवलये ॥ ३२१ ॥

विकसितकदम्बमधुपानमत्तपरिभ्रमन्निकुरुम्बे । स्फुटत्केतकीगन्धवासिताशेषदिक्चक्रे ॥ ३२२ ॥

एवंविधघनसमये महिषिसमूहस्य चारणगतेन । दृष्ट उत्सर्गस्थितः साधुर्नत्वा भक्तया ॥ ३२३ ॥

भणितं च तेन भगवन् ! शैरभमारुह्य वसिममुपसर्पत । प्रभणति मुनि र्न कल्पते साधूनां वाहनारोहणम् ॥ ३२४ ॥

ततः पङ्किले मार्गे मन्दं मन्दं मुनिः समं तेन । इर्यापथं पश्यन्प्राप्तः पुरपरिसरोद्देशे ॥ ३२५ ॥

भणितश्च तेन भगवन् ! विश्रामय क्षणान्तरं तरुतले । यावत्कुटुम्बनिमित्तं निजव्यापारं करोम्यहम् ॥ ३२६ ॥

दुग्धासु शैरभिषु हृदये प्रवर्धमानपरिणामः । स कृतार्थं मन्यमानात्मानं पुलकितशरीरः ॥ ३२७ ॥

सुसिणिद्धदुद्धपूरियपारिं[1] कलिऊण करयले भणइ । भयवं ! महापसायं काऊणमिमं अणुग्गहह ॥३२८॥
तो भयवया वि दव्वाइचउहसुद्धीए सुद्धमेयं ति । गिण्हित्तु तयं उवविसिय थंडिले पीयममयसमं ॥३२९॥
तत्तो तिकालवुद्धीए पत्तमाहप्पगुणविसेसेण । मुणिदाणेणं बद्धं भोगफलं धन्नएण तया ॥३३०॥
तयणु अइक्कन्ते केत्तियम्मि कालम्मि सुद्धपरिणामो । मरिऊणं हेमवए संजाओ मिहुणभावम्मि ॥३३१॥
उवभुंजिय मिहुणसुहं मरिउं सोहम्मदेवलोयम्मि । उप्पन्नो पुन्नवसा नामेणं खीरडिंडोरो ॥३३२॥
तत्तो चुओ समाणो निसढनरिंदस्स नलनरिंद ! तुमं । पुत्तत्तेणुप्पन्नो नमंतनिस्सेसनरनाहो ॥३३३॥
वीरमई वि हु चविऊण देवलोगाओ पणइणी तुज्झ । संजाया दवदंती धूया वैयब्भनरवइणो ॥३३४॥
बारसघडियामेत्तं आसि मुणी जे तए पुरा रुद्धो । तं तिव्वकम्मबंधाणुभावओ तुज्झ नरनाह ! ॥३३५॥
बारसवरिसपमाणो संजाओ दुस्सहो इहं[2] विरहो । नवनेहनिब्भराए सद्धिं दवदंतिदेवीए ॥३३६॥
जं साहुणो विइन्नं दुद्धं तुमए चउत्थजामम्मि । निस्साधारणरिद्धीकलिया तुह तेण रज्जसिरी ॥३३७॥
एईए वीरमईभवम्मि जं जिणवराण वरतिलया । दिन्ना तं भालयले तिलयो अरुणारुणो जाओ ॥३३८॥
जं पुण ताणुज्जमणं विहियं आयंबिलेहिं तेणेसा । दित्तिजुया संजाया महासइत्तेण संजुत्ता ॥३३९॥
एयं निसामिऊणं वियाणिउं तह य जाइसरणेण । पभणइ राया पणओ पुत्तं रज्जे निवेसेउं ॥३४०॥

सुस्निग्धदुग्धपूरितपारिं कलयित्वा करतले भणति । भगवन् ! महाप्रसादं कृत्वेममनुगृह्णीत ॥ ३२८ ॥
ततो भगवतापि द्रव्यादि चतुःशुद्ध्या शुद्धमेतदिति । गृहीत्वा तकमुपविश्य स्थण्डिले पीतममृतसमम् ॥ ३२९ ॥
ततस्त्रिकालवृद्धया प्राप्तमाहात्म्यगुणविशेषेण । मुनिदानेन बद्धं भोगफलं धन्यकेन तदा ॥ ३३० ॥
तदन्वतिक्रान्ते कतिपये काले शुद्ध परिणामः । मृत्वा हेमवति सञ्जातो मिथुनभावे ॥ ३३१ ॥
उपभुज्य मिथुनसुखं मृत्वा सौधर्मदेवलोके । उत्पन्नः पुण्यवशान्नाम्ना क्षीरडिण्डीरः ॥ ३३२ ॥
ततश्च्युतस्सन्निषधनरेन्द्रस्य नलनरेन्द्र ! त्वम् । पुत्रत्वेनोत्पन्नो नमन्निशेषनरनाथः ॥ ३३३ ॥
वीरमत्यपि खलु च्युत्वा देवलोकात्प्रणयिनी तव । सञ्जाता दवदन्ती दुहिता वैदर्भनरपतेः ॥ ३३४ ॥
द्वादशघटिकामात्रमासीन्मुनिर्यत्त्वया पुरा रुद्धः । तत्तीव्रकर्मबन्धानुभावात्तव नरनाथ ! ॥ ३३५ ॥
द्वादशवर्षप्रमाणः सञ्जातो दुःसह इह विरहः । नवस्नेहनिर्भरया सार्द्धं दवदन्तीदेव्या ॥ ३३६ ॥
यत्साधवे वितीर्णं दुग्धं त्वया चतुर्थयामे । निःसाधारणर्द्धिकलिता तव तेन राज्यश्रीः ॥ ३३७ ॥
अनया वीरमतीभवे यज्जिनवरेभ्यो वरतिलकाः । दत्तास्तद्भालतले तिलकोऽरुणारुणो जातः ॥ ३३८ ॥
यत्पुनस्तेषामुद्यापनं विहितमाचाम्लैस्तेनेषा । दीप्तियुता सञ्जाता महासतीत्वेन संयुक्ता ॥ ३३९ ॥
एतन्निशम्य विज्ञाय तथा च जातिस्मरणेन । प्रभणति राजा प्रणतः पुत्रं राज्ये निवेश्य ॥ ३४० ॥

---

१. सुस्निग्धदुग्धभृतद्रोणीम् ॥ २. इमो विरहो रं० ॥

पव्वज्जं गिण्हिस्सं तुज्झ सयासम्मि सामि ! संविग्गो । गंतूण तओ नियमंदिरम्मि सुपसत्थदिवसम्मि ॥३४१॥
पुक्खलकुमरं रज्जे निवेसिउं पणइणीए संजुत्तो । गंतुं सूरिसमीवे पव्वइओ फुरियपरिणामो ॥३४२॥
समहिज्जियसुत्त-ऽत्थो गीयत्थो नायसयलपरमत्थो । विहरइ गुरूहिं सद्धिं नलरायरिसी पहयपावो ॥३४३॥
परिपालियपव्वज्जो अणसणविहिणा विसुद्धपरिणामो । आउयखयम्मि मरिऊणुप्पन्नो तियसलोगम्मि ॥३४४॥
अज्जा वि हु दवदंती समुवज्जियपउरपुन्नपब्भारा । तस्सेव य संजाया देवी दइयाणुरत्तमणा ॥३४५॥
तत्तो वि हु चविऊणं पव्वज्जं पालिऊणमकलकं । खविऊण कम्मसेसं पत्ताइं सासयं सोक्खं ॥३४६॥

॥ दवदन्त्याख्यानकं समाप्तम् ॥१३॥

इदानीं सीताख्यानकमारभ्यते-

तच्च यथा भरतजनन्या निजवरं याचितस्य निजजनकस्य वचनं प्रमाणयन् दीर्घवियोगवशसमुच्छलद्बहलनयनाश्रुजल- प्लुतनयनयुगलेन भरतप्रमुखपौरजनेन निर्वार्यमाणोऽपि वसुन्धराभारधरणधौरेयो रूप-सौभाग्यादिगुणमणिरोहणगिरिः प्रशस्त-कलम-कलश-कलिशा-दिलक्षणलाञ्छितविग्रहः समग्रसुकुमार-शरीरावयवः पादविहारेण लक्ष्मणकुमार-जानकीसमन्वितो रामचन्द्रो नगरीतो निर्जगाम । यथा च नगरीपरिसर-जिनायतनप्रतिष्ठितं भव्यजनकमलप्रबोधनाभिनवभानुमन्तं भगवन्तं समस्तव्यसनसन्दोहसमुद्रपतितजन्तु-निस्तारणसमर्थं यानपात्रमिव प्रणम्य स्तुत्वा च 'स्वामिन् ! त्वत्पादपङ्कजं मम शरणम्' इति प्रार्थनां विधाय वनवासाय प्रतस्ते । गच्छंश्च क्रमेण गोकुलपल्लीषु 'हलाः ! हलाः ! पश्यत पश्यत शीघ्रमिमौ कौचिन्मनुष्यकौ कामदेवाकारधारिणौ पृष्ठप्रदेशसंयमिततोणीरयुगौ करकलितनिबिडकोदण्डदण्डौ, इयं च रूप-सौभाग्य-निर्जितामरसुन्दरी काचिदनयोरेवैकतरस्य कस्यचित् कान्ता भविष्यति' इति जल्पन्तीभिः प्रादुर्भवदभिनव-यौवनाभिः कौतुकाक्षिप्तमानसाभिर्वेगवशकम्पमानसमुन्नमद्घनस्तनीभिर्गोपवधूभिरवलोक्यमानः, साधर्मिक-वात्सल्यद्वारेण वज्रकर्णादीनामुपकुर्वन् कल्याणमाल-वनमालादीनां समाधानमुत्पादयन् कुलचन्द्रकेवलिपार्श्वे-प्राप्तजिनधर्मः, दण्डकारण्य-माससाद । यथा च तत्र त्रिगुप्त-विचित्र-चित्रगुप्तभिधान दर्शनप्रतिलाभनावाप्तपुण्य-वशाद् मनाक् स्वास्थ्येन तस्थुषो दिवसा निजग्मुः । यथा च शम्बकुमारपरासुतप्रापण-खड्गपहारकारण-प्रकुपितखर-दूषणाभ्यां[1] सह युध्यमानस्य लक्षणकुमारस्य सिंहनादव्याजेन रणभूमिं प्राप्तस्य रामदेवस्य 'हा तात ! हा दयितार्यपुत्र ! महापराक्रम ! भ्रातृजायावत्सल ! लक्षणकुमार ! अपह्रियेऽहं केनचित् कृतान्तभीषणेनामुना केशरिणेव कुरङ्गकान्ता' इति प्रलपन्ती रावणेन सीताऽर्तुमुपचक्रमे । यथा च-

---

प्रव्रज्यां ग्रहीष्यामि तव सकाशे स्वामिन् ! संविग्नः । गत्वा ततो निजमन्दिरे सुप्रशस्तदिवसे ॥ ३४१ ॥
पुष्कलकुमारं राज्ये निवेश्य प्रणयिन्याः संयुक्तः । गत्वा सूरिसमीपे प्रव्रजितः स्फुरितपरिणामः ॥ ३४२ ॥
समधीतसूत्रार्थो गीतार्थो ज्ञातसकलपरमार्थः । विहरति गुरुभिः सार्द्धं नलराजर्षिः प्रहतपापः ॥ ३४३ ॥
परिपालितप्रव्रज्योऽनशनविधिना विशुद्धपरिणामः । आयुःक्षये मृत्वोत्पन्नस्त्रिदशलोके ॥ ३४४ ॥
आर्यापि खलु दवदन्ती समुपार्जितप्रचूरपुण्यप्राग्भारा । तस्यैव च सञ्जाता देवी दयितानुरक्तमना ॥ ३४५ ॥
ततोऽपि खलु च्युत्वा प्रव्रज्यां पालयित्वाकलङ्कम् । क्षपयित्वा कर्मशेषं प्राप्तौ शाश्वतं सौख्यम् ॥ ३४६ ॥

॥ दवदन्त्याख्यानकं समाप्तम् ॥ १३ ॥

---

१. भ्यां चतुर्दशसहस्रसुभटैः सह-रं ।

मा भैषीः पुत्रि सीते ! व्रजति मम पुरो नैष दूरं दुरात्मा, रे रे रक्षः ! क्व दारान् रघुकुलतिलकस्यापहृत्य प्रयासि ?

चञ्च्वाक्षेपप्रहारत्रुटितधमनिभिर्दिक्षु विक्षिप्यमाणमाशापालोपहारं दशभिरपि भृशं त्वच्छिरोभिः करोमि ॥१॥

इति तामाभाषयता–

स्फूर्जद्वज्रकठोरचञ्चुनखरं प्रान्तप्रहारस्फुटद्भालश्रेणिगलत्कदुष्णरुधिरच्छन्नेक्षणाऽम्बरः ।

अन्धीभूय विहङ्गराजहृदयप्रत्तप्रहाराकुलस्तस्थावुज्झितविक्रमो दशमुखः खड्गं परिभ्रामयन् ॥१॥

इति नियुध्यमानेन सता जटायुपक्षिणा तादृशोऽपि रावणो विलक्षीकृतः । यथा च तेन प्रकुपितेन दृढपार्ष्णि-प्रहारेण वराकोऽसौ पञ्चत्वं प्रापितः । यथा च ततः स्थानात् कुररीव सकरुणं क्रन्दन्ती कालरात्रिरिव स्वकुलस्य कालपाशवशीकृतेन तेनापहृत्य लङ्कां प्रापिता । यथा च 'यावद् भर्तृवार्तां नोपलभे तावद् न भोक्ष्येऽहम्' इति विहितनियमा जिन-गुरुचरणकमलबहुमानपरायणा प्रत्यहं पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारवासितान्तःकरणा नानाप्रकार-पिशिताशनप्रचुरप्रार्थनप्रवणवचनैः पवनैरिव कनकगिरिचूडा निष्प्रकम्पा पुरीपरिसरो[२]पवनपादपस्याधः पिशाचपतिप्रणयिनीभिः परिवृता तस्थौ । यथा च वलितेन रामदेवेन लतागृहे सीतामपश्यता म्रियमाणं जटायुपक्षिणमवलोक्य 'केनाप्यपहृता सीता निश्चिक्ये आः ! पापीयान् कुलपांशनः श्वेव परोक्षापकर्ता मदीयकान्तामपहृत्य क्व यास्यति ?' इत्यहङ्कृत्याऽनन्तरं हृदयसंघट्टेन मुमूर्च्छ, लब्धचेतनश्च शोकवशविलुप्त-विशिष्टविवेको यत् किञ्चित् पशु-तरु-लतादिकं पश्यति तत् 'सीता सीता' इति व्याहरन् एकदा गिरिगुहागह्वरमशिश्रियत् । तत्र च कुलिशशिखरखरनखरचरणचपेटापाटितकरटिविकटकुम्भस्थलविगलन्निस्तुल-स्थूलामलमुक्ताफलप्रकरापहारविच्छुरितगिरितटं प्रज्वलज्ज्वलनज्वालाकलापकपिलविकटकेसरसटासङ्कट-स्कन्धपीठं सुखसुप्तोत्थितं सिंहमेकमद्राक्षीदप्राक्षीच्च-सखे कण्ठीरव ! कच्चित् तदीयतनूदरदेशेनोपमितत्वदीयोदर-देशां स्वनितम्बबिम्बवितत्वदीयविकटकटीभागां मन्दभाग्यदुर्लभां भुवोभूषणभूतां भामिनीमेकामुपलब्धवानसि ?' इत्यापृच्छ्य पुरो व्रजन् सुस्निग्धदलपटलावलुप्तप्रतपच्छससप्तिकिरणकलापं प्रादुर्भवदपरापरारुणारुणप्रवाल-परम्पराकिरणनिकररञ्जितदिक्चक्रवालं तदीयकुसुमस्तबककिञ्जल्कभ्रान्तिभ्रमद्भ्रमरनिकररणत्कार-बधिरितदिगन्तरं तरुणतरमेकमशोकतरुमपश्यदलपच्च-

'रिक्तस्त्वं नवपल्लवैरहमपि श्लाध्यैः प्रियाया गुणैस्त्वामायान्ति शिलीमुखाः स्मरधनुर्मुक्ताः सखे ! मामपि ।

कान्तापादतलाहतिस्तव मुदे तद्वन्ममाप्यावयोः, सर्वं तुल्यमशोक ! केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः ॥१॥

तद् यदि तदीयकर-चरणानुकृतनवदिनकरकिरणकरम्बितत्वदीयबालप्रवालां बालामस्मिन्नरण्ये सञ्चरद्-दुष्टश्वापदभीषणेभ्रमन्ती भवान् क्वचिदैक्षिष्ट ततो विस्पष्टमाचष्टां मह्यमदृष्टदुष्टकर्मकृतकष्टाय' इति तमशोकं पप्रच्छ । अथो अतुच्छस्वच्छपयःसम्भाररङ्गत्तरङ्गावलीविलसत्कलकूजितकलहंस-कुरर-कारण्डव-चक्रवाक-प्रभृतिपतत्त्रिचक्रवालविराजत्कमलसरोवरावतंसायमानाऽमन्दमकरन्दरसलुभ्यद्भ्रमरमालालेलिह्यमानमेकं नीलोत्पलमदर्शदवादीच्च-

---

२. वनदेवरमणोद्यानपादपस्याधः पिशाचपतिप्रणयिनीभिः त्रिजटाराक्षसीपरिवृता-रं० ।

अरे रामाहस्ताभरण ! भसलश्रेणिशरण !, स्मरक्रीडाव्रीडाशमन ! विरहिप्राणिदमन ! ।

सरोहंसोत्तंस ! प्रवरदल ! नीलोत्पल ! सखे ! सखेदोऽहं मोहं श्लथय कथय क्वेन्दुवदना ? ॥१॥

इत्यादि बहुविधं प्रलपन् यावदास्ते तावत् सम्बकुमारमरणप्रादुर्भवत्पराभवमहासमरसंरम्भपराजिता-परराजखरदूषणत्रिमुण्डराजगजघटासंघट्टनिर्भयप्रादुर्भवत्सुभटभण्डनप्रभविष्णुजिष्णुभटपरम्परा-[परा]-भवोपलब्धजयश्रीसमालिङ्गितविग्रहः पर्यन्तितविग्रहो लक्ष्मणकुमारस्तंप्रदेशं प्रापत् । अथतदवस्थं रामदेवं समालोक्य 'धिक् कष्टम्, किममुष्यासह्यं दुःखमजनि येनायं विह्वलो विलोक्यते ?' इति परिभावयतस्तस्य रामदेवः सोत्कण्ठं कृत्वा 'हा वत्स ! हता हतविधिना, मुषिता मन्दभाग्या वयम्, यतो भवद्भ्रातृजाया केनाप्यपहृता' इति मुक्तमहासूत्कारमरोदीत् । लक्ष्मणोऽपि तत् श्रुत्वा शोकवशाद् ध्रियमाणोऽपि रामदेवेन बलाद् मूर्च्छया भुवः पृष्ठे पपात । पुनरप्युपलब्धचेतनोऽनेकधा प्रलप्य स्वयमेव सत्त्वमेव सत्त्वमवलम्व्य 'स्वामिन् ! मा व्रज विषादम्, ईदृशमेवास्य संसारस्य स्वरूपमसारमिति ।

अपरं च—

गतं मृतमतिक्रान्तं न शोचन्ति विपश्चितः । गतं गतमतिक्रान्तमतिक्रान्तं मृतंमृतम् ॥१॥

तथा च—

संसारे वसतामिह कुशलं किं पृच्छ्यते शरीरभृताम् ? । पतितस्य दहनराशौ दग्धोऽसि न वेति कः[1] प्रश्नः ? ॥२॥'

इति चिरन्तनमुनिवचनै रामदेवं स्वस्थयाञ्चकार । ततश्च जन्मान्तरसम्बन्धविटसुग्रीवविनाशनोपकाराभ्यां मिलितसुग्रीवादिसमग्रवानरसैन्यः सीतान्वेषणाय हनूमन्तं लङ्कायां प्राहिणोत् । यथा च तेन सुभटशिरोमणिना आसालीव विनाशनेन प्रकटितात्मना सानन्दरावणकान्तापरिवृता कृशतनुर्निष्कलङ्का तारान्विता द्वितीयाशशिकलेव सीताऽवलुलोके । समाश्वासिता[2] च रामदेव-लक्ष्मण-कुमारकुशलवार्तानिवेदनेन । भणिता च 'मातर् ! आरोह मम पृष्ठे, किं करिष्यति मम रावणः ? नयामि निजस्वामिपार्श्वे त्वम्' इति । अभिहितं च तया-'नाहं वत्स ! एवमागमिष्यामि, त्वं पुनः शीघ्रं गत्वा आर्यपुत्रादीनां निवेदय कुशलोदन्तम्, अक्षताऽहं देहशीलाभ्यां तिष्ठामि' इति सीतया प्रेषितः[3] । तदनु च तेन समुत्पत्य गगने विधूय बाहुपञ्जरं 'कथमहं पवनाङ्गजो हनूमानिहायातो ज्ञास्ये ?' इति मनसि विचिन्त्य उपवनतरुभञ्जनेन तद्रक्षःकुमारादिगञ्जनेन तैस्तैः प्रकारैः सीतामनोरञ्जनेन नागपाशत्रोटनेन रावणपराभवसम्पादनेन विजजृम्भे यथा च प्रासादतोरणानि भंक्त्वा राक्षसभटानां मुखे धूलीं दत्त्वा पश्यतामपि लङ्कानगरीतो निर्गत्य रामदेवं प्रति प्रत्याववृते । प्रत्यावृत्त्य च तथा तेनहनूमता गगनचारिणा दीर्घसन्तापहारिणी विशिष्टसम्पत्तिकारिणा समुन्नतेन घनेनेव विलसत्कलापं परमुत्कं केकिकुटुम्बमिव रामदेवादिनृपवृन्दममृतवर्षिणेव सीतावृत्तान्तनिवेदनेनाऽऽनन्दितम् । यथा च तंश्रुत्वा त्रिवलीतरङ्गभीषणललाट-पट्टैनैकैकेनाहङ्कुर्वता सम्भूय रामदेवादिभटसमूहेनापारपारावारमतिक्रम्य हंसद्वीपे सेनां निवेश्य रावणेन सह योद्धुमारेभे । यथा च महासमरसंरम्भसम्मर्देन विनाश्य रावणम्, अभिषिच्य लंकाया राज्ये बिभीषणम्, स्थित्वा

---

१. किं-रं० । २. ता. मुद्रार्पणेन च राम० रं० । ३. प्रेषितः चूडारत्नः । तदनु-रं० ।

कियन्तमपि कालम्, मत्वा च नारदवचनाद् मात्रादिवर्गं बहुवर्षसमुद्भूतप्रभृतवियोग[दुःख]दुःखितम्, निर्वाहितनिजप्रतिज्ञः सार्धं च राक्षसराज-वानरेन्द्रचमूचक्रेण, समारुह्य च सह जानक्या रणन्मणिघटितघण्टार-वाडम्बरं पुष्पकविमानम्, 'प्रिये ! पश्य समुद्रोऽयम्' इत्यादि वस्तुजातं दर्शयन्, तेनैव यथा बिभीषणपुनर्नवीकृतां शत्रुभिरयोध्यामयोध्यामाजगाम । तत्र च बन्धुजनपरिवृतः सुग्रीवादि समस्तभटविभाजितदेशो निष्कण्टकं राज्यसुखमनुभवन् महाजनात् सीतापवादमाकर्ण्य वज्राभिहत इव-

अकार्ये तथ्यो वा भवतु वितथो वा किमपरं, तथाप्युच्चैर्धाम्नां हरति महिमानं जनरवः ।

तुलोत्तीर्णस्यापि प्रकटनिहताशेषतमसो, रवेस्तादृक् तेजो नहि भवति कन्यां गत इति ॥१॥

माहात्म्यभ्रंशभीतो जानन्नपि निर्दोषां सीतामरण्यान्यां त्याजितवान् । तस्यां च दुष्टश्वापदायामटव्यामेकाकिनी सुकुमारसर्वावयवा गर्भभारालसा भयभीतमानसा मूर्च्छामगमत् । तदुपरमे च 'हा तात ! हा मातः ! हा भ्रातः !' इति बहुप्रकारं प्रलप्य [१]मनाग् विवेकवशादेवं चिन्तितवती-जीव ! क्व ते देव-गुरवः ? क्व ते जनकादयः स्वजनाः ? क्व तद् राज्यसुखम् ? इति, ईदृश एव चायं लोकः ।

यतः—

जन्म-जरा-मरणभयैरभिद्रुते व्याधि-वेदनाग्रस्ते । जिनवरवचनादन्यत्र नास्ति शरणं क्वचिल्लोके ॥१॥

तथा—

पुनरपि सहनीयः कर्मपाकस्तवायं, न खलु भवति नाशः कर्मणां सञ्चितानाम् ।

इति सह गणयित्वाद्यद् यदायाति सम्यक्, सदसदिति विवेकोऽन्यत्र भूयः कुतस्ते ? ॥१॥

किञ्च रे जीव ! विपत्प्रचुरे संसारे वर्तमानः किं विपद्भ्यो बिभेषि ? तथा हि—

संसारवर्त्यपि समुद्विजते विपद्भ्यो यो नाम मूढमनसां प्रथमः स नूनम् ।

अम्भोनिधौ निपतितेन शरीरभाजा संसृज्यतां किमपरं सलिलं विहाय ? ॥१॥

पुनरपि मोहवशाद् 'आः पाप जीव ! किं न म्रियसे ? कियदद्यापि जन्मान्तरनिर्वर्तितं पापमनुभवनीयमस्ति येनैवं निर्दोषोऽपि दुःसहं स्वजनतः पराभवं सहसे ? । तथा हि—

दृष्टा बन्धुविपत्तयः परिजने सीदत्यपि प्राणितं यातं भग्नमनोरथैः प्रणयिभिर्याच्ञागिरः शिक्षिताः ।

यद्यद्यापि न तोषमेषि भगवन् । धातस्तदादिश्यतां शक्ताऽहं प्रियजीविता स्वजनतः सोढुं निकारानपि ॥१॥

इति दैवमुपालभमाना दृष्टा तदनुकूलकर्मोदयात् सर्पक्रीडकपुरुषेणेव नागसंयमनाय समागतेन स्वकीयपितृस्वसृजनेन वज्रजङ्घनरपतिना । नीता च तेन सगौरवं निजनगरीम् । स्थिता च तत्र मनाक् सुखिता नीतिरिवार्थ-कामौ, धर्मपरिणतिरिव स्वर्गाऽपवर्गौ, सद्गुरुसेवेव समयपाठ-परमार्थौ, कुलीनसङ्गतिरिव विनय-वर्णौ, पात्रदानपरिणतिरिवेहलोक-परलोकौ, समस्तलक्षणोपेतौ पुत्रौ सुषुवे । तौ च क्रमेण निरुपद्रव-निरपायगिरिनिकुञ्जालीनौ चम्पकपादपाविव प्रवर्धमानौ क्रमेणचाभ्यस्तकलाकलापौ रमणीमनोमोहनं

१. मानाद् विवे० रं० ।

यौवनमनुप्राप्तौ । परिणायितौ मातुलेन रतिरूपा: कन्यका: । साधिताश्च ताभ्यां स्वपराक्रमेण दु:साधा अपि देशा: । कालेनाशीर्वाददानपुर:सरं नारदेन योधितौ जनकाभ्यां सह पुनरपि तेनैव निवेदितवृत्तान्तौ प्रणतौ प्रणयप्रधानं पादयो: । प्रवेशितौ च प्रवरजयवारणस्कन्धसमारूढौ ध्रियमाणश्वेतातपत्रौ दोधूयमानशरच्चन्द्रचन्द्रिका-रुचिरचामरयुगौ तदीयलावण्यामृतरसं नयनाञ्जलीभि: पिबन्तीभि: पौरवनिताभिर्वर्ण्यमानौ 'हला हला: ! पश्यत पश्यत ताविमौ सीतापुत्रौ, यकाभ्यामुदरस्थिताभ्यां सीतादेवी वने मुक्ता' इति प्रजल्पन्तीभिर्नागरकवधूभिर्वर्ण्यमानौ सदाख्यातकृत्प्रकरण-चतुष्कालङ्कृतं शब्दव्याकरणमिव राजभवनम् । अथादृष्टपूर्वं गुणवत्प्रियपुत्रसमाग-मजनितमनाख्येयमानन्दमनुभवन् रामदेवो विज्ञप्तो बिभीषणादिभि:-देव ! धर्मक्रियेव करुणाविकला, सुगुरुकुलावस्थितिरिव भक्तिरहिता, राज्यस्थितिरिव नीतिविनाकृता, तनुरिव दृगपाकृता, रसवतीव लवणरसवत्तां त्याजिता, शास्त्रसम्पत्तिरिव प्रशमपरिणतिपरित्यक्ता, महिलेव अपत्यसन्ततित्यक्ता, विभवसम्पत्तिरिवाहृ-तिनिर्मुक्ता, गन्धर्व-विद्येव तालमानक्रियारहिता, शेषगुणसमन्विताऽपि नगरी इयं देवीं विना न शोभते तत् प्रसादं विधायाऽऽनीयतामिति । ततस्तदुपरोधेन प्रेषिता: प्रधानपुरुषा: तैरपि सविनयं प्रणम्य भणिता सीता । यथा-देवि ! त्वदानयनाय देवेन रामदेवेन वयं प्रेषिता:; तथाऽप्यभिहितम्-कोऽयं रामदेव: ? पर्याप्तं मम तन्नाम्ना, रामदेवतरुच्छायायामपि नाहं विश्राम्यामि, किमहमद्यापि न लभे सुखेन स्थातुम् ? इति । तैरप्याग्रहं विधाय समानीता । भणिता च रामदेवेन-देवि ! क्षमस्व ममैकमपराधम्, पालय सह पुत्राभ्यां राज्यम्, अनुभव पञ्चप्रकारं विषयसौख्यं विधाय शुद्धिमात्मनो जनसमक्षम्, सर्वं भवदीयमिदं हस्त्यश्वरथादीनि । तयाप्यभिहितम्-आ:न्मायाविन् ? कियदद्यापि सन्तापयसि, भवतु भवत्वमीभिरधरान्तरजल्पितै:, पर्याप्तं मम विषयसौख्येन यत् पुनरवादी: 'शुद्धि विधाय' इति तत्र प्रगुणाऽहम्, किं मम सकलङ्कया जीवितेन ? येन केनचिद् दिव्येन जन: प्रत्येति तदहमङ्गीकरोमि, परं किमन्यै: शरीरसापेक्षै: कातरजनाचरितैदिव्यै: ? मम तावदयमभिप्राय:-प्रविशामिज्वलज्ज्वालाकलापजटिले महति विभावसौ, यदि ततोऽहं शुद्धा सार्धषोडशकवर्णिकावर्णनीय-स्वर्णमयशलाकेव निर्गता तत: प्राणान् धारयामि । ततो जनेन प्रतिपन्ने खानिता हस्तशतत्रयप्रमाणा चतुरस्रा वापी । पूरिता निरन्तरं निविरीशसारश्रीषण्डादिप्रधानकाष्ठै: । तदनु च स्नाता स्वच्छश्रीषण्डविलेपनविलिप्त-तनुर्निवसितधवलवसना सरस्वतीव विद्वज्जनमान्या महासती सीता समागता चितासमीपे । श्राविता च तया स्मृत्वा भगवन्तं व्यसन-शतनीरनिधिनीरनिमग्नजन्तुसन्ताननिस्तारणसमर्थं सबहुमानं निजमानसे पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं कौतुकवशागतसबालवृद्धनगरीजनसमक्षम्-'भो भो लोकपाला: शृण्वन्तु भवन्त:,श्रूयतां प्रतिपन्नसर्वज्ञ-शासनसत्त्वसन्तानत्राणरसिके शासनदेवि ! यदि मया रामदेवप्रभुं निजपतिं स्वजनकजनकदत्तं मुक्त्वा मनसाऽप्यपरं पुरुषान्तरमभिलषितं ततोऽयं भगवान्कृशानुर्यदुचितं तत् करोतु इति वदन्ती स्वकी[य]-शुचिशीलभरवस[न]केन भयरहिता सरभसमुपसृत्य सीता समारूढा पश्यतां पौराणां द्वादशकल्पप्रभुपदवीमिव परमप्रभावकाष्ठां पुण्यचिताम् । दृष्टा च कृतपद्मासना पद्मेन पद्मासना पौरजनेन । तदनु च भणितं पुरवृद्धै:-अहो ! केनाप्युपायेन सुखतरेणापि शुद्धिरभविष्यत् किमनया एवमध्यवसितम् ? यदि वा सुकरमेवैतद् मिथ्यारोपितकलङ्कानां महासत्त्वानां सत्त्वानाम् । भणितं च—

लज्जां गुणौधजननींजननीमिवार्यामत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमाना: ।

तेजस्विन: सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति सत्यस्थितिव्यसनिनो न पुन: प्रतिज्ञाम् ॥१॥

अभिहितमपरैर्मध्यमवयोभि:-राजान: खल्वेते मस्तकमध्येन वर्तिनीं कुर्वन्ति, किं केनापि करी कर्णे ध्रियते ? करभो वा करण्डके क्रियते ? अन्यथा किमेवंविधं पात्रमेवं विडम्ब्यते ? । अभाणि च तरुणनरै:- नूनमयं राजा मूर्खो य एवविधं देवानामपि दुर्लभं भोगयोग्यं च कलत्रं विनाशयति । प्रोक्तं च पौरवृद्धाभि:- भगवन् वैश्वानर ! शोधय सीताम्, अस्मज्जीवितेनापि चिरं जीवतु, निजभर्तुर्भोगभाजनं भवत्विति । अवादि चमध्यममहेलाभि-आ मात: ! किमनया मूर्त्या एवंविधं पापं क्रियते ? । जल्पितमुच्छृङ्खलतरुणीभि:-हला हला: ? पश्यत सीतासदृशी नान्या नारी रूपवती, तत् किमेषा जनापवादभीता म्रियते ? वञ्चयत्यात्मानं खादन- पानेभ्य:, मृता मृतैरपि न दृष्टा: ।

सर्वथा स्वहितमादरणीयं, किं करिष्यति जनो बहुजल्प: ? ।

विद्यते हि न स कश्चिदुपाय:, सर्वलोकपरितुष्टिकरो य: ॥१॥

अत्रान्तरे सीतावचनेन दत्त: समन्तादग्नि: । तदनु च सीताशोकेनेव श्याममुखैर्मेघपटलैरिव वाप्या परित: पीयूषपायिपदवी धूमनिवहै: । पश्चाच्च विद्युच्चमत्कारैरिव कृतान्तजिह्वाकरालैर्व्यानशे अनिमिषवर्त्म ज्वलज्ज्वलनजटिलैर्ज्वालाकलापै: । अत्रान्तरे समुत्थितो हाहारव:-'हा ? मन्दभाग्या वयं क्व पुनरपि सर्वज्ञप्रतिमाया इव शान्तनयनायास्तव मुखं देवि ! द्रक्ष्याम: ?' इति प्रलपितुं लग्ना: पौरजना: । 'हा वत्से ! पुण्यविकला वयं किल वृद्धभावं त्वत्साहाय्येन गमिष्याम:' इति मनोरथा विफला अभूवन्निति बहुप्रकारं प्रलपितुं लग्ना अपराजितादय: । 'हा मातमात: ! किलाहं तव यावज्जीवं विनयं करिष्यामि, रावणमारणप्रयासो निष्फल: सञ्जात:' इति सदु:खं सराजचक्रश्चक्रन्द सुचिरं चक्रधरो लक्ष्मणकुमार: । किं बहुना ? तत्र प्रस्तावे स कोऽपि नास्ति यो न तद्दु:खेन दु:खितो मुक्त्वैकं वज्रकठोरहृदयं रामदेवमिति । एवं यावद् आक्रन्दन्ति तावत् क्षणेन दृष्टा वापी पुण्यवत्पुरुषभवनपरम्परेव कमलालया, क्वचिन्महाराजसभेव राजहंससमन्विता, क्वचिद् रम्यरामा- कटिस्थलीव सारसनादितगुणरमणीया, क्वचिद् गगनवीथीव विलसन्मकराकीर्णा, क्वचिद् महाराजसेनेव यन्त्ररथविराजिता, क्वचित् स्वर्गपुरीव हरिशोभिता । यावत् क्षणाद् दृष्टं पद्ममेकं ईश्वरभवनमिव विलसत्पत्रम् गगनाङ्गणमिव सन्मकरन्दराजितारकविलासरमणीयं, मुनिवृन्दमिव विभ्रमरहितं, सिंहस्कन्धपृष्ठमिव विलसत्केसरम् । दृष्टा च तदुपरि सुखसमासीना मन्दभाग्यानां दुर्लभा सकलजननयनानन्ददायिनी लक्ष्मीरिव सीता । ततश्च 'अहो ? शुद्धा शुद्धा' इति समुच्चशब्दमुच्चारयद्भि: सानन्दं दत्ता: समकालं जनैर्हस्तताला: [1]समुत्तीर्णा सीता तदारूढा । ततो रामदेवोऽपि सीतामागच्छन्तीं सरास्त्रियमिव विलसत्कमलाध्यासितां विस्फुरद्धारतारपयोधरां निर्वर्ण्यमाननिर्मलाधरां समानन्दितराजहंसां समालोक्य भविष्यतीयं तथैव मे प्रणयपात्र- मित्यनुरागवशात् शृङ्गारवान्, तथा मामनुचितकर्मकारिणं विशिष्टजना उपहसिष्यन्तीति सविलक्षहास्यसहाय:, कथमियं मया निर्दयेन शिरीषकुसुमसुकुमारशरीरा कष्टमेवंविधं कारितेति सकरुण:, तथा कदाचिन्मामपराधका-

१. ०त्तीर्णा तीरं तदा रं० ।

रिणमभिनिवेशादवगणय्य कश्चिजनकादि: यदि स्वीकरिष्यति ततस्तमुपमर्द्यापि ग्रहीष्यामीति रौद्ररसाविष्ट:, तथा अत एव कारणाद् यद्यसौ जनकादि: मया सह संग्रामयिष्यति तत: खड्गबलेनापि तं पराजित्यामुमङ्गीकरिष्यामीति वीररसप्रवर:, तथा निष्करुण ! भवतु त्वया सह सङ्गमेन दृष्टं मया तव स्नेहमध्यं को म्रियमाणानां मरिष्यतीति स्त्रीजनसुलभमाग्रहमवलम्ब्य मम प्रार्थयमानस्यापि वचनमवमंस्यत इति सभय:, तथा धिक् त्वां जीव ! विषयपरवशेयमात्मनो विशुद्धिनिमित्तमेवमध्यवस्यति त्वं पुनरद्याप्येतन्निमित्तं रणादिकं करोषि किमेतस्य श्यामलजम्बालपूर्णशरीराया मध्ये त्वया दृष्ट[म् ? इति] बीभत्सरसपरवश:, तथा पश्य शीलमाहात्म्यमस्या येन तत्प्रभावाज्ज्वलज्ज्वालाकलापजटि[ल]ज्वलनादप्यक्षतशरीरा निर्गतेत्यद्भुतरसानुगत:, तथा धन्या: पुण्यवन्तस्ते केचन ये एवंविधं विषमस्वभावं प्रेमापहाय प्रव्रज्यां प्रतिपद्य शान्तमूर्त्तय: तप: समाचरन्तीत्यभिनवनवरससङ्कीर्णतामनुभवन् यावन्न किञ्चिद् जल्पति तावत् सर्वजनसमक्षं विधाय शिरसि कराञ्जलिं भणितं सीतया प्रभो ! त्वत्प्रसादान्मयाऽनुभूतं राज्यसुखम्, आरूढा पुष्पकविमानम्, पूरितानि कौतुकानि, यत् पुनरीदृशानि व्यसनानि तत्र न तेऽपराधो नाप्यन्यस्य कस्यचित्, ममैव जन्मान्तरजनितस्य कर्मणो विलसितम्, साम्प्रतं भीताऽमुतो व्यसनशतभीमाद्भववासात्, मुञ्च माम्, प्रव्रजामि, मदीयं भवतो निखिलनागरिकनरनारीनिकरस्य च मिथ्या दुष्कृतमिति [१]प्रशस्तपरिणतिरूपं तद्वच: श्रुत्वा प्रत्यागतचित: पूरितगलसरणिर्विगलिताश्रुलोचन: संस्मृत्य तया सह विलसितं संस्तम्भितमूर्तिर्मूर्च्छित: । यावत् तं चेतना लम्भयन्ति तावत् सीताऽनुकूलकर्मपरिपाट्या तत्र प्रस्तावे पूर्वमेव समवसृत: सार्वभूतिसूरि: । तेन च प्रव्राज्य समर्पिता सुप्रभप्रवर्तिन्या: । तत्र चासौ षष्ठा-ऽष्टमादितपश्चरणशोषितशरीरा परिपाल्याऽऽत्मानमिव निष्कलङ्कं प्रव्रज्यापर्यायं पर्यन्ते सम्यक्प्रतिपन्नप्रायश्चित्ता पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारस्मरणपरायणा प्रतिपद्यानशनं प्रवर्धमानप्रशमपरिणामा मृत्वा प्राप्ता द्वादशकल्पपीयूषपायिप्रभुपदवीमिति । यथा च शेषं बिभीषणपृष्टं तस्या: कलङ्ककारणं राम-रावणयोर्वैरनिमित्तं सुग्रीव-रामदेवयोस्तु प्रतिबन्धकारणं तत् सर्वं रामदेवचरिताद् इहैव वा किञ्चिद् भणिष्यमाणनमस्कारफलप्रतिपादनपरगोकथानकादवसेयम् ।

इदानीं रोहिण्याख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

पाडलिपुत्तम्मि पुरे कामिणिमणकमलमहुयरजुवाणो । नन्दो नरिंदो तिव्वपयावो दिणमणि व्व ।।१।।

तत्थ नरेसरपज्जंतपउरसम्माणमंदिरं आसि । चंदो इव समयजुओ धणावहो नाम वरसेट्ठी ।।२।।

विप्फुरियकंतिजुत्ता वरचित्ता तरलतारया कंता । तस्स मयलंछणस्स व नामेणं रोहिणी भज्जा ।।३।।

इदानीं रोहिण्याख्यानकमारभ्यते ।

पाटलिपुत्रे पुरे कामिनिमन:कमलमधुकरयुवा । नन्दो नाम नरेन्द्रस्तीव्रप्रतापो दिनमणिरिव ।। १ ।।

तत्र नरेश्वरपर्यन्तप्रचूरसन्मानमन्दिरमासीत् । चन्द्र इव समृगयुतो धनावहो नाम वरश्रेष्ठी ।। २ ।।

विस्फुरत्कान्तियुक्ता वरचित्ता तरलतारका कान्ता । तस्य मृगलाञ्छनस्येव नाम्ना रोहिणी भार्या ।। ३ ।।

---

१. प्रशमपरि-रं० ।

अवरं च तस्स आबालकालपरिपालियं हिययदइयं । मज्जार-सालहीणं जुवलं भवणम्मि संवसइ ॥४॥
अह अन्नया निसाए संजाया सेट्ठिणो मणे चिंता । उवभुंजिउं न जुज्जइ जणस्स जणणि व्व जणयसिरी ॥५॥
ते च्चिय जियंतु भुवणेक्कभूसणा माणवा गुणगरिट्ठा । जे नियविढत्तदविणेण दिंति दाणं अणाहाण ॥६॥
खज्जन्ती परिवद्धइ कंडू न उणो कयाइ धणरिद्धी । ता दविणज्जणकज्जे उज्जमियव्वं सुपुरिसेहिं ॥७॥
इय चिंतिऊण पउणीकाऊण कयाणगाणि बहुयाणि । दविणज्जणिक्कचित्तो पयंपए पणइणिं एवं ॥८॥
ससिवयणि ! मज्झ गमणं होही देसंतरम्मि दविणकए । तुमए अपमत्ताए भवणं परिरक्खियव्वमिणं ॥९॥
अवरं च सुयणु ! मज्जार-सालहीजुयलमिममईवपियं । संभालेज्जसु तिक्कालमेव संभासणाईहिं ॥१०॥
छणहरिणलंछणामलसीलं रमणीयणस्स निच्चं पि । मंडणमकित्तिमं ता पालेयव्वं पयत्तेण ॥११॥
तो सालहीए भवणं भलाविउं पणइणिं विसेसेण । मज्जारं पि हु नियकरयलेण अंगे परामुसिउं ॥१२॥
सम्माणिऊण सव्वाणि ताणि सेट्ठी पसत्थनक्खत्ते । भरिए कयाणगाणं वहणम्मि तओ समारूढो ॥१३॥
तरिउं तरंगिणीणं नाहं रंगंतलहरिसंदोहं । पत्तो कमेण सिंहलदीवे एत्तो य णंदनिवो ॥१४॥
आरूढो जयवारणखंधे दोधुव्वमाणसियचमरो । धवलायवत्तवारियतरणिकरुक्केरसंतावो ॥१५॥
पिहुवच्छत्थलघोलंतथूलमुत्ताकलावकयसोहो । सव्वंगरइयसिंगारसुन्दरो दरियरिउदलगो ॥१६॥
कुणमाणो परिहासं सद्धिं रइकेलिणा विडनरेण । बहुकामसत्थसंकहपरिकहणक्खणियहियएण ॥१७॥

अपरं च तस्याबालकालपरिपालितं हृदयदयितम् । मार्जार-सारिकयो र्युगलं भवने संवसति ॥ ४ ॥
अथान्यदा निशि सञ्जाता श्रेष्ठिनो मनसि चिन्ता । उपभोक्तुं न युज्यते जनस्य जननीव जनकश्रीः ॥ ५ ॥
ते चैव जीवन्तु भुवनैकभूषणा मानवा गुणगरिष्ठाः । ये निजार्जितद्रविणेन ददाति दानमनाथेभ्यः ॥ ६ ॥
खाद्यमाना परिवर्धते कण्डू न पुनः कदाचिद्धनर्द्धिः । ततो द्रविणार्जनकार्ये उद्यमितव्यं सुपुरुषैः ॥ ७ ॥
इति चिन्तयित्वा प्रगुणीकृत्वा क्रयाणकानि बहूनि । द्रविणार्जनैकचित्तः प्रजल्पति प्रणयिनिमेवम् ॥ ८ ॥
शशिवदने ! मम गमनं भविष्यति देशान्तरे द्रविणकृते । त्वयाप्रमत्तया भवनं परिरक्षितव्यमिदम् ॥ ९ ॥
अपरं च सुतनु ! मार्जार-सारिकायुगलमिदमतिवप्रियम् । सम्भालय त्रिकालमेव सम्भाषणादिभिः ॥ १० ॥
क्षणहरिणलाञ्छनामलशीलं रमणीजनस्य नित्यमपि । मण्डनमकृत्रिमं ता पालयितव्यं प्रयतेन ॥ ११ ॥
ततः सारिकाया भवनं भलायित्वा प्रणयिनीं विशेषेण । मार्जारमपि खलु निजकरतलेनाङ्गे परिस्पृश्य ॥ १२ ॥
सन्मान्य सर्वांस्तान् श्रेष्ठी प्रशस्तनक्षत्रे । भृते क्रयाणकानां वाहने ततः समारुढः ॥ १३ ॥
तीर्त्वा तरङ्गिणीनां नाथं रङ्गतलहरिसन्दोहम् । प्राप्तः क्रमेण सिंहलद्वीपे इतश्च नन्दनृपः ॥ १४ ॥
आरुढो जयवारणस्कन्धे दोधूयमानश्वेतचामरः । धवलातपत्रवारिततरणिकरोत्केरसन्तापः ॥ १५ ॥
पृथुवक्षःस्थलधूर्णत्स्थूलमुक्ताकलापकृतशोभः । सर्वाङ्गरचितशृङ्गारसुन्दरो दारितरिपुदलकः ॥ १६ ॥
क्रियमाणः परिहासं सार्द्धं रतिकेलिना विटनरेण । बहुकामशास्त्रसङ्कथापरिकथनाक्षणितहृदयेन ॥ १७ ॥

मयगंधलुद्धरुणुझुणिरभमरदोघट्टथट्टसंजुत्तो । खणखणिरकणयनिम्मियखलीणहयनियरपरियरिओ ॥१८॥
रणझणिरकणयकिंकिणिरहरयणारूढरायनियरेण । अणुगम्मंतो संतो नीहरिओ रायवाडीए ॥१९॥
पत्तो य धणावहसेट्ठिधवलपासायभित्तिभायम्मि । तब्भवणमत्तवारणपरिट्ठिया नरवरिंदेण ॥२०॥
पारूढपढमजोव्वणमणोहरा तत्तकणयगोरंगी[1] । पच्चक्खकामघरणि व्व विरहिया कामएवेण ॥२१॥
दिट्ठा मयंकवयणी रोहिणिरमणी तओ अणंगेण । कयकोवेण व बाणावलीहिं सो तक्खणे विद्धो ॥२२॥
दट्ठूण तयं तव्वयणकमलमवलोयणेक्ककयचित्तो । तत्थेव मत्तकुजरकीलं काउं समारद्धो ॥२३॥
वारं वारं आवलियखंधरो ठाइ सम्मुहो तीए । पक्खिवइ य तव्वयणे नियनयणे नंदनरनाहो ॥२४॥
सा वि हु महाणुभावा महासई पेच्छिउं पुहइपालं । नयणेहिं समयणेहिं पेच्छंतमतुच्छवंछाए ॥२५॥
गिहमत्तवारणाओ ओयरिऊणं समंथरगईए । अन्नत्थ गया तत्तो नरेसरो तं अपेच्छन्तो ॥२६॥
तव्विरहजलणजालावलीहिं पज्जलियमाणसो तत्तो । काउं सरीरकारणछउमं रायउलमणुपत्तो ॥२७॥
तीए विरहे सरीरे संजाओ मुम्मुरग्गिसमदाहो । न लहइ खणं पि सुक्खं तल्लोविल्लिं करेमाणो ॥२८॥
मयणमहागहगहिओ परव्वसो सव्वहा वि संजाओ । पहसइ गायइ रोयइ एमेव य सो परिब्भमइ ॥२९॥
तो मंति-मंडलेसर-सामंतप्पभिइपउरजणनियरो । अवलोइय नरनाहं तदवत्थं आउलीहूओ ॥३०॥

मदगन्धलुब्धरणझणद्भ्रमरहस्तिसमूहसंयुक्तः । खणखणत्कनकनिर्मितखलिन[2]हयनिकरपरिवारितः ॥ १८ ॥
रणझणत्कनककिङ्किणिरथरत्नारुढराजनिकरेण । अनुगच्छन्सन् निःसृतो राजवाट्याम् ॥ १९ ॥
प्राप्तश्च धनावहश्रेष्ठिधवलप्रासादभित्तिभागे । तद्भवनमत्तवारणपरिस्थिता नरवरेन्द्रेण ॥ २० ॥
प्रारब्धप्रथमयौवनमनोहरा तप्तकनकगौराङ्गी । प्रत्यक्षकामगृहिणीव विरहिता कामदेवेन ॥ २१ ॥
दृष्टा मृगाङ्कवदनी रोहिणिरमणी ततोऽनङ्गेन । कृतकोपेनेव बाणावलिभिः स तत्क्षणे विद्धः ॥ २२ ॥
दृष्टा तकं तद्वदनकमलमवलोकनैककृतचित्तः । तत्रैव मत्तकुञ्जरक्रीडां कर्तुं समारब्धः ॥ २३ ॥
वारं वारमावलितस्कन्धरस्तिष्ठति सम्मुखस्तस्याः । प्रक्षिपति च तद्वदने निजनयने नन्दनरनाथः ॥ २४ ॥
साऽपि खलु महानुभावा महासती प्रेक्ष्य पृथिवीपालम् । नयनाभ्यां समदनाभ्यां प्रेक्षमाणमतुच्छवाञ्छया ॥ २५ ॥
गृहमतवारणादवतीर्य समन्थरगत्या । अन्यत्र गता ततो नरेश्वरस्तामपश्यन् ॥ २६ ॥
तद्विरहज्वलनज्वालावलिभिः प्रज्वलितमानसस्ततः । कृत्वा शरीरकारणच्छद्मं राजकुलमनुप्राप्तः ॥ २७ ॥
तस्या विरहे शरीरे सञ्जातो मुर्मुराग्निसमदाहः । न लभते क्षणमपि सुखं व्याकुलतां कुर्वन् ॥ २८ ॥
मदनमहाग्रहगृहीतः परवशः सर्वथापि सञ्जातः । प्रहसति गायति रोदिति एवमेव च स परिभ्रमति ॥ २९ ॥
ततो मन्त्रि-मण्डलेश्वर-सामन्त प्रभृतिप्रचूरजननिकरः । अवलोक्य नरनाथं तदवस्थमाकूलीभूतः ॥ ३० ॥

---

१. पारंभपढम० रं० । २. 'लगाम' इति भाषायाम् ।

तो तेण विज्जवाइय-जोइसिया आणिया नरिंदपुरो । जंपंति य विज्जा उब्भसन्निवाओ इमो जाओ ॥३१॥
ओयरयमज्झयारे कुणह नरिंदं निवायठाणम्मि । पिहिऊण दुवाराइं विहेह पच्छायणपयत्तं ॥३२॥
पियउ तहाऽऽवट्टजलं कुणउ तओ लंधणाणि नरनाहो । जह अइरेण वि जायइ निरुयसरीरो पडुयकरणो ॥३३॥
जंपंति वाइया पुण गहिओ राया महागहेण जओ । रोयइ गायइ पहसइ नियइ करालाए दिट्ठीए ॥३४॥
रइउं महीए मंडलयमुब्भडं भूयनासणं जंतं आलिहिऊणं कणवीरकुसुमनियरेण पूएउं ॥३५॥
पूयप्फल-पत्त-कणिक्क-दीवियापमूहपूयउवगरणं । पत्तेयं चउसट्ठिं काउं तह जोइणीपीढं ॥३६॥
अवयारिऊण डज्झन्तगुग्गुलुच्छलियधूमगंधम्मि । मंडलए उववेसिय नरनाहं परममंतेहिं ॥३७॥
सरसवुडिल्लयअक्खयपरिपूरियमुट्ठिविहियघाएहिं । अच्छोडिओ समाणो पउणीहोही न संदेहो ॥३८॥
जोइसिया वि हु एवं वयंति संतीए समइ दोसोऽयं । गहपूयणं च सेयं बारसिदाणं च सुपसत्थं ॥३९॥
एत्थंतरम्मि पत्तो रइकेली रायपायनमणत्थं । दट्ठूं तहावत्थं नरेसरं पणमिउं भणइ ॥४०॥
किं देव ! तुज्झ दुक्खं मह कहसु करोमि तस्स पडियारं । एवं वुत्तो वि न जाव किंपि जंपइ तओ तेण ॥४१॥
नायं निउणत्तणओ रोहिणिरमणीए एस नरनाहो । अवहरियमणो जह मुयइ उण्ह-अइदीहरुस्सासे ॥४२॥
तो भणियं नूणं पहु ! तुज्झ मणं कामिणीए अवहरियं । ता मज्झ कहसु तं झत्ति जेण एत्थेव आणेमि ॥४३॥
तं निसुणिउं नरिंदेण जंपियं किह तए इमं नायं ? । भणियं च तेण तुह देव ! दिट्ठिसवियारदंसणओ ॥४४॥

तदा तेन विद्यावादि-ज्योतिषिका आनीता नरेन्द्रपुरः । जल्पन्ति च वैद्या उद्भटसन्निपातोऽयं जातः ॥ ३१ ॥
अपवरकमध्ये कुरुत नरेन्द्रं निर्वातस्थाने । पिधाय द्वाराणि विधत्त प्रच्छादनप्रयत्नम् ॥ ३२ ॥
पिबतु तथावर्तजलं करोतु ततो लङ्घनानि नरनाथः । यथाचिरेणापि जायते निरुजशरीरः पटुककरणः ॥ ३३ ॥
जल्पन्ति वातिकाः पुनगृहीतो राजा महाग्रहेण यतः । रोदिति गायति प्रहसति पश्यति करालया दृष्ट्या ॥ ३४ ॥
रचयित्वा मह्यां मण्डलमुद्भटं भूतनाशनं यन्त्रम् । आलिख्य कणवीरकुसुमनिकरेण पूजयित्वा ॥ ३५ ॥
पुगफल-पत्र-कर्णिका-दीपिकाप्रमुख पूजोपकरणम् । प्रत्येकं चतुष्षष्ठि कृत्वा तथा योगिनीपीठम् ॥ ३६ ॥
अवतार्य दह्यमानगुग्गलोच्छलितधूमगन्धे । मण्डले उपवेश्य नरनाथं परममन्त्रैः ॥ ३७ ॥
सर्षपमाषाक्षतपरिपूरितमुष्टिविहितघातैः । आस्फालितस्सन् प्रगुणीभविष्यति न सन्देहः ॥ ३८ ॥
ज्योतिषिका अपि खल्वेवं वदन्ति शान्त्या शाम्य दोषोऽयम् । ग्रहपूजनं च श्रेयं द्वादशीदानं च सुप्रशस्तम् ॥ ३९ ॥
अत्रान्तरे प्राप्तो रतिकेलि राजपादनमनार्थम् । दृष्ट्वा तथावस्थं नरेश्वरं प्रणम्य भणति ॥ ४० ॥
किं देव ! तव दुःखं मम कथय करोमि तस्य प्रतिकारम् । एवमुक्तोऽपि न यावत्किमपि जल्पति ततस्तेन ॥ ४१ ॥
ज्ञातं निपुणत्वेन रोहिणिरमण्यैष नरनाथः । अपहृतमना यथा मुञ्चत्युष्णातिदीर्घोच्छ्वासान् ॥ ४२ ॥
ततो भणितं नूनं प्रभो ! तव मनः कामिन्यापहृतम् । ततो मम कथय तच्छीघ्रं येनात्रैवानयामि ॥ ४३ ॥
तन्निश्रुत्य नरेन्द्रेन जल्पितं कथं त्वयेमं ज्ञातम् ? । भणितं च तेन तव देव ! दृष्टिसविकारदर्शनतः ॥ ४४ ॥

वंकभणियाणि कत्तो कत्तो अद्धच्छिपेच्छियाइं च । ऊससियं पि मुणिज्जइ छइल्लजणसंकुले गामे ॥४५॥

सोऊण तयं तो भणइ नरवई हिययनिव्विसेसस्स । तुज्झ कहिज्जइ सव्वं पि गुज्झमेयं जओ भणियं ॥४६॥

जणणीए जणयस्स व भइणीए भाउणो वि भज्जाए । अवि होज्ज अकहणीयं न उ सुहिणो नेहसारस्स ॥४७॥

जह रोहिणीए हरियं मज्झ मणं तयणु भणइ रइकेली । रत्ता व विरत्ता व त्ति तीए किं लक्खियं हिययं ? ॥४८॥

जओ भणियं-

चलइ तहेव वियंभइ महुरं आलवइ भंजए अंगं । केसकलावं विहुणइ पुलइज्जइ डसइ अहरं च ॥४९॥

तोडेइ अंगुलीओ तहेव पयडेइ नाभिकमलं च । सवियार-सहरिसुप्फुल्ललोयणा विहसरी नियइ ॥५०॥

पीडइ नियथणहारं परिसिढिलियबंधणं फुसइ नीविं । चुंवेइ डिंभवयणं वम्महसरसल्लिया महिला ॥५१॥

जेण समं संबंधो गिण्हइ नामं पुणो पुणो तस्स । पूएइ तस्स मित्तं जायइ एवंविहा रत्ता ॥५२॥

जत्थ न उज्जग्गिरओ जत्थ न ईसाविसूरणं माणो । सब्भावचाडुयं जत्थ नत्थि नेहो तहिं नत्थि ॥५३॥

अवियंभिय-नीससियं अलियपसुत्तं च सीसदुक्खं च । निद्दालस व्व वयणं विरत्तभावाण जुवईणं ॥५४॥

तो नरवइणा भणियं न विचारो लक्खिओ मए तीए । तेणुत्तं लज्जाए वि अवियारा हुंति महिलाओ ॥५५॥

अवरं च तुज्झ देसे उप्पज्जइ जमिह सुंदरं रयणं । तं होइ तुज्झ अंतेउरम्मि ता खिवसु तं रमणिं ॥५६॥

तो भणइ महीनाहो एयं पि करेमि किंतु लज्जेमि । पुरओ पउरजणाणं ता किं पि निहालसु उवायं ॥५७॥

वक्रभणितानि कुतः कुतोऽर्धाक्षिप्रेक्षितानि च । उच्छ्वसितमपि मुण्यते छैलजनसङ्कुले ग्रामे ॥ ४५ ॥

श्रुत्वा तकं ततो भणति नरपति र्हृदयनिर्विशेषस्य । तव कथ्यते सर्वमपि गुप्तमेतद्यतो भणितम् ॥ ४६ ॥

जनन्या जनकस्य वा भगिन्या भर्तुरपि भार्यायाः । अपि भवेदकथनीयं न तु सख्युः स्नेहसारस्य ॥ ४७ ॥

यथा रोहिण्या हृतं मम मनस्तदनु भणति रतिकेली । रक्ता वा विरक्ता वेति तस्याः किं लक्षितं हृदयम् ॥ ४८ ॥

यतो भणितम् -

चलति तथैव विजृम्भति मधुरमालापति भनक्त्यङ्गम् । केशकलापं विधुनाति पुलकयति दशत्यधरं च ॥ ४९ ॥

त्रोटयत्यङ्गुल्यस्तथैव प्रकटयति नाभिकमलं च । सविकार-सहर्षोत्फुल्ललोचना विहसन्ती पश्यति ॥ ५० ॥

पीडयति निजस्तनहारं परिशिथीलबन्धनां स्पृशति नीविम् । चुम्बति डिम्भवदनं कामशरशल्यिता महिला ॥ ५१ ॥

येन समं सम्बन्धो गृह्णाति नाम पुनःपुनस्तस्य । पूजयति तस्य मित्रं जायतैवंविधा रक्ता ॥ ५२ ॥

यत्र नोज्जागरो यत्र नैर्ष्याखेदनं मानः । स्वभावचाटूकं यत्र नास्ति स्नेहस्तत्रनास्ति ॥ ५३ ॥

अविजृम्भित-निश्वसितमलिकप्रसुप्तं च शीर्षदुःखं च । निद्रालसेव वदनं विरक्तभावानां युवतीनाम् ॥ ५४ ॥

ततो नरपतिना भणितं न विकारो लक्षितो मया तस्याः । तेनोक्तं लज्जयाप्यविकारा भवन्ति महिलाः ॥ ५५ ॥

अपरं च तव देशे उत्पद्यते यदिह सुन्दरं रत्नम् । तद्भवति तवान्तःपुरे ततः क्षिप तां रमणिम् ॥ ५६ ॥

ततो भणति महीनाथ एतदपि करोमि किन्तु लज्जेम । पुरतः पौरजनानां ततः किमपि निभालयोपायम् ॥ ५७ ॥

भणइ तओ रइकेली तीए पई देव ! दूरदेसस्स । पाहुणओ संजाओ गम्मउ ता तत्थ वि निसाए ॥५८॥

लद्धो वरो उवाओ मित्त ! तए इय पसंसिऊण तयं । तेण सह संकहाहिं दिणसेसं गमइ दुक्खेण ॥५९॥

तत्तो घोरंधारे जाए रइकेलिणा समं राया । अंधारपडयपावरणजायअद्देस्सरूवो य ॥६०॥

करकलियरिउवियारणरुहिरछडारुणकरालकरवालो । वंचित्तु अंगरक्खाइपरियणं झत्ति नीहरिओ ॥६१॥

पत्तो य तीए मंदिरदुवारदेसम्मि तयणु सासंको । सणियं सणियं चोरु व्व पविसए तीए भवणम्मि ॥६२॥

तो पविसंतं दट्ठूण नरवइं तक्करो त्ति कलिऊण । मज्जारो कंदेउं पारद्धो गरुयसद्देणं ॥६३॥

सोउं मज्जारसरं संभंता सालही नियइ जाव । तो तीए इमो नाओ नंदनरिंदो न चोरु त्ति ॥६४॥

एयस्स इहाऽऽगमणं न सुंदरं जमिह एस सासंको । न हु तक्करत्तमेयस्स घडइ ता होहिही जारो ॥६५॥

न हु जुज्जइ इयरस्स वि आगमणं एगयस्स परभवणं । रयणीय किं पुणो एरिसस्स ? ता सुंदरं न इमं ॥६६॥

किं हक्कामि इयाणिं पि ? अहव किं कुणइ ? ताव पेच्छामि । जइ मह जणणीसीलं खंडिस्सइ तो निवारिस्सं ॥६७॥

इय चिंतिउण मोणेण संठिया सालही अह नरिंदं । दट्ठूण रोहिणी तयणु एरिसं चिंतिउं लग्गा ॥६८॥

नूणं नंदनरिंदो समेइ मह सीलखंडणनिमित्तं । ता इण्हि कह सीलं पालेयव्वं ? न याणामि ॥६९॥

इय एवं चिंतंतीए तीए गंतूण नंदनरनाहो । सासंकं उवविट्ठो रोहिणिपल्लंकपज्जंते ॥७०॥

भणति ततो रतिकेली तस्याः पति र्देव ! दूरदेशस्य । प्राघूर्णकः सञ्जातो गम्यतां तावत्तत्रापि निशि ॥ ५८ ॥

लब्धो वर उपायो मित्र ! त्वयेति प्रशंस्य तकम् । तेन सह सङ्कथाभि र्दिनशेषं गमयति दुःखेन ॥ ५९ ॥

ततो घोरान्धकारे जाते रतिकेलिना समं राजा । अन्धकारपटप्रावरणजातादृश्यरुपश्च ॥ ६० ॥

करकलितरिपुविदारणरुधिरच्छटारुणकरालकरवालः । वञ्चयित्वाङ्गरक्षादिपरिजनं शीघ्रं निःसृतः ॥ ६१ ॥

प्राप्तश्च तस्याः मन्दिरद्वारदेशे तदनु साशङ्कः । शनैः शनैश्चौरइव प्रविशति तस्या भवने ॥ ६२ ॥

ततः प्रविशन्तं दृष्ट्वा नरपतिं तस्कर इति कलयित्वा । मार्जारः क्रन्दितुं प्रारब्धो गुरुकशब्देन ॥ ६३ ॥

श्रुत्वा मार्जारस्वरं सम्भ्रान्ता सारिका पश्यति यावत् । ततस्तयायं ज्ञातो नन्दनरेन्द्रो न चौर इति ॥ ६४ ॥

एतस्येहाऽऽगमनं न सुन्दरं यदिहैष साशङ्कः । न खलु तस्करत्वमेतस्य घटति ततो भविष्यति जारः ॥ ६५ ॥

न खलु युज्यत इतरस्याप्यागमनमैककस्य परभवने । रजन्यां किं पुनरीदृशस्य ? तावत्सुन्दरं नेदम् ॥ ६६ ॥

किमाकार्यामीदानीमपि ? अथवा किं करोति ? तावत्पश्यामि । यदि मम जननीशीलं खण्डिष्यति तदा निवारयष्यामि ॥६७॥

इति चिन्तयित्वा मौनेन संस्थिता सारिकाथ नरेन्द्रम् । दृष्ट्वा रोहिणी तदन्विदृशं चिन्तयितुं लग्ना ॥ ६८ ॥

नूनं नन्दनरेन्द्रः समैति मम शीलखण्डननिमित्तम् । तदिदानीं कथं शीलं पालितव्यं ? न जानामि ॥ ६९ ॥

इत्येवं चिन्तन्त्या तया गत्वा नन्दनरनाथः । साशङ्कमुपविष्टो रोहिणिपल्यङ्कपर्यन्ते ॥ ७० ॥

तो रोहिणी समुट्ठिय झड त्ति महिमंडलम्मि उवविट्ठा । भणिया नंदनरिंदेण महुरसद्देण सा एवं ।।७१।।

हरिणच्छि ! हरियहियओ तुमए हं तुह सयासमल्लीणो । अहवा वि मयणतवियस्स मज्झ सरणं तुमं चेव ।।७२।।

तं पुण समुट्ठिऊणं उवविट्ठा निट्ठुरं महीवट्ठे । ता न हु जुज्जइ एवं पत्ते इयरे वि पाहुणए ।।७३।।

किं पुण सयमेव समागयम्मि राएऽणुरत्तचित्तम्मि । जुज्जइ गउरवकरणं आसण-संभासणाईहिं ।।७४।।

ता काऊण पसायं सुंदरि ! आरुहसु एत्थ पल्लंके । निव्ववसु ममं मयणग्गितावियं संगमजलेण ।।७५।।

सोऊण तयं वज्जरइ रोहिणी राय ! तुम्ह सरिसाण । एयारिसं न जुज्जइ उत्तमवंसप्पसूयाण ।।७६।।

अवरस्स वि अनयपरस्स सामि ! सिक्खं सया तुमं देसि । तुज्झ पुणो को दाही सिक्खमनीइं कुणंतस्स ? ।।७७।।

जइ नरवई वि मेल्लइ मज्जायं साहुनीइनिउणो वि । ता एयारिसकज्जुज्जयाणमियराण को दोसो ? ।।७८।।

उक्तं च-

युक्तमुन्मुक्तकण्ठेन वने हा हेति रोदितुम् । विद्वानपि जनो यत्र मार्गमुत्सृत्य गच्छति ।।७९।।

अवरं च असेसस्स वि जणस्स जणओ व्व होइ नरनाहो । ता चिंतिउं न जुज्जइ किं पुण एयारिसं वोत्तुं ? ।।८०।।

बहुपूय-असुइ-वस-मंस-रुहिरपरिपूरियाण महिलाण । कज्जे किं कुणसि नरिंद ! असरिसं नियकुलकलंकं ? ।।८१।।

होही सुहमइतुच्छं अयसो पुण तिहुयणम्मि वित्थरिही । जह अज्ज वि निसुणिज्जइ सीयाहरणे दसासस्स ।।८२।।

अवरं च तरंगिणिजलतरंगचंचलतरम्मि तारुन्ने । पडुपवणपहयपोइणिजललवचवलम्मि पियपेम्मे ।।८३।।

ततो रोहिणी समुत्थाय झटिति महीमण्डलेउपविष्टा । भणिता नन्दनरेन्द्रेण मधुरशब्देन सैवम् ।। ७१ ।।

हरिणाक्षि ! हृतहृदयस्त्वयाहं तव सकाशमालीनः । अथवापि मदनतप्तस्य मम शरणं त्वं चैव ।। ७२ ।।

त्वं पुनः समुत्थायोपविष्टा निष्ठुरे महीपृष्ठे । ततो न खलु युज्यत एवं प्राप्त इतरेऽपि प्राघूर्णके ।। ७३ ।।

किं पुनः स्वयमेव समागते राज्ञि अनुरक्तचित्ते । युज्यते गौरवकरणमासन-सम्भाषणादिभिः ।। ७४ ।।

ततः कृत्वा प्रसादं सुन्दरि ! आरोहात्र पल्यङ्कम् । निर्वापय माम् मदनाग्नितापितं संगमजलेन ।। ७५ ।।

श्रुत्वा तकं कथयति रोहिणी राजन् ! तव सदृशानाम् । एतादृशं न युज्यते उत्तमवंशप्रसूतानाम् ।। ७६ ।।

अपरस्याप्यनयपरस्य स्वामिन् । शिक्षां सदा त्वं दासि । तुभ्यं पुनः को दास्यति शिक्षामनीतिं कुर्वतः ? ।। ७७ ।।

यदि नरपतिरपि मुञ्चति मर्यादां साधुनीतिनिपुणोऽपि । तावदेतादृशकार्योद्यतानामितरेषां को दोषः ? ।। ७८ ।।

अपरं चाशेषस्यापि जनस्य जनक इव भवति नरनाथः । ततश्चिन्तयितुं न युज्यते किं पुनरेतादृशं वक्तुम् ? ।। ८० ।।

बहुपूताशूचि-वशा-मांस-रुधिरपरिपूरितानां महिलानाम् । कार्ये किं करोषि नरेन्द्र ! असदृशं निजकुलकलङ्कम् ।।८१।।

भविष्यति सुखमतितुच्छमयशः पुनस्त्रिभुवने विस्तरिष्यति । यथाद्यापि निश्रूयते सीताहरणे दशास्यस्य ।। ८२ ।।

अपरं च तरङ्गिणिजलतरङ्गचञ्चलतरे तारुण्ये । पटुपवनप्रहतपोयणिजललवचपले प्रियप्रेम्णि ।। ८३ ।।

नवजलयपडलविलसिरतडिल्लयातरलजीवियव्वम्मि । एयारिसं न जुज्जइ नरिंद ! काउं सुपुरिसाण ॥८४॥

रागज्झवसाएणं थेवस्स वि विरइयस्स कम्मस्स । जायइ गरुयविवागो नरिंद ! नरयम्मि जीवाणं ॥८५॥

इहइं पि हु जं कह वि हु कीरइ असमंजसं कुलीणेण । तं तस्स डहइ हियय़ं जम्हा एयारिसं भणियं ॥८६॥

कीरंति जाइं जोव्वणमएण अवियारिऊण कज्जाइं । वयपरिणामे भरियाइं ताइं हियए खडुक्कंति ॥८७॥

ता सव्वहा वि एरिसअकज्जचिंतं पि देव ! परिहरसु । खणदिट्ठ-नट्ठरूवे असारसंसारपरिणामे ॥८८॥

संजायचोरसंको पुणो पुणो गुरुसरेण मज्जारो । अक्कंदइ तो सा वि हु सालहिया जंपए एवं ॥८९॥

किमाक्रन्दसि मार्जार ? नन्दो राजा न तस्करः । अमृते विषमुत्पन्नं यतो रक्षा भयं ततः ॥९०॥

सोऊण रोहिणीए सुभासियं सालहीसिलोयं च । संवेगअंसुजलभरियलोयणो चिंतए राया ॥९१॥

पेच्छ जहा एयाणं अमुणियतत्ताण एरिसविवेओ । मह पुण मुणियसुयस्स वि चरियं एयारिसं पावं ॥९२॥

अहह ! महापावो हं जं असरिससुद्धसीलकलियाए । काउमकज्जमिमीए समागओ गिहममज्जाओ ॥९३॥

एसा वरं वराई सालहिया नाहमहमपरिणामो । जा एरिसं वियाणइ कज्जा-ऽकज्जाइं जीवाणं ॥९४॥

इय चिंतिऊण सहसा समुट्ठिओ रोहिणीए कमकमलं । महिमिलियभालवट्टो पणमइ रोमंचिओ राया ॥९५॥

पभणइ य महामोहंधयारकूवम्मि निवडिओ अहयं । नियवयणवरत्ताए तए सुसीले ! समुद्धरिओ ॥९६॥

जोव्वणमयमत्तेणं दुव्वयणं किं पि जं मए भणियं । तं मह महापसायं काऊणं खमसु सव्वं पि ॥९७॥

नवजलदपटलविलसत्तडिल्लतातरलजीवितव्ये । एतादृशं न युज्यते नरेन्द्र ! कर्तुं सुपुरुषाणाम् ॥ ८४ ॥

रागाध्यवसायेन स्तोकस्यापि विरचितस्य कर्मणः । जायते गुरुकविपाको नरेन्द्र ! नरके जीवानाम् ॥ ८५ ॥

इहापि खलु यत्कथमपि खलु क्रियतेऽसमञ्जसं कुलिनेन । तत्तस्य दहति हृदयं यस्मादेतादृशं भणितम् ॥ ८६ ॥

क्रियन्ते यानि यौवनमदेनाविचार्य कार्याणि । वयःपरिणामे भृतानि तानि हृदये शल्यन्ति ॥ ८७ ॥

तावत्सर्वथाप्येदृशमकार्यचित्तमपि देव ! परिहर । क्षणदृष्ट-नष्टरुपेऽसारसंसारपरिणामे ॥ ८८ ॥

सञ्जातचौरशङ्कः पुनः पुन गुरुस्वरेण मार्जारः । आक्रन्दति ततः सापि खलु सारिका जल्पत्येवम् ॥ ८९ ॥

श्रुत्वा रोहिण्या सुभाषितं सारिकश्लोकं च । संवेगाश्रुजलभृतलोचनश्चिन्तयति राजा ॥ ९१ ॥

पश्य यथैतेषाममुणिततत्वानामीदृशविवेकः । मम पुन र्मुणितश्रुतस्यापि चरितमेतादृशं पापम् ॥ ९२ ॥

अहाहा ! महापापोऽहं यदसदृशशुद्धशीलकलितायाः । कर्तुमकार्यमेतस्याः समागतो गृहममर्यादः ॥ ९३ ॥

एषा वरं वराकी सारिका नाहमधमपरिणामः । येदृशं विजानाति कार्याऽकार्याणि जीवानाम् ॥ ९४ ॥

इति चिन्तयित्वा सहसा समुत्थितो रोहिण्याः क्रमकमलम् । महिमिलितभालपट्टः प्रभणति रोमाञ्चितो राजा ॥ ९५ ॥

प्रभणति च महामोहान्धकारकूपे निपतितोऽहम् । निजवचनवरत्रया त्वया सुशीले ! समुद्धरितः ॥ ९६ ॥

यौवनमदमत्तेन दुर्वचनं किमपि मया भणितम् । तन्मम महाप्रसादं कृत्वा क्षमस्व सर्वमपि ॥ ९७ ॥

इय खामिऊण राया नमिउं पयपंकयं पुणो तीए । रइकेलिणा समेओ संपत्तो नियय‌भवणम्मि ॥९८॥
परिभाविंतो संवेगसारवयणाणि तीए हिययम्मि । आसाइऊण निद्दं सुहं पबुद्धो पभायम्मि ॥९९॥
तत्तो य रोहिणीए सीलाइगुणेहि रंजिओ राया । रइकेलिणा समाणं तीए माहप्पजणणत्थं ॥१००॥
कुणइ पवंचं जह किर भो भो सामंत-मंतिणो ! अज्ज । रयणीए पच्चक्खं का वि हु मं देवया भणइ ॥१०१॥
भो भो नरिंद ! निसुणसु रोगाओ इमाओ मुच्चसे सिग्घं । रोहिणिमहासईए अभिमंतियसलिलपाणेण ॥१०२॥
तेहुत्तं जाणामो देव, तयं रोहिणिं जणपसिद्धं । सेट्ठिधणावहभज्जं सीलालंकाररमणीयं ॥१०३॥
तो ते भणंति सव्वे पेसिज्जउ तीए आणणनिमित्तं । सुंदरिमहल्लियमिमं कल्लाणे को विरोहो ? त्ति ॥१०४॥
तत्तो य सपरिवारा पेसविया सुंदरी नरिंदेण । पत्ताए तीए गेहे सविणयपणयं समाणीया ॥१०५॥
कोसंभवत्थविरइयनीरंगि ईसिदिस्समुहकमला । संझाणुरायछाइयससिबिंबा गयणलच्छि व्व ॥१०६॥
अब्भुट्ठिया नरिंदेण मंति-सांत-सुहडसंकिन्नं । रायत्थाणं सयलं पि किमवि विम्हावयंतेण ॥१०७॥
वज्जिदनील-मरगय-मुत्ताहल-पउमरायजडियम्मि । सिंहासणे निवेसिय सलाहिया पउरपच्चक्खं ॥१०८॥
निस्सेसमहिलतिलए ! निरुवमसद्धम्मकम्मसुहनिलए ! । मुत्ताहलहारुज्जलसीललयारोहवरमलए ! ॥१०९॥
तुम्हारिसाण सीलप्पभावओ दिणयरो कुणइ दिवसं । वरिसंति जलहरा वि हु हारावलिविमलधाराहिं ॥११०॥
रोगावणयणकज्जे मज्झ तुमं देवयाए उवइट्ठा । ता मं तुमं महासइ ! पायसु सलिलं सहत्थेण ॥१११॥

इति क्षामयित्वा राजा नत्वा पदपङ्कजं पुनस्तस्याः । रतिकेलिना समेतः संप्राप्तो निजकभवने ॥ ९८ ॥
परिभावयन् संवेगसारवचनानि तस्या हृदये । आसाद्य निद्रां सुखं प्रबुद्धः प्रभाते ॥ ९९ ॥
ततश्च रोहिण्याः शीलादिगुणै रञ्जितो राजा । रतिकेलिना समानं तस्या माहात्म्यजाननार्थम् ॥ १०० ॥
करोति प्रपञ्चं यथा किल भो भो सामन्त-मन्त्रिणः । अद्य रजन्यां कापि खलु मां देवता भणति ॥ १०१ ॥
भो भो नरेन्द्र ! निशृणु रोगादस्मान्मुञ्चसि शीघ्रम् । रोहिणिमहासत्याभिमन्त्रितसलिलपानेन ॥ १०२ ॥
तैरुक्तं जानीमो देव, तकां रोहिणिं जनप्रसिद्धाम् । श्रेष्ठिधनावहभार्यां शीलालङ्काररमणीयाम् ॥ १०३ ॥
तदा ते भणन्ति सर्वे प्रेष्यतां तस्या आनयननिमित्तम् । सुन्दरिमहत्तरामिमां कल्याणे को विरोध इति ॥ १०४ ॥
ततश्च सपरिवारा प्रैषयिता सुन्दरी नरेन्द्रेण । प्राप्तायास्तस्या गृहे सविनयप्रणयं समानीता ॥ १०५ ॥
कौसुम्भवस्त्रविरचितनीरंगीषद्दृश्यमुखकमला । सन्ध्यानुरागाच्छादितशशिबिम्बा गगनलक्ष्मीरिव ॥ १०६ ॥
अभ्युत्थिता नरेन्द्रण मन्त्रि-सामन्त-सुभट-सङ्कीणाम् । राजास्थानं सकलमपि किमपि विस्मापयता ॥ १०७ ॥
वज्रेन्द्रनील-मरकत-मुक्ताफल-पद्मरागखचिते । सिंहासने निवेश्य श्लाघिता पौरप्रत्यक्षम् ॥ १०८ ॥
निःशेषमहिलातिलके ! निरुपमसद्धर्मकर्मशुभनिलये ! मुक्ताफलहारोज्वलशीललतारोहवरमलये ! ॥ १०९ ॥
युष्मादृशानां शीलप्रभावाद्दिनकरः करोति दिवसम् । वर्षन्ति जलधरा अपि खलु हारावलिविमलधाराभिः ॥ ११० ॥
रोगापनयनकार्ये मम त्वं देवतयोपदिष्टा । ततो मां त्वं महासति ! पायय सलिलं स्वहस्तेन ॥ १११ ॥

तो तीए तहा विहिए जाओ निरुओ निवो पडुसरीरो । तत्तो कयसम्माणा अणुगम्मंती नरिंदेण ॥११२॥
बंदियणपढिज्जंती गिज्जंती नयररमणिनियरेण । सलहिज्जंती पुरथेरियाहि पत्ता नियगेहं ॥११३॥
नंदनरिंदाईओ पउरजणो पणमिउं पडिनियत्तो । एत्तो य तीए भत्ता विढत्तबहुवित्तसंजुत्तो ॥११४॥
संपत्तो तरिऊणं मयरकरालं तरंगिणीनाहं । सोऊण तीए चरियं पमोयपरिपूरिओ तयणु ॥११५॥
जायाहियाणुराओ रमइ तओ तं मणुन्नभोगेहिं । कालक्कमेण जाओ धणसारो नाम तीए सुओ ॥११६॥
अह अन्नया य दट्ठूण गरुयवेरग्गकारणं किं पि । सा साहुणीसयासे पव्वइया विहियतव-चरणा ॥११७॥
मरिऊण समुप्पन्ना विमाणवासम्मि अमररूवेण । तत्तो चुया समाणी कमेण पाविहिइ सिद्धिसुहं ॥११८॥

॥ रोहिण्याख्यानकं समाप्तम् ॥१५॥

इदानीं मनोरमाख्यानकस्यावसरः, तच्च नमस्कारफलवर्णने सुदर्शनाख्यानके भणिष्यत इति क्रमागतं सुभद्राख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

अंगाजणवयचूडामणि व्व पायारपरिगया आसि । चंपा नामेण पुरी सिरीए सिंगारगेह व्व ॥१॥
तत्थऽत्थि विजियसत्तू जियसत्तू नरवई नयनरिंदो । जिणसासणाणुरत्तो जिणदत्तो नाम सेट्ठी वि ॥२॥
तस्सऽत्थि पवरदुहिया दुहियाण दुहाण दलणदुल्ललिया । ललियकर-चरणकमला कमलालंकियतणुलया य ॥३॥
सच्छासया सुभद्दा नामेण मणुन्नसीलकुलभवणं । जिणचलणकमलसेवापरायणा रायहंसि व्व ॥४॥

तदा तया तथा विहिते जातो निरुजो नृपः पटुशरीरः । ततः कृतसन्मानाऽनुगम्यमाना नरेन्द्रेण ॥ ११२ ॥
बन्दिजनपठ्यमाना गीयमाना नगररमणिनिकरेण । श्लाघ्यमाना पुरस्थविराभिः प्राप्ता निजकगृहम् ॥ ११३ ॥
नन्दनरेन्द्रादयः पौरजनः प्रणम्य प्रतिनिवृत्तः । इतश्च तस्या भर्ता अर्जितबहुवित्तसंयुक्तः ॥ ११४ ॥
संप्राप्तस्तीर्त्वा मकरकरालं तरङ्गिणीनाथम् । श्रुत्वा तस्या श्चरितं प्रमोदपरिपूरितस्तदनु ॥ ११५ ॥
जायाहृदयानुरागो रमते ततस्तां मनोज्ञभोगैः । कालक्रमेण जातो धनसारो नाम तस्यां सुतः ॥ ११६ ॥
अथान्यदा च दृष्ट्वा गुरुकवैराग्यकारणं किमपि । सा साध्वीसकाशे प्रव्रजिता विविधतपश्चरणा ॥ ११७ ॥
मृत्वा समुत्पन्ना विमानवासेऽमररुपेण । ततश्च्युता सती क्रमेण प्राप्स्यति सिद्धिसुखम् ॥ ११८ ॥

॥ रोहिण्याख्यानकं समाप्तम् ॥ १५ ॥

सुभद्राख्यानकम्- ॥ १६ ॥

अङ्गाजनपदचूडामणिरिव प्राकारपरिगतासीत् । चम्पा नाम्ना पूरी श्रियाः शृङ्गारगेहमिव ॥ १ ॥
तत्रास्ति विजितशत्रु र्जितशत्रु र्नरपति र्नयनरेन्द्रः । जिनशासनानुरक्तो जिनदत्तो नाम श्रेष्ठ्यपि ॥ २ ॥
तस्यास्ति प्रवरदुहिता दुःखितानां दुःखानां दलनदुर्लालिता । ललितकरचरणकमला कमलालङ्कृततनुलता च ॥ ३ ॥
स्वच्छाशया सुभद्रा नाम्ना मनोज्ञशीलकुलभवनम् । जिनचरणकमलसेवापरायणा राजहंसीव ॥ ४ ॥

सा अन्नया कयाई कीलंती नियगिहम्मि सच्छंदं । दिट्ठा तच्चन्नियभत्तसेट्ठिसुयबुद्धदासेण ॥५॥

तं दट्ठूण विचिंतइ तच्चन्नियसावओ निययचित्ते । एयाए अहो ! रूवं मोहइ भुवणत्तयजणं पि ॥६॥

ता किं एसा पायालकन्नया ? पणइणी अह भवस्स ? । किं वा वम्महदइया ? उआहु अमरंगणा का वि ? ॥७॥

एवं विचिंतयंतो विद्धो वम्महसरेण हिययम्मि । तव्वरणत्थं पेसइ नियपुरिसे नियगिहे गंतुं ॥८॥

काउं जिणदत्तो वि हु पडिवत्तिं ताण पुच्छए कज्जं । सिट्ठं च तेहिं सव्वं भणियं तो सेट्ठिणा एवं ॥९॥

तम्मि कुल-रूव-जोव्वण-लावन्नाई समग्गमवि अत्थि । होज्ज परमवरधम्मत्तणेण नेहो न एयाण ॥१०॥

अवरोप्परं पि कलहो होही सयधम्मसंथवेण सया । ता नियधूयं न हु देमि तेहिं तो बुद्धदासस्स ॥११॥

गंतुं गिहम्मि कहियं तं सोउं सो वि चिंतए हियए । मायाए सावयत्तं सिक्खेमि अहं इमीए कए ॥१२॥

साहुसमीवे गंतुं तयणु इमो पणमिऊणिमं भणइ । मह कहह निययधम्मं भयवं ! भवभमणभीयस्स ॥१३॥

तो साहूहिं समग्गो कहिओ जिणनाहदेसिओ धम्मो । सो वि तयं पडिवज्जइ भवोहभीओ व्व कवडेणं ॥१४॥

तस्साणुदिणं जिणनाहधम्मसवणेण भावियमणस्स । सम्मं चिय परिणमिओ मणम्मि जिणदेसिओ धम्मो ॥१५॥

तो वंदिउं मुणिंदे पभणइ भयवं ! सुणेह मह वयणं । पडिवन्नो जिणधम्मो आसि मए कन्नयाकज्जे ॥१६॥

इण्हिं सो च्चिय धम्मो परिणमिओ मज्झ सुद्धभावेण । सब्भावो संजाओ कवडं चिय पुव्वपुन्नेहिं ॥१७॥

ता अन्नं पि हु भयवं ! कहेह तो मुणिवरेहिं सव्वं पि । बारसविहे वि सावयधम्मे सम्मं स सिक्खविओ ॥१८॥

सान्यदाकदाचित्क्रीडन्ती निजगृहे स्वच्छन्दम् । दृष्टा तच्चणिकभक्तश्रेष्ठिसुतबुद्धदासेन ॥ ५ ॥

तां दृष्ट्वा विचिन्तयति तच्चनिकश्रावको निजकचिते । एतस्या अहो ! रुपं मोहयति भुवनत्रयजनमपि ॥ ६ ॥

ततः किमेषा पातालकन्या ? प्रणयिन्यथ भवस्य ? । किं वा मन्मथदयिता ? उदाहु अमराङ्गणा कापि ? ॥ ७ ॥

एवं विचिन्तयन् विद्धः मन्मथशरेण हृदये । तद्वरणार्थं प्रेषति निजपुरुषान्निजगृहे गत्वा ॥ ८ ॥

कृत्वा जिनदत्तोऽपि खलु प्रतिपत्तिं तेषां पृच्छति कार्यम् । शिष्टं च तैः सर्वं भणितं ततः श्रेष्ठिनैवम् ॥ ९ ॥

तस्मिन् कुल-रुप-यौवन-लावण्यादयः समग्रमप्यस्ति । भवेत् परमपरधर्मत्वेन स्नेहो नानयोः ॥ १० ॥

अपरापरमपि कलहो भविष्यति स्वधर्मसंस्थापनेन सदा । ततो निजदुहितरं न खलु ददामि तैस्ततो बुद्धदासाय ॥११॥

गत्वा गृहे कथितं तत् श्रुत्वा सोऽपि चिन्तयति हृदये । मायया श्रावकत्वं शिक्षेऽहमेतस्याः कृते ॥ १२ ॥

साधुसमीपे गत्वा तदन्वयं प्रणम्येदं भणति । मम कथयत निजकधर्मं भगवन् ! भवभ्रमणभीतस्य ॥ १३ ॥

ततः साधुभिः समग्रः कथितो जिननाथदेशितो धर्मः । सोऽपि तकं प्रतिपद्यते भवौघभीत इव कपटेन ॥ १४ ॥

तस्यानुदिनं जिननाथधर्मश्रवणेन भावितमनसः । समग्रमेव परिणमितो मनसि जिनदेशितो धर्मः ॥ १५ ॥

ततो वन्दित्वा मुनीन्द्रान् प्रभणति ! शृणुत मम वचनम् । प्रतिपन्नो जिनधर्म आसीन्मया कन्याकार्ये ॥ १६ ॥

इदानीं स चैव धर्मः परिणमितो मम शुद्धभावेन । सद्भावःसञ्जातः कपटमेव पूर्वपुण्यैः ॥ १७ ॥

ततोऽन्यमपि खलु भगवन् ! कथयत ततो मुनिवरैः सर्वमपि । द्वादशविधानपि श्रावकधर्मान् सम्यक् स शिक्षयितः ॥१८॥

जाओ विसिट्ठसड्ढो गाढं जिणसासणम्मि अणुरत्तो । जिणपूयण-गुरुवंदण-सज्झाय-ज्झाणउज्जुत्तो ॥१९॥
एवंविहसावयगुणसंपन्नो जाव ता सयं चेव । दिन्ना जिणदत्तेणं नियधूया बुद्धदासस्स ॥२०॥
महईए विभूईए परिणीया तेण हिट्ठहियएण । तो उवभुंजइ एसो विसयसुहं तीए संजुत्तो ॥२१॥
अह अन्नया कयाई भणिओ जामाउएण जिणदत्तो । मोक्कलसु नियं धूयं नेमि जहा नियगेहम्मि ॥२२॥
तो जंपइ जिणदत्तो तत्थ गयाए इमाए तुह सयणा । दाहिस्संति कलंकं विप्पडिवत्तीए धम्मस्स ॥२३॥
तो आह बुद्धदासो ईमीए भिन्नं गिहं करिस्सामि । तो जिणदत्तेण सुया सम्माणेऊण पट्ठविया ॥२४॥
नीया य नियभवणम्मि तेण नवनेहनिब्भरमणेण । दिन्नं भिन्नं भवणं तीए तओ बुद्धदासेण ॥२५॥
तयणु सुभद्दाभवणे मुणिणो निच्चं पि भत्त-पाणट्ठा । पविसंति वहंति पुणो पओसमियराणि तीए तओ ॥२६॥
अक्खंति बुद्धदासस्स भाउजायाइयाणि मिलिऊण । तुह दइया दुस्सीला चिट्ठइ जम्हा जईहिं समं ॥२७॥
निसुणित्तु तओ नियकन्नकडुयवयणाणि भणिउमाढत्तो । मा एरिसं पयंपह संभवइ न एयमेईए ॥२८॥
अवि नहयलाओ निवडइ रविरहरयणं कहं पि दिव्ववसा । तह वि सुभद्दा सीलस्स खंडणं कुणई न कया वि ॥२९॥
अवि उप्पज्जइ गयणंगणम्मि वियसंतकमलवणसंडं । तह वि सुभद्दा सीलस्स खंडणं कुणइ न कया वि ॥३०॥
अवि कहवि जए जायइ पुत्तो वंझाए विहिनिओगेण । तह वि सुभद्दा सीलस्स खंडणं कुणइ न कया वि ॥३१॥
अवि कह वि उवरि वच्चइ वसुहा गयणं वि जाइ पायालं । तह वि सुभद्दा सीलस्स खंडणं कुणइ न कया वि ॥३२॥

जातो विशिष्टश्राद्धो गाढं जिनशासनेऽनुरक्तः । जिनपूजन-गुरुवन्दन-स्वाध्याय-ध्यानोद्युक्तः ॥ १९ ॥
एवंविधश्रावकगुणसंपन्नो यावत्तावत्स्वयं चैव । दत्ता जिनदत्तेन निजदुहिता बुद्धदासस्य ॥ २० ॥
महत्या विभूत्या परिणीता तेन हृष्टहृदयेन । तत उपभुनक्ति एष विषयसुखं तया संयुक्तः ॥ २१ ॥
अथान्यदा कदाचिद्भणितो जामात्रा जिनदत्तः । मुञ्च निजदुहितरं नयामि यथा निजकगृहम् ॥ २२ ॥
ततो जल्पति जिनदत्तस्तत्र गताया एतस्यास्तवस्वजनाः । दापयिष्यन्ति कलङ्कं विप्रत्तिपत्या धर्मस्य ॥ २३ ॥
तत आह बुद्धदास एतस्या भिन्नं गृहं करिष्यामि । ततो जिनदत्तेन सुता सन्मान्य प्रस्थापिता ॥ २४ ॥
नीता च निजभवने तेन नवस्नेहनिर्भरमनसा । दत्तं भिन्नं भवनं तस्यै ततो बुद्धदासेन ॥ २५ ॥
तदनु सुभद्राभवने मुनयो नित्यमपि भक्त-पानार्थाः । प्रविशन्ति वहन्ति पुनः प्रद्वेषमितराणि तस्यास्ततः ॥ २६ ॥
आख्यन्ति बुद्धदासस्य भ्रातृजायादिकानि मिलित्वा । तव दयिता दुःशीला तिष्ठति यस्माद्यतिभिः समम् ॥ २७ ॥
निश्रुत्य ततो निजकर्णकटुकवचनानि भणितुमारब्धः । मेदृशं प्रजल्पत सम्भवति नैतदेतस्याः ॥ २८ ॥
अपि नभस्तलान्निपतति रविरथरत्नं कथमपि दिव्यवसात् । तथापि सुभद्रा शीलस्य खण्डनं न करोति कदापि ॥२९॥
अप्युत्पद्यते गगनाङ्गणे विकसत्कमलवनखण्डम् । तथापि सुभद्रा शीलस्य खण्डनं करोति न कदापि ॥ ३० ॥
अपि कथमपि जगति जायते पुत्रो वन्ध्याया विधिनियोगेन । तथापि सुभद्रा शीलस्य खण्डनं करोति न कदापि ॥३१॥
अपि कथमप्युपरि गच्छति वसुधा गगनमपि याति पातालम् । तथापि सुभद्रा शीलस्य खण्डनं करोति न कदापि ॥३२॥

तत्तो विलक्खवयणाणि ताणि जायाणि विहियमोणाणि । अह अन्नया सुभद्दाभवणम्मि समागओ साहू ॥३३॥
निप्पडिकम्मसरीरो दुक्करएकल्लपडिमपडिवन्नो । दिट्ठं तीए पविट्ठं तन्नयणे अणुयतणकणुयं ॥३४॥
चिंतइ य जहा एसो निप्पडिकम्मो मुणी महासत्तो । मा विणसउ ता एयस्स नयणमेएण कणुएण ॥३५॥
इय चिंतिउं सुभद्दाए झत्ति लहुयत्तयाए साहुस्स । दिंतीए तीए भिक्खं कणुयं जीहाए संगहियं ॥३६॥
तत्तो य सुभद्दाभालरुइरसिंदूरविरइओ तिलओ । संकंतो साहुनिडालमंडले दोहिं वि न नाओ ॥३७॥
दट्ठूण साहुभाले तिलयं उवलद्धछलपवेसाओ । तीए नणंदा-सासुय-भाउज्जायाओ मिलियाओ ॥३८॥
अक्खंति बुद्धदासस्स पेच्छ नियभारियासुसीलत्तं । सेवडयनिडालम्मिपेच्छिय तिलयस्स पडिबिंबं ॥३९॥
तो जाव बुद्धदासो जोयइ ता तं तहट्ठियं दट्ठुं । संजायपच्चाओ सो झत्ति विरत्तो कलत्तम्मि ॥४०॥
तन्नाऊण सुभद्दाए चिंतियं पेच्छ केरिसं जायं ? जायं मज्झ कलंकं मुणिणो वि महाणुभावस्स ॥४१॥
विसयमहाविसमोहियमणाण गिहवासबंधबद्धाण । जायंति कलंकाइं जियाण जं तं किम्च्छरियं ? ॥४२॥
ईसा-विसाय-मय-मोह-माणमहियाण निहयबुद्धीण । जायंति कलंकाइं जियाण जं तं किमच्छरियं ? ॥४३॥
जं मज्झ विसयलालसमणाए गिहवासमहिवसंतीए । जाओ एस कलंको मणयं पि न मे इमं दुक्खं ॥४४॥
जं पुण मयंकमणिनिम्मलस्स जिणसासणस्स मालिन्नं । मह कज्जे संजायं तं दूमइ माणसे मज्झ ॥४५॥
ता जइ जिणिंदसासणमालिन्न नो कहं पि अवणेमि । तो मज्झ मणसमाही न होज्ज मरणे वि नियमेण ॥४६॥

ततो विलक्षवदनानि तानि जातानि विहितमौनानि । अथान्यदा सुभद्राभवने समागतः साधुः ॥ ३३ ॥
निष्प्रतिकर्मशरीरो दुष्करैकलप्रतिमाप्रतिपन्नः । दृष्टं तया प्रविष्टं तन्नयनेऽणुकतृणकणुकम् ॥ ३४ ॥
चिन्तयति च यथैष निष्प्रतिकर्मो मुनि र्महासत्त्वः । मा विनश्यतु तावदेतस्य नयनमेतेन कणुकेन ॥ ३५ ॥
इति चिन्तयित्वा सुभद्रया शीघ्रं लघुकत्वेन साधोः । दत्तया तया भिक्षां कणुकं जीव्ह्या सङ्गृहीतम् ॥ ३६ ॥
ततश्च सुभद्राभालरुचिरसिन्दूरविरचितस्तिलकः । सङ्क्रान्तः साधुनिडालमण्डले द्वाभ्यामपि न ज्ञातः ॥ ३७ ॥
दृष्ट्वा साधुभाले तिलकमुपलब्धच्छलप्रवेशाः । तस्या ननान्द-श्वसु-भ्रातृजायाः मिलिताः ॥ ३८ ॥
आख्यन्ति बुद्धदासस्य पश्य निजभार्यासुशीलत्वम् । श्वेतपटकनिडाले दृष्ट्वा तिलकस्य प्रतिबिम्बम् ॥ ३९ ॥
ततो यावद्बुद्धदासः पश्यति तावत्तत्तथास्थितं दृष्ट्वा । सञ्जातप्रत्ययः स शीघ्रं विरक्तः कलत्रे ॥ ४० ॥
तज्ज्ञात्वा सुभद्रया चिन्तितं पश्य कीदृशं जातम् ? । जातं मम कलङ्कं मुनेरपि महानुभावस्य ॥ ४१ ॥
विषयमहाविषमोहितमनसां गृहवाससम्बन्धबद्धानाम् । जायन्ते कलङ्कानि जीवानां यत्तत् किमाश्चर्यम् ? ॥ ४२ ॥
ईर्ष्या-विषाद-मद-मोह-मानमहितानां निहतबुद्धीनाम् । जायन्ते कलङ्कानि जीवानां यत्तत् किमाश्चर्यम् ? ॥ ४३ ॥
यन्मम विषयलालसमनसा गृहवासमधिवसन्त्याः । जात एष कलङ्को मनागपि न मे इदं दुःखम् ॥ ४४ ॥
यत्पुन मृगाङ्कमणिनिर्मलस्य जिनशासनस्य मालिन्यम् । मम कार्ये सञ्जातं तद् दुनोति मानसे मम ॥ ४५ ॥
ततो यदि जिनेन्द्रशासनमालिन्यं न कथमप्यपनयामि । तावन्मम मनसमाधिर्न भवेन्मरणेऽपि नियमेन ॥ ४६ ॥

इय चिंतिऊण अत्थमिय दिणयरे भवणजिणवरिंदाण । रइउं पकिट्ठपूयं पमज्जिऊणं महीवीढं ॥४७॥
तयणु सुभद्दा गिण्हइ महापइन्नं न जाव मालिन्नं । अवणेमि पवयणाओ न ताव पारेमि उस्सग्गं ॥४८॥
जो जिणसासणभत्तो सो अमरो होउ मज्झ पच्चक्खो । अह न वि होही तो मे काउस्सग्गे वि सन्नासो ॥४९॥
इय जा काउस्सग्गेण संठिया सा खणंतरं ताव । उज्जोयंतो भवणं समागओ सुरवरो एक्को ॥५०॥
चलचवलकुंडलधरो निम्मलघोलंतमुत्तियकलावो । वरमउड-कडय-केऊर-कंकणाभरणदिप्पंतो ॥५१॥
दिट्ठो य सुभद्दाए तो भणिया तेण साविए ! कहसु । किं संभरिओ अहयं ? भणइ सुभद्दा तओ एवं ॥५२॥
जिणसासणमालिन्नं अवणेहि तओ य हरिसिओ अमरो । जंपइ सुंदरि ! इण्हि खेयं मणयं पि मा कुणसु ॥५३॥
संपइ पुरीए चउरो पिहिऊणं गोउरे अहिट्ठिस्सं । तं मोत्तुं न हु अन्नो होही उग्घाडणसमत्थो ॥५४॥
गयणंगणम्मि ठाउं पभणिस्सं जा महासई का वि । सा उग्घाडउ चालणिकयसलिलेणं दुवाराइं ॥५५॥
उग्घाडिस्ससि तं चेव ताइं इय जंपिउं तओ तियसो । सोयामणिपुंजो इव झड त्ति अद्दंसणीहुओ ॥५६॥
तयणन्तरं सुभद्दा उस्सग्गं पारिऊण हिट्ठमणा । निग्गमइ निसं जाए पभायसमए पुरीलोओ ॥५७॥
उग्घाडइ जाव समुग्घडन्ति ता कह वि नो कवाडाइं । फोडंतस्स वि फुट्टंति न उण वज्जं व लोयस्स ॥५८॥
ता सहसा उच्छलिओ रउद्दहाहारवो पुरजणस्स । आरसइ एक्ककालं चउप्पयाणं समूहो वि ॥५९॥
तारिसरूवं नाऊण नरवई तयणु आउलीहूओ । चिंतइ एयं नणु दिव्वविलसियं किं पि संभविही ॥६०॥

इति चिन्तयित्वास्तमिते दिनकरे भवनजिनवरेन्द्राणाम् । रचयित्वा प्रकृष्टपूजां प्रमृज्य महीपीठम् ॥ ४७ ॥
तदनु सुभद्रा गृह्णाति महाप्रतिज्ञां न यावन्मालिन्यम् । अपनयामि प्रवचनस्य न तावत् पारयामि उत्सर्गम् ॥ ४८ ॥
यो जिनशासनभक्तः सोऽमरो भवतु मम प्रत्यक्षः । अथ नापि भविष्यति ततो मे कार्योत्सर्गेऽपि सन्यासः ॥ ४९ ॥
इति यावत्कार्योत्सर्गेण संस्थिता सा क्षणान्तरं तावद् । उद्योतयन्भवनं समागतः सुरवर एकः ॥ ५० ॥
चलचपलकुण्डलधरो निर्मलघुर्णन्मौक्तिककलापः । वरमुकुट-कटक-केयूर-कङ्कणाभरणदीप्यन् ॥ ५१ ॥
दृष्टश्च सुभद्रया ततो भणिता तेन श्राविके ! कथय । किं स्मृतोऽहं ? भणति सुभद्रा तत एवम् ॥ ५२ ॥
जिनशासनमालिन्यमपनय ततश्च हर्षितोऽमरः । जल्पति सुन्दरि ! इदानीं खेदं मनागपि मा कुरु ॥ ५३ ॥
संप्रति पूर्याश्चत्वारः विधाय गोपूरानधिस्थाष्यामि । त्वां मुक्त्वा न खल्वन्यो भविष्यत्युद्धाटनसमर्थः ॥ ५४ ॥
गगनाङ्गणे स्थित्वा प्रभणिष्यामि या महासती कापि । सोद्धाटयतु चलनिकृतसलिलेन द्वाराणि ॥ ५५ ॥
उद्धाटिष्यषि त्वं चैव तानीति जल्पित्वा ततस्त्रिदशः । सौदामिनिपुञ्ज इव झटित्यदर्शनीभूतः ॥ ५६ ॥
तदनन्तरं सुभद्रोत्सर्गं पारयित्वा हृष्टमना । निर्गमयति निशां जाते प्रभातसमये पुरीलोकः ॥ ५७ ॥
उद्धाटयति यावत्समुद्धटन्ति तावत्कथमपि न कपाटानि । स्फुटतोऽपि स्फुटन्ति न पुनर्वज्रमिव लोकस्य ॥ ५८ ॥
तावत्सहसोच्छलितो रौद्रहाहारवः पुरजनस्य । आरसत्येककालं चतुष्पदानां समूहोऽपि ॥ ५९ ॥
तादृशरुपं ज्ञात्वा नरपतिस्तदनु आकुलीभूतः । चिन्तयत्येतन्ननु दिव्यविलसितं किमपि सम्भविष्यति ॥ ६० ॥

तत्तो य पुहइपालो परिहित्ता उल्लसाडयं सेयं । धूवकडच्छुयहत्थो होउं पउरेहिं परियरिओ ॥६१॥

विन्नवइ विणयपुव्वं विहियपणामो सुकोमलगिराहिं । काउं महापसायं निसुणउ विन्नत्तियं मज्झ ॥६२॥

देवस्स दाणवस्स व भूयस्य व किन्नरस्स कस्स वि य । जस्स मए अवरद्धं खमउ समग्गं पि सो मज्झ ॥६३॥

तत्तो गयणे ठाऊण तेण अमरेण भणियमेयं भो ! जा का वि इह पुरीए महासइत्तं समुव्वहइ ॥६४॥

सा रमणी चालणियापक्खित्तजलेण तिन्नि वाराओ । अच्छोडिउं कवाडे उग्घाडउ निव्वियप्पं ति ॥६५॥

तं निसुणिऊण अहमहमिगाए सव्वाओ पुरपुरंधीओ । राया-ऽमच्च-महायणभज्जाबहुयाओ वहुयाओ ॥६६॥

कयन्हाण-मंगलाओ महासईगव्वमुव्वहंतीओ । चालणिजलपक्खिवणे विग्गुत्ताओ समग्गाओ ॥६७॥

विग्गुत्ताओ जा सव्वनयरिनारीओ रायपज्जतं । ताव सुभद्दा सासुयपभिईण पुरो भणइ एवं ॥६८॥

अणुजाणसु अंब ! ममं अहमवि एयं जहा परिक्खेमि । हसिऊण तओ सव्वाओ ताओ एवं पयंपंति ॥६९॥

जाण कवाडाण कए विग्गुत्ताओ महासईओ वि । उग्घाडसि ताणि तुमं नूणं जा समणपरिभुत्ता ॥७०॥

ताण निवारंतीण वि संगहिया तीए चालणी पवरा । तीए जलं पक्खित्तं परिगलइ न बिंदुमित्तं पि ॥७१॥

जायाणि कसिणवयणाणि ताणि सव्वाणि तो सुभद्दा वि । नियकरयलकयचालिणिसलिला चलिया निवसयासे ॥७२॥

भूवालो वि सुभद्दं दट्ठुं करकलियचालिणीसलिलं । अब्भुट्ठिओ सपउरो संचलिओ सम्मुहो तीए ॥७३॥

धरविलुलियसिरकमलो पणमित्तु महासईचरणकमलं । पभणइ माइ ! महासइ ! महापसायं करेऊण ॥७४॥

ततश्च पृथिवीपाल: परिधायार्द्रसाटकं श्वेतम् । धूपकडच्छकहस्तो भूत्वा पौरै: परिवारित: ॥ ६१ ॥

विज्ञापयति विनयपूर्वं विहितप्रणाम: सुकोमलगीर्भि: । कृत्वा महाप्रसादं निशृणोतु विज्ञप्तिं मम ॥ ६२ ॥

देवस्य दानवस्य वा भूतस्य वा किन्नरस्य कस्यापि च । यस्य मयापराद्धं क्षमतां समग्रमपि स मम ॥ ६३ ॥

ततो गगने स्थित्वा तेनामरेण भणितमेतद्भो: ! । या कापीह पूर्यां महासतीत्वं समुद्वहति ॥ ६४ ॥

सा रमणी चालनिका प्रक्षिप्तजलेन त्रयो वारा: । आच्छोट्य कपाटानुद्घाटयतु निर्विकल्पमिति ॥ ६५ ॥

तन्निश्रुत्याहमहमिकया सर्वा: पुरपुरन्ध्र्य: । राजाऽमात्य-महाजनभार्यावधूका बहव:वध्व: ॥ ६६ ॥

कृतस्नान-मङ्गला महासतीगर्वमुद्वहन्त्य: । चालनीजलप्रक्षेपने विगुप्ता: समग्रा: ॥ ६७ ॥

विगुप्ता यावत्सर्वनगरीनार्या राजपर्यन्तम् । तावत्सुभद्रा श्वसूप्रभृतीनां पुरो भणत्येवम् ॥ ६८ ॥

अणुजानीह्यम्ब ! मामहमप्येतद्यथा परीक्षे । हसित्वा तत: सर्वास्ता एव् प्रजल्पन्ति ॥ ६९ ॥

येषां कपाटानां कृते विगुप्ता महासत्योऽपि । उद्घाट्यसि तानि त्वं नूनं या श्रमणपरिभुक्ता ॥ ७० ॥

तासां निवारयन्तीनामपि सङ्गृहीता तया चालनी प्रवरा । तस्यां जलं प्रक्षिप्तं परिगलति न बिन्दुमात्रमपि ॥ ७१ ॥

जातानि कृष्णवदनानि तानि सर्वाणि तत: सुभद्रापि । निजकरतलकृतचालनीसलिला चलिता नृपसकाशे ॥ ७२ ॥

भूपालोऽपि सुभद्रां दृष्ट्वा करकलितचालनीसलिलम् । अभ्युत्थित: सपौर: सञ्चलित: संमुखस्तस्या: ॥ ७३ ॥

धराविलुलितशिर:कमल: प्रणम्य महासती चरणकमलम् । प्रभणति मात ! महासति ! महाप्रसादं कृत्वा ॥ ७४ ॥

उग्घाडेसु कवाडे पुरीपओलीण ता सुभद्दा वि । पुव्वदुवारं पत्ता अणुगम्मंती नरिंदेण ॥७५॥
एत्थंतरे महासइकोउयसक्खित्तमाणसा गयणे । संपत्ता सुर-किन्नर-विज्जाहर-असुरसंघा य ॥७६॥
तयणंतरं सुभद्दाए तिन्नि वाराओ चालणिजलेण । अच्छोडिए कवाडे काऊणं जिणनमोक्कारं ॥७७॥
उग्घाडिए कवाडे झड त्ति चिक्कारगहिरनिग्घोसे । उच्छलिए जयसद्दे सद्धिं सुरदुंदुहिसरेण ॥७८॥
मुक्का य कुसुमवुट्ठी सुरेहिं परिमलभमंतभमरउला । जयउ सुभद्दासीलं ति जंपिउं तीए सिरउवरे ॥७९॥
तो भणइ पुहइपालो धन्ना सि तुमं महासईतिलए । जीए सीलेणेवं अमरा वि कुणंति सन्निज्झं ॥८०॥
तं जयउ जए सीलं जस्स पभावेण तवइ तरणी वि । वरिसइ य निययसमयम्मि जलहरो अमयधाराहिं ॥८१॥
तयणंतरं सुभद्दा भूवइपज्जंतपउरपरियरिया । गंतूण समुग्घाडइ दाहिण-पच्छिमपओलीओ ॥८२॥
तत्तो उत्तरदारं जलेण अभिसिंचिउं भणइ एवं । उग्घाडउ सा एयं जा वहइ महासईगव्वं ॥८३॥
अज्ज वि चंपानयरीए सा तह च्चेव चिट्ठइ पओली । तयणु सुभद्दा जिणनाहमंदिरं पि समुच्चलिया ॥८४॥
सलहिज्जंती सुरवरगणेहिं विज्जाहरेहिं थुव्वंती । बंदीहिं पढिज्जंती गिज्जंती अमररमणीहिं ॥८५॥
पणमिज्जंती नायरजणेहिं जिणपवयणं पभावंती । जिणमंदिरम्मि पत्ता थुणिऊण जिणेसरं तत्थ ॥८६॥
तत्तो गंतु वसहीए साहुणो वंदिऊण भत्तीए । संचलिया नियभवणे धरणियले निहियनियनयणा ॥८७॥
नच्चिरविलासिणीसुं परिवज्जिरगहिरतूरनियरेसुं । गिज्जंतचच्चरीसुं संपत्ता नियभवणम्मि ॥८८॥

उद्घाट्य कपाटान् पुरप्रतोलीनां तावत्सुभद्रापि । पूर्वद्वारं प्राप्तानुगच्छन्ती नरेन्द्रेण ॥ ७५ ॥
अत्रान्तरे महासतीकौतुकाक्षिप्तमानसा गगने । संप्राप्ताः सुर-किन्नर-विद्याधरासुरसङ्घाश्च ॥ ७६ ॥
तदनन्तरं सुभद्रया त्रयो वाराश्चालनीजलेन । आच्छोटिते कपाटे कृत्वा जिननमस्कारम् ॥ ७७ ॥
उद्घाटिते कपाटे झटिति चित्कारगम्भीरनिर्घोषे । उच्छलिते जयशब्दे सार्द्धं सुरदुन्दुभिस्वरेण ॥ ७८ ॥
मुक्ता च कुसुमवृष्टिः सुरैः परिमलभ्रमद्भ्रमरकुला । जयतु सुभद्राशीलमिति जल्पित्वा तस्याः शिरोपरि ॥ ७९ ॥
ततो भणति पृथिवीपालो धन्यासि त्वं महासतीतिलके ! । यस्याः शीलेनैवममरा अपि कुर्वन्ति सान्निध्यम् ॥ ८० ॥
तज्जयतु जगति शीलं यस्य प्रभावेन तपति तरणिरपि । वर्षति च नियतसमये जलधरोऽमृतधाराभिः ॥ ८१ ॥
तदनन्तरं सुभद्रा भूपतिपर्यन्तपौरपरिकरिता । गत्वा समुद्घाट्यति दक्षिण-पश्चिमप्रतोल्यौ ॥ ८२ ॥
तत उत्तरद्वारं जलेनाभिषिञ्च्य भणत्येवम् । उद्घाटयतु सैतद्या वहति महासतीगर्वम् ॥ ८३ ॥
अद्यापि चम्पानगर्यां सा तथा चैव तिष्ठति प्रतोली । तदनु सुभद्रा जिननाथमन्दिरं प्रति समुच्चलिता ॥ ८४ ॥
श्लाध्यमाना सुरवरगणै विद्याधरैः स्तूयमाना । बन्दिभिः पठ्यमाना गीयमानामररमणीभिः ॥ ८५ ॥
प्रणम्यमाना नागरजनै र्जिनप्रवचनं प्रभावयन्ती । जिनमन्दिरे प्राप्ता स्तुत्वा जिनेश्वरं तत्र ॥ ८६ ॥
ततो गत्वा वसत्यां साधून् वन्दित्वा भक्त्या । सञ्चलिता निजभवने धरणितले निहितनिजनयना ॥ ८७ ॥
नृत्यद्विलासिनिषु परिवाद्यद्गम्भीरतूर्यनिकरेषु । गीयमानाचर्चरिषु सम्प्राप्ता निजभवने ॥ ८८ ॥

तो पणमिऊण राया तग्गुणरंजियमणो गओ सगिहं । सीलेण सुभद्दाए दइओ वि अईव अणुरत्तो ॥८९॥

इय सा सीलपहावा सलाहणिज्जा सयाण लोयाण । भोत्तूण विसयसोक्खं उववन्ना तियसलोगम्मि ॥९०॥

॥ सुभद्राख्यानकं समाप्तम् ॥१६॥

जह सीलरयणमेयाहिं पालियं जायमुभयलोयहियं । तह अन्नस्स वि जायइ तम्हा परिपालियव्वमिणं ॥१॥

दुष्टापकारि मदनारि मलापहारि सद्वारि तीक्ष्णतरवारि मघारिभेदे ।

धर्मोपकारि गुणधारि विपत्तिवारि, संसारिजीवविसराः ! परिपात शीलम् ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे शीलमाहात्म्यप्रख्यापनो नाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः ॥३॥

ततः प्रणम्य राजा तद्गुणरञ्जितमना गतः स्वगृहम् । शीलेन सुभद्राया दयितोऽप्यतीवानुरक्तः ॥ ८९ ॥

इति सा शीलप्रभावाच्छ्लाघनीया शतानां लोकानाम् । भुक्त्वा विषयसौख्यमुत्पन्ना त्रिदशलोके ॥ ९० ॥

॥ सुभद्राख्यानकं समाप्तम् ॥ १६ ॥

यथा शीलरत्नमेताभिः पालितं जातमुभयलोकहितम् । तथान्यस्यापि जायते तस्मात्परिपालितव्यमिदम् ॥१॥

● ● ●

[४. तपोमाहात्म्यवर्णनाधिकारः ।]

व्याख्यातं शीलम् । अधुना क्रमप्राप्तं तपो व्याख्यायत इति प्रतिपादयन्नाह –

जहसत्ति तवं कुज्जा सुहजणणं सयलकम्मनिद्दलणं ।
वीर-विसल्ला-सउरी-वीरमई-रुप्पिणि-महु व्व ॥ ६ ॥

व्याख्या – 'यथाशक्ति' शक्त्यनतिक्रमेण 'तपः' अनशनादि 'कुर्याद्' विदध्यात् 'सुखजनकं' शर्मकारकं 'सकलकर्मनिर्दलनं' समस्तकर्मविनाशकम् । दृष्टान्तानाह-वीरश्च-चरमतीर्थाधिपतिः विशल्या च- द्रोणराजपुत्रिका शौरिश्च-वसुदेवः वीरमतिश्च दवदन्तिजीवः प्राग्भवे मम्मणराजपत्नी रुक्मिणी च – वासुदेवकलत्रं मधुश्च-रुक्मिणपुत्रः प्रद्युम्नपूर्वभवजीवः ते वीर-विशल्या-शौरि-वीरमतिरुक्मिणी-मधवः तद्वद् इत्यक्षरार्थः ॥ ९ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि । तत्रापि क्रमप्राप्तं वीराख्यानकमाख्यायते । तच्च यथा –

श्रीमन्महावीरो नन्दिवर्धनाय समस्तमपि राज्यं समर्प्य प्रव्रज्यां प्रतिपद्य पञ्चसमितिसमितस्त्रिगुप्तिगुप्तः समतृण-मणि-लेष्टुकाञ्चनः पञ्चमहाव्रतगुरुभारधुराधरणधौरेयोऽष्टादशशीलाङ्गसहस्त्रालङ्कृतविग्रहो निस्सङ्ग-विहारेण विहरमाणः अनुकूल-प्रतिकूलान् दिव्यादीनुपसर्गान् क्षुदादिपरीषहांश्चाव्यथितमना अधिसहमानः षष्ठा-ऽष्टमादि यावत् षण्मासान्ता विचित्रं तपः कृतवान् । तदनु च शुक्लध्यानानलेन निर्दह्य निःशेषं कर्मकान्तारं मोक्षं कर्म (?) प्राप्तवान् । तथा सर्वं ग्रामचिन्तकप्रमुखं सप्तविंशतिप्रमाणभवसम्बद्धं [चरितं] मूलावश्यकवीर-चरितादवसेयमिति ॥

॥ सङ्क्षिप्ततरं वीरचरिताख्यानकं समाप्तम् ॥१७ ॥

इदानीं विसल्लाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

पुव्वविदेहे पुंडरिगिणि त्ति डिंडीरपंडुपासाया । जिण-चक्किरिद्धिजुत्ता परिभवइ पुरिं सुराणं पि ॥१॥

रमणीनयणाणंदो राया तत्थऽत्थि तिहुयणाणंदो । सोहग्गजयपडायाऽणंगसरा तस्स वरधूया ॥२॥

दिट्ठा य पुन्नवसुणा भिच्चेणं तस्स चेव नरवइणो । सव्वालंकियदेहा अत्थाणे जणयपासम्मि ॥३॥

तो तीए धवललोयणसरसल्लियमाणसेण सहस त्ति । ओवडिय भडसमक्खं भुयदंडेहिं समुक्खित्ता ॥४॥

एत्थंतरम्मि सुहडा पडिभडउड्डुमरसमरसोंडीरा । करवाल-कुंत-मोग्गर-मुसुंढि-उड्डामरकरग्गा ॥५॥

आबद्धभिउडिभासुरभालयला नहयलेण उप्पइउं । दट्ठुं पलायमाणं हक्कित्तु हढेण ओहडिओ ॥६॥

उम्मुक्कपिक्कहक्को वाहुडिओ सुहडसम्मुहो सो उ । भामियकरालकरवालमंडलो सीसधरियफरो ॥७॥

अन्नोन्नं संजाओ महाहवो मुक्कहक्कहुंकारो । अवरोप्पररिउपहरणसंघट्टुट्ठंतजलणकणो ॥८॥

जाणित्तु सुत्तसेन्नं दुज्जेयं संभरेइ पन्नत्तिं । तीए समप्पिय बालं पलाइउं सो कहिं पि गओ ॥९॥

पन्नत्तीए पीवरपओहरी बालिया अरन्नम्मि । खित्ता वराह-रू रू -रोज्झजणियघोरारवरउद्दे ॥१०॥

सुहडेहिं तओ कंदर-कराल-गिरि-सिहर-सरिय-धरणीसु । निउणं निरिक्खमाणेहिं बालिया कह वि न हु दिट्ठा ॥११॥

आगंतूणं तो रायपायपुरओ कहंति ते नाह ! । जल-थल-नहयलमज्झे निरूविया कह वि न हु दिट्ठा ॥१२॥

तं निसुणिउं नरिंदो अक्कंदइ सोयसल्लियसरीरो । हा वच्छे ! तुह विरहे नयरं नरयं विसेसइ ॥१३॥

पूर्वविदेहे पुण्डरिगिणीति डिण्डीरपाण्डुप्रासादा । जिन-चक्र्यर्द्धियुक्ता परिभवति पुरिं सुराणामपि ॥ १ ॥

रमणीनयनान्दो राजा तत्रास्ति त्रिभुवनानन्दः । सौभाग्यजयपताकाऽनङ्गस्वरा तस्य वरदुहिता ॥ २ ॥

दृष्टा च पुनर्वसुना भृत्येन तस्य चैव नरपतेः । सर्वालङ्कृतदेहाऽऽस्थाने जनकपार्श्वे ॥ ३ ॥

तदा तस्या धवललोचनशरशल्यितमानसेन सहसेति । अवपतितो भटसमक्षं भुजदण्डैः समुत्क्षिप्ता ॥ ४ ॥

अत्रान्तरे सुभटाः प्रतिभटोड्डुभरसमरसौण्डिरा । करवाल-कुन्त-मुद्गर-मुसुण्ढि-उड्डामरकराग्राः ॥ ५ ॥

आबद्धभृकुटिभासुरभालतला नभस्तलेनोत्पत्य । दृष्ट्वा पलायमानमाकार्य बलादाक्रान्तः ॥ ६ ॥

उन्मुक्तपक्वमृत्कारो व्याघुटितः सुभटसम्मुखः स तु । भ्रामितकरालकरवालमण्डलः शीर्षधृतफलकः ॥ ७ ॥

अन्योन्यं सञ्जातो महाहवो मुक्तहक्काहुङ्कारः । अपरापररिपुप्रहरणसंघट्टोत्तिष्ठज्जलणकणः ॥ ८ ॥

ज्ञात्वा शत्रुसैन्यं दुर्जयं स्मरति प्रज्ञप्तिम् । तस्याः समर्प्य बालां पलायित्वा स कुत्रापि गतः ॥ ९ ॥

प्रज्ञप्त्या पीवरपयोधरी बालिकाऽरण्ये । क्षिप्ता वराह-रुरु-रोझजनितघोरारवरौद्रे ॥ १० ॥

सुभटैस्ततः कन्दर-कराल-गिरिशिखर-सरिद्धरणीषु । निपूणं निरीक्षमाणै र्बालिका कथमपि न खलु दृष्टा ॥ ११ ॥

आगत्य ततो राजपादपुरतः कथयन्ति ते नाथ ! । जल-स्थल-नभस्तलमध्ये निरुपिता कथमपि न खलु दृष्टा ॥ १२ ॥

तन्निश्रुत्य नरेन्द्र आक्रन्दति शोकशल्यितशरीरः । हा वत्से ! तव विरहे नगरं नरकं विशेषयति ॥ १३ ॥

अह सा अणंगसरवालिया वि नियसयणविरहिया रन्ने ॥ रोयइ रोयावंती कलुणसरेणं पसुगणं पि ॥१४॥

हा ताय ! ताय ! तायसु आगंतूणं महाडईमज्झे । तं पि हु मं मंभीससु नियदुहियावच्छले ! माए ! ॥१५॥

हा भाय ! भाय ! भीयं भइणिं भयभरवम्मि रन्नम्मि । रक्ख रुरु-सीह-संबर-सद्दूलारवरउद्दम्मि ॥१६॥

संभरिऊणं सयणे पुणो पुणो विलविउं विचिंतेइ । इह मज्झ अणाहाए सरणं ता होउ जिणनाहो ॥१७॥

अणवरयभवपरंपरसमुवज्जियदुरियरासिनिद्दलणं । ता किं पि अहमिहेव य करेमि घोरं तवच्चरणं ॥१८॥

इय चिंतिऊण नियमइ हत्थसयाओ परेण परिभमणं । तस्सब्भंतरनिवडियफल-मूलेहिं कयाहारा ॥१९॥

इय निव्वेयपहाणं संवेयगुणेण संगयं गरुयं । कुणइ तवं सुद्धमणा वित्तीसंखेवरूवमिणं ॥२०॥

एवंविहतिव्वतवेण वाससहसत्तयं गमेऊण । कयभत्तपरिच्चाया परियत्तंती नमोक्कारं ॥२१॥

एत्थंतरम्मि सोदासखेयरो मेरुसिहरजिणनाहे । वंदित्तु तो नियत्तो समागओ तम्मि उद्देसे ॥२२॥

तम्मि समयम्मि सामलकरालजमरायबाहुदंडेण । अइधोरकालरत्तीरमणीसिरवेणिदंडेण ॥२३॥

विहिसुत्तहारनिम्मियमहिमंडलगुरुपमाणदंडेण । पेच्छइ गसिज्जमाणं बालं अयगरभुयंगेणं ॥२४॥

तं पिच्छिऊण उच्छलियकोवआबद्धभिउडिभासुरिओ । आयड्ढियकरवालो दारइ जा अयगरं ताव ॥२५॥

करुणारसभरमंथरगिराए बालाए वारिओ खयरो । तवसोसियस्स गयजीवियस्स अथिरस्स रूवस्स ॥२६॥

बहुदिवसछुहापरिपीडिएण पत्तस्स(ऽ)सारदेहस्स । उरगेणं मज्झ कए इमिणा किं मारिएणं ति ॥२७॥

अथ साऽनङ्गशरबालिकापि निजस्वजनविरहिताऽरण्ये । रोदिति रोदयन्ती करुणस्वरेण पशुगणमपि ॥ १४ ॥

हा तात ! तात ! त्रायस्वागत्य महाटवीमध्ये । त्वमपि खलु मां मां भाषस्व निजदुहितृवत्सले ! मात ! ॥ १५ ॥

हा भ्रात ! भ्रात ! भीतां भगिनिं भयभैरवेऽरण्ये । रक्ष रुरु-सिंह-शाबर-शार्दुलारवरौद्रे ॥ १६ ॥

स्मृत्वा स्वजनान् पुनः पुनर्विलप्य विचिन्तयति । इह ममानाथायाः शरणं तावद्भवतु जिननाथः ॥ १७ ॥

अनवरतभवपरम्परसमुपार्जितदूरितराशिनिर्दलनम् । तावत् किमपि अहमिहैव च करोमि घोरं तपश्चरणम् ॥ १८ ॥

इति चिन्तयित्वा नियमति हस्तशतात्परेण परिभ्रमणम् । तस्याभ्यन्तरनिपतितफलमूलैः कृताहारा ॥ १९ ॥

इति निर्वेदप्रधानं संवेगगुणेन सङ्गतं गुरुकम् । करोति तपः शुद्धमना वृत्तिसंक्षेपरुपमिदम् ॥ २० ॥

एवंविधतीव्रतपसा वर्षसहस्त्रत्रयं गमयित्वा । कृतभक्तपरित्यागा परिवर्तन्ती नमस्कारम् ॥ २१ ॥

अत्रान्तरे सोदासखेचरो मेरुशिखरजिननाथान् । वन्दित्वा ततो निवृत्तः समागतस्तस्मिन्नुद्देशे ॥ २२ ॥

तस्मिन् समये श्यामलकरालयमराजबाहुदण्डेन । अतिघोरकालरात्रिरमणिशिरोवेणिदण्डेन ॥ २३ ॥

विधिसूत्रधारनिर्मितमहिमण्डलगुरुप्रमाणदण्डेन । पश्यति ग्रस्यमानां बालामजगरभुजङ्गेण ॥ २४ ॥

तां दृष्ट्वोच्छलितकोपाबद्धभृकुटिभासुरितः । आकृष्टकरवालो दारयति यावदजगरं तावत् ॥ २५ ॥

करुणारसभरमन्थरगिरा बालया वारितः खेचरः । तपःशोषितस्य गतजीवितस्यास्थिरस्य रुपस्य ॥ २६ ॥

बहुदिवसक्षुधापरिपीडितेन प्राप्तस्यासारदेहस्य । उरगेणं मम कृते अनेन किं मारितेनेति ॥ २७ ॥

कहियव्वं मह पिउणो तुह कन्ना अणसणट्ठियाऽरन्ने । अक्खंडियसीलगुणा गिलिया उरगेण सुद्धमणा ॥२८॥

गंतु रन्नो खयरेण साहिओ तीए वइयरो सव्वो । राया वि कत्थ कत्थ ? त्ति जंपिरो तत्थ संपत्तो ॥२९॥

अन्नत्थ कहिं गिलिऊण बालियं अयगरो गओ ताव । राया वि सोयसल्लियहियओ तत्तो पडिनियत्तो ॥३०॥

बाला मरिउं देवी संजाया पढमदेवलोगम्मि । विहियतवो पुन्नवसू वि तव्विमाणे सुरो जाओ ॥३१॥

तत्तो चुया समाणा कोउगमंगलपुरे समुप्पन्ना । सिरिदोणमेहरन्नो सुया विसल्ल त्ति नामेण ॥३२॥

पुव्वभवचिन्नदुक्करतवचरणपभावलद्धमहिमाए । तम्मज्जणसलिलेण वि देसे रोगा पणस्संति ॥३३॥

॥ विसल्लाख्यानकं समाप्तम् ॥१८॥

इदानीं शौर्याख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

मगहामहीमहेलालीलाकमलम्मि सालिगाममम्मि । गोयमगोत्तो विप्पो रुइरंगोऽणंगरूवोवि ॥१॥

तप्पणइणीए गब्भागयम्मि पुत्तम्मि छट्ठमासम्मि । पंचत्तं संपत्तो जणओ जणणी वि जायम्मि ॥२॥

असुभोदएण सद्धिं विद्धिं सो जाइ सव्वजणवेसो । तप्पिइकयाणुगमण व्व निग्गया सयलधणरिद्धी ॥३॥

जाओ य अट्ठवरिसो खवखुरपुडसरिसचरणनहनियरो । करहकमसरिसचरणो खंजो अइसरलजंघजुओ ॥४॥

निस्सरियनाभिसुंढो कठोरअइगरुयजढरपिठरो य । निम्मंसपयडकीकसवच्छयलो विसमभुयजुयलो ॥५॥

लंबंतविसमओट्ठो खोसलदसणो[१]ऽतिवंकवयणो उ । अइचिबिडवंकघोणो तह चिपिडप्फरलनयणजुओ ॥६॥

कथयितव्यं मम पितुस्तव कन्याऽनशनस्थिताऽरण्ये । अखण्डितशीलगुणा गलितोरगेण शुद्धमनाः ॥ २८ ॥

गत्वा राज्ञः खेचरेण कथितस्तस्या व्यतिकरः सर्वः । राजापि कुत्र कुत्रेति ? जल्पंस्तत्र संप्राप्तः ॥ २९ ॥

अन्यत्र कुत्र गलित्वा बालिकामजगरो गतस्तावद् । राजापि शोकशल्यितहृदयस्ततः प्रतिनिर्वृत्तः ॥ ३० ॥

बाला मृत्वा देवी सञ्जाता प्रथमदेवलोके । विहिततपः पूनर्वसुरपि तद्विमाने सुरोजातः ॥ ३१ ॥

ततश्च्युता सती कौतुकमङ्गलपुरे समुत्पन्ना । श्रीद्रोणमेघराज्ञः सुता विशल्येति नाम्ना ॥ ३२ ॥

पूर्वभवचीर्णदुष्करतपश्चरणप्रभावलब्धमहिमायाः । तन्मज्जनसलिलेनापि देशे रोगाः प्रणश्यन्ति ॥ ३३ ॥

॥ विशल्याख्यानकं समाप्तम् ॥ १८ ॥

शौर्याख्यानकम् -

मगधामहीमहिलालीलाकमले शालिग्रामे । गौतमगोत्रो विप्रो रुचिराङ्गोऽनङ्गरुपोऽपि ॥ १ ॥

तत्प्रणयिन्या गर्भागते पुत्रे षष्ठमासे । पञ्चत्वं संप्राप्तो जनको जनन्यपि जाते ॥ २ ॥

अशुभोदयेन सार्धं वृद्धिं सो याति सर्वजन्यद्वेष्यः । तत्पितृकृतानुगमन इव निर्गता सकलधनर्द्धिः ॥ ३ ॥

जातश्चाष्टवर्षः खरक्षुरपुटसदृशचरणनखनिकरः । करभक्रमसदृशचरणः खञ्जोऽतिसरलजङ्घयुतः ॥ ४ ॥

निःसृतनाभिसुण्ढः कठोरातिगुरुकजठरपिठरश्च । निर्मांसप्रकटकीकशवक्षःस्थलो विषमभुजयुगलः ॥ ५ ॥

लम्बद्विषमौष्ठौ दन्तुरदशनोऽतिवक्रवदनस्तु । अतिचिपिटवक्रघ्राणस्तथा चिपिटकाणनयनयुगः ॥ ६ ॥

---

१. दन्तुरदशनः ।

टप्परकन्नो चउक्कोणमुंडओ कविलविरललहुकेसो । दुग्गंधो धूमसिहासामलगत्तो खलंतसरो ॥७॥
कुहियमुहगलियलालाविलित्तवच्छयललग्गमच्छीहिं । भक्खिज्जंतो भिक्खं परिब्भमंतो महीवीढे ॥८॥
अह संपत्तो मगहापुरम्मि माउलयपासमल्लीणो । तस्स परिणावणत्थं माउलएणं सधूयाओ ॥९॥
सत्त वि य पभणियाओ भणंति मरणे वि न य इमं अम्हे । परिणेमो अवरा वि हु थीओ थुक्कंति तं दट्ठुं ॥१०॥
तत्तो दुरंतदोहग्गदुक्खदूमियमणो स गंतूण । वेभारसेलसिहरं आरूढो जाव मरणत्थं ॥११॥
ता दिट्ठो एगेणं तवस्सिणा देसणाए पडिबुद्धो । पव्वाविऊण विहियं नामं से नंदिसेणो त्ति ॥१२॥
समहिज्जियएक्कारसअंगो संगहियसयलसुत्तत्थो । संजाओ गीयत्थो विहरइ समसत्तु-मित्तगणो ॥१३॥
छट्ठ-ऽट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मास-ऽद्धमासखमणेहिं[१] । कणगावलि-रयणावलितवेहिं परिसोसियसरीरो ॥१४॥
अममो विसुद्धलेसो उवसग्ग-परीसहाण य अभीरु । वाउ व्व अपडिबद्धो निक्कंपो मंदरगिरि व्व ॥१५॥
सीहो व्व भयविमुक्को सोडीरो कुञ्जरो व्व मयमुक्को । चंदो व्व सोममुत्ती तवतेएणं दिणमणि व्व ॥१६॥
गयणमिव निरुवलेवो संखो व्व निरंजणो वियारेहिं । धरणिं पिव सव्वसहो महासमुद्दो व्व गंभीरो ॥१७॥
लाभम्मि अलाभम्मि य जीविय मरणे सुहे य दुक्खे य । सव्वत्थ वि समभावो समो य माणाऽवमाणेसु ॥१८॥
कुणइ गुरूण सयासे अभिग्गहं दसविहे वि समणाणं । वेयावच्चे गिण्हइ छट्ठपइण्णं लहुतवे वि ॥१९॥

टप्परकर्णश्चतुष्कोणमुण्डकः कपिलविरललघुकेशः । दुर्गन्धो धूम्रशिखाश्यामलगात्रः स्खलत्स्वरः ॥ ७ ॥
क्वथितमुखगलितलालाविलिप्तवक्षःस्थललग्नमक्षिकाभिः । भक्ष्यमाणो भिक्षां परिभ्रमन्महीपीठे ॥ ८ ॥
अथ सम्प्राप्तो मगधापुरे मातुलकपार्श्वमालीनः । तस्य परिणायनार्थं मातुलेन स्वदुहितरः ॥ ९ ॥
सप्तापि च प्रभणिता भणन्ति मरणेऽपि न चेमं वयम् । परिणयामोऽपरा अपि खलु स्त्रियो निष्ठुवन्ति तं दृष्ट्वा ॥ १० ॥
ततो दुरन्तदौर्भाग्यदुःखदूमितमनाः स गत्वा । वैभारशैलशिखरमारुढो यावन्मरणार्थम् ॥ ११ ॥
तावद् दृष्ट एकेन-तपस्विना देशनया प्रतिबुद्धः । प्रव्राज्य विहितं नाम तस्य नन्दिषेण इति ॥ १२ ॥
समधीतैकादशाङ्गः सङ्गृहीतसकलसूत्रार्थः । सञ्जातो गीतार्थो विहरति समशत्रु-मित्रगणः ॥ १३ ॥
षष्ठाष्टमदशमद्वादशै र्मासार्द्धमासक्षपणैः । कनकावलि-रत्नावलितपोभिः परिशोषितशरीरः ॥ १४ ॥
अममो विशुद्धलेश्य उपसर्ग-परीषहेभ्यश्चाभीरुः । वायुरिवाप्रतिबद्धो निष्कम्पो मन्दरगिरिरिव ॥ १५ ॥
सिंह इव भयविमुक्तः सौण्डिरः कुञ्जर इव मदमुक्तः । चन्द्र इव सौम्यमूर्तिस्तपस्तेजसा दिनमणिरिव ॥ १६ ॥
गगनमिव निरुपलेपः शङ्ख इव निरञ्जनो विकारैः । धरणिमिव सर्वंसहो महासमुद्र इव गम्भीरः ॥ १७ ॥
लाभेऽलाभे च जीविते मरणे सुखे च दुःखे च । सर्वत्रापि समभावः समश्च मानापमानेषु ॥ १८ ॥
करोति गुरुणां सकाशेऽभिग्रहं दशविधानपि श्रमणानाम् । वैयावृत्यं गृह्णाति षष्टप्रतिज्ञां लघुतपस्यपि ॥ १९ ॥

---

१. ०खवगोहिं-रं० ।

इय जाव नियपइन्नं परिपालइ सो अखंडपरिणामो । बहुवाससहस्सेहिं गएहिं तो तस्स तवनिहिणो ॥२०॥

सोहम्मसहामज्झे वेयावच्चम्मि तस्स निच्चलयं । सुंथणइ अमरनाहो अहो ! कयत्थो मुणी एस ॥२१॥

वेयावच्चमि थिरो नो सद्दहियं सुरेहिं तं दोहिं । काऊण साहुवेसं एगो बाहिं ठिओ ताण ॥२२॥

वसहीए गओ बीओ गिम्हे खरतरणिताविओ स मुणी । छट्ठतवचरणपारणनिमित्तमुक्खिवइ जा पढमं ॥२३॥

नवकोडिसुद्धकवलं ता वाहरियं सुरेण जइ कोइ । अत्थि मुणी इह गच्छे गिलाणपडियरणकयनियमो ॥२४॥

पडिजागरउ गिलाणं विसमावत्थं इमं निसामेउं । तो नंदिसेणासाहू समुट्ठिओ उज्झिउं कवलं ॥२५॥

केणोसहेण कज्जं ? कहिं कहिं सो ? त्ति तं पयंपंतो । सुरसाहुणा वि भणियं पाउक्खालेण[१] अभिभूओ ॥२६॥

सो चिट्ठइ अडवीए तं पुण निल्लज्ज ! एत्थ निच्चिंतो । भोत्तुं महुराहारं सुयसि सुहेणं अहोरत्तं ॥२७॥

वेयावच्चकरो हं ति नाममेत्तेण विहियसंतोसो । तो भणइ नंदिसेणो न पमायाओ मए नायं ॥२८॥

पणमिय पुणो पुणो वि य खामइ तो अमरसाहुणं एसो । तक्खेत्त-कालदुल्लहलंभं बहुओसहसमूहं ॥२९॥

आणाविओ जलं पि हु उण्हं तो सुरवरेण पइगेहं । विहिया अणेसणा से तह वि अदीणो सुरं छलिउं ॥३०॥

घेत्तूण तयं सव्वं संपत्तो तस्स साहुणो पासे । तो तं दट्ठुं स मुणी किर कुद्धो जंपए एवं ॥३१॥

चिट्ठामि अहमरन्ने रोगमहावेयणाए अकन्तो । तं पुण पाविट्ठ ! निकिट्ठ ! दुट्ठ ! चिट्ठसि सुहं सुत्तो ॥३२॥

इति यावन्निजप्रतिज्ञां परिपालयति सोऽखण्डपरिणामः । बहुवर्षसहस्रैर्गतैस्ततस्तस्य तपोनिधेः ॥ २० ॥

सौधर्मसभामध्ये वैयावृत्त्ये तस्य निश्चलताम् । संस्तौति अमरनाथोऽहो ! कृतार्थो मुनिरेषः ॥ २१ ॥

वैयावृत्ये स्थिरो न श्रद्धितं सुराभ्यां तद्द्वाभ्याम् । कृत्वा साधुवेशमेको बहि स्थितस्तयोः ॥ २२ ॥

वसत्यां गतो द्वितीयो ग्रीष्मे खरतरणितापितः स मुनिः । षष्टतपश्चरणपारणनिमित्तमुत्क्षिपति यावत् प्रथमम् ॥ २३ ॥

नवकोटिशुद्धकवलं तावद्व्याहृतं सुरेण यदि कोऽपि । अस्ति मुनिरिह गच्छे ग्लानप्रतिचरणकृतनियमः ॥ २४ ॥

प्रतिजागर्तु ग्लानं विषमावस्थमिमं निशम्य । ततो नन्दिषेणसाधुः समुत्थित उज्झित्वा कवलम् ॥ २५ ॥

केनौषधेन कार्यं ? कुत्र कुत्र स ? इति तं प्रजल्पन् । सुरसाधुनापि भणितं पायुक्षालेनाभिभूतः ॥ २६ ॥

स तिष्ठत्यटव्यां त्वं पुन निलज्ज ! अत्र निश्चिन्तः । भुक्त्वा मधुराहारं स्वपिषि सुखेनाहोरात्रम् ॥ २७ ॥

वैयावृत्यकरोऽहमिति नाममात्रेण विहित संतोषः । ततो भणति नन्दिषेणो न प्रमादान्मया ज्ञातम् ॥ २८ ॥

प्रणम्य पुनः पुनरपि च क्षाम्यति ततोऽमरसाधुमेषः । तत्क्षेत्र-कालदुर्लभलम्भं बहवोषधसमूहम् ॥ २९ ॥

आनायितो जलमपि खलूष्णं ततः सुरवरेण प्रतिगृहम् । विहितानैषणा तस्य तथाप्यदीनः सुरं छलित्वा ॥ ३० ॥

गृहीत्वा तकं सर्वं संप्राप्तस्तस्य साधोः पार्श्वे । तदा तं दृष्ट्वा स मुनिः किल क्रुद्धो जल्पत्येवम् ॥ ३१ ॥

तिष्ठाम्यहमरण्ये रोगमहावेदनयाऽऽक्रान्तः । त्वं पुनः पापिष्ठ ! निष्कृष्ट ! दुष्ट ! तिष्ठसि सुखं सुप्तः ॥ ३२ ॥

---

१. पायुक्षालेन मलोत्सर्गरोगेण ।

निब्भच्छिओ वि एरिसवयणेहिं पुणो पुणो वि खामेइ । अणुजाणाविय असुईविलित्तमंगं नियकरेहिं ॥३३॥
पक्खालिउं कओ सो साहू खंधम्मि नंदिसेणेण । खलियम्मि पए ताडइ सिरम्मि तं करपहारेहिं ॥३४॥
मुंचइ दुगंधमसुइं उवरिं सो नंदिसेणतवनिहिणो । जंपि किं कढिणकरेहि धरसि पाविट्ठ ! मह अंगं ॥३५॥
किं न वियाणसि पीडं परस्स निब्भग्गसेहर ! अणज्ज ? । इय निट्ठुरं भणंतस्स तस्स सो नंदिसेणमुणी ॥३६॥
चिंतइ कहं समाहिं करेमि सम्मं इमस्स ? मग्गम्मि । तो जं करेमि पीडे मिच्छामिह दुक्कडं तस्स ॥३७॥
इय चिंतिऊण भणियं भयवं ! मा कुणह नियमणे खेयं । गंतूण नियवसहिं करेमि नीरोगयं तुज्झ ॥३८॥
तत्तो सुरेहि विमलेण ओहिणा जाणिओ जहा एसो । तावुत्तिन्नसुवन्नं व निक्कलंको महासत्तो ॥३९॥
तो दो वि कडय-कुंडल-किरीड-केऊर-हारिदिप्पंतं । नियरूवं काऊणं नमिऊण तओ थुणंति मुणिं ॥४०॥
जय सुररायपसंसिय ! मुणिवेयावच्चकरणतल्लिच्छ ! । आबालकालपालियबंभव्वय ! मुणिवर ! नमो ते ॥४१॥
तं मोत्तुं को अन्नो पालइ एवंविहं नियपइन्नं ? । माणे वियंभमाणे जियाण इय तं मुणिं थोउं ॥४२॥
कहिउं नियवुत्तंतमसद्दहमाणा इयं तओ अमरा । नियठाणं संपत्ता तत्तो साहू वि नियवसहिं ॥४३॥
निम्ममच्चित्तो गंतुं गुरूण चरणारविंदयं नमिउं । अविरयवेयावच्च आलोयइ सुद्धपरिणामो ॥४४॥
तो बहुवाससहस्से वेयावच्चं करेवि समणाणं । विहियाणसणो अंते परियत्तइ जा नमोक्कारं ॥४५॥
तो असुहकम्मपरिणइवसेण तं नंदिसेणासाहुस्स । दोहग्गं संभरियं चित्ते जह सयलनारीण ॥४६॥

निर्भत्सितोऽप्येदृशवचनैः पुनः पुनरपि क्षामयति । अनुज्ञाप्याशूचिविलिप्तमङ्गं निजकरैः ॥ ३३ ॥
प्रक्षाल्य कृतः स साधुः स्कन्धे नन्दिषेणेन । स्खलिते पदे ताडयति शिरसि तं करप्रहारैः ॥ ३४ ॥
मुञ्चति दुर्गन्धमशूचिमुपरि स नन्दिषेणतपोनिधेः । जल्पति किं कठिनकरै र्धरसि पापिष्ट ! ममाङ्गम् ॥ ३५ ॥
किं न विजानासि पीडां परस्य निर्भाग्यशेखर ! अनार्य ? । इति निष्ठुरं भणतस्तस्य स नन्दिषेणमुनिः ॥ ३६ ॥
चिन्तयति कथं समाधिः करोमि सम्यगेतस्य ? मार्गे । ततो यत्करोमि पीडां मिथ्यामीह दुष्कृतं तस्य ॥ ३७ ॥
इति चिन्तयित्वा भणितं भगवन् ! मा कुरुत निजमनसि खेदम् । गत्वा निजकवसतिं करोमि निरोगतां तव ॥ ३८ ॥
ततः सुराभ्यां विमलेनावधिना जानितो यथैषः । तापोत्तीर्णसुवर्णमिव निष्कलङ्को महासत्त्वः ॥ ३९ ॥
ततो द्वावपि कटक-कुण्डल-किरिट-केयूर-हारदीप्यमानम् । निजरुपं कृत्वा नत्वा ततः स्तुतो मुनिम् ॥ ४० ॥
जय सुरराजप्रशंसित ! मुनिवैयावृत्यकरणतत्पर ! । आबालकालपालितब्रह्मव्रत ! मुनिवर ! नमस्ते ॥ ४१ ॥
त्वां मुक्त्वा कोऽन्यः पालयत्येवंविधां निजप्रतिज्ञाम् ? । माने विजृम्भमाणे जीवानामिति तं मुनिं स्तुत्वा ॥ ४२ ॥
कथयितुं निजवृत्तान्तमश्रद्धमानाविदं ततोऽमरौ । निजस्थानं संप्राप्तौ ततः साधुरपि निजवसतिम् ॥ ४३ ॥
निर्ममचित्तो गत्वा गुरुणां चरणाविन्दकं नत्वा । अविरतवैयावृत्त्यमालोचयति शुद्धपरिणामः ॥ ४४ ॥
ततो बहुवर्षसहस्रान् वैयावृत्यं कृत्वा श्रमणानाम् । विहितानशनोऽते परिवर्त्तयति यावन्नमस्कारम् ॥ ४५ ॥
ततोऽशुभकर्मपरिणतिवशेन तन्नन्दिषेणसाधोः । दौर्भाग्यं स्मृतं चित्ते यथा सकलनारीणाम् ॥ ४६ ॥

जाओ अहं अणिट्ठो दिट्ठो वि हु भाविओ न कस्सावि । तह जणणि-जणय-धण-रिद्धिनाससंभरणभावेण ॥४७॥
वारंताण वि साहूण तेण विहियं नियाणयं एयं । जइ मज्झ तवस्स फलं समत्थि ता अन्नजम्मम्मि ॥४८॥
होज्ज अहं तरुणीयणमणहरणो सयलसुंदरावयवो । नियसोहग्गविणिज्जियभुवणजणो जणमणाणंदो ॥४९॥
जह पउमरायरयणक्कएण गुंजाओ गयवरेण खरं । हरिणमएणिंगालं पीऊसरसेण जह गरलं ॥५०॥
वरघुसिणेण हलिद्दं कप्पद्दुमतरुवरेण एरंडं । तह तेण नियतवेणं सोहग्गं मग्गियं सारं ॥५१॥
तो मरिउं उप्पन्नो सत्तमकप्पम्मि भासुरो अमरो । तत्तो चुओ कुसट्टजणवयसोरियपुरे नयरे ॥५२॥
अंधगवन्हिनरेसरपियासुभद्दाए कुच्छिसंभूओ । उप्पन्नो कुमरत्तेण विहियवसुदेववरनामो ॥५३॥
दसमो य दसाराणं समुद्दविजएऽणवज्जरज्जसिरिं । पालंते सो सव्वंगसुंदरं जोव्वणं पत्तो ॥५४॥
सवणंतपत्तनयणो सारयहरिणंकबिंबसमवयणो । मंसल-पिहुवच्छयलो पुरग्गलादीहभुयजुयलो ॥५५॥
जत्तो जत्तो वच्चइ कुमरो वच्चंति तत्थ तत्थेव । निस्सेसरमणिनियरा परव्वसा तस्स रूवेण ॥५६॥
तस्संगमुस्सुयाओ नियपइपल्लंकविहियनिद्दाओ । रमणीओ समयणाओ सुविणे कुमरस्स संजोगं ॥५७॥
पाविय उस्सुमिणोऽयंति सुहय ! तुह विरहवेयणाविवसं । मं निव्वावसु नियअंगसंगमोसहपयाणेण ॥५८॥
तद्दंसणुस्सुयाओ पुच्छंति परोप्परं पुरंधीओ । कत्थऽच्छइ ? कत्थ गओ ? कत्थ सुओ सो हला सुहओ ? ॥५९॥
दट्ठूण पुणो कुमरं का वि कडक्खेहिं हणइ अह का वि । कुणइ नियअंगभंगं अंगावयवे पयासंती ॥६०॥

जातोऽहमनिष्ठो दृष्टोऽपि खलु भावितो न कस्या अपि । तथा जननी-जनक-धनर्द्धिनाशस्मरणभावेन ॥ ४७ ॥
वार्यमाणानामपि साधूनां तेन विहितं निदानकमेतद् । यदि मम तपसः फलं समस्ति तावदन्यजन्मनि ॥ ४८ ॥
भवेयमहं तरुणीजनमनोहरणः सकलसुन्दरावयवः । निजसौभाग्यविनिर्जितभुवनजनो जनमनानन्दः ॥ ४९ ॥
यथा पद्मरागरत्नक्रयेण गुञ्जा गजवरेण खरम् । हरिणमदेनाङ्गारं पीयूषरसेन यथा गरलम् ॥ ५० ॥
वरघुसृणेन हरिद्रं कल्पद्रुमतरुवरेणैरण्डम् । तथा तेन निजतपसा सौभाग्यं मार्गितं सारम् ॥ ५१ ॥
ततो मृत्वोत्पन्नः सप्तमकल्पे भासुरोऽमरः । ततश्च्युतः कुशार्तजनपदशौर्यपूरे नगरे ॥ ५२ ॥
अन्धकवह्निनरेश्वरप्रियासुभद्रायाः कुक्षिसम्भूतः । उत्पन्नः कुमारत्वेन विहितवसुदेववरनामा ॥ ५३ ॥
दशमश्च दशार्हाणां समुद्रविजयेऽनवद्यराज्यश्रियम् । पालयति सः सर्वाङ्गसुन्दरं यौवनं प्राप्तः ॥ ५४ ॥
श्रवणान्तप्राप्तनयनः शारदहरिणाङ्कबिम्बसमवदनः । मांसल-पृथुवक्षःस्थलः पुरार्गलादीर्घभुजयुगलः ॥ ५५ ॥
यत्र यत्र व्रजति कुमारो व्रजन्ति तत्र तत्रैव । निःशेषरमणिनिकराः परवशास्तस्य रुपेण ॥ ५६ ॥
तत्सङ्गमोत्सुका निजपतिपल्यङ्कविहितनिद्राः । रमण्यः समदनाः स्वप्ने कुमारस्य संयोगम् ॥ ५७ ॥
प्राप्योत्स्वप्नोऽयमिति सुभग ! तव विरहवेदनाविवशाम् । मां निर्वापय निजाङ्गसङ्गमौषधप्रदानेन ॥ ५८ ॥
तद्दर्शनोत्सुकाः पृच्छन्ति परस्परं पुरन्ध्र्यः । कुत्रास्ते ? कुत्र गतः ? कुत्र सुप्तः स हला सुभगः ? ॥ ५९ ॥
दृष्ट्वा पुनः कुमारं कापि कटाक्षै र्हन्त्यथ कापि । करोति निजाङ्गभङ्गमङ्गावयवान् प्रकाशमाणा ॥ ६० ॥

का वि पुणो नियपुत्तं गाढं आलिंगिऊण चुंबेइ । अवरा सहिं सहासं पहणइ लीलारविंदेण ॥६१॥

विप्फुरियदसणकिरणा का वि हु पहसेति कुणइ अह अवरा । दरउक्कंपिरपिवरथणत्थलं कंन्नकडुयणं ॥६२॥

एवं मयणवियारा तरुणीणं हुंति तम्मि दिट्ठम्मि । इय एवं निस्सेसा नयरी वि विसंठुला जाया ॥६३॥

तत्तो उत्तमपुरिसा मिलिऊण समुद्दविजयनरनाहं । मग्गियअभयपयाणा एवं विन्नविउमाढत्ता ॥६४॥

देव ! तुह लहुयभाया सोमो सरलो पियंवओ धीरो । सीलसमलंकियंगो अणंगरूवो य वसुदेवो ॥६५॥

कयसिंगारो नरनाहकुमरपरिवारिओ पुरीमज्झे । जत्तो जत्तो कीलानिमित्तमल्लियइ लीलाए ॥६६॥

तत्थ य तत्थ य तद्दंसणुस्सुओ बाल-तरूण-थेरो य । नर-नारिगणोऽणुदिणं तग्गमणा-ऽऽगमपहं नियइ ॥६७॥

तं दट्ठुं पुररमणीनियरो निस्सेसच्चत्तवावारो । मयणानलजलियंगो तस्संगसमुस्सुओ सामि ! ॥६८॥

परिहरियगरुयलज्जो वज्जियनिस्सेसनिययमज्जाओ । धोत्तूरिओ व्व संजायधाउखोभो व्व सगहो व्व ॥६९॥

न कुणइ रंधण-खंडण-पीसणपमुहाणि भवणकज्जाणि । ता सामिसाल ! सीयंति सयलनयरीकुडुंबाणि ॥७०॥

किं वहुणा तिय-चच्चर-चउमुह-रच्छाइएसु ठाणेसु । वसुदेवो वसुदेवो त्ति जंपमाणो भमइ सुन्नो ॥७१॥

एवं विसंठुलत्ते पत्ता नयरी नरिंद ! सव्वा वि । थोवो वि नत्थि दोसो इह पहु ! वसुदेवकुमरस्स ॥७२॥

ता समासिल ! तह कह वि जयसु जह होइ पुरवरी सुत्था । तं निसुणिउं नरिंदो पूइत्तु महायणं भणइ ॥७३॥

वीसत्था संचिट्ठह सव्वं पि हु सुंदरं करिस्समहं । भणिउं महापसायं समुट्ठिया सेट्ठिणो सव्वे ॥७४॥

कापि पुन निजपुत्रं गाढमालिङ्ग्य चुम्बति । अपरा सखीं सहास्यं प्रहन्ति लीलारविन्देन ॥ ६१ ॥

विस्फुरितदशनकिरणा कापि खलु प्रहसति करोत्यथापरा । ईषदुत्कम्पत्पीवरस्तनस्थलं कर्णकण्डूयनम् ॥ ६२ ॥

एवं मदनविकारास्तरुणीनां भवन्ति तस्मिन्दृष्टे । इत्येवं निःशेषा नगर्यपि विसंस्थूला जाता ॥ ६३ ॥

तत उत्तमपुरुषा मिलित्वा समुद्रविजयनरनाथम् । मार्गिताभयप्रदाना एवं विज्ञप्तुमारब्धाः ॥ ६४ ॥

देव ! तव लघुकभ्राता सौम्यः सरलः प्रियंवदो धीरः । शीलसमलङ्कृताङ्गोऽणङ्गरुपश्च वसुदेवः ॥ ६५ ॥

कृतशृङ्गारो नरनाथकुमारपरिवारितः पुरीमध्ये । यत्र यत्र क्रीडानिमित्तमुपसर्पति लीलया ॥ ६६ ॥

तत्र च तत्र च तद्दर्शनोत्सुको बाल-तरुण-स्थविरश्च । नर-नारिगणोऽनुदिनं तद्गमनागमनपथं पश्यति ॥ ६७ ॥

तं दृष्ट्वा पुररमणिनिकरो निःशेषत्यक्तव्यापारः । मदनानलज्वलिताङ्गस्तस्यसङ्गमोत्सुकः स्वामिन् ! ॥ ६८ ॥

परिहृतगुरुकलज्जो वर्जितनिःशेषनिजकमर्यादः । धर्तुरक इव सञ्जातधातुक्षोभ इव सग्रह इव ॥ ६९ ॥

न करोति पाचन-खण्डन-पेषणप्रमुखानि भवनकार्याणि । ततः स्वामिशाल ! सीदन्ति सकलनगरीकुटुम्बानि ॥ ७० ॥

किं बहुना त्रिक-चतुष्क-चतुर्मुख-रथ्यादिकेषु स्थानेषु । वसुदेवो वसुदेव इति जल्पन्भ्रमति शून्यः ॥ ७१ ॥

एवं विसंस्थुलत्वं प्राप्ता नगरी नरेन्द्र ! सर्वापि । स्तोकोऽपि नास्ति दोष इह प्रभो ! वसुदेवकुमारस्य ॥ ७२ ॥

ततः स्वामिशाल ! तथा कथमपि यतस्व यथा भवति पुरवरी सुस्था । तन्निश्रुत्य नरेन्द्रः पूजयित्वा महाजनं भणति ॥७३॥

विश्वस्तः संतिष्ठत सर्वमपि खलु सुन्दरं करिष्याम्यहम् । भणित्वा महाप्रसादं समुत्थिताः श्रेष्ठिनः सर्वे ॥ ७४ ॥

रायपणामनिमित्तं वसुदेवो आगओ कयपणामो । उवविट्ठो तो भणिओ निवेण अइदुब्बलो वच्छ !॥७५॥

किं एवमेव नयरीपरिभमणपरिस्समं सया कुणसि ? । इहइं चिय नियइ[1]कलाकलावपरिवत्तणं कुणसु ॥७६॥

भणिया य सिवादेवी सपरियणा नरवरेण एगंते । एसो निस्सरमाणो निवारियव्वो गिहाओ बहिं ॥७७॥

तो वसुदेवकुमारो तत्थ वि मणहरविलासदुल्ललिओ । बहुविहविणोयवक्खित्तमाणसो गमइ दिवसाइं ॥७८॥

अह अन्नया नरेसरविलेवणं गिण्हिऊण गच्छंतिं । दासिं दट्ठुं कुमरेण झत्ति उद्दालियं तत्तो ॥७९॥

तीए कुवियाए भणियं एवमणक्खत्तयाए[2] तं रुद्धो । न हु लहसि परिब्भमिउं तो वसुदेवेण दासीए ॥८०॥

नियअंगुलीयरयणं दाऊणं पुच्छिया निबंधेण । तो तीए जहावुत्तं कहियं सव्वं कुमारस्स ॥८१॥

तं सोउं माणधणो तं अवमाणं मणे मुणेऊण । नीहरिऊणं लिहिऊण भुज्जखंडे सिलोयमिणं ॥८२॥

पुरीजनवचः श्रुत्वा नरेन्द्रेणापमानितः । प्रविष्टोऽहं ज्वलज्ज्वालाकरालेऽस्मिञ्चितानले ॥८३॥

तो तत्थ मडयमेगं पज्जालेऊण एक्कगो[3] चेव । परिभमिओ जह खेयरकन्नानियरं समुव्वूढो ॥८४॥

जह जायवाण मिलिओ जह बलकेसवसुया समुप्पना । तह सव्वं नेयव्वं हरिवंसाओ पवित्थरओ ॥८५॥

॥ शौर्याख्यानकं समाप्तम् ॥१९॥

इदानीं वीरमत्याख्यानकस्यावसरः, तच्च दवदन्त्याख्यानके भणितमित्यत्र नोच्यत इति क्रमागतस्य रुक्मिण्याख्यानकस्यावसरः । तच्चेदम्-

---

राजाप्रणामनिमित्तं वसुदेव आगतः कृतप्रणामः । उपविष्टस्ततो भणितो नृपेणातिदुर्बलो वत्स ! ॥ ७५ ॥

किमेवमेव नगरीपरिभ्रमणपरिश्रमं सदा करोषि ? । इह चैव निजककलाकलापपरिवर्तनं कुरु ॥ ७६ ॥

भणिता च शिवादेवी सपरिजना नरवरेणैकान्ते । एष निःस्रीयमाणो निवारयितव्यो गृहाद्बहिः ॥ ७७ ॥

ततो वसुदेव कुमारस्तत्रापि मनोहरविलासदुर्ललितः । बहुविधविनोदव्याक्षिप्तमानसो गमयति दिवसानि ॥ ७८ ॥

अथान्यदा नरेश्वरविलेपनं गृहीत्वा गच्छन्तीम् । दासां दृष्ट्वा कुमारेण शीघ्रमुत्क्षिप्तं ततः ॥ ७९ ॥

तथा कुपितया भणितमेवमक्षात्रतया त्वं रुद्धः । न खलु लभसे परिभ्रान्तुं ततो वसुदेवेन दास्यै ॥ ८० ॥

निजाङ्गुलिरत्नं दत्त्वा पृष्टा निबन्धेन । ततस्तया यथावृत्तं कथितं सर्वं कुमारस्य ॥ ८१ ॥

तत् श्रुत्वा मानधनस्तमपमानं मनसि मुणित्वा । निःसृत्य लिखित्वा भुर्जखण्डे श्लोकमिदम् ॥ ८२ ॥

ततस्तत्र मृतकमेकं प्रज्वाल्यैकक्श्चैव । परिभ्रान्तो यथा खेचरकन्यानिकरं समुद्वोढः ॥ ८४ ॥

यथा यादवानां मिलितो यथा बलकेशवसुताः समुत्पन्नाः । तथा सर्वं ज्ञातव्यं हरिवंशात्प्रविस्तरतः ॥ ८५ ॥

॥ शौर्याख्यानकं समाप्तम् ॥ १९ ॥

---

१. निजककलाकलाप । २. ओणक्खत्तयाए = अक्षात्रतया । ३. एगगो-रं० ।

लच्छिग्गामम्मि अतुच्छलच्छिउच्छलियगरुयमाहप्पो । आसि पसंतो विप्पो जणप्पिओ सोमदेवो त्ति ॥१॥

हरिणच्छी लच्छिमई छणमयलंछणसमाणवरवयणा । पाणप्पिया पिया से मंडइ निच्चं पि अप्पाणं ॥२॥

अह अन्नया य पक्खोपवासपारणदिणे मुणी तस्स । भवणे समाहिगुत्तो नामेण महीनिहियनयणो ॥३॥

भिक्खट्ठाए पविट्ठो दिट्ठो अब्भुट्ठिओ य तुट्ठेण । तेण तओ सा भणिया भिक्खं मुणिणो पयच्छ पिए ! ॥४॥

इय जंपिऊण भवणाओ निग्गओ बंभणी वि नियवयणं । मंडंती पडिबिंबं पेच्छइ दप्पणतले मुणिणो ॥५॥

निम्मंसमट्ठिचम्मावसेसमइपयडबहुसिराजालं । दुग्गंधमलविलित्तं तं दट्ठुं कोवमावन्ना ॥६॥

तो तीए बद्धभिउडीभासुरदुप्पेच्छरत्तनेत्ताए । निब्भच्छिऊण निट्ठुरगिराहिं निद्धाडिओ साहू ॥७॥

तत्तो तवस्सिआसायणाए सत्तमदिणम्मि पावाए । तीए उंबरकोढो बाढं जाओ सरीरम्मि ॥८॥

पंकेरूहोवमं पि हु कमजुयलं मंदुलंचियं सहसा । रंभासमं पि ऊरूजुयलं सिंबलिसमं जायं ॥९॥

रमणं मणहरणं पि हु रोगेण कयं जुवाणहसणिज्जं । तिवलीधरं पि मज्झं जायं रोगेण अमणुन्नं ॥१०॥

कणयकलसोवमं पि हु जुवाणमणमोहणं पि थणजुयलं । पगलंतपूयधाराखरंटियं कंन दूमेइ ? ॥११॥

चंपयलयोपमं पि हु बाहुजुयं जायमयगरसमाणं । सरलंगुलिकलियं पि हु करयलजुयलं गलेवि गयं ॥१२॥

बिंबाफलोवमं पि हु उट्ठपुडं कोट्ठथोत्थरं जायं । सरला वि नासिया से नट्ठा कुट्ठस्स भीय व्व ॥१३॥

रुक्मिण्याख्यानकम् - ॥ २१ ॥

लक्ष्मीग्रामेऽतुच्छलक्ष्म्युच्छलितगुरुकमाहात्म्यः । आसीत् प्रशान्तो विप्रो जनप्रियः सोमदेव इति ॥ १ ॥

हरिणाक्षी लक्ष्मीमती क्षणमृगाङ्कलाञ्छनसमानवरवदना । प्राणप्रिया प्रिया तस्य मण्डयति नित्यमप्यात्मानम् ॥ २ ॥

अथान्यदा च पक्षोपवासपारणदिने मुनिस्तस्य । भवने समाधिगुप्तो नाम्ना महीनिहितनयनः ॥ ३ ॥

भिक्षार्थाय प्रविष्टो दृष्टोऽभ्युत्थितश्च तुष्टेन । तेन ततः सा भणिता भिक्षां मुनेः प्रयच्छ प्रिये ! ॥ ४ ॥

इति जल्पित्वा भवनान्निर्गतो ब्राह्मण्यपि निजवदनम् । मण्डन्ती प्रतिबिम्बं पश्यति दर्पणतले मुनेः ॥ ५ ॥

निर्मांसास्थिचर्मावशेषमतिप्रकटबहुशिराजालम् । दुर्गन्धमलविलिप्तं तं दृष्ट्वा कोपमापन्ना ॥ ६ ॥

ततस्तथा बद्धभृकुटीभासुरदुष्प्रेक्ष्यरक्तनेत्रया । निर्भर्त्स्य निष्ठुरगीर्भि निष्काशितः साधुः ॥ ७ ॥

ततस्तपस्व्याशातनया सप्तमदिने पापायाः । तस्या उम्बरकुष्टो गाढं जातः शरीरे ॥ ८ ॥

पङ्केरुहोपममपि खलु क्रमयुगलं दर्दुलमेव[१] सहसा । रम्भासममप्युरुयुगलं सिम्बलिसमं जातम् ॥ ९ ॥

रमणं मनोहरणमपि खलु रोगेन कृतं युवाहसनीयम् । त्रिवलीधरमपि मध्यं जातं रोगेणामनोज्ञम् ॥ १० ॥

कनककलशोपममपि खलु युवामनोमोहनमपि स्तनयुगलम् । प्रगलत्पूतधाराखरण्टितं कं न दूनोति ? ॥ ११ ॥

चम्पकलतोपममपि खलु बाहुयुगं जातमजगरसमानम् । सरलाङ्गुलि कलितमपि खलु करतलयुगलं गलित्वा गतम् ॥ १२ ॥

बिम्बफलोपममपि खलु ओष्टपुटं कोष्टशोथस्तरं जातम् । सरलापि नासिका तस्या नष्टा कुष्टाद्भीतेव ॥ १३ ॥

---

१. मेंढक के पांव जैसा ।

एवं उम्बरकोढक्कंता कंता दिएण परिचत्ता । परिहरिया बंधूहि वि तओ गया गरुयवेरग्गं ।।१४।।
पविसिय करालजाले जलणे मरिऊण तम्मि गामम्मि । अट्टज्झाणवसेणं रायउले रासही जाया ।।१५।।
पायसमपावमाणा कइहि वि दिवसेहि मरिउमुप्पन्ना । गड्डासूयरिगब्भे तओ वि मरिऊण साणत्ते ।।१६।।
जाया परिब्भमंती दड्ढा तत्तो वणग्गिणा रन्ने । मरिऊण लाडदेसे भरुयच्छसमीवगामम्मि ।।१७।।
नावियधूया जाया दुव्वन्ना दुस्सरा दुगंधा य । काण त्ति विहियनामा तग्गंधं असहमाणेहिं ।।१८।।
जणगाइऐहि नम्मयतरंगिणीतीरपरिसरे रइयं । रोहिंसकडकुडीरं तो तत्थ ठियाऽणुदिवसं पि ।।१९।।
जणमुत्तारइ नावाए अन्नया सा समाहिगुत्तमुणी । सिसरम्मि नम्मयापुलिणपरिसरे विहियउस्सग्गो ।।२०।।
दिट्ठो तीए तरंगिणितरंगजलकणविमिस्सवाएहिं । पहणिज्जंतो संझासमए संजायकरूणाए ।।२१।।
मारुयनिवारणत्थं समंतओ साहुणो खडभरेण । वाडिं रइऊण गया समागया पुण पभायम्मि ।।२२।।
अभिवंदिउं मुणिंदं उवविट्ठा देसणा कया तेण । तो पडिबुद्धा पभणइ भयवं तं कत्थई दिट्ठो ।।२३।।
पुव्विं मए तओ सो साहू नाणेण कहइ तीए भवे । संजायजाइसरणा तो पेच्छइ नियभवे सा वि ।।२४।।
अभिवंदिय मुणिचरणा संजाया साविया तओ मुणिणा । धम्मसिरीअज्जाए समप्पिया तीए सह सा वि ।।२५।।
विहरंती संपत्ता कम्मि वि गामम्मि तयणु अज्जाए । उवणीया नायलसावयस्स सद्धम्मसीलस्स ।।२६।।

एवमुम्बरकृष्टाक्रान्ता कान्ता द्विजेन परित्यक्ता । परिहृत्य बन्धुभिरपि ततो गता गुरुकवैराग्यम् ॥ १४ ॥
प्रविश्य करालज्वाले ज्वलने मृत्वा तस्मिन्ग्रामे । आर्त्तध्यानवशेन राजकुले रासभी जाता ॥ १५ ॥
पायसमप्राप्यमाना कतिभिरपि दिवसै मृत्वोत्पन्ना । गर्ताशूकरीगर्भे ततोऽपि मृत्वा श्वानत्वे ॥ १६ ॥
जाता परिभ्रमन्ती दग्धा ततो वनाग्निनारण्ये । मृत्वा लाटदेशे भृगुकच्छसमीपग्रामे ॥ १७ ॥
नाविकदुहिता जाता दुवर्णा दुस्स्वरा दुर्गन्धा च । काणेति विहितनामा तद्गन्धमसहमानैः ॥ १८ ॥
जनकादिकै नर्मदातरङ्गिणीतीरपरिसरे रचितम् । रोहतक[1]कृतकुटीरं ततस्तत्र स्थितानुदिवसमपि ॥ १९ ॥
जनमुत्तारयति नावयान्यदा स समाधिगुप्तमुनिः । शिशिरे नर्मदापुलीनपरिसरे विहितोत्सर्गः ॥ २० ॥
दृष्टस्तया तरङ्गिणितरङ्गजलकणविमिश्रवातैः । प्रहण्यमानः सन्ध्यासमये सञ्जातकरुणया ॥ २१ ॥
मारुतनिवारणार्थं समन्ततः साधोः खडभरेण । [2]वाडीं रचयित्वा गता समागता पुनःप्रभाते ॥ २२ ॥
अभिवन्द्य मुनीन्द्रमुपविष्टा देशना कृता तेन । ततः प्रतिबुद्धा प्रभणत्येवं त्वं कुत्रचिद् दृष्टः ॥ २३ ॥
पूर्वे मया ततः स साधु ज्ञनेन कथयति तस्या भवान् । सञ्जातजातिस्मरणा ततः पश्यति निजभवान् सापि ॥ २४ ॥
अभिवन्द्य मुनिचरणौ सञ्जाता श्राविका ततो मुनिना । धर्मश्रीआर्यायाः समर्पिता तस्याः सह सापि ॥ २५ ॥
विहरन्ती सम्प्राप्ता कस्मिन्नपि ग्रामे तदन्वार्यया । उपनीता नागलश्रावकस्य सद्धर्मशीलस्य ॥ २६ ॥

---

१. तृणविशेष २. 'वाड' इति भाषायाम्

वेयावच्चं चेईहरम्मि सा कुणइ संठिया तत्थ । एगंतरोववासे बारस वरिसाइं काऊण ॥२७॥

विहियाणसणा मरिऊण अच्चुइंदस्स पणइणई जाया । पलिओवमाणि पणपन्न तत्थ भोत्तूण सोक्खाइं ॥२८॥

तत्तो चुया वराडगविसए कुंडिणिपुरीए उप्पन्ना । धूया भेसइरन्नो जसवइदेवीजढरजाया ॥२९॥

नामेण रुप्पिणी रुप्पिकुमरभइणी मणुन्नतारुन्ना । एत्तो य धणयनिम्मियबारवईए पुरवरीए ॥३०॥

उड्डमरसमरदोघट्टपट्टकुंभयडपाडणमइंदो । भरहद्धचक्कवट्टी कन्हो नामेण नरनाहो ॥३१॥

अह अन्नया य गयणंगणेण नारयरिसी समागंतुं । संभासिऊण भूवालमंडलं कन्ह-बलपमुहं ॥३२॥

अंतेउरे पविट्ठो अब्भुट्ठाणाइविहियसम्माणो । सव्वाहि वि हरिअंतेउरीहिं न हु सच्चभामाए ॥३३॥

विरइयसिंगाराए आयरसगिहम्मि पिच्छमाणाए । अप्पाणं तो कुविओ चिंतइ नारयरिसी एवं ॥३४॥

पेच्छ जहा नियसोहग्गवायलग्गाए न हु अहं नमिओ । ता एयाए सवक्किं करेमि जह खिज्जए एसा ॥३५॥

इय चिंतिऊण निसियासिपट्टसामलनहं समुप्पइओ । गंतु कुंडिणिनयरीए रुप्पिरायाइ आलविउं ॥३६॥

अंतेउरे पविट्ठेण तेण छणरयणिरमणसमवयणा । इंदीवरदलनयणा रत्ताहरहसियबिंबिफला ॥३७॥

परिपक्कफुडियदाडिमबीयावलिदित्तदंतपंतिजुया । कलरावकोइलामंजुभासिणी कंवुसमकंठा ॥३८॥

वरसिरिसकुसुमकोमलरणंतआभरणचारुभूयजुयला । कंकेल्लिपल्लवारुणपाणिजुया फुरियनहकिरणा ॥३९॥

सुरकुंभिकुंभपीवरपओहरा मुट्ठिगिज्झवरमज्झा । गंभीरनाभिकूवा नइपुलिणमणोहरनियंबा ॥४०॥

वैयावृत्त्यं चैत्यगृहे सा करोति संस्थिता तत्र । एकान्तरोपवासान्द्वादश वर्षाणि कृत्वा ॥ २७ ॥

विहितानशना मृत्वाच्यूतेन्द्रस्य प्रणयिनी जाता । पल्योपमानि पञ्चपञ्चाशत्तत्र भुक्त्वा सौख्यानि ॥ २८ ॥

ततच्युता वराटकविषये कुण्डिनीपूर्यामुत्पन्ना । दुहिता भेषजिद्राज्ञो यशवतीदेवीजठरजाता ॥ २९ ॥

नाम्ना रुक्मिणी रुक्मिकुमारभगिनी मनोज्ञतारुण्या । इतश्च धनदनिर्मितद्वारावत्यां पूरवर्याम् ॥ ३० ॥

उद्दामसमरहस्तीसमूहकुम्भतटपाटनमृगेन्द्रः । भरतार्द्धचक्रवर्त्ती कृष्णो नाम्ना नरनाथः ॥ ३१ ॥

अथान्यदा च गगनाङ्गणेन नारदर्षि समागत्य । सम्भाष्य भूपालमण्डलं कृष्ण-बलप्रमुखम् ॥ ३२ ॥

अन्तःपुरे प्रविष्टोऽभ्युत्थानादि विहितसन्मानः । सर्वाभिरपि हर्यन्तःपुरिभि र्न खलु सत्यभामया ॥ ३३ ॥

विरचितशृङ्गारयादर्शगृहे पश्यन्त्या । आत्मानं ततः कुपितश्चिन्तयति नारदर्षिरेवम् ॥ ३४ ॥

पश्य यथा निजसौभाग्यवादलग्नया न खल्वहं नतः । तावदस्याः सपत्निं करोमि यथा खिद्यत एषा ॥ ३५ ॥

इति चिन्तयित्वा निशितासिपट्टश्यामनभः समुत्पतितः । गत्वा कुण्डिनीनगर्या रुक्मिराजादय आलप्य ॥ ३६ ॥

अन्तःपुरे प्रविष्टेन तेन क्षणरजनिरमणसमवदना । इन्दीवरदलनयना रक्ताधरहसितबिम्बफला ॥ ३७ ॥

परिपक्वस्फुटितदाडिमबीजावलिदिप्तदन्तपङ्क्तियुता । कलरावकोकिलामञ्जुभाषिणी कम्बुसमकण्ठा ॥ ३८ ॥

वरशिरिषकुसुमकोमलरणदाभरणचारुभुजयुगला । कङ्केलिपल्लवारुणपाणियुग्मा स्फुरितनखकिरणा ॥ ३९ ॥

सुरकुम्भिकुम्भपीवरपयोधरा मुष्टिग्राह्यवरमध्या । गम्भीरनाभिकूपा नदीपुलीनमनोहरनितम्बा ॥ ४० ॥

रंभाखंभसविब्भमऊरुजुया कमलसरिसकमजुयला । दिट्ठा रुप्पिनरेसरभइणी तीए वि सो दिट्ठो ॥४१॥

तो विहियअग्घपत्ताए तीए पणएण नारओ नमिओ । तेणावि रुप्पिणीए आसीसा एरिसा दिन्ना ॥४२॥

तं होज्ज अग्गमहिसी वच्छे ! भरहद्धचक्किकन्हस्स । तो तीए रिसी पुट्ठो भयवं ! को एस कन्हनिवो ॥४३॥

अह नारएण कहियं चरियं आबालकालओ हरिणो । जह अमरा वि हु कम्मयरवित्तिणो तस्स निच्चं पि ॥४४॥

सोहग्गाइ समग्गं पि गुणगणं वन्निऊण तो तीए । रूवं लिहिऊण पडे संपत्तो कन्हपासम्मि ॥४५॥

तो तस्स चित्तपडिया समप्पिया सो वि तं निहालंतो । तीए वररूवरंजियहियओ अणुरायमावन्नो ॥४६॥

तं पुच्छइ किं खेयरकन्ना ? पायालकन्नया अहवा ? । किं गोरी ? गंधारी ? उयाहु अमरंगणा का वि ? ॥४७॥

तो नारएण भणियं एसा रुप्पिस्स राइणो भइणी । कन्हेण तओ वरणाय पेसिया तत्थ नियपुरिसा ॥४८॥

तो रुप्पिपुहिवइणा भइणी दिन्ना न कन्हनरवइणओ । गोवाला हीणकुल त्ति कलिय दिन्ना पुणो तेण ॥४९॥

सायरमेसा सिसुपालपुहइवइणो नरिंदतिलयस्स । अह पइरिक्के भणिया रुप्पिणिकुमरी पिउसियाए ॥५०॥

वच्छे ! तुह बालत्ते अइमुत्तयसाहुणा कहियमेयं । अग्गमहिसी भविस्सि एसा कन्हस्स नरवइणो ॥५१॥

तो पुच्छिओ मए सो साहू किह कन्हनरवइं अम्हे । जाणिस्सामो तेणावि पभणियं पच्छिमदिसाए ॥५२॥

वियरिस्सइ बारवईपुरीए ठाणे महन्नवो जस्स । सो कन्हो त्ति (य) भणिऊण मुणिवरो विहरिओ वच्छे ! ॥५३॥

इन्हिं सो वरयनरेहिं पयडिओ तं पुणो न दिन्ना से । दिन्ना सिसुपालनरेसरस्स ता रुप्पिणी भणइ ॥५४॥

रम्भास्तम्भसविभ्रमोरुयुग्मा कमलसदृशक्रमयुगला । दृष्टा रुक्मिनरेश्वरभगिनी तयापि स दृष्टः ॥ ४१ ॥

ततो विहितार्घ्यपत्रया तया प्रणयेन नारदो नतः । तेनापि रुक्मिण्यै आशीषा ईदृशा दत्ताः ॥ ४२ ॥

त्वं भवाग्रमहिषी वत्से ! भरतार्धचक्रिकृष्णस्य । ततस्तयर्षिःपृष्टोभगवन् ! क एष कृष्णो नृपः ? ॥ ४३ ॥

अथ नारदेन कथितं चरितमाबालकालाद्धरेः । यथामरा अपि खलु कर्मकरवर्त्तिनस्तस्य नित्यमपि ॥ ४४ ॥

सौभाग्यादिसमग्रमपि गुणगणं वर्णयित्वा ततस्तस्याः । रुपं लिखित्वा पटे सम्प्राप्तः कृष्णपार्श्वे ॥ ४५ ॥

ततस्तस्य चित्रपटिका समर्पिता सोऽपि तं निभालयन् । तस्या वररुपरञ्जितहृदयोऽनुरागमापन्नः ॥ ४६ ॥

तं पृच्छति किं खेचरकन्या ? पातालकन्याऽथवा ? । किं गौरी ? गान्धारी ? उदाहृवमराङ्गना कापि ? ॥ ४७ ॥

ततो नारदेन भणितमेषा रुक्मिणो राज्ञो भगिनी । कृष्णेन ततो वरणाय प्रेषितास्तत्र निजपुरुषाः ॥ ४८ ॥

ततो रुक्मिपृथिविपतिना भगिनी दत्ता न कृष्णनरपतेः । गोपाला हीनकुलेति कलित्वा दत्ता पुनस्तेन ॥ ४९ ॥

सादरमेषा शिशुपालपृथिवीपते नरेन्द्रतिलकस्य । अथैकान्ते भणिता रुक्मिणीकुमारी पितृस्वस्रा ॥ ५० ॥

वत्से ! तव बालत्वेऽतिमुक्तकसाधुना कथितमेतद् । अग्रमहिषी भविष्यत्येषा कृष्णस्य नरपतेः ॥ ५१ ॥

तदा पृष्टो मया स साधुः कथं कृष्णनरपतिं वयम् । जानिष्यामस्तेनापि प्रभणितं पश्चिमदिशि ॥ ५२ ॥

वितरिष्यति द्वारावतीपूर्याः स्थानं महार्णवो यस्य । स कृष्ण इति [च]भणित्वा मुनिवरो विहृतो वत्से ! ॥ ५३ ॥

इदानीं स वरकनरैः प्रकटितस्तं पुन र्न दत्ता तस्मै । दत्ता शिशुपालनरेश्वराय ततो रुक्मिणी भणति ॥ ५४ ॥

किं अंब ! तं न कीरइ मुणिवयणं ? तयणु चिंतियं तीए । जह एसा भणइ इमं तह कन्हे बद्धअणुराया ॥५५॥
इय नाऊणं कन्हस्स पेसिओ पिउसियाए नियदूओ । जह माहसुद्धअट्ठमितिहीए नागस्स भवणम्मि ॥५६॥
पच्छन्ना गच्छिस्सं रुप्पिणिसहिया य नागपूयट्ठा । तत्थ तए पुरिसोत्तम ! आगंतव्वं इओ य तहिं ॥५७॥
सिसुपालस्स विवाहो पारद्धो रुप्पिणा नरिंदेण । सिसुपालो संपत्तो महंतसामंतसंजुत्तो ॥५८॥
सो वुत्तंतो नारयरिसिणा रणकामएण कन्हस्स । कहिओ तो कन्हो वि हु रामेण समं रहारूढो ॥५९॥
पत्तो य कुंडिणिपुरिं पच्छन्नो पिउसिया वि तम्मि दिणे । सह रुप्पिणीए बहुथेरिनियरपरिवारजुत्ताए ॥६०॥
नागस्स गिहं गंतूण पूयणं जाव कुणइ पडिमाए । तत्तो चरेहिं कहियं जह पत्ता कन्ह-बलभद्दा ॥६१॥
तो वासुदेवराया रहाओ उत्तरिय पिउसियं नमइ । भणइ य रुप्पिणि ! सहं तुज्झ निमित्तं अहं एत्थ ॥६२॥
संपत्तो जइ तुह माणसस्स पडिहाइ ता समारुहसु । रहरयणे तो पुच्छिय पिउस्सियं सा समारूढा ॥६३॥
बलदेव-वासुदेवेहिं चालिओ रहवरो नियपुरीए । समुहो तो पिउस्सियपमुहाहि असेसथेरीहिं ॥६४॥
धाहावियं जहा धाह धाह केणावि निज्जए कुमरी । तं सोउं संभंतो नयरीपरिसरजणो मिलिओ ॥६५॥
भणिओ हरिणा गंतूण रुप्पिरायस्स कहह तुह भइणी । निज्जइ कन्हेण बलं जइ तुह ता तं निवारेसु ॥६६॥
इय जंपिऊण हरि-हलहरेहिं दोहिं पि पूरिया संखा । तेसिं सरेण नयरीलोगो भयकंपिरो जाओ ॥६७॥
जाणेऊणं एयं जणाओ सिसुपाल-रुप्पिरायाणो । सन्नद्धबद्धकवया होऊण झड त्ति संचलिया ॥६८॥

किमम्ब ! त्वं न क्रियते मुनिवचनं ? तदनु चिन्तितं तया । यथैषा भणतीदं तथा कृष्णे बद्धानुरागा ॥ ५५ ॥
इति ज्ञात्वा कृष्णस्य प्रेषित पितृस्वस्रा निजदूतः । यथा महाशुद्धाष्टमीतिथौ नागस्य भवने ॥ ५६ ॥
प्रच्छन्ना गमिष्यामि रुक्मिणीसहिता च नागपूजार्थां । तत्र त्वया पुरुषोत्तम ! आगन्तव्यमितश्च तत्र ॥ ५७ ॥
शिशुपालस्य विवाहः प्रारब्धो रुक्मिणा नरेन्द्रेण । शिशुपालः सम्प्राप्तो महन्तसामन्तसंयुक्तः ॥ ५८ ॥
स वृत्तान्तो नारदर्षिणा रणकामेन कृष्णस्य । कथितस्ततः कृष्णोऽपि खलु रामेण समं रथारुढः ॥ ५९ ॥
प्राप्तश्च कुण्डिनिपुरिं प्रच्छन्नः पितृस्वसापि तस्मिन्दिने । सह रुक्मिण्या बहुस्थविरिनिकरपरिवारयुक्तया ॥ ६० ॥
नागस्य गृहं गत्वा पूजनं यावत्करोति प्रतिमाया । ततश्चरैः कथितं यथा प्राप्तौ कृष्ण-बलभद्रौ ॥ ६१ ॥
ततो वासुदेवराजा रथादुत्तीर्य पितृस्वसारं नमति । भणति च रुक्मिणि ! सोऽहं तव निमित्तमहमत्र ॥ ६२ ॥
सम्प्राप्तो यथा तव मानसस्य प्रतिभाति तदा समारोह । रथरत्ने ततः पृष्ट्वा पितृस्वसारं सा समारुढा ॥ ६३ ॥
बलदेव-वासुदेवाभ्यां चालितो रथवरो निजपुर्याः । सम्मुखस्ततः पितृस्वसृप्रमुखाभिरशेषस्थविराभिः ॥ ६४ ॥
पुत्कृतं यथा धावत धावत केनापि नीयते कुमारी । तच्छ्रुत्वा सम्भ्रान्तो नगरी परिसरजनो मिलितः ॥ ६५ ॥
भणितो हरिणा गत्वा रुक्मिराज्ञः कथयत तव भगिनी । नीयते कृष्णेन बलं यदि तव ततस्तं निवारय ॥ ६६ ॥
इति जल्पित्वा हरि-हलधराभ्यां द्वाभ्यामपि पूरितौ शङ्खौ । तयोः स्वरेण नगरीलोको भयकम्पमानो जातः ॥ ६७ ॥
ज्ञात्वैतज्जनाच्छिशुपाल-रुक्मिराजानौ । सन्नद्धबद्धकवचौ भूत्वा झटिति सञ्चलितौ ॥ ६८ ॥

सट्ठिसहस्सेहिं रहाण तह य दोघट्टदससहस्सेहिं । तिहिं लक्खेहिं हयाणं बहूहिं पाइक्कलक्खेहिं ॥६९॥

तो ताण समरभेरीसद्दं सोऊण रुप्पिणी भणइ । भरहद्धचक्किउच्छंगसंठिया महुरसद्देण ॥७०॥

पिययम ! चउरंगबलं आगच्छइ एक्कका पुणो तुब्भे । ता तुज्झ संगमसुहं अज्ज वि दुलहं विचिंतेमि ॥७१॥

तो तीए नियबलदंसणत्थमायड्ढिऊण कोडंडं । अद्धिंदुणा उविंदेण पाडिया तालतरुमाला ॥७२॥

नियअंगुलेयवज्जं मलिउं चुन्नीकयं करयलेहिं । तो रुप्पिणी नियमणे तुट्ठा हरिणा हली भणिओ ॥७३॥

तं नियवहुं घेत्तूण वच्च अहमरिबलं निवारेमि । तो भणइ हली तं गच्छ सत्तुणो हं निवारिस्सं ॥७४॥

तो रुप्पिणीए हरिणो चरणे नमिऊण पभणियं सामि ! । रक्खावसु मह भायरमह हरिणा हलहरो भणिओ ॥७५॥

रक्खेयव्वो भाया इमीए भणिऊण भायरं कन्हो । संचलिओ बारवईसमुहो एत्तो य बलदेवो ॥७६॥

उग्गिन्नमुसलदंडो कुद्धो रिउकडयसम्मुहो चलिओ । चूरंतो करडिथडं करिकुलकुद्धो मइंदो व्व ॥७७॥

तत्तो तुरंग-कुंजर-नर-नरवइपभिइसत्तुसंदोहं । कोवेण दट्ठउट्ठो मारइ मुसलप्पहारेहिं ॥७८॥

लोट्टावइ भडनियरं तोडइ दोघट्टथट्टसुंडाओ । मोडइ सियायवत्ते फाडइ पडिभडधयवडे य ॥७९॥

भंजइ रणंतघंटालिडंबरं रहवराण संदोहं । फोडइ गुडं गइंदाण दलइ सत्तूण संधायं ॥८०॥

के वि हु कमेसु घेत्तूण नहयले भामिउण कुद्धमणो । रयगो व्व सिलाए पडं अच्छोडइ धरणिवीढम्मि ॥८१॥

पाडेवि के वि महिमंडलम्मि दाऊण वंसए पायं । मोडइ तड त्ति मज्झाओ सुक्कएरंडकट्ठं व ॥८२॥

षष्ठिसहस्त्रै रथानां तथा च हस्तिदशसहस्त्रैः । त्रिभिर्लक्षै र्हया बहुभिःपादातिलक्षैः ॥ ६९ ॥

ततस्तेषां समरभेरिशब्दं श्रुत्वा रुक्मिणी भणति । भरतार्द्धचक्रवर्त्युत्सङ्गस्थिता मधुरशब्देन ॥ ७० ॥

प्रियतम ! चतुरङ्गबलमागच्छति एककौ पुन र्युवाम् । ततस्तव सङ्गमसुखमद्यापि दुर्लभं विचिन्तयामि ॥ ७१ ॥

ततस्तस्या निजबलदर्शनार्थमाकृष्य कोदण्डम् । अर्द्धेन्दुनोपेन्द्रेण पातितास्तालतरुमालाः ॥ ७२ ॥

निजाङ्गुलियकवज्रं मलित्वा चूर्णीकृतं करतलाभ्याम् । ततो रुक्मिणी निजमनसि तुष्टा हरिणा हली भणितः ॥ ७३ ॥

त्वं निजकवधूं गृहीत्वा व्रजाहमरिबलं निवारयामि । ततो भणति हली त्वं गच्छ शत्रूनहं निवारिष्यामि ॥ ७४ ॥

तदा रुक्मिण्या हरिणश्चरणे नत्वा प्रभणितं स्वामिन् ! । रक्षय मम भ्रातरमथ हरिणा हलधरो भणितः ॥ ७५ ॥

रक्षितव्यो भ्रातैतस्या भणित्वा भ्रातरं कृष्णः । सञ्चलितो द्वारावतीसम्मुख इतश्च बलदेवः ॥ ७६ ॥

उद्गीर्णमुशलदण्डः क्रुद्धो रिपुकटकसम्मुखश्चलितः । चूरयन्करटिघटां करिकुलक्रुद्धो मृगेन्द्र इव ॥ ७७ ॥

ततस्तुरङ्ग-कुञ्जर-नर-नरपतिप्रभृतिशत्रुसन्दोहम् । कोपेन दष्टौष्ठो मारयति मुशलप्रहारैः ॥ ७८ ॥

लोटयति भटनिकरं त्रोटयति हस्तिसमूहसुण्डान् । मोटयति श्वेतातपत्राणि स्फाटयति प्रतिभटध्वजपटांश्च ॥ ७९ ॥

भनक्ति रणत्घण्टालिडम्बरं रथवराणां सन्दोहम् । स्फोटयति गुडं[1] गजेन्द्राणां दलति शत्रूणां संघातम् ॥ ८० ॥

कानपि खलु क्रमेषु गृहीत्वा नभस्तले भ्रमयित्वा क्रुद्धमनाः । रजक इव शिलायां पटमाच्छोटयति धरणिपीठे ॥ ८१ ॥

पातयति कानपि महिमण्डले दत्त्वा वंशके पादम् । मोटयति त्रटिति मध्याच्छुष्कैरण्डकाष्टमिव ॥ ८२ ॥

---

१. कवचम्

काण वि पायं दाऊण मत्थए तोडिउं भूयाजुयलं । तडयडतुट्टंतसिरं पक्खिवइ बलिं व दिसिचक्के ॥८३॥
सुहडेण हणइ सुहडं तुरयं तुरएण करिवरं करिणा । चूरइ रहं रहेण तत्तो सव्वं बलं तस्स ॥८४॥
सीहस्स व हरिणकुलं गयजायं गंधसिंधुरस्सेव । सूरस्स व तमजालं नट्ठं दट्ठुं तयं तत्तो ॥८५॥
उद्धाइऊण उम्मुक्कहक्कहुंकारभीसणो पत्तो । भामियकरालकरवालमंडलो झत्ति सिसुपालो ॥८६॥
ता हलहरेण उम्मुक्कमुसलघाएण तस्स करवालं । दोहंडियं तओ तेण कड्ढियं चंडकोदंडं ॥८७॥
तं पि हु तहेव भग्गं लग्गं तस्सेव उत्तमंगम्मि । तो जाव पीडिओ सो नियकोदंडस्स खंडेण ॥८८॥
तो हक्कंतो पत्तो रुप्पी दुप्पेच्छरत्तनेत्तजुओ । रे रे गोव ! न होहिसि इण्हिं एवं पयंपंतो ॥८९॥
मोत्तूण मुसलदंडं हढेण परिताडिओ करयलेण । पाडेऊणं महिमंडलम्मि तोडेवि सन्नाहं ॥९०॥
हढआयड्ढियछुरियाए छिंदिउं तस्स कुंतलकलावं । तो हलहरेण भिउडीभीमेणेयारिसं भणिओ ॥९१॥
रे मुक्को जीवंतो वच्चसु ठाणम्मि इय पयंपेउं । चइऊण तयं भडरुंडमुंडमालं पलोयंतो ॥९२॥
नीहरिऊण रणंगणभूमीओ कन्हपासमल्लीणो । पत्तो य बारवइनयरिपरिसरे रुप्पिणी हरिणा ॥९३॥
भणिया पिए ! इमा सा बारवई पुरवरी मह निमित्तं । जा निम्मविया धणएण कणयनिम्मियसुपासाया ॥९४॥
ता भुंजसु इह भोए मए समं पमुइया तओ सा वि । जंपइ पिययम ! तुह संति रूव-जोव्वणगुणड्ढाओ ॥९५॥
उत्तमकुलजायाओ दासी-दासाइपरियणजुयाओ । अंतेउरीओ सोहाविणिज्जियामरपुरंधीओ ॥९६॥

कानपि पादं दत्वा मस्तके त्रोटयित्वा भुजायुगलम् । त्रटत्रटत्रुटच्छिरसं प्रक्षिपति बलिमिव दिक्चक्रे ॥ ८३ ॥
सुभटेन हन्ति सुभटं तुरगे तुरगेण करिवरं करिणा । चूरयति रथं रथेन ततः सर्वं बलं तस्य ॥ ८४ ॥
सिंहस्येव हरिणकुलं गजजातं गन्धसिन्धुरस्यैव । सूर्यस्येव तमोजालं नष्टं दृष्ट्वा तकं ततः ॥ ८५ ॥
उत्क्षेप्योन्मुक्तहक्क(पूत्कार)हुंकारभीषणः प्राप्तः । भ्रमितकरालकरवालमण्डलः शीघ्रं शिशुपालः ॥ ८६ ॥
ततो हलधरेणोन्मुक्तमुशलघातेन तस्य करवालम् । भग्नं ततस्तेन कृष्टं चण्डकोदण्डम् ॥ ८७ ॥
तदपि खलु तथैव भग्नं लग्नं तस्यैवोत्तमाङ्गे । ततो यावत्पीडितः स निजकोदण्डस्य खण्डेन ॥ ८८ ॥
ततो निषेधयन्प्राप्तो रुक्मी दुष्प्रेक्ष्यरक्तनेत्रयुग्मः । रे रे गोप ! न भविष्यसीदानीमेवं प्रजल्पन् ॥ ८९ ॥
मुक्त्वा मुशलदण्डं बलात्परिताडितः करतलेन । पातयित्वा महिमण्डले त्रोटित्वा सन्नाहम् ॥ ९० ॥
बलादाकृष्टतच्छूरिकया छित्त्वा तस्य कुन्तलकलापम् । ततो हलधरेण भृकुटिभीमेनेत्रादृशं भणितः ॥ ९१ ॥
रे मुक्तो जीवन् व्रज स्थान इति प्रजल्प्य । त्यक्त्वा तकं भटरुण्डमुण्डमालं प्रलोकयन् ॥ ९२ ॥
निःमृत्य रणाङ्गनभूमेः कृष्णपार्श्वमालीनः । प्राप्तश्च द्वारावतीनगरिपरिसरे रुक्मिणी हरिणा ॥ ९३ ॥
भणिता प्रिये ! इमा सा द्वारावती पुरवरी मम निमित्तम् । या निर्मापिता धनदेन कनकनिर्मितसुप्रासादा ॥ ९४ ॥
ततो भुङ्ग्धीह भोगान्मया समं प्रमुदिता ततःसापि । जल्पति प्रियतम ! तव सन्ति रुप-यौवनगुणाढया: ॥ ९५ ॥
उत्तमकुलजाता दासी-दासादिपरिजनयुताः । अन्तःपुर्यः शोभाविनिर्जितामरपुरन्ध्र्यः ॥ ९६ ॥

एगागिणी अहं पुण आणीया बंदिणि व्व एत्थ तए । तो तह करेसु न जहा हासट्ठाणं भवामि अहं ॥९७॥

कण्हेण तओ भणियं मा बीहसु देवि ! तह करिस्सामि । जह सव्वपणइणीणं सिरोमणित्तं समुव्वहसि ॥९८॥

इय पभणिऊण कन्हेणुज्जाणे सिरिहरम्मि गंतूण । मुक्का सिरीए ठाणम्मि रुप्पिणी पडिममवणेउं ॥९९॥

भणिया य जया सिरिपणमणत्थमंतेउरीओ सव्वाओ । आगच्छंति तया तं अणिमिसनयणा भवेज्जासु ॥१००॥

इय जंपिऊण कन्हो नियए भवणम्मि जा समणुपत्तो । कत्थ तुह वल्लहा सा ? ता भणियं सच्चभामाए ॥१०१॥

कहिया हरिणा सिरिमंदिरम्मि ता सच्चभामपमुहाओ । अंतेउरीओ पत्ताओ तत्थ सिंगारियंगीओ ॥१०२॥

तो सच्चाए उत्तत्तकणयच्छायं निमेसरहियच्छिं । लच्छि त्ति कलिय पूयापुरस्सरं पणमिऊण तओ ॥१०३॥

पभणइ सामिणि ! पसिऊण रमणिमागंतुगं ममाहिन्तो । रूवाइगुणकलावेण विरहियं कुणसि जह कह वि ॥१०४॥

ता तुज्झ पउरपरिमलमिलंतरोलंबरोलमुहलेहिं । वियसंतपवरपुप्फेहिं पूयणं आयरिस्सामि ॥१०५॥

इय पभणिऊण पत्ता हरिणो पासम्मि पुच्छइ कहिं सा ? । लच्छीहरे पयंपिय कन्हो संतेउरो पत्तो ॥१०६॥

तो रुप्पिणीए अब्भुट्ठिऊण पुट्ठो नमामि कत्तो हं ? । तेणावि नेत्तपन्तेण दंसिया सच्चभामा से ॥१०७॥

देवी वि सच्चभामा पयंपए पणमिया मए एसा । तो पहसिऊण हरिणा भणियं किर एत्थ को दोसो ? ॥१०८॥

जं भइणीए भइणी पणमइ इय जंपिऊण नियभवणे । गंतूण रुप्पिणीए पणएणं देइ महुमहणो ॥१०९॥

आभरण-रयण-कंचण-दासी-दासाइयं महविभूई । नाऊण सच्चभामा मणम्मि गुरुमच्छरं वहइ ॥११०॥

एकाकिन्यहंपुनरानीता बन्दिनीवात्र त्वया । ततस्तथा कुरु न यथा हास्यस्थानं भवाम्यहम् ॥ ९७ ॥

कृष्णेन ततो भणितं मा बिभेहि देवि ! तथा करिष्यामि । यथा सर्वप्रणयिनीनां शिरोमणित्वं समुद्वहसि ॥ ९८ ॥

इति प्रभण्य कृष्णेनोद्याने श्रीगृहे गत्वा । मुक्ता श्रियः स्थाने रुक्मिणी प्रतिमामपनीय ॥ ९९ ॥

भणिताश्च यदा श्रीप्रणमनार्थमन्तःपुर्यः सर्वाः । आगच्छन्ति तदा त्वमनिमेषनयना भवेः ॥ १०० ॥

इति जल्पित्वा कृष्णो निजके भवने यावत्समनुप्राप्तः । कुत्र तव वल्लभा सा ? तावद्भणितं सत्यभामया ॥ १०१ ॥

कथिता हरिणा श्रीमन्दिरे तावत्सत्यभामाप्रमुखाः । अन्तः पुर्यः प्राप्तास्तत्र शृङ्गारिताङ्गाः ॥ १०२ ॥

ततः सत्ययोत्तप्तकनकच्छायां निमेषरहिताक्षीम् । लक्ष्मीरिति कलयित्वा पूजापुरस्सरं प्रणम्य ततः ॥ १०३ ॥

प्रभणति स्वामिनि ! प्रसीद्य रमणीमागन्तुकां मत्तः । रुपादिगुणकलापेन विरहितं करोषि यथा कथमपि ॥ १०४ ॥

ततस्तव प्रचूरपरिमलमिलद्रोलम्बरोलमुखरैः । विकसत्प्रवरपुष्पैः पूजनमाचरिष्यामि ॥ १०५ ॥

इति प्रभण्य प्राप्ता हरेः पार्श्वे पृच्छति कुत्र सा ? । लक्ष्मीगृहे प्रजल्प्य कृष्णः सान्तःपुरः प्राप्तः ॥ १०६ ॥

ततो रुक्मिण्याभ्युत्थाय पृष्टो नमामि कुतोऽहम् ? । तेनापि नेत्रप्रान्तेन दर्शिता सत्यभामा तस्याः ॥ १०७ ॥

देव्यपि सत्यभामा प्रजल्पति प्रणमिता मयैषा । ततः प्रहस्य हरिणा भणितं किलात्र को दोषः ? ॥ १०८ ॥

यद्भगिनीं भगिनी प्रणमति इति जल्पित्वा निजभवने । गत्वा रुक्मिण्यै प्रणयेन ददाति मधुमथनः ॥ १०९ ॥

आभरण-रत्न-कञ्चन-दासी-दासादिकां महाविभूतीः । ज्ञात्वा सत्यभामा मनसि गुरुमत्सरं वहति ॥ ११० ॥

अह अन्नया य नारयरिसिणा गंतूण साहियं हरिणो । जह वेयड्ढे खयरस्स जंबवंतस्स भज्जाए ॥१११॥

सिवचंदाए अंगुब्भवस्स कुमरस्स विजयसेणस्स । लहुभइणी जंबवई जंबूणयकंततणुछाया ॥११२॥

रूवेण कामघरिणी ससिवयणा सुरतरंगिणीतीरे । सविलासं कीलंती कन्ह ! मए तत्थ सा दिट्ठा ॥११३॥

तव्वयणाणंतरमेव विण्हुणा सा वि तत्थ आणीया । निज्जिणिउं जणओ वि हु तीएऽणाहिट्ठिणा तत्तो ॥११४॥

आणेउं उवणीओ हरिणो चरणारबिंदजुयलपुरो । तो तेण वासुदेवो विवाहिओ नियघूयाए ॥११५॥

मुणिवरवयणायन्नणविवेयविप्फुरियमणपरीणामो । निक्खंतो जंबवईजणओ संजायसंवेगो ॥११६॥

गिरिनयराओ अह अन्नया य देवीए सच्चभामाए । पाहुणओ संपत्तो भाया दुज्जोहणो नाम ॥११७॥

परिहासेणं भणियं तीए वीवाहिओ भवसु भाया । जइ होज्ज मज्झ पुत्तो भणिओ तो रुप्पिणीए वि ॥११८॥

जइ मह होही कुमरो तुह कुमरी ता करिज्ज वीवाहं । इय ताण भणंतीणं ओहिन्नाणी मुणी एगो ॥११९॥

भिक्खट्ठा संपत्तो दाउं तस्सेसणीयमाहारं । तो रुप्पिणीए पुट्ठो भयवं ! मह होहिही पुत्तो ? ॥१२०॥

होहि त्ति जंपमाणो सच्चाए तमेव पुच्छिओ साहू । भणिऊण एगवयणं मुणी गओ नीहरेऊण ॥१२१॥

अह रुप्पिणि-सच्चाणं जाओ दोण्हं पि सुयविसंवाओ । दोन्नि वि भणंति मुणिपुंगवेण मह अक्खिओ पुत्तो ॥१२२॥

तो भणइ सच्चभामा जीए सुओ तं पमोत्तुमियरीए । केसेहि दब्भकज्जं कायव्वं कुमरवीवाहे ॥१२३॥

तो सक्खिणो वि जाया हरि-बल-दुज्जोहणा इहं अत्थे । अह अन्नया तमिस्साए रुप्पिणी सुविणयं नियइ ॥१२४॥

अथान्यदा च नारदर्षिणा गत्वा कथितं हरेः । यथा वैताढ्ये खेचरस्य जाम्बवतो भार्यायाः ॥ १११ ॥

शिवचन्द्राया अङ्गोद्भवस्य कुमारस्य विजयसेनस्य । लघुभगिनी जाम्बवती जम्बूनदकान्ततनुच्छाया ॥ ११२ ॥

रुपेण कामगृहिणी शशिवदना सुरतरङ्गिणीतीरे । सविलासं क्रीडन्ती कृष्ण ! मया तत्र सा दृष्टा ॥ ११३ ॥

तद्वचनानन्तरमेव विष्णुना सापि तत्रानीता । निर्जित्य जनकोऽपि खलु तस्या अनादृष्टिना ततः ॥ ११४ ॥

आनीयोपनीतो हरेश्चरणाविन्दयुगलपुरः । ततस्तेन वासुदेवो विवाहितो निजकदुहित्रा ॥ ११५ ॥

मुनिवरवदनाकर्णनविवेकविस्फुरितमनःपरिणामः । निष्क्रान्तो जम्बवतीजनकः सञ्जातसंवेगः ॥ ११६ ॥

गिरिनगरादथान्यदा च देव्याः सत्यभामायाः । प्राघूर्णकः सम्प्राप्तो भ्राता दुर्योधनो नाम ॥ ११७ ॥

परिहासेण भणितं तया विवाहितो भव भ्राता । यदि भवेन्मम पुत्रो भणितस्तदा रुक्मिण्यापि ॥ ११८ ॥

यदि मम भविष्यति कुमारस्तव कुमारी ततः कुर्याद्विवाहम् । इति तयोर्भणतोऽवधिज्ञानी मुनिरेकः ॥ ११९ ॥

भिक्षार्थाय सम्प्राप्तो दत्त्वा तस्यैषणीयमाहारम् । ततो रुक्मिण्या पृष्टो भगवन् ! मम भविष्यति पुत्र ? ॥ १२० ॥

भविष्यतीति जल्पन् सत्यया तदेव पृष्टः साधुः । भणित्वैकवचनं मुनि र्गतो निसृत्य ॥ १२१ ॥

अथ रुक्मिणि-सत्ययोर्जातो द्वयोरपि सुतविसंवादः । द्वावपि भणतो मुनिपुङ्गवेन ममाख्यातः पुत्रः ॥ १२२ ॥

ततो भणति सत्यभामा यस्याः सुतस्तां प्रमुच्येतर्या । केशै र्दर्भकार्यं कर्त्तव्यं कुमारविवाहे ॥ १२३ ॥

ततः साक्षिणोऽपि जाता हरि-बल-दुर्योधना इहार्थे । अथान्यदा तमिस्रायां रुक्मिणी स्वप्नं पश्यति ॥ १२४ ॥

सुसिणिद्धदुद्धधाराधवलं वसहं मुहम्मि पविसंतं । तो तीए वासुदेवस्स अक्खियं तयणु तेणावि ॥१२५॥

हक्कारिउं सविणयं सम्माणिय सुविणपाढगा पुट्ठा । कहियं तेहिं पि जहा तुज्झ समाणो सुओ होही ॥१२६॥

गब्भम्मि समुप्पन्नो महुअमरो चविय सुक्ककप्पाओ । तो रुप्पिणीए गब्भो वड्ढइ सद्धिं पमोएण ॥१२७॥

तत्तो पसत्थदिसम्मि पसविया पुत्तमुत्तमं देवी । विप्फुरियनियसरीरप्पहाए अवहरियतमपसरं ॥१२८॥

गंतूण तओ परिचारियाए अत्थाणमंडवे विण्हू । वद्धाविओ तओ तेण तीए दिन्नं नियाभरणं ॥१२९॥

उट्ठेऊणं सयमेव नरवई सूइमंदिरे गंतुं । उवविट्ठो तो दासी काऊणं करयले कुमरं ॥१३०॥

तणुकिरणपसरपडिहयदिणेसरं दंसए नरिंदस्स । सव्वंगं पि हु सिरिवच्छलंछणो जाव तं नियइ ॥१३१॥

ता धूमकेउजक्खेण पुव्ववइराओ आसुरुतेण । कण्हपुरओ वि हरिओ रयणनिहाणं व रोरस्स ॥१३१॥

नीओ य विजयभूधरउत्तरओ भूयरमणवणगहणे । तत्तो टंकसिलायसमीवमासाइउं कुद्धो ॥१३३॥

चिंतइ किं एत्थ सिलायलम्मि अप्फालिऊण निहणेमि ? । अहवा करवत्तेणं कप्परिऊणं विणासेमि ? ॥१३४॥

किं वा भूयाण बलिं देमि करेऊण खंडखंडाइं ? । अहवा किमप्पदुक्खेण मारिएणं इमेणं मे ? ॥१३५॥

ता इहइं चिय एसो मेल्लिज्जउ जह छुहाकिलिस्सन्तो । खित्तो मच्छो व्व थले तल्लोवेल्लिं[1] करेमाणो ॥१३६॥

सकरुणसरं रुयंतो खरकिरणकरेहिं ताविओ संतो । सिग्घं पि जह विलिज्जइ जलणे नवणीयपिंडो व्व ॥१३७॥

सुस्निग्धदुग्धधाराधवलं वृषभं मुखे प्रविशन्तम् । ततस्तया वासुदेवस्याख्यातं तदनु तेनापि ॥ १२५ ॥

आकार्य सविनयं सन्मान्य स्वप्नपाठकाः पृष्टाः । कथितं तैरपि यथा तव समानः सुतो भविष्यति ॥ १२६ ॥

गर्भे समुत्पन्नो मध्वमरश्च्युत्वा शुक्रकल्पात् । ततो रुक्मिण्या गर्भो वर्धते सार्द्धं प्रमोदेन ॥ १२७ ॥

ततः प्रशस्तदिवसे प्रसूता पुत्रमुत्तमं देवी । विस्फुरितनिजशरीरप्रभयापहृततमः प्रसरम् ॥ १२८ ॥

गत्वा ततः परिचारिकयास्थानमण्डपे विष्णुः । वर्द्धापितस्ततस्तेन तस्यै दत्तं निजाभरणम् ॥ १२९ ॥

उत्थाय स्वयमेव नरपतिः सूतिमन्दिरे गत्वा । उपविष्टस्ततो दासी कृत्वा करतले कुमारम् ॥ १३० ॥

तनुकिरणप्रसरप्रतिहतदिनेश्वरं दर्शयति नरेन्द्रस्य । सर्वाङ्गमपि खलु श्रीवत्सलाञ्छनो यावत्तं पश्यति ॥ १३१ ॥

तावद्धूमकेतुयक्षेण पूर्ववैरादासुरत्वेन । कृष्णपुरतोऽपि हृतो रत्ननिधानमिव रोरस्य ॥ १३२ ॥

नीतश्च विजयभूधरोत्तरतो भूतरमणवनगहने । ततष्टङ्कशिलातलसमीपमासाद्य क्रुद्धः ॥ १३३ ॥

चिन्तयति किमत्र शिलातल आस्फाल्य निहन्मि ? । अथवा करपत्रेण कर्त्तित्वा विनाशयामि ? ॥ १३४ ॥

किं वा भूतेभ्यो बलिं ददामि कृत्वा खण्डखण्डानि ? । अथवा किमल्पदुःखेन मारितेनानेन मे ? ॥ १३५ ॥

तत इह चैवैष मुच्यते यथा क्षुधाक्लिस्यन् । क्षिप्तो मत्स्य इव स्थले व्याकुलतां क्रियमाणः ॥ १३६ ॥

सकरुणस्वरं रुदन् खरकिरणकरैस्तापितः सन् । शीघ्रमपि यथा विलीयते ज्वलने नवनीतपिण्डमिव ॥ १३७ ॥

---

१. टळवळतो – इति भाषायाम्

तो तं मोत्तूण सिलायलम्मि देवो गओ इओ तत्थ । तं पेक्खिउं च उग्गयदिणेसरे खेयराण जुयं ॥१३८॥
हुयवहजालपुराओ खयरिंदो कालसंवरो नाम । खयरी वि कणयमाला संपत्ता तं सिलुद्देसं ॥१३९॥
पेच्छइ य रयणपुंजं व तणुपहापडलपूरियदियंतं । तं दट्ठुणं खयरो अवयरिऊणं विमाणाओ ॥१४०॥
हरिसियहियओ दोहिं वि करेहिं घेत्तूण तं समप्पेइ । नियपणइणीए संजायहरिसपरिपूरियंगीए ॥१४१॥
तत्तो आरुहियरणन्तकणयघंटालिडंबरविमाणं । पत्ताणि ताणि गयणेण मेहकुंडम्मि नियनयरे ॥१४२॥
तत्तो सोहणदिवसे भोयावेऊण परियणमसेसं । पज्जुन्नो से नामं विहियं विज्जाहरिंदेण ॥१४३॥
तो रुप्पिणीए तणओ जणेरजणणीए खेयराण मणं । आणंदंतो वड्ढइ सियपक्खे बालचंदो व्व ॥१४४॥
एत्तो य रुप्पिणी तणयहरणगुरुसोयपूरियसरीरा । मुच्छामीलियनयणा झड त्ति महिमंडले पडिया ॥१४५॥
मिउ-सीयपवणवीयणयवीइया सिसिरनीरसित्तंगी । कहकहमवि पावेऊण चेयणं पलवइ सकरूणा ॥१४६॥
हा हा हयास ! निक्करूण ! दिव्व ! दाऊण पुत्तरयणं मे । कं अवराहं सरिऊण मज्झ हरियं ? तए कहसु ॥१४७॥
हा पुत्त ! मंदपुन्नाए पालिओ एक्कमेव न हु दिवसं । न हु धरिउं उच्छंगम्मि कारिओ नियथणपाणं ॥१४८॥
हा पुत्त ! मणोरहमालावल्लीवियाणमासि तुमं । इण्हिं अवहरणकुढारएण दोहंडियं विहिणा ॥१४९॥
हा वच्छ ! किं न पढमं मया सुयारोगपीडिया अहयं ? । जह मंदभाइणी तुह अवहरणदुहं न पेच्छंती ॥१५०॥
कन्हो वि हरियकुमरो करुणसरं रुयइ जायवेहिं समं । हा मज्झ मणाणंदण ! कुमार ! तं केण अवहरिओ ? ॥१५१॥

ततस्तं मुक्त्वा शिलातले देवो गत इतस्तत्र । तं प्रेक्ष्य चोद्गतदिनेश्वरे खेचरयो र्युग्मम् ॥ १३८ ॥
हुतवहजालपुरात्खेचरेन्द्रः कालसंवरो नाम । खेचर्यपि कनकमाला सम्प्राप्ता तं शिलोद्देशम् ॥ १३९ ॥
पश्यति च रत्नपुञ्जमिव तनुप्रभापटलपूरितदिगन्तम् । तं दृष्ट्वा खेचरोऽवतीर्य विमानात् ॥ १४० ॥
हर्षितहृदयो द्वाभ्यामपि कराभ्यां गृहीत्वा तं समर्पयति । निजप्रणयिन्याः सञ्जातहर्षपूरिताङ्ग्याः ॥ १४१ ॥
तत आरुह्य रणत्कनकघण्टालिडम्बरविमानम् । प्राप्तौ तौ गगनेन मेघकुण्डे निजनगरे ॥ १४२ ॥
ततः शोभनदिवसे भोजयित्वा परिजनमशेषम् । प्रद्युम्नस्तस्य नाम विहितं विद्याधरेन्द्रेण ॥ १४३ ॥
ततो रुक्मिण्यास्तनयो जनकजनन्योःखेचरयोः मनः । आनन्दयन्वर्धते सितपक्षे बालचन्द्र इव ॥ १४४ ॥
इतश्च रुक्मिणी तनयहरणगुरुशोकपूरितशरीरा । मूर्च्छानिमिलितनयना झटिति महिमण्डले पतिता ॥ १४५ ॥
मृदु-शीतपवनवीजनकवीजिता शिशिरनीरसिक्ताङ्गी । कथंकथमपि प्राप्य चेतनां प्रलपति सकरुणा ॥ १४६ ॥
हा हा हताश ! निष्करुण ! दिव्य ! दत्वा पुत्ररत्नं मे । कमपराधं स्मृत्वा मम हृतं ? त्वया कथय ॥ १४७ ॥
हा पुत्र ! मन्दपुण्यया पालित एकमेव न खलु दिवसम् । न खलु धृत्वोत्सङ्गे कारितो निजकस्तनपानम् ॥ १४८ ॥
हा पुत्र ! मम मनोरथमालावल्लीवितानमासीत्त्वम् । इदानीमपहरणकुठारेण द्विखण्डितं विधिना ॥ १४९ ॥
हा वत्स ! किं न प्रथमं मृता सुतरोगपीडिताहम् ? । यथा मन्दभाग्या तवापहरणदुःखं न पश्यन्ती ॥ १५० ॥
कृष्णोऽपि हृतकुमारः करुणस्वरं रोदिति यादवैः समम् । हा मम मनानन्दन ! कुमार ! त्वं केनापहृतः ? ॥ १५१ ॥

हा वच्छ ! तुज्झ विरहे रज्जमरण्णं महूसवो वसणं । भवणं पेयवणं पिव नयरं नरयं विसेसेइ ॥१५२॥
कुमरावहारकंदंतकन्हपमुहाण पउरलोयाण । पडिसद्दछलेण पुरी पलवइ गुरुसोयभरिय व्व ॥१५३॥
जो रुप्पिणिदुक्खेणं न दुक्खिओ नत्थि सो पुरीमज्झे । मोत्तूण सच्चभामं सपरियणं तुट्ठमणमेगं ॥१५४॥
कंदंताणं हरि-हलहराण जायवनरिदचंदाणं । नारयरिसी नहंगणमग्गेण समुत्तरेऊण ॥१५५॥
पुच्छइ सिरिवच्छंकं किं पलवह सोयसंगया तुब्भे ? । सोउण तयं हरिणा पयंपिओ नारओ एवं ॥१५६॥
हरिओ कुमरो केण वि अम्हाणं तं कहेसु नाऊण । सो आहऽणंतिनाणिं विणा न नज्जइ इमं कन्ह ! ॥१५७॥
सो पुण महाविदेहे केवलनाणी जिणेसरो इण्हिं । सिरिसीमंधरसामी ता तं गंतूण पुच्छामि ॥१५८॥
इय पभणिऊण रोलम्बजालसामलनहं समुप्पइओ । पेच्छंतो धरणियलं गिरि-सरियानियररमणीयं ॥१५९॥
पत्तो महाविदेहे तत्थ य चंपापुरीए उज्जाणो । अमर-नरेसरपणमिरचरणं सीमंधरजिणिंदं ॥१६०॥
समवसरणे निविट्ठं दट्ठुण नहंगणाओ ओयरिओ । पणमिय पुच्छइ भयवं ! कन्हसुओ केण अवहरिओ ? ॥१६१॥
तो भणइ भुवणसामी दासीहत्थाओ रूप्पिणीतणओ । सो धूमकेउजक्खेण पुव्ववेरेण अवहरिओ ॥१६२॥
नीओ य विजयगिरिभूयरमणवणटंकगुरुसिलावट्टे । तं तत्थ परिच्चइऊण सो गओ निययठाणम्मि ॥१६३॥
तो तत्थ कालसंवरखयरो सह भारियाए संपत्तो । घेत्तूण तयं सो वि हु समप्पए नियदइयाए ॥१६४॥
पत्तो य मेहकुंडम्मि नियपुरे तयणु तस्स कुमरस्स । पज्जुन्नो त्ति मुहुत्ते सुहम्मि नामं कयं तेण ॥१६५॥

हा वत्स ! तव विरहे राज्यमरण्यं महोत्सवो व्यसनम् । भवनं प्रेतवनमिव नगरं नरकं विशेषयति ॥ १५२ ॥
कुमारापहारक्रन्दत्कृष्णप्रमुखानां पौरलोकानाम् । प्रतिशब्दच्छलेन पुरी प्रलपति गुरुशोकभृतेव ॥ १५३ ॥
यो रुक्मिणिदुःखेन न दुःखितो नास्ति स पुरीमध्ये । मुक्त्वा सत्यभामां सपरिजनां तुष्टमनामेकाम् ॥ १५४ ॥
क्रन्दतो हरि-हलधरयो यादवनरेन्द्रचन्द्रयोः । नारदर्षि र्नभोऽङ्गणमार्गेण समुत्तीर्य ॥ १५५ ॥
पृच्छति श्रीवत्साङ्कं किं प्रलपत शोकसंगता यूयम् ? । श्रुत्वा तकं हरिणा प्रजल्पितो नारद एवम् ॥ १५६ ॥
हृतः कुमारः केनापि अस्माकं तं कथय ज्ञात्वा । सा आहानन्तज्ञानिनं विना न ज्ञायत इदं कृष्ण ! ॥ १५७ ॥
स पुन र्महाविदेहे केवलज्ञानी जिनेश्वर इदानीम् । श्रीसीमंधरस्वामी ततस्तं गत्वा पृच्छामि ॥ १५८ ॥
इति प्रभण्य रोलम्बजालश्यामलनभः समुत्पतितः । पश्यन्धरणितलं गिरि-सरिन्निकररमणीयम् ॥ १५९ ॥
प्राप्तो महाविदेहे तत्र च चम्पापूर्या उद्याने । अमर-नरेश्वर-प्रणमच्चरणं सीमन्धरजिनेन्द्रम् ॥ १६० ॥
समवसरणे निविष्टं दृष्ट्वा नभोऽगणादवतरितः । प्रणम्य पृच्छति भगवन् ! कृष्णसुतः केनापहृतः ? ॥ १६१ ॥
ततो भणति भुवनस्वामी दासीहस्ताद्रुक्मिणीतनयः । स धूमकेतुयक्षेण पूर्ववैरेणापहृतः ॥ १६२ ॥
नीतश्च विजयगिरिभूधरमनवनटङ्कगुरुशिलापट्टे । तं तत्र परित्यज्य स गतो निजस्थाने ॥ १६३ ॥
तदा तत्र कालसंवरखेचरः सह भार्यया सम्प्राप्तः । गृहीत्वा तकं सोऽपि खलु समर्पयति निजकदयितायाः ॥ १६४ ॥
प्राप्तश्च मेघकुण्डे निजपुरे तदनु तस्य कुमारस्य । प्रद्युम्न इति मुर्हूते शुभे नाम कृतं तेन ॥ १६५ ॥

चरमसरीरो एसो न वहिज्जइ देव-दाणवेहिं पि । अम्मा-पियराणं पुण मिलिही वरिसम्मि सोलसमे ॥१६६॥
तो नारएण तं निसुणिऊण पणमिय जिणं पुणो भणियं । भयवं ! कुमरो हरिओ जक्खेणं केण वइरेण ? ॥१६७॥
ता जंपियं जिणिंदेण कुमरअवहरणकारणं सुणसु । आसि भरहद्धवासे मगहामंडलतिलयतुल्लो ॥१६८॥
सालिग्गामो गामो समिद्धकोडुंबिनियरपरिकिन्नो । तप्परिसरे मणोरमवणम्मि सुमणाभिहो जक्खो ॥१६९॥
तत्थऽत्थि सोमदेवो त्ति बंभणो बंभणी वि तब्भज्जा । नामेण अग्गिजाला ताण सुया दोन्नि विक्खाया ॥१७०॥
सयलजणमाणणीया चउवेयवियक्खणा गरुयगव्वा । पढमो य अग्गिभूई दुइज्जओ वाउभूइ त्ति ॥१७१॥
अह अन्नया मुणिंदो नामेणं नंदिवद्धणो तत्थ । विहरन्तो संपत्तो गुरुगुण[1]मुणिनियरपरियरिओ ॥१७२॥
तव्वंदणवडियाए गामीणजणो गओ मिलेऊण । विहिया संसारुव्वेयकारिणी देसणा मुणिणा ॥१७३॥
तो ते विप्पडिवत्तीए बंभणा दो वि उट्ठिया वाए । निज्जिणिआ य कणिट्ठेण साहुणा सच्चनामेण ॥१७४॥
तो ते फुरंतकोवा रयणीए जईण मारणनिमित्तं । संपत्ता तम्मि वणे उक्खायनिसायकरवाला ॥१७५॥
दिट्ठा य सुमणजक्खेण थंभिया साहुभत्तिजुत्तेण । पाहाणघडियपुत्तलयसच्छहा निच्चला जाया ॥१७६॥
तो तं नाऊण समुग्गयम्मि रविमंडले रुयंताणि । अम्मा-पियराणि समागयाणि भणियाणि जक्खेण ॥१७७॥
एए मुणीण मारणनिमित्तमुक्खायखग्गया पावा । तत्तो एत्थं चिय थंभिऊण धरिया मए दो वि ॥१७८॥

चरमशरीर एष न हन्यते देव-दानवैरपि । मातृ-पित्रोः पुनर्मिलिष्यति वर्षे षोडशे ॥ १६६ ॥
ततो नारदेन तन्निश्रुत्य प्रणम्य जिनं पुन र्भणितम् । भगवन् ! कुमारो हृतो यक्षेन केन वैरेण ? ॥ १६७ ॥
तदा जल्पितं जिनेन्द्रेण कुमारापहरणकारणं शृणु । आसीद्भरतार्द्धवर्षे मगधामण्डलतिलकतुल्यः ॥ १६८ ॥
शालिग्रामो ग्रामः समृद्ध कौटुम्बिकनिकरपरिकीर्णः । तत्परिसरे मनोरमवने सुमनाभिधो यक्षः ॥ १६९ ॥
तत्रास्ति सोमदेव इति ब्राह्मणो ब्राह्मण्यऽपि तद्भार्या । नाम्नाग्निज्वाला तयोःसुतौ द्वौ विख्यातौ ॥ १७० ॥
सकलजनमाननीयो चतुर्वेदविचक्षणौ गुरुकगर्वौ । प्रथमश्चाग्निभूतिर्द्वितीयो वायुभूतिरिति ॥ १७१ ॥
अथान्यदा मुनीन्द्रो नाम्ना नन्दिवर्धनस्तत्र । विहरन्सम्प्राप्तो गुरुगुणमुनिनिकरपरिवारितः ॥ १७२ ॥
तद्वन्दनप्रत्ययाद् ग्रामीणजनो गतो मिलित्वा । विहिता संसारोद्वेगकारिणी देशना मुनिना ॥ १७३ ॥
ततस्तौ विप्रतिपत्या ब्राह्मणौ द्वावप्युत्थितौ वादे । निर्जितौ च कनिष्ठेन साधुना सत्यनाम्ना ॥ १७४ ॥
तदा तौ स्फुरत्कोपौ रजन्यां यतीनां मारणनिमित्तम् । संप्राप्तौ तस्मिन्वने उत्खातनिशीतकरवालौ ॥ १७५ ॥
दृष्टौ च सुमनयक्षेण स्तम्भितौ साधुभक्तियुक्तेन । पाषाणघटितपुतलकसदृशौ निश्चलौ जातौ ॥ १७६ ॥
तदा तज्ज्ञात्वा समुद्गते रविमण्डले रुदन्तौ । मातृ-पितरौ समागतौ भणितौ यक्षेण ॥ १७७ ॥
एतौ मुनीनां मारणनिमित्तमुत्खातखड्गौ पापौ । तत अत्र चैव स्तम्भित्वा धृतौ मया द्वावपि ॥ १७८ ॥

---

१. गुणमणि-रं० ॥

जइ पव्वज्जं गिण्हंति दो वि मेल्लेमि ता अहं एए । अह नवि ता पावाणं कइया वि न होहिही मोक्खो ॥१७९॥
तो तेहिं दीणसद्देण जंपियं सावयाण सव्वं पि । धम्मं वयं करेमो जिणदिक्खं काउमसमत्था ॥१८०॥
उत्थंभिया समाणा जक्खेण तओ मुणिं पणमिऊण । बारसविहं पि सावयधम्मं सम्मं पवज्जन्ति ॥१८१॥
काउं सावयधम्मं कमेण मरिउं सुहम्मकप्पम्मि । विप्फुरियपहा अमरा उप्पन्ना पंचपलियाऊ ॥१८२॥
तत्तो चुया समाणा नयरे हत्थिणपुरम्मि उप्पन्ना । जिणदाससेट्ठिपुत्ता मणहररूवाइगुणजुत्ता ॥१८३॥
नामेण पुन्नभद्दो पढमो बीओ य माणिभद्दो त्ति । तरुणिमणुम्मायकरं संपत्ता जोव्वणं दो वि ॥१८४॥
अह अन्नया य वरदत्तसाहुपासम्मि पत्तसंवेगो । पव्वइओ जिणदासो सद्धिं तन्नयरराएण ॥१८५॥
ते दो वि रहारूढा मुणिणो चरणारविंदमभिनमियं । सावगधम्मं सम्मं पडिवज्जिय नियगिहं पत्ता ॥१८६॥
परिपालिऊण आउं काऊण सुसावगत्तणं विमलं । मरिऊण सुरा जाया इंदसमा दो वि सोहम्मे ॥१८७॥
अमरंगणाहिं सद्धिं भोए भोत्तुं तओ चवेऊण । हत्थिणउरम्मि सिरिवीरसेणरन्नो सुया जाया ॥१८८॥
महु-केढवाभिहाणा वियाणियासेससत्थपरमत्था । तरुणियणवसीकरणं व जोव्वणारंभमणुपत्ता ॥१८९॥
परलोए संपत्तो राया रज्जे ठवित्तु महुकुमरं । जुवरज्जे संठविओ केढवकुमरो महुनिवेण ॥१९०॥
तो तेहिं नियपरक्कमगुणेहिं सव्वे वि राइणो जिया । एत्तो वडउरनयरे कणयाभरणं नरवरिंदं ॥१९१॥

यदि प्रव्रज्यां गृह्णीतां द्वावपि मुञ्चामि तदाहमेतौ । अथ नापि तदा पापयोः कदापि न भविष्यति मोक्षः ॥ १७९ ॥
तदा ताभ्यां दीनशब्देन जल्पितं श्रावकाणां सर्वमपि । धर्ममावां करिष्यावो जिनदीक्षां कर्तुमसमर्थौ ॥ १८० ॥
उत्स्तम्भितौ सन्तौ यक्षेण ततो मुनिं प्रणम्य । द्वादशविधमपि श्रावकधर्मं सम्यक् प्रपद्येते ॥ १८१ ॥
कृत्वा श्रावकधर्मं क्रमेण मृत्वा सौधर्मकल्पे । विस्फुरितप्रभावमरावुत्पन्नौ पञ्चपल्यायुः ॥ १८२ ॥
ततश्च्युतौ सन्तौ नगरे हस्तिनापुर उत्पन्नौ । जिनदासश्रेष्ठिपुत्रौ मनोहररुपादिगुणयुक्तौ ॥ १८३ ॥
नाम्ना पूर्णभद्रः प्रथमो द्वितीयश्च माणिभद्र इति । तरुणिमनोन्मादकरं सम्प्राप्तौ यौवनं द्वावपि ॥ १८४ ॥
अथान्यदा च वरदत्तसाधुपार्श्वे प्राप्तसंवेगः । प्रव्रजितो जिनदासः सार्द्धं तन्नगरराजा[1] ॥ १८५ ॥
तौ द्वावपि रथारुढौ मुने श्चरणारविन्दमभिनम्य । श्रावकधर्मं सम्यक्प्रतिपद्य निजगृहं प्राप्तौ ॥ १८६ ॥
परिपाल्यायुः कृत्वा सुश्रावकत्वं विमलम् । मृत्वा सुरौ जातविन्द्रसमौ द्वावपि सौधर्मे ॥ १८७ ॥
अमराङ्गनाभिः सार्द्धं भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युत्वा । हस्तिनापुरे श्रीवीरसेनराज्ञः सुतौ जातौ ॥ १८८ ॥
मधु-कैटभाभिधानौ विज्ञानिताशेषशास्त्रपरमार्थौ । तरुणीजनवशीकरणमिव यौवनारम्भमनुप्राप्तौ ॥ १८९ ॥
परलोके संप्राप्तो राजा राज्ये स्थाप्य मधुकुमारम् । युवराज्ये संस्थापितः कैटभकुमारो मधुनृपेण ॥ १९० ॥
ततस्ताभ्यां निजपराक्रमगुणैः सर्वेऽपि राजानो विजिताः । इतो वटपुरनगरे कनकाभरणं नरवरेन्द्रम् ॥ १९१ ॥

---

१. 'राट्' तृ.ए.व.

निज्जिणिऊणऽवहरिया महुणा चंदाभभारिया तस्स । तीए सह विसयसोक्खं उवभुंजंतो गमइ कालं ॥१९२॥
अह अन्नया य वडउरनरेसरो पणइणीविओगम्मि । संजाओ जडहारी तरुवक्कलविहियपरिहाणो ॥१९३॥
छारचुरकुंडियंगो दिट्ठो देवीए रायमग्गम्मि । तो महुणो नरवइणो विन्नत्तं तीए जह एसो ॥१९४॥
कणयाभरणनरिंदो मज्झ पई पेच्छ मह विओगम्मि । परिहरियसयलरज्जो अपरियणो भमइ एगागी ॥१९५॥
चंदाभाए वयणं सोऊणं चिंतए महीनाहो । परदारलालसेणं मए कयं हा ! अकज्जमिणं ॥१९६॥
भिच्चस्स विणीयस्स वि एयस्स कलत्तमवहरंतेण । जायं मए अणज्जेण सत्तुणा सेवगस्सावि ॥१९७॥
हरिणंकनिम्मलं पि हु कलंकियं नियकुलं मए पेच्छ । निक्करुणयाए एसो वि पाविओ एरिसमवत्थं ॥१९८॥
विबुहयणनिंदणिज्जेण सुयणसंतावकारिणा इमिणा । पावेण मए कत्थ वि गंतव्वं ? न हु वियाणामि ॥१९९॥
ता अज्ज वि तवचरणं भवभयहरणं करेमि किं पि अहं । पक्खालिज्जइ जेणं कलंकपंको जलेणेव ॥२००॥
इय एवं महुराया हिययब्भंतरभवंतसंवेगो । नामेण धुंधुमारं कुमरं रज्जम्मि संठविउं ॥२०१॥
तो सो केढवभाया य साहुणो विमलवाहणसयासे । घेत्तुं जिणिंदविक्खं समहिज्जियसयलसुत्तत्थो ॥२०२॥
कुव्वंति तवच्चरणं संता दंता जिइंदिया दो वि । छट्ठ-ऽट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मास-ऽद्धमासेहिं ॥२०३॥
दोमास-तिमासिय-चउर-पंच-छम्मासखमणपभिईहिं । जवमज्झ-वज्जमज्झय-भद्द-महाभद्दरूवेहिं ॥२०४॥
कणगावलि-मुत्तावलि-चंदावलि-रयणआवलितवेहिं । सुक्का किडिकिडिभूया पयडसिराजालया जाया ॥२०५॥

निर्जित्यापहृता मधुना चन्द्राभाभार्या तस्य । तस्याः सह विषयसौख्यमुपभुञ्जन्गमयति कालम् ॥ १९२ ॥
अथान्यदा च वटपुरनरेश्वरः प्रणयिनी वियोगे । सञ्जातो जटाधारी तरुवल्कलविहितपरिधानः ॥ १९३ ॥
क्षारचूर्णकुण्डिताङ्गो दृष्टो देव्या राजमार्गे । ततो मधोः नरपते विज्ञप्तं तथा यथैषः ॥ १९४ ॥
कनकाभरणनरेन्द्रो मम पतिःपश्य मम वियोगे । परिहृतसकलराज्योऽपरिजनो भ्रमत्येकाकी ॥ १९५ ॥
चन्द्राभया वचनं श्रुत्वा चिन्तयति महीनाथः । परदारलालसेन मया कृतं हा ! अकार्यमिदम् ॥ १९६ ॥
भृत्यस्य विनीतस्यापि एतस्य कलत्रमपहरता । जातं मयानार्येण शत्रुणा सेवकस्यापि ॥ १९७ ॥
हरिणाङ्कनिर्मलमपि खलु कलङ्कितं निजकुलं मया पश्य । निष्करुणयैषोऽपि प्रापित ईदृशामवस्थाम् ॥ १९८ ॥
विबुधजननिन्दनीयेन सुजनसन्तापकारिणानेन । पापेन मया कुत्रापि गन्तव्यं ? न खलु विजानामि ॥ १९९ ॥
ततोऽद्यापि तपश्चरणं भवभयहरणं करोमि किमप्यहम् । प्रक्षाल्यते येन कलङ्कपङ्को जलेनैव ॥ २०० ॥
इत्येवं मधुराजा हृदयाभ्यन्तरभवत्संवेगः । नाम्ना धुन्धुमारं कुमारं राज्ये स्थाप्य ॥ २०१ ॥
ततः स कैटभभ्राता च साधो विमलवाहनसकाशे । गृहीत्वा जिनेन्द्रदिक्षां समधीतसकलसूत्रार्थौ ॥ २०२ ॥
कुर्वतश्तपश्चरणं शान्तौ दान्तौ जितेन्द्रियौ द्वावपि । षष्ठाष्टमदशमद्वादशै र्मासार्द्धमासैः ॥ २०३ ॥
द्विमासस्त्रिमासिकश्चतुःपञ्चषण्मासप्रभृतिभिः । यवमध्य-वज्रमध्य-भद्र-महाभद्ररुपैः ॥ २०४ ॥
कनकावलि-मुक्तावलि-चन्द्रावलि-रत्नावलितपोभिः । शुष्कौ किडिकिडिभूतौ प्रकटशिराजालकौ जातौ ॥ २०५ ॥

बहुवाससहस्साइं काऊणं एरिसं तवच्चरणं । पाउवगमणेण ठिया मासक्खमणं तओ मरिउं ॥२०६॥

ते दोन्नि वि उप्पन्ना सत्तमकप्पम्मि भासुरा अमरा । अमरंगणाहिं सद्धिं सुररिद्धिं दो वि विलसंति ॥२०७॥

एत्तो वडउरराया काउं सुइरं अनाणतवचरणं । मरिऊण समुप्पन्नो पलियाऊ जोइसेसु सुरो ॥२०८॥

दइयावहरणवइरं सरिउं निउणं निरिक्खिओ तेण । महुराया न हु कत्थ वि उवलद्धो ता चवेऊण ॥२०९॥

भमिओ भवाडवीए कहमवि मणुयत्तणं लहेऊण । ईसिकयसुकयकम्मो संजाओ धूमकेउसुरो ॥२१०॥

महुराया वि हु सत्तरस सागरे भुंजिउं अमरलच्छिं । चविउं बारवईए जाओ महुमहणभूवइणो ॥२११॥

भज्जाए रुप्पिणीए पुत्तो उत्तत्तकणयसमगत्तो । तो धूमकेउजक्खेण पणइणीहरणवइरेण ॥२१२॥

अवहरिऊणं नीओ विजयद्धमहीधरुत्तरसिलाए । एत्थेव छुहक्कंतो विणसउ इय चिंतिउं चत्तो ॥२१३॥

एयं नारय ! पज्जुन्नकुमरचरियं पयासियं तुज्झ । तो नारओ जिणिंदं नमिऊण नहंगणेण गओ ॥२१४॥

वेयड्ढसेलसिहरे दट्ठूणं कालसंवरं खयरं । वद्धावइ सकलत्तं सुपुत्तजम्मूसवेण तओ ॥२१५॥

खयरेण मेहकुंडम्मि पुरवरे नारओ निययभवणे । नीओ सप्पणयं तस्स दंसिओ तयणु पज्जुन्नो ॥२१६॥

तो नारओ वि रुप्पिणिसमाणरूवं निरिक्खिउं कुमरं । संभासिउं च खयरं नहंगणेणं समुप्पइओ ॥२१७॥

पत्तो य जायवाणं अत्थाणे तेहिं सवियणं नमिउं । सम्माणिओ समाणो उवविट्ठो विट्ठरे पवरे ॥२१८॥

कहियं च कुमरहरणं जह निसुयं वीयरायवयणेहिं । तो रुप्पिणीसयासे गंतूणं कहइ सव्वं पि ॥२१९॥

बहुवर्षसहस्राणि कृत्वेदृशं तपश्चरणम् । पादपोगमनेन स्थितौ मासक्षपणं ततो मृत्वा ॥ २०६ ॥

तौ द्वाप्युत्पन्नौ सप्तमकल्पे भासुरावमरौ । अमराङ्गणाभिः सार्द्धं सुरर्द्धिं द्वावपि विलसतः ॥ २०७ ॥

इतो वटपुरराजा कृत्वा सुचिरमज्ञानतपश्चरणम् । मृत्वा समुत्पन्नःपल्यायु र्ज्योतिःषु सुरः ॥ २०८ ॥

दयितापहरणव्यतीकरं स्मृत्वा निपुणं निरीक्षितस्तेन । मधुराजा न खलु कुत्राप्युपलब्धस्ततश्च्युत्वा ॥ २०९ ॥

भ्रान्तो भवाटव्यां कथमपि मनुष्यत्वं लब्ध्वा । ईषत्कृतसुकृतकर्माः सञ्जातो धूमकेतुसुरः ॥ २१० ॥

मधुराजापि खलु सप्तदश सागरान्भुक्त्वामरलक्ष्मीम् । च्युत्वा द्वारावत्यां जातो मधुमथनभूपतेः ॥ २११ ॥

भार्याया रुक्मिण्याः पुत्र उत्तप्तकनकसमगात्रः । ततो धूमकेतुयक्षेण प्रणयिनिहरणवैरेण ॥ २१२ ॥

अपहृत्य नीतो विजयार्धमहीधरोत्तरशिलायाम् । अत्रैव क्षुधाक्रान्तो विनश्यतु इति चिन्तयित्वा त्यक्तः ॥ २१३ ॥

एतन्नारद ! प्रद्युम्नकुमारचरितं प्रकाशितं तव । ततो नारदो जिनेन्द्रं नत्वा नभोङ्गणेन गतः ॥ २१४ ॥

वैताढ्यशैलशिखरे दृष्टवा कालसंवरं खेचरम् । वर्धापयति सकलत्रं सुपुत्रजन्मोत्सवेन ततः ॥ २१५ ॥

खेचरेण मेघकुण्डे पुरवरे नारदो निजकभवने । नीतः सप्रणयं तस्य दर्शितस्तदनु प्रद्युम्नः ॥ २१६ ॥

ततो नारदोऽपि रुक्मिणीसमानरुपं निरीक्ष्य कुमारम् । सम्भाष्य च खेचरं नभोङ्गणेन समुत्पतितः ॥ २१७ ॥

प्राप्तश्च यादवानामास्थाने तैः सविनयं नत्वा । सन्मानितः सन्नुपविष्टो विष्टरे प्रवरे ॥ २१८ ॥

कथितं च कुमारहरणं यथा निःश्रुतं वीतरागवचनैः । ततो रुक्मिणीसकाशे गत्वा कथयति सर्वमपि ॥ २१९ ॥

जह सोलसमे वरिसे होही मेलावगो तुह सुएण । तो रुप्पिणी जिणेसरजंपियवयणाणि सोऊण ॥२२०॥
भत्तिपरिपूरियंगी नमइ जिणे महिमिलंतसीमंता । कुमरवयणावलोयणसमुस्सुया गमइ दिवसाणि ॥२२१॥
अह अन्नया य जाओ भाणू नामेण सच्चभामाए । कुमरो अमरसरूवो इओ य वेयड्ढगिरिसिहरे ॥२२२॥
नयरम्मि मेहकुंडे पज्जुन्नो गुणकलावपरिकलिओ । अमरा-नरा-ऽसुरतरुणियणमोहणं जोव्वणं पत्तो ॥२२३॥
निरुवमसव्वावयवो तेण समो तिहुयणम्मि न हु कोइ । नियलायन्नविणिज्जियअमरा-ऽसुर-खयर-नरनियरो ॥२२४॥
अज्जवि जेणुवमाणं दिज्जइ रूवस्सिणो तिहुयणे वि । न हु सक्को सक्को वि हु रूवगुणे तस्स वन्नेउं ॥२२५॥
सो जत्थ खयरकुमरेहिं परिगओ कुणइ कीलणं तत्थ । सव्वो वि खेयरीणं नियरो दट्ठुण तं कुमरं ॥२२६॥
न मुणइ सरीरफासं तंबोलरसं पि न हु वियाणेइ । परिमलमवि न हु जाणइ निसुणइ य न कागलीगीयं ॥२२७॥
इयरिंदियवावारं चइउं विप्फारिएहिं नयणेहिं । तं पेच्छंतो पावइ अणमिसभावं नरत्ते वि ॥२२८॥
नियदइय-पुत्त-बंधवपमुहे वाहरइ कुमरगोत्तेण । अणुदिवसं वंछंतो संगमसोक्खं कुमारस्स ॥२२९॥
अह तज्जणणी मयणानलेण पज्जलियमाणसाऽणुदिणं । चिंतइ कुमारसंगमसोक्खमहं किह लहिस्सामि? ।२३०।
तो एगंते भणिओ कुमरो अम्हेहिं तं[1] सिलावट्टे । पत्तो न अम्ह पुत्तो होहिसि ता रमसु मं इण्हिं ॥२३१॥
तुह विरहगरलधारियमंगं महगुरुयवेयणक्कंतं[2] । ता कोमलनिययसरीरसंगअमएण कुण पउणं ॥२३२॥

यथा षोडशमे वर्षे भविष्यति मेलापकस्तव सुतेन । ततो रुक्मिणी जिनेश्वरजल्पितवचनानि श्रुत्वा ॥ २२० ॥
भक्तिपरिपूरिताङ्गी नमति जिनं महीमिलत्सीमन्ता । कुमारवदनावलोकनसमुत्सुका गमयति दिवसानि ॥ २२१ ॥
अथान्यदा च जातो भानु र्नाम्ना सत्यभामायाः । कुमारोऽमरस्वरुप इतश्च वैताढ्यगिरिशिखरे ॥ २२२ ॥
नगरे मेघकुण्डे प्रद्युम्नो गुण कलापपरिकलितः । अमरनरासुरतरुणीजनमोहनं यौवनं प्राप्तः ॥ २२३ ॥
निरुपमसर्वावयवस्तेन समस्त्रिभुवने न खलु कोऽपि । निजलावण्यविनिर्जितामरासुरखेचरनरनिकरः ॥ २२४ ॥
अद्यापि येनोपमानं दीयते रुपस्विनस्त्रिभुवनेऽपि । न खलु शक्यः शक्रोऽपि खलु रुपगुणांस्तस्य वर्णयितुम् ॥ २२५ ॥
स यत्र खचरकुमारैः परिगतः करोति क्रीडनं तत्र । सर्वोऽपि खेचरीणां निकरो दृष्ट्वा तं कुमारम् ॥ २२६ ॥
न मुणाति शरीरस्पर्शं तम्बोलरसमपि न खलु विजानाति । परिमलमपि न खलु जानाति निश्रृणोति च न काकलीगीतम् ॥ २२७॥
इतरेन्द्रिय व्यापारं त्यक्त्वा विस्फारितै र्नयनैः । तं पश्यन् प्राप्नोत्यनिमेषभावं नरत्वेऽपि ॥ २२८ ॥
निजदयितपुत्रबन्धवप्रमुखान् व्याहरति कुमारगोत्रेण । अनुदिवसं वाञ्छन् सङ्गमसौख्यं कुमारस्य ॥ २२९ ॥
अथ तज्जननी मदनानलेन प्रज्वलितमानसानुदिनम् । चिन्तयति कुमारसङ्गमसौख्यमहं कथं लप्स्यामि ? ॥ २३० ॥
तत एकान्ते भणितः कुमारोऽस्माभिस्त्वं शिलापट्टे । प्राप्तो नास्मत्पुत्रो भविष्यसि ततो रमष्व मामेदानीम् ॥ २३१ ॥
तव विरहगरलधारिणमङ्गं महागुरुवेदनाक्रान्तम् । ततः कोमलनिजकशरीरसङ्गामृतेन कुरु प्रगुणम् ॥ २३२ ॥

---

१. तं-रं० । २. मह मुरिग्य वेयणं-रं० ।

अवरं च तुज्झ गोरी-पन्नत्तीओ विसिट्ठविज्जाओ । वियरिस्सामि तओ सो चिंतइ हद्धी ! महापावं ॥२३३॥
जणणी वि तणयसंगमसमुस्सुया मुक्कमहिलमज्जाया । ता इयरमहेलाणं को दोसो निव्विवेयाण ? ॥२३४॥
जं किर [1]सयाणजणनिंदणिज्जमह कुलकलंकजणणं पि । तं पि हयासा महिला मयणायत्ता अहिलसेइ ॥२३५॥
मयणपरव्वसहियया महिला (ग्रन्थाग्रम् ३०००) जइ महइ नियपुत्तं पि ।
ता कामलालसेसुं का गणणा अवरपुरिसेसु ? ॥ २३६ ॥
गिण्हामि ताव विज्जाओ तयणु जं जुज्जए तयं काहं । इय चिंतिऊण कुमरेण पभणियं देहि विज्जाओ ॥२३७॥
तो तीए काममोहियमणाए दिन्नाओ तस्स विज्जाओ । गोरी-पन्नत्तीओ मणवंछियकरणपवणाओ ॥२३८॥
तो न्हाइऊण रेहंतसयलसिंगारसोहियसरीरा । अब्भत्थइ सुरयकए कुमरं तत्तो भणइ सो वि ॥२३९॥
तं मह जणणी परिपालिओऽहमेत्तियदिणाणि अंब ! तए । ता वोत्तुं पि न जुत्तं तुज्झ इमं किं पुणो काउं ? ॥२४०॥
पुणरवि भणिओ सप्पणयमेस न तहावि मन्नए जाव । तो तीए नहेहिं वियारिऊण नियथोरथणजुयलं ॥२४१॥
तो धाह धाह धावह एसो [2]मड्डाए खंडए सीलं । एवकए कूयारे संभंतो खेयरो पत्तो ॥२४२॥
तो तस्स तीए कहियं जणणी वि न छुट्टए तुह सुयस्स । [3]बलिवंडाए खंडइ मज्झ वि सीलं इमो पेच्छ ॥२४३॥
तत्तो य कालसंवरखयरो कुद्धो सुए समाइसइ । रे रे ! मारह एयं पावं अकयन्नुयं झत्ति ॥२४४॥

अपरं च तव गौरी-प्रज्ञप्ती विशिष्टविद्ये । वितरिष्यामि ततःस चिन्तयति हन्दि ! महापापम् ॥ २३३ ॥
जनन्यपि तनयसङ्गमसमुत्सुका मुक्तमहिलामर्यादा । तावदितरमहिलानां को दोषो निर्विवेकानाम् ? ॥ २३४ ॥
यत्किल सकर्णजननिन्दनीयमथ कुलकलङ्कजननमपि । तदपि हताशा महिला मदनार्त्ताभिलषति ॥ २३५ ॥
मदनपरवशहृदया महिला यत्काङ्क्षते निजकपुत्रमपि । तदा कामलालसेषु का गणनापरपुरुषेषु ? ॥ २३६ ॥
गृह्णामि तावद्विद्यास्तदनु यद्युज्यते तकं करिष्ये । इति चिन्तयित्वा कुमारेण प्रभणितं देहि विद्याः ॥ २३७ ॥
तदा तया काममोहितमनसा दत्ते तस्मै विद्ये । गौरी-प्रज्ञप्ती मनोवाञ्छितकरणप्रवणे ॥ २३८ ॥
ततः स्नात्वा राजमानसकलशृङ्गारशोभितशरीरा । अभ्यर्थ्यति सुरतकृते कुमारं ततो भणति सोऽपि ॥ २३९ ॥
त्वं मम जननी परिपालितोऽहमेतावन्ति दिनानि मात ! त्वया । ततो वक्तुमपि न युक्तं तवेदं किं पुनःकर्तुम् ? ॥ २४० ॥
पुनरपि भणितः सप्रणयमेष न तथापि मन्यते यावत् । ततस्तया नखै विदार्य निजस्थूलस्तनयुगलम् ॥ २४१ ॥
ततो धावत धावत धावतैष बलात्खण्डयति शीलम् । एवं कृते पूत्कारे सम्भ्रान्तः खेचरः प्राप्तः ॥ २४२ ॥
ततस्तस्य तया कथितं जनन्यपि न मुञ्च्यते तव सुतस्य । बलात्कारेण खण्डयति ममापि शीलमयं पश्य ॥ २४३ ॥
ततश्च कालसंवरः कृद्धः सुते समादिशति । रे रे ! मारयतैनं पापमकृतज्ञं शीघ्रम् ॥ २४४ ॥

---

१. सकर्णजन । २. मंडाए-रं० । ३. बलात्कारेण ।

तो कालसंवरसुया सन्नद्धा बलभरेण संजुत्ता । हढआयड्डियकरवालमंडला झत्ति आभिट्टा ॥२४५॥
तो तेण नियबलेणं सरहा सहया समत्तमायंगा । सव्वे विणासिऊणं विहिया जमनिवगिहातिहिणो ॥२४६॥
तो कालसंवरनिवो रणलंपडभडयणेण संजुत्तो । संपत्तो संगामे रुलंतरुंडावलिरउद्दे ॥२४७॥
तो तेण नियपरिक्कमअक्कंतासेससत्तुविंदेण । निद्धाडिया भडोहा नट्ठो कट्ठेण खयरिंदो ॥२४८॥
गंतुं पुरे पविट्ठो भट्ठसिरी हुयवहो व्व विज्झाओ । तो पज्जुन्नकुमारेण तस्स पट्ठाविओ पुरिसो ॥२४९॥
भणियं च ताय ! तुमए खमियव्वो मज्झ एस अवराहो । जं तुज्झ रणंगणमागयस्स समुहो अहं जाओ ॥२५०॥
अवरं च अपरिभाविय पेच्छ तए नियकुलं खयं नीयं । नारीवयणेणऽहवा अज्ज वि किर केत्तियं एयं ? ॥२५१॥
कहिओ य कणयमालाए वइयरो खेयरस्स सव्वो वि । तं सोउं सो चिंतइ महिलाणमिमं पि संभवइ ॥२५२॥
तो खेयरेण कुमरो पुणरवि सम्माणिओ सबहुमाणं । एत्थंतरम्मि गयणेण नारओ तत्थ संपत्तो ॥२५३॥
विज्जाए तओ कुमरो पयंपिओ वच्छ ! एस देवरिसी । तं निसुणिऊण कुमरेण नारओ सवियणं नमिओ ॥२५४॥
कहिओ य नारएणं अवहरणप्पभिइ तस्स वुत्तंतो । जह निसुओ सीमंधरजिणिंदवज्जरियवयणेहिं ॥२५५॥
तुह अवहरणदिणाओ जा जायाणित्तियाणि दिवसाणि । ता तुह जणणीनयणाण अंसुविसरो न विरमेइ ॥२५६॥
अवरं च कयपइन्ना तुह जणणी आसि सच्चभामाए । जीए पढमं भविस्सइ पुत्तो तो तस्स वीवाहे ॥२५७॥

ततः कालसंवरसुताः सन्नद्धा बलभरेण संयुक्ताः । बलादाकर्षितकरवालमण्डलाः शीघ्रं प्रवृत्ताः ॥ २४५ ॥
तदा तेन निजबलेन सरथान्सहयान्समत्तमातङ्गान् । सर्वान् विनाश्य विहिता यमनृपगृहातिथयः ॥ २४६ ॥
ततः कालसंवरनृपो रणलम्पटभटजनेन संयुक्तः । संप्राप्तःसङ्ग्रामे रोलद्रुण्डावलिरौद्रे ॥ २४७ ॥
ततस्तेन निजपराक्रमाक्रान्ताशेषशत्रुवृन्देन । निष्काषिता भटौघा नष्टः कष्टेन खेचरेन्द्रः ॥ २४८ ॥
गत्वा पुरे प्रविष्टो भ्रष्टश्री र्हुतवह इव विध्यातः । ततः प्रद्युम्नकुमारेण तस्य प्रस्थापितः पुरुषः ॥ २४९ ॥
भणितं च तात ! त्वया क्षन्तव्यो ममैषोऽपराधः । यत्तव रणाङ्गणमागतस्य सम्मुखोऽहं जातः ॥ २५० ॥
अपरं चापरिभाव्य पश्य त्वया निजकुलं क्षयं नीतम् । नारीवचनेनाथवाद्य किं किल कतिपयमेतत् ? ॥ २५१ ॥
कथितश्च कनकमालया व्यतीकरः खेचरस्य सर्वोऽपि । तच्छ्रुत्वा स चिन्तयति महिलानामिदमपि सम्भवति ॥ २५२ ॥
ततः खेचरेण कुमारः पुनरपि सन्मानितः सबहुमानम् । अत्रान्तरे गगनेन नारदस्तत्र सम्प्राप्तः ॥ २५३ ॥
विद्यया ततः कुमारः प्रजल्पितो वत्स ! एष देवर्षिः । तन्निश्रुत्य कुमारेण नारदः सविनयं नतः ॥ २५४ ॥
कथितश्च नारदेनापहरणप्रभृति तस्य वृत्तान्तः । यथा निश्रुतः सीमन्धरजिनेन्द्रकथितवचनैः ॥ २५५ ॥
तवापहरणदिनाद्यावद्यातान्येतावन्ति दिवसानि । ततस्तव जननीनयनयोरश्रुविसरो न विरमति ॥ २५६ ॥
उपरं च कृतप्रतिज्ञा तव जनन्यासीत्सत्यभामया । यस्याः प्रथमं भविष्यति पुत्रस्ततस्तस्य विवाहे ॥ २५७ ॥

इयरीए सीसकेसेहिं दब्भकज्जाइं कारियव्वाइं । इण्हिं तु सच्चभामासुयस्स वट्टइ विवाहदिणं ॥२५८॥
ता वच्छ ! तत्थ गंतूण निययजणणीए पूरसु पइन्नं । इय सोउं पज्जुन्नो पुच्छिय पियरं तओ चलिओ ॥२५९॥
सह नारएण गयणंगणेण पत्तो पुरीए सन्निज्झे । पेच्छइ अणेगमणि-रयणनियरकिरणावलीफुरणं ॥२६०॥
तो देवरिसी पुट्ठो किमेयमह कहइ नारओ तस्स । वच्छ ! तुह जणयनयरी धणएण विणिम्मिया एसा ॥२६१॥
मणि-रयण-कणय-रुप्पय-विद्दुम-वज्जेहिं घडियपासाया । वारवई नामेणं तो पज्जुन्नो पहिट्ठमणो ॥२६२॥
पभणइ न साहियव्वं कस्स वि जमिहागाओ अहं तत्तो । कयबालसाहुवेसो, जणणीगेहम्मि संपत्तो ॥२६३॥
भणइ य सोलसवासोववाससोसियतणू तुह गिहे हं । पारणगदिणे पत्तो ता जंपइ रुप्पिणी एवं ॥२६४॥
अक्किट्ठतवोकम्मं वरिसपमाणं न एत्तियं कालं । तो पभणइ बालमुणी आसोलसवरिसमज्झम्मि ॥२६५॥
जणणीथणछीरं पि हु न हु पीयं साविए ! तओ एत्थ । संपत्तो जइ ईच्छा ता वियरसु अह न गच्छामि ॥२६६॥
तो रुप्पिणीए भणियं पओयणं तुज्झ वत्थुणा केण ? । सो जंपइ पेज्जाए तो पेज्जा तीए अद्दहिया ॥२६७॥
तेण तणो विज्जाए जलणो विज्झाविओ जलंतो वि । तो रुप्पिणी पयंपइ गिण्हसु वरमोयगे भयवं ॥२६८॥
जीरवइ परं नऽन्नो मोत्तुं सिरिवच्छलंछणं एक्कं । तवसोसियाणमम्हं जीरइ सव्वं पि तेणुत्तं ॥२६९॥
अह रुप्पिणीए मोयगरासी रइया तवस्सिणो पुरओ । तो रक्खसो व्व भक्खइ ते सव्वे मोयगे सो वि ॥२७०॥

इतर्या शीर्षकेशै दर्भकार्याणि कारितव्यानि । इदानीं तु सत्यभामासुतस्य वर्तते विवाहदिनम् ॥ २५८ ॥
ततो वत्स ! तत्र गत्वा निजजनन्याः पूरय प्रतिज्ञाम् । इति श्रुत्वा प्रद्युम्नः पृष्ट्वा पितरं ततश्चलितः ॥ २५९ ॥
सह नारदेन गगनाङ्गणेन प्राप्तः पुर्याः सान्निध्ये । पश्यत्यनेकमणिरत्ननिकरकिरणावलीस्फुरणम् ॥ २६० ॥
ततो देवर्षिः पृष्टः किमेतदथ कथयति नारदस्तस्य । वत्स ! तव जनकनगरी धनदेन विनिर्मितैषा ॥ २६१ ॥
मणि-रत्न-कनक-रुप्यक-विद्रुम-वज्रैः घटितप्रासादा । द्वारावती नाम्ना ततः प्रद्युम्नः प्रहृष्टमनाः ॥ २६२ ॥
प्रभणति न कथयितव्यं कस्यापि यदिहागतोऽहं ततः । कृतबालसाधुवेशो जननीगृहे सम्प्राप्तः ॥ २६३ ॥
भणति च षोडशवर्षोपवासशोषिततनुस्तव गृहेऽहम् । पारणकदिने प्राप्तस्तावज्जल्पति रुक्मिण्येवम् ॥ २६४ ॥
उत्कृष्ट तपःकर्म वर्षप्रमाणं नैतावन्तं कालम् । ततः प्रभणति बालमुनिराषोडशवर्षमध्ये ॥ २६५ ॥
जननीस्तनक्षीरमपि खलु न खलु पीतं श्राविके ! ततोऽत्र सम्प्राप्तो यदीच्छा तदा वितराथ न गच्छामि ॥ २६६ ॥
ततो रुकिमण्या भणितं प्रयोजनं तव वस्तुना केन ? । सा जल्पति पेयया ततः पेया तयाद्रहिता ॥ २६७ ॥
तेन ततो विद्यया ज्वलनो विध्यापितोज्वलन्नपि । ततो रुक्मिणी प्रजल्पति गृहाण वरमोदकान् भगवन् ! ॥ २६८ ॥
जीर्यते परं नान्यो मुक्त्वा श्रीवत्सलाञ्छनमेकम् । तपःशोषितानामस्माकं जीर्यते सर्वमपि तेनोक्तम् ॥ २६९ ॥
अथ रुक्मिण्या मोदकराशी रचिता तपस्विनः पुरतः । ततो राक्षस इव भक्ष्यति तान् सर्वान् मोदकान् सोऽपि ॥ २७० ॥

दट्ठूण तयं हसिऊण रुप्पिणी भणइ होहिही तुज्झ । सन्नेज्झं कीय (वि) देवयाए जेणेरिसा सत्ती ॥२७१॥

तो नारएण भणियं रुप्पिणि ! अंगुब्भवो इमो तुज्झ । पज्जुन्नो नामेणं संपत्तो तुह समीवम्मि ॥२७२॥

कुमरो वि साहुरूवं परिहरिऊणं ठिओ निययरूवे । वियसंतवयणकमलो पणओ जणणीए चलणेसु ॥२७३॥

आलिंगिऊण सीसम्मि चुंबियो नेहनिब्भरं तीए । तेण तओ सा भणिया मज्झाऽऽगमणं न जणयस्स ॥२७४॥

कहियव्वं जावेसो मह मिलइ इओ य सच्चभामाए । रुप्पिणिभवणे पुरिसा पट्ठविया नविएण समं ॥२७५॥

पभणंति तेवि वीवाहदब्भकज्जाय वियरसु सकेसे । जम्हा कया पइन्ना पच्चक्खं कन्हपमुहाणं ॥२७६॥

पज्जुन्नेणं विज्जाबलेण मुंडिवि नावियस्स सिरं । उवणीया भे केसा भणिउं सच्चाए अप्पेहा ॥२७७॥

गंतुं तेहि वि सच्चाए अप्पिया सा वि कोवमावन्ना । सममेव य संपत्ता रुप्पिणिभवणम्मि केसकए ॥२७८॥

पज्जुन्नो वि हु काऊण कन्हरूवं तओ ठिओ तत्थ । दिट्ठो य सच्चभामाए तयणु कोवेण तज्जंती ॥२७९॥

मूलमणत्थाणमिमो निग्गच्छिस्सइ तया गहिस्सामि । इय भणमाणी पत्ता जा हरिभवणम्मि सा तत्थ ॥२८०॥

परियणजुयमच्छंतं पेच्छइ सिरिवच्छलंछणं तयणु । भणिओ किं सिग्घयरं समागओ एत्थ काऊण ॥२८१॥

मज्झ पइन्नाभंगं भणमाणी सा गया निए भवणे । कन्हो वि तीए अणुणयनिमित्तमच्चाउलीहूओ ॥२८२॥

एत्तो वि य पज्जुन्नो रहरयणे रुप्पिणिं ठवेऊण । आऊरिंतो संखं नीहरिओ नयरिमज्झेणं ॥२८३॥

दृष्ट्वा तकं हसित्वा रुक्मिणी भणति भविष्यति तव । सान्निध्यं कस्या (अपि) देवताया येनेदृशी शक्तिः ॥ २७१ ॥

तदा नारदेन भणितं रुक्मिणी ! अङ्गोद्भवोऽयं तव । प्रद्युम्नो नाम्ना सम्प्राप्तस्तव समीपे ॥ २७२ ॥

कुमारोऽपि साधुरुपं परिहर्य स्थितो निजकरुपे । विकसद्वदनकमलः प्रणतो जनन्याश्चरणयोः ॥ २७३ ॥

आलिङ्ग्य शीर्षे चुम्बितः स्नेहनिर्भरं तया । तेन ततः सा भणिता ममाऽऽगमनं न जनकस्य ॥ २७४ ॥

कथितव्यं यावदेष मम मिलतीतश्च सत्यभामया । रुक्मिणीभवने पुरुषाः प्रस्थापिता नापितेन समम् ॥ २७५ ॥

प्रभणन्ति तेऽपि विवाहदर्भकार्याय वितर स्वकेशान् । यस्मात्कृता प्रतिज्ञा प्रत्यक्षं कृष्णप्रमुख्यानाम् ॥ २७६ ॥

प्रद्युम्नेन विद्याबलेन मुण्डित्वा नापितस्य शिरम् । उपनीता तुभ्यं केशा भणित्वा सत्याया अर्पयत ॥ २७७ ॥

गत्वा तैरपि सत्याया अर्पिताः सापि कोपमापन्ना । स्वयमेव च सम्प्राप्ता रुक्मिणीभवने केशकृते ॥ २७८ ॥

प्रद्युम्नोऽपि खलु कृत्वा कृष्णरुपं ततःस्थितस्तत्र । दृष्टश्च सत्यभामया तदनु कोपेन तर्जन्ती ॥ २७९ ॥

मूलमनर्थानामयं निर्गमिष्यति तदा ग्रहीष्यामि । इति भणन्ती प्राप्ता यावद्धरिभवने सा तत्र ॥ २८० ॥

परिजनयुतमासीनं पश्यति श्रीवत्सलञ्छनं तदनु । भणितः किं शीघ्रतरं समागतोऽत्र कृत्वा ॥ २८१ ॥

मम प्रतिज्ञाभङ्गं भणन्ती सा गता निजे भवने । कृष्णोऽपि तस्या अनुनयनिमित्तमत्याकुलीभूतः ॥ २८२ ॥

इतोऽपि च प्रद्युम्नो रथरत्ने रुक्मिणीं स्थापयित्वा । आपूरयन् शङ्खं निसृतो नगरीमध्येन ॥ २८३ ॥

पभणंतो पउरजणं कहेह कण्हस्स रुप्पिणी देवी । निज्जइ भडेण केणइ जइ सत्ती ता निवारेसु ॥२८४॥
तं सोऊणं सव्वे वि जायवा जायकोवदट्ठोट्ठा । करि-रह-तुरंगमारुहिय धाविया तस्स पट्ठीए ॥२८५॥
दढआयड्ढियकोदंडमुक्कनारायछाइयदियंता । वलिऊण कुमारेणं निज्जिणिया गुरुमरट्टा वि ॥२८६॥
नट्ठा दिसोदिसिं ते इयरगया गंधसिंधुरस्सेव । कुमरस्स तओ पत्ता रणंगणे राम-महुमहणा ॥२८७॥
आरूढा रहरयणे रणंतघंटालिडंबरे दोवि । उम्मुक्कसिंहनाया छन्ना कुमरेण बाणेहि ॥२८८॥
वायव-वारुण-अग्गेयपमुहबाणेहिं ते वि निज्जिणिया । नियपन्नत्ती-गोरीविज्जाण बलेण कुमरेण ॥२८९॥
तत्तो विलक्खवयणा जाया चिंताउरा रणे जाव । तो नारएण नारायणस्स कहियं जहा एसो ॥२९०॥
तुह पुत्तो पज्जुन्नो रुप्पिणिअंगुब्भवो समायाओ । तो कन्हेणं आलिंगिऊण काऊणमुच्छंगे ॥२९१॥
महया[१] महूसवेणं पवेसिओ पुरवरीए हरिसेणं । काराविओ विवाहं नर-खेयरसुंदरीहिं समं ॥२९२॥
असमगुणरायरंजियमणेहिं हरि-हलहरेहिं कुमरस्स । आरोविओ समग्गो भारो नियरज्जकज्जाणं ॥२९३॥
एत्थंतरम्मि दुज्जोहणेण संपेसियाहिं दूईहिं । विन्नत्तो अत्थाणे कन्हनरिंदो जहा तुज्झ ॥२९४॥
सुन्हा केणइ हरिया ता तं कत्थइ गवेससु तओ सो । जंपइ न हु सव्वन्नू अहं तयं जेण जाणेमि ॥२९५॥
जइ जाणंतो ता किं न जाणिओ रुप्पिणीसुओ एसो । तं सोऊणं कुमरो पभणइ मं देव ! आइससु ॥२९६॥

प्रभणन्पौरजनं कथयत कृष्णस्य रुक्मिणी देवी । नीयते भटेन केनचिद्यदि शक्तिस्तदा निवारय ॥ २८४ ॥
तत् श्रुत्वा सर्वेऽपि यादवा जातकोपदष्टौष्ठाः । करि-रथ-तुरङ्गमारुह्य धावितास्तस्य पृष्टे ॥ २८५ ॥
दृढाकृष्टकोदण्डमुक्तनाराचाच्छादितदिगन्ताः । वलित्वा कुमारेण निर्जिता गुरुगर्वा अपि ॥ २८६ ॥
नष्टाः दिशोदिशि ते इतरगजा गन्धसिन्धुरस्येव । कुमारस्य ततः प्राप्तौ रणाङ्गणे राममधुमथनौ ॥ २८७ ॥
आरुढौ रथरत्ने रणत्घण्टालिडम्बरे द्वावपि । उन्मुक्तसिंहनादौ छन्नौ कुमारेण बाणैः ॥ २८८ ॥
वायव-वरुणाग्नेयप्रमुखबाणैस्तेऽपि निर्जिताः । निजप्रज्ञप्ति-गौरीविद्यानां बलेन कुमारेण ॥ २८९ ॥
ततो विलक्षवदनौ जातौचिन्तातुरौ रणे यावत् । तदा नारदेन नारायणस्य कथितं यथैषः ॥ २९० ॥
तव पुत्रः प्रद्युम्नो रुक्मिण्यङ्गभवः समायातः । ततः कृष्णेनालिङ्ग्य कृत्वोत्सङ्गे ॥ २९१ ॥
महता महोत्सवेन प्रवेशितः पुवर्यां हर्षेण । कारितो विवाहं नर-खेचरसुन्दरिभिः समम् ॥ २९२ ॥
असमगुणरागरञ्जितमनोभ्यां हरि-हलधराभ्यां कुमारस्य । आरोपितः समग्रो भारो निजराज्यकार्याणाम् ॥ २९३ ॥
अत्रान्तरे दुर्योधनेन संप्रेषिताभि र्दूतिभिः । विज्ञप्त आस्थाने कृष्णनरेन्द्रो यथा तव ॥ २९४ ॥
श्नुषा केनापि हृता ततस्तां कुत्रचिद् गवेषय ततः सः । जल्पति न खलु सर्वज्ञोऽहं तकं येन जानामि ॥ २९५ ॥
यदि जानंस्तदा किं न जानितो रुक्मिणीसुत एषः । तत् श्रुत्वा कुमारः प्रभणति मां देव ! आदिश ॥ २९६ ॥

---

१. महया विभूसएरगं पवेसिओ पुरवरिं पहरिसेरगं १. काराविओ विवाहो-रं० ।

जं पन्नत्तिबलेणं आणेमि तयं तओ समाइट्ठो । तो आणिया य तेणं पुव्वं चिय तेण अवहरिया ॥२९७॥
तत्तो भाणुकुमारो विवाहिओ महरिहाए रिद्धीए । सव्वेसिं पि हु सुक्खेण ताण कालो अइक्कमइ ॥२९८॥
अह अन्नया य सच्चा सोच्चा पज्जुन्नकुमरचरियाइं । तारिसपुत्तसमुस्सुयहियया विन्नवइ महुमहणं ॥२९९॥
जह मज्झ वि एयारिसकुमरो उप्पज्जए तहा जयसु । तो कन्हो वि पयंपइ पुन्नेहिं पिए ! इमं होइ ॥३००॥
एवमणुवासरं पि हु भणिओ कयपोसहो सरइ अमरं । तो पुव्वपरिचियसुरो तइज्जदिवसम्मि संपत्तो ॥३०१॥
तत्तो य कयंजलिणा हरिणा भणिओ पयच्छ वरकुमरं । भणियममरेण पज्जुन्नपुव्वभवबंधवो होही ॥३०२॥
जीए हारमिमं तं कंठे पक्खिवसि तीए तो हारं । अप्पिय तिरोहिओ सो नायं च इमं कुमारेण ॥३०३॥
विज्जाए तओ गंतुं पणमिय जणणिं पयंपिया तेण । उत्तमलक्खणजुत्तो पुत्तो होउ बीओ वि ॥३०४॥
सा भणइ न मज्झ सुओ अन्नो होहि त्ति नाणिणा कहियं । जंपइ कुमरो का तुज्झ सम्मया ? तीए तो भणियं ॥३०५॥
जंबवई मह इट्ठा तो तीए पयच्छ वच्छ ! वरकुमरं । एवं जंपताणं ताणं सा आगया तत्थ ॥३०६॥
तो पन्नत्तीविज्जाए सच्चभामासमाणरूवं तं । काऊण सच्चभामाए पिसिया वासभवणम्मि ॥३०७॥
सा गंतूणुवविट्ठा पल्लंके तयणु तीए कंठम्मि । हारं खिविउं कन्हेण सा सिणेहेण परिभुत्ता ॥३०८॥
तो गंतुं नियभवणे सुत्ता सुविणम्मि पासए सीहं । सुक्काओ चविय तीए गब्भे केढवसुरो जाओ ॥३०९॥

यत्प्रज्ञप्तिबलेनानयामि तकां ततः समादिष्टः । तत आनीता च तेन पूर्वमेव तेनापहृता ॥ २९७ ॥
ततो भानुकुमारो विवाहितो महार्हयार्द्धया । सर्वेषामपि खलु सुखेन तेषां कालोऽतिक्रामति ॥ २९८ ॥
अथान्यदा च सत्या श्रुत्वा प्रद्युम्नकुमारचरित्राणि । तादृशपुत्रसमुत्सुकहृदया विज्ञापयति मधुमथनम् ॥ २९९ ॥
यथा ममाप्येदृशकुमार उत्पद्यते तथा यतस्व । ततः कृष्णोऽपि प्रजल्पति पुण्यैः प्रिये ! इदं भवति ॥ ३०० ॥
एवमनुवासरमपि खलु भणितः कृतपौषधः स्मरति अमरम् । ततः पूर्वपरिचितसुरस्तृतीयदिवसे सम्प्राप्तः ॥ ३०१ ॥
ततश्च कृताञ्जलिना हरिणा भणितः प्रयच्छ वरकुमारम् । भणितममरेण प्रद्युम्नपूर्वभववन्धवो भविष्यति ॥ ३०२ ॥
यस्या हारमिदं त्वं कण्ठे प्रक्षिपसि तस्यास्ततोहारम् । अर्पयित्वा तिरोहितः स ज्ञातं चेदं कुमारेण ॥ ३०३ ॥
विद्यया ततो गत्वा प्रणम्य जननीं प्रजल्पिता तेन । उत्तमलक्षणयुक्तः पुत्र तव भवतु द्वितीयोऽपि ॥ ३०४ ॥
सा भणति न मम सुतोऽन्यो भविष्यतीति ज्ञानिना कथितम् । जल्पति कुमारः का तव सम्मता ? तया ततो भणितम् ॥३०५॥
जाम्बवती ममेष्टा ततस्तस्याः प्रयच्छ वत्स ! वरकुमारम् । एवं जल्पतोस्तयोः साऽऽगता तत्र ॥ ३०६ ॥
ततः प्रज्ञाप्तविद्यया सत्यभामासमानरुपां ताम् । कृत्वा सत्यभामायाः प्रेषिता वासभवने ॥ ३०७ ॥
सा गत्वोपविष्टा पल्यङ्के तदनु तस्यां कण्ठे । हारं क्षिप्त्वा कृष्णेन सा स्नेहेन परिभुक्ता ॥ ३०८ ॥
ततो गत्वा निजभवने सुप्ता स्वप्ने पश्यति सिंहम् । शुक्राच्च्युत्वा तस्या गर्भे कैटभसुरोजातः ॥ ३०९ ॥

सच्चा वि कण्हपासे समागया तेण चिंतियं एयं । अज्ज वि अतित्तचित्ता रइकेलिसुहं महइ एसा ॥३१०॥

कालेण केढवसुरो जाओ संबो त्ति से कयं नामं । उव्वूढजोव्वणभरो विवाहिओ रायकन्नाओ ॥३११॥

जह नेमिनाहपासे पव्वइया दो वि जह पुरी दड्ढा । जह विहियं तवचरणं अइघोरं सुद्धचित्तेहिं ॥३१२॥

उप्पाडिऊण केवलनाणं पडिबोहिऊण भवियजणं । जह सिद्धिपुरिं पत्ता तह-हरिवंसाओ नेयव्वं ॥३१३॥

॥ रूक्मिणी-मध्वाख्यानके समाप्ते ॥२०-२१॥

जह एएहिं विहियं तवकम्ममिमं महाणुभावेहिं । तह अन्नेहिं कज्जं कम्मक्खयमिच्छमाणेहिं ॥१॥

सौभाग्यमावहति जन्म शुभं विधत्ते, पुण्णाति पुण्यमसमं दुरितं प्रमार्ष्टि ।

कर्मेन्धनं दहति निर्वृतिशर्म राति, किं वा करोति न तपः शुभभावतप्तम् ? ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे चर्चिततपोमाहात्म्य प्रपञ्चश्चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः ॥४॥

सत्यापि कृष्णपार्श्वे समागता तेन चिन्तितमेतत् । अद्याप्यतृप्तचित्ता रतिकेलिसुखमिच्छत्येषा ॥ ३१० ॥

कालेन कैटभसुरो जातः शाम्ब इति तस्य कृतं नाम । उद्वोढयौवनभरो विवाहितो राजकन्याः ॥ ३११ ॥

यथा नेमिनाथपार्श्वे प्रव्रजितौ द्वावपि यथा पुरी दग्धा । यथा विहितं तपश्चरणमतिघोरं शुद्धचित्ताभ्याम् ॥ ३१२ ॥

उत्पाद्य केवलज्ञानं प्रतिबोध्य भविकजनम् । यथा सिद्धिपुरिं प्राप्तौ तथा हरिवंशाज्ज्ञातव्यम् ॥ ३१३ ॥

॥ रुक्मिणी-मध्वाख्यानके समाप्ते ॥ २०-२१ ॥

यथैतै र्विहितं तपः कर्मेदं महानुभावैः । तथान्यैः कार्यं कर्मक्षयमिच्छद्भिः ॥ १ ॥

• • •

[५. भावनास्वरूपवर्णनाधिकारः ।]

व्याख्यातस्तृतीयस्तपोरुपो धर्मभेदः । अधुना भावरुपं चतुर्थं व्याख्यातुकाम आह -

सुह परिणामो निच्चं कायव्वो जेण बंध-मोक्खाणं ।

सो परमंगं नाया दमगो भरहो इलापुत्तो ॥ १० ॥

व्याख्या- 'शुभः'धर्मध्यानादिरुपः, प्राकृतत्वाद् विभक्तिलोपो द्रष्टव्यः 'परिणामः' मानसव्यापारः 'नित्यम्' अनवरतम् 'कर्तव्यः' विधेयः । किमिति ? अत आह- 'येन' कारणेन 'बन्ध-मोक्षयोः' कर्मबन्धन-मुक्त्योः 'सः' परिणामः 'परमाङ्ग' प्रधाननिमित्तम् । 'ज्ञातानि' दृष्टान्ताः 'द्रमकः' रङ्कः 'भरतः' भरतचक्रवर्ती 'इलापुत्रः'श्रेष्ठिसुत इत्यक्षरार्थः ॥ १० ॥

भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः तत्र तावद् द्रमकाख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

रायगिहम्मि पुरवरे आजम्मदरिद्दिओ वसइ दमओ । भिक्खामेत्तुवजीवी अहऽन्नया ऊसवे जाए ॥१॥

सव्वो वि नयरलोओ घेत्तूणं खज्झ-पेज्झ-लेज्झाई । वेभारगिरिसमीवे सव्वत्तुगचारुउज्जाणे ॥२॥

उज्जाणियाए पत्तो एत्तो जाएसु दोसु पहरेसु । कप्परयकरो दमओ नयरे भिक्खं परिब्भमइ ॥३॥

पडिभवणं हिंडंतो भणिज्जए भवणरक्खवालेहिं । सव्वो वि जणो घेत्तूण भोयणं अज्ज उज्जाणे ॥४॥

---

५. भावनास्वरुपवर्णनाधिकारः

द्रमकाख्यानकम् -

राजगृहे पुरवरे आजन्मदरिद्रो वसति द्रमकः । भिक्षामात्रोपजीवी अथान्यदोत्सवे जाते ॥ १ ॥

सर्वोऽपि नगरलोको गृहीत्वा खाद्य-पेय-लिह्यादयः । वैभारगिरिसमीपे सर्वर्तुकचारूद्याने ॥ २ ॥

उद्यानिकायां प्राप्त इतो यातयो र्द्वयोः प्रहरयोः । कर्परककरो द्रमको नगरे भिक्षां परिभ्रमति ॥ ३ ॥

प्रतिभवनं हिण्डन् भण्यते भवनरक्षपालैः । सर्वोऽपि जनो गृहीत्वा भोजनमद्योद्याने ॥ ४ ॥

संपत्तो ता तं पि हु वच्चसु तत्थेव तयणु सो जाव । तत्थ गओ ता लोगो भोत्तूण मणोन्नमाहारं ॥५॥

तत्तो तालय-रासय-नाडय-पेक्खणय-महुरगीएहिं । अक्खित्तमणो न हु कोइ तस्स भिक्खं पयच्छेइ ॥६॥

सुइरं जायंतस्स वि उत्तरमवि तस्स देइ न हु कोइ । तन्हा-छुहाकिलंतो तत्तो सो कोवमावन्नो ॥७॥

वेभारसेलसिहरं समारुहेऊण महरिहसिलाए । उवविसियमहोभागे हणणकए सयललोयस्स ॥८॥

रोद्दज्झवसाएणं खणइ तओ सो वि चूरिओ तीए । मरिउमसिपत्तदारुणनरए सो नारओ जाओ ॥९॥

निवडंतसिलाखडहडसद्दं सोऊण पउरपुरलोगो । नट्ठो तम्हा वज्जह असुहं भावं पयत्तेण ॥१०॥

॥ द्रमकाख्यानकं समाप्तम् ॥२२॥

इदानीं भरताख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

नमिरनरिंद-चंदसिरसेहरकुसुमसमूहधारयं, जम्मणमरणसलिलपरिपूरियभवसिंधुवइतारयं ।

पणमिवि[1] रिसहनाहपयपंकउ[2] पणयविपत्तिवारयं, पभणिउ भरहराय-बाहुबलिहिं चरिउ भवंतकारयं ॥१॥

इह अत्थि चक्कहररायसज्झि, छक्खंडसमन्नियभरहमज्झि ।

जयलच्छितिलय नरवररवन्न, नवजोयणवित्थय जेम्व कन्न ।

बारस गिम्हु व आयामि दीह, हरिणालि व पत्तपसत्थलीह ।

सम्प्राप्तस्ततस्त्वमपि खलु व्रज तत्रैव तदनु स यावत् । तत्र गतस्तावल्लोको भुक्त्वा मनोज्ञमाहारम् ॥ ५ ॥

ततस्तालक-रासक-नाटक-प्रेक्षणक-मधुरगीतैः । आक्षिप्तमना न खलु कोऽपि तस्य भिक्षां प्रयच्छति ॥ ६ ॥

सुचिरं याचमानस्योपि उत्तरमपि तस्मै ददाति न खलु कोऽपि । तृष्णा-क्षुधाक्लान्तस्ततः स कोपमापन्नः ॥ ७ ॥

वैभारशैलशिखरं समारुह्य महार्हशिलायाः । उपविश्यमधोभागे[3] हननकृते सकललोकस्य ॥ ८ ॥

रौद्राध्यावसायेन खनति ततः सोऽपि चूरितस्तया । मृत्वासिपत्रदारुणनरके स नरको जातः ॥ ९ ॥

निपतच्छिलाखडखडशब्दं श्रुत्वा प्रचुरपौरलोकः । नष्टस्तस्माद्वर्जयताशुभं भावं प्रयतेन ॥ १० ॥

॥ द्रमकाख्यानकं समाप्तम् ॥

भरताख्यानकम् -

नमन्नरेन्द्रचन्द्रशिरशेखरवरकुसुमसमूहधारकम्, जन्ममरण सलिलपरिपूरितभवसिन्धुपतितारकम् ।

प्रणम्यऋषभनाथपदपङ्कजप्रणतविपत्तिवारकं, प्रभणतु भरतराज बाहुबलिनोः चरितं भवान्तकारकम् ॥ १ ॥

इहास्ति चक्रधरराजसाध्ये षट्खण्डसमन्वितभरतमध्ये ।

जयलक्ष्मीतिलक नरवररमणा नवयोजनविस्तरा इव कन्या ।

द्वादश ग्रीष्म इवायामे दीर्घा हरिणालिरिव प्राप्तप्रशस्तलीहा ।

---

१. पणमवि-रं० । २. पंकय-रं० । ३. मकारोऽत्रालाक्षणिकः

खमणयवउ जिम्व परिहाणवज्ज, विंझाडइ जिम गुरुसालसज्ज ।
जा कहिं वि गयालि व विमलरयण, अन्नत्थ जुवाणि व पयडरयण ।
पुणु कहिं वि सुमेरु व कणयतार, अवरत्थ जणणि जिम नेहसार ।
निप्पुन्न व कत्थ वि हयपहाण, सुभग व्व कहिं वि सुहसन्निहाण ।
मुणिमाल व कत्थ वि विगयराय, वणिय व्व कहिम्वि सच्चवियमाय ॥
इय उवरि सयासिय, भुवणपयासिय, सा अउज्झ नामिं नयरि ।
रह-जाणमणोहर, हरियतमोहर, गुणेहिं समाणिय अहिमयरि ॥१॥
जहिं भवणसिहर रविरहु खलंति, रविकंतभित्ति दिणि पज्जलंति ।
जहिं पउभरायमणि विप्फुरंति, ससिकंत निसिहिं जलु पज्झरन्ति ।
जहिं धयवड पर कंपंति, पवणि मारणधणि[१] सूयह विसइ सवणि ।
गंधियहं हट्टि जहिं कुट्ठवाय, जूइयरहं सुव्वइ पासपाय ।
जहिं गहणु जणह निम्मलकलाहं, ताडणु कामिणिवच्छत्थलाहं ।
कइयणह पर सगुणप्पबंध, गय-हयपहाण जहिं रायखंध ।

क्षमणकव्रत इव परिधानवर्जा विन्ध्याटवीव गुरुशालसज्जा ।
या कुत्रापि गजालीव विमलरत्ना, अन्यत्र युवतिरिव प्रकटरत्ना ।
पुनः कुत्रापि सुमेरुरिव कनकतारा, अपरत्र जननीव स्नेहसारा ।
निष्पुण्य इव कुत्रापि हतप्रधाना, सुभग इव कुत्रापि शुभसन्निधाना ।
मुनिमालेव कुत्रापि विगतरागा वणिगिव कुत्रापि सत्यापितं[२] माया ॥
इत उपरि सदासीता भुवनप्रकाशिता साऽयोध्या नामा नगरी ।
रथ-यान मनोहरा हृततमोगृहा गुणैः समानीताहिमकरी ॥१॥
यत्र भुवनशिखरे रविरथः स्खलति रविकान्तभित्ति र्दिने प्रज्वलति ।
यत्र पद्मरागमणि र्विस्फुरति शशीकान्तो निशायां जलं प्रक्षरति ।
यत्र ध्वजपट प्रकम्पति पवने मारणध्वनि श्रुणुत विशति श्रवणे ।
गन्धिके आपणे यत्र कुष्टवादं द्युतकारे श्रूयते पाशपातम् ।
यत्र ग्रहणं जनस्य निर्मलकलायास्ताडनं कामिनिवक्षःस्थलस्य ।
कविजने परं स्वगुणप्रबन्धं, गजहयप्रधानं यत्र राजस्कन्धम् ।

---

१. मारणवलि सूयह रं० । २. दृष्ट ।

जहिं कुट्टण छेयण सहहिं कणय, ससि-सूरह गसणु[१] वयंति गणय ।
करपीडणु तरुणिघणत्थणाहं, दीसइ न कयाइ वि जहिं जणाहं ।
नंदणवणसोहिय, मुणिहि विमोहिय, अविरोहिय सुमणसपरिस ।
गुरुरायरवन्निय, विबुहसमन्निय, जइ पर सुरपुरि तसु सरिस ॥२॥
तं पालइ भूवइ भरहु राउ, घरि जिम्व रणि रेहइ जासु चाउ ।
चउसट्ठिसहस्सपुरंधिनाहु, छक्खंडविजयलच्छीसणाहु ।
पुरपरिहपलंबपसत्थबाहु, मण-पवणजवणरमणीयवाहु ।
चउरंगसेण्ण जसु सत्तुमहण, जिम्व[२] जिणह धम्मक्रिय जुत्तिगहण ।
तसु सव्वंतेउर[३]पहाण, लायन्न-रूव-रइ-सुहनिहाण ।
करि खग्गजट्ठि जिम्व सुद्धवंस[४], सुपओहरपावियजणपसंस ।
अकलंक महासइवन्नणिज्ज, बीयाससिरेह व वंदणिज्ज ।
कलभासिणि परिपसरियसुभद्द, निवपयपइट्ठ[५] नामि सुभद्द ।
सो गोरिए जिम्व भवु, रइ जिम्व रइधवु, सहु सिरीए जिम्व महुमहणु ।
राहवु जिम्व जाणइ, तिम्व सुहु माणइ, तीए समउ रिउवणदहणु ॥३॥

यत्र कुट्टनं छेदनं सहते कनकः शशि-सूर्य ग्रसनं वदन्ति गणकाः ।
करपीडनं तरुणिधनस्तने दृश्यते न कदाचिदपि यत्र जने ।
नन्दनवनशोभितो मुनिभि र्विमोहितोऽविरोधितः सुमनसपर्षदि ।
गुरुरागरमणीया विबुधसमानीया यदि परं सुरपुरिस्तस्य सदृशी ॥ २ ॥
तां पालयति भूपति र्भरतो राजा गृह इव रणे राजते यस्य त्यागः ।
चतुःषष्ठिसहस्रपुरन्ध्रिनाथः षट्खण्डविजयलक्ष्मीसनाथः ।
पुरपरिखाप्रलम्बप्रशस्तबाहुः, मन-पवनजवनरमणीयवाहः ।
चतुरङ्गसैन्यं यस्य शत्रुमथनमिव जिने धर्मक्रियायुक्तिग्रहणम् ।
तस्य सर्वान्तःपुरप्रधाना लावण्य-रुप-रति-सुखनिधाना ।
करे खड्गयष्ठिरिव शुद्धवंशा, सुपयोधरप्रापितजनप्रशंसा ।
अकलङ्का महासतीवर्णनीया द्वितीयाशशिरेखेव वन्दनीया ।
कलभाषिणी परिप्रसरितसुभद्रा, नृपपदप्रतिष्ठा नाम्ना सुभद्रा ।
स गौर्या यथा भवो रत्या यथा रतिधवः सह श्रीया यथा मधुमथनः ।
राधव यथा जानक्यास्तथा सुखं मानयति तथा समकं रिपुवनदहनः ॥ ३ ॥

---

१. गहण रं० । २. जिम रं० । ३. उरवहुपहाण रं० । ४. सुइवंस रं० । ५. पयट्ठ नामि य सुभद्द रं० ।

जिणकेवलनाणुप्पत्तिसमइ, उप्पत्ति 'चक्किचक्क तइंसमइ' सम्भाव्यते ।

नियहियइ हियावइ भरहु राउ, पूएमि चक्कु ? किं वा वि ताउ ? ।

सविवेइं पुणरवि मुणिउ एम्व[1], हउं वड्डु अंतरि भुल्लु केम्व ? ।

कहिं तुच्छु चक्कु ? कहिं जिणवरिंदु ?, गंडोवलु कहिं ? कहिं सुरगिरिंदु ? ।

कहिं सायरु सोहइ ? कहिं तलाउ ?, कहिं चक्कवट्टिनरु ? कहिं चिलाउ ? ।

कहिं रासहु ? कहिं सुरवइकरिंदु ?, कहिं किर कुरंगु ? कहिं वणमइंदु[2] ? ।

चिंतामणि कहिं ? कहिं उवलखंडु ?, ... ।

खज्जोयउ कहिं ? कहिं दिवसनाहु ?, कहिं पामरु ? कहि हरि सिरिसणाहु ? ।

इहलोइउ चक्कु, सुसुंदरु वि .... जिणु परलोयह सुहजणउ ।

तं पूइउ (चक्कु) ताइं पूयइ, ता पूयमि पढमइं जणउ ॥४॥

पूइत्तु जिणेसरु समुणिवग्गु, छक्खंडवसुहसाहणह लग्गु ।

मागह वरदाम पहास सिंधु, साहिंतु भरहु धय-छ(त्त) यचिंधु ।

साहेवि सट्ठिवरिसहं सहास, माणेवि सिरिदेविं सहु विलास ।

जिनकेवलज्ञानोत्पत्तिसमये उत्पत्तिश्चक्रीचक्रस्य तस्मिन्समये सम्भाव्यते ।

निज हृदये हितायति भरतो राजा पूजयामि चक्रं ? किं वापि तातम् ? ।

सविवेकी पुनरपि मुणित्वेत्थं भवतु कलहति महदन्तरं विस्मृतः कथम् ।

क्व तुच्छं चक्रं ? क्व जिनवरेन्द्रः ? गण्डोपलः क्व ? क्व सुरगिरीन्द्रः ? ।

क्व सागरः शोभते ? क्व तडागः ? क्व चक्रवर्तिनरः ? क्व चिलातः ? ।

क्व रासभः ? क्व सुरपतिकरीन्द्रः ? क्व किल कुरङ्गः ? क्व वनमृगेन्द्रः ? ।

चिन्तामणिः क्व ? क्वोपलखण्डः ? .... ।

खद्योतः कुत्र ? कुत्र दिवसनाथः ? कुत्र पामरः ? कुत्र हरीश्रीसनाथः ? ।

इहलोके चक्रं सुसुन्दरमपि .... जिनः परलोके शुभजनकः ।

तं पूजितं [चक्रं] ताते पूजिते ततः पूजयामि प्रथमतो जनकम् ॥ ४ ॥

पूजयित्वा जिनेश्वरं समुनिवर्गं षट्खण्डवसुधासाधनाय लग्नः ॥

मागध-वरदाम-पभास-सिन्धुं साधयित्वा भरतो ध्वज-छत्रकचिह्नः ।

साधयति षष्टिवर्षं सहस्रं मानयति श्रीदेव्या सह विलासम् ।

---

१. एम रं० । २. वणगइंदु रं० ।

कारवइ सहोयर नियय सेव, ति वि कहहिं जणेरहं रिसहदेव ।
उद्दालइ अम्हह भरह रज्ज, किं ओप्पहुं ? भवहुं कि जुज्झसज्ज ? ।
इंगालगदाहगपमुह ताहं, दिट्ठंत देवि विसइहिं रयाहं ।
संबुज्झह होह म मूढचित्त, वेयालिय अट्ठाणवइ वित्त ।
पडिबोहिय पढिवि जुगाइदेवि, निंदेवि विसय कयभुवणसेवि ॥
पव्वइय महायस, वड्ढियसाहस, सेविय दुक्कर तव चरण ।
उप्पाडिय केवल, खालिय कलिमल, विहरहिं वसिकयनियकरण ॥५॥
साहिवि वसुह नराहिवसाहणु, पविसइ नयरिहिं हय-गय-वाहणु ।
जिम्व[1] चउवेउ विप्पु मायंगह[2], पविसइ गेहि न वज्जियसंगहं ।
जिम्व गुणवंती का वि महासइ, वेसहं पाडइ कहवि न पइसइ ।
अकयपओयणु भिच्चु पहाणउ, जिम्व लज्जइ पेच्छंतउ[3] राणउ ।
तिम्व चक्कु वि कयवंदणमालहिं, पविसइ नवरि न आऊहसालहिं ।
तं पिक्खिवि विम्हिउ भरहेसरु, ... ।

कारयति सहोदरं निजकसेवां तेऽपि कथयन्ति जनकस्य ऋषभदेवस्य ।
उत्क्षिपति अस्माकं भरतो राज्यं, किमर्पयामो ? भवामो किं युद्धसज्जाः ? ।
अङ्गारदाहकप्रमुखांस्तेभ्यो दृष्टान्तान्ददाति विषयेषु रतानाम् ।
सम्बुध्यत भवत मा मुढचित्ता वैकालिकादष्टानवति वृत्तात् ।
प्रतिबोध्य पठति युगादिदेवो निन्दयति विषयान् कृतभुवनसेवः ।
प्रव्रज्य महायशसो वर्धितसाहसाः सेवित्वा दुष्करतपश्चरणम् ।
उत्पाद्य केवलं स्खाल्य कलिमलं विहरत वशीकृतनिजकरणाः ॥ ५ ॥
साधयति वसुधां नराधिपसाधनः प्रविशति नगर्यां हयगजवाहनः ।
यथा चतुर्वेदो विप्रो मातङ्गस्य प्रविशति गृहे न वर्जितसङ्ग्रहः ।
यथा गुणवती कापि महासती वेश्यायाः पाटके कदापि न प्रविशति ।
अकृतप्रयोजनो भृत्यः प्रधानो यथा लज्जते पश्यन् राजानम् ।
तथा चक्रमपि कृतवन्दनमालायां प्रविशति नवरि नायुद्धशालायाम् ।
तं प्रेक्षते विस्मितो भरतेश्वरः .... ।

---

१. जिम रं० । २. ०गहु रं० । ३. पिच्छंतउ रं० ।

वुच्चइ मंतिहिं पहु ! निसुणिज्जउ, कारणु चक्कपवेसि भरहेसरु ।
जिम्व कमचुक्कउ वणि पंचाणणु, कहवि न वंछइ खरनहराणणु ।
जिम्व को वि कुलीणउ, मग्गनिलीणउ, महइ न माणु विणा सयणु ।
तिम्व माणधणेसरु, तक्खसिलेसरु, बाहुबलि वि तुह सासणु ॥६॥
ता अकयपओयणु चक्करयणु सट्ठाणि न पइसइ दिव्वनयणु ।
अन्नु वि आयन्नसु वयणु सामि !, तुह हियकरु सुरकरिलीलगामि ! ।
पइ भरहह जित्तउं काइ देव !, बाहुबलि अलितइं तुज्झ सेव ।
पय मुट्ठिपहारिहिं पहउ गयणु, किउ कुमउ मुयवि सव्वन्नवयणु ।
कण मेल्लिवि रिसहेसरकुलेस ?, पइ कुक्कुस कुट्टिय[1] कयकिलेस ।
नच्चियउं निरत्थउं अंधयारि, किउ अग्गिहोमु निप्फलउ छारि ।
किउ अंधह मंडणु मुहह एउ, रोविउ अरन्नि पइं[2] निव्विवेउ ।
एउ दिन्नउ बहिरह कन्नजावु, एत्तिउ पयासु निप्फलउ सावु ॥
पइं भरहु जिणंतइ, नउ अमुयंतइ, मुयह कलेवरु उच्चलिउ[3] ।
बाहुबलि अकायरु, लहुयउ भायरु, कारिउ सेव न जं बलिउ[4] ॥७॥

उच्यते मन्त्रिभिः प्रभो ! निश्रुणु कारणं चक्रप्रवेशे भरतेश्वर ! ।
यथा क्रमच्युतो वने पञ्चाननः कथमपि न वाञ्छति खरनखराननः ।
यथा कोऽपि कुलीनो मार्गनिलीन इच्छति न मानं विना स्वजनम् ।
तथा मानधनेश्वरस्तक्षशिलेश्वरो बाहुबल्यपि तव शासनम् ॥ ६ ॥
ततोऽकृतप्रयोजनं चक्ररत्ने स्वस्थाने न प्रविशति दिव्यनयनम् ।
अन्यदप्याकर्णय वचनं स्वामिन् ! तव हितकरं सुरकरिलीलागामिन् ! ।
केवलं भरतस्य जितं कं देव ! बाहुबल्यलाति तव सेवाम् ।
पद-मुष्टि प्रहारैः प्रहतगगनं किमु कुमतो मुणति सर्वज्ञवचनम् ।
कणं मेलयितुं ऋषभेश्वरकुलेश ! ? केवलंकुक्कुसं कुट्टित्वा कृतक्लेशः ।
नर्तनं निरर्थकमन्धकारे कृताग्निहोमो निष्फलः क्षारे ।
कथमन्धको मण्डनं मुखस्यैतु रुदनमरण्ये केवलं निर्विवेकः ।
एतु ददातु बहिः कर्णजापम्, एतावान् प्रयासो निष्फलः सः ।
केवलं भरतस्य जेष्यति नतु अमोक्ष्यति मुञ्चथ कलेवरमुच्चलितुम् ।
बाहुबल्यकातरो लघुको भ्राता कार्यते सेवां न यो बली ॥ ७ ॥

---

१. कुट्टिमपाय० रं । २. (दे.) (सर्वनाम) युस्माद् तव, अतिशयः । ३. उच्चलियउ रं० । ४. बलियउ ।

तं निसुणेविणु भरहु पयंपइ, भुंजउ रज्जु सु इंवइ संपइ ।
मंतिहु महु एउ वयणु न भावइ, जगि अप्पणउ कु बंधवु पावइ ? ।
सा संपय[१] जा सयणह दिज्जइ, तं फलु जं विहलहमुवउज्जइ ।
धत्तूराहलु कवणिं खज्जइ ?, किंपागह फलु मुक्खु वि वज्जइ ।
किवणह धरि थुत्थुक्किय अच्छइ, लच्छिहि तहिं कहि को मुहु पेच्छइ ? ।
लहुयसहोयर जं निक्कालिय, जणइं दिन्न रज्जइं उद्दालिय ।
तं पि हु अज्ज वि पुट्ठिहिं धावइ, दुव्विलसिउ जिम्व मणु संतावइ ।
भरहेसरु संतुट्ठउ सप्पइ, पुणरवि मंतिहि इम्व विन्नप्पइ ।।
पहु ! तुज्झ हियत्थि, सइ सेयत्थि, अम्हिहि एउ कहिज्जइ ।
नियं सेव कराविवि, नउ सुमराविवि, सम्माणिवि विसज्जियइ ।।८।।
अह पभणिइपविणिहि भरहनाहु, मेल्लाविउ मंतिहि मणह गाहु ।
पट्ठवइ दूउ नामिं सुवेगु, अप्पेविणु रहवरु पवणवेगु ।
अहो दूय ! जाहि तक्खसिल ताव, पियवयणिहि भणसु महाणुभाव ! ।

तन्निश्रुत्य भरत: प्रजल्पति, भुञ्जतु राज्यं स एतावत्सम्प्रति ।
मन्त्रिणो ममैतद्वचनं न भावयति जगत्यात्मन: को बन्धव: प्राप्नोति ? ।
सा सम्पद्या स्वजनस्य दीयते तत्फलं यद्विफलमुपयुज्यते ।
धतूरक: क: खादति ? किम्पाक: खलु मुर्खोऽपि वर्जति ।
कृपणस्य गृहे थुथूत्कृत आस्ते लक्ष्म्यास्तत्र कुत्र को मुखं पश्यति ? ।
लघु सहोदरा यन्निष्काषिता जनकदत्तं राज्यमाच्छिन्नम् ।
तदपि खल्वद्यापि पृष्टे धावति दुर्विलसितमिव मन: सन्तापयति ।
भरतेश्वर: सन्तुष्ठ: सर्पति पुनरपि मन्त्रिभिरित्थं विज्ञप्यते ।
प्रभो ! तव हितार्थिभि: सदा श्रेयार्थिभिरस्माभिरेतत्कथ्यते ।
निज सेवां कारयति नतु स्मारयति सन्मान्य विसर्जयति ।। ८ ।।
अथ प्रभणिति प्रविणाभि र्भरतनाथस्य ! मोचितो मन्त्रिभि र्मनसो ग्राह: ।
प्रस्थापयति दूतं नाम सुवेगं, अर्पयित्वा रथवरं पवनवेगम् ।
अहो दूत ! याहि तक्षशिलां तावत् प्रियवचनै र्भण महानुभाव ! ।

---

१. संपइ० रं ।

पिउ बंधवु मज्झु कणिट्ठु भाय, बाहुबलि न रूसइ जिम्ब सुजाय ।
पव्वइय सहोयर लहुय सावि, दुइ अम्हिहिं राय न भ्रंति........... ।
महु मन्नइ सेव सिणेहजुत्त, उवभुंजहु रज्ज पसन्नचित्त ।
आएसु भणेविणु जाहु लग्गु, अवसउणसहसपडिखलियमग्गु ।
अत्थाणि कणिट्ठह पहुहु आण, सव्वा वि निवेइय कयपमाण ॥
बाहुबलि भणइ भो भरहभाय !, म भायसु होहि थिरु .... ।
मेल्लेविणु मुणिवर अन्नु जिणु, अवरह न नमइ नं मज्झु सिरु ॥९॥
एत्थंतरि रायपसायसुहिउ, चंदुग्गमि जलनिहिजलु व खुहिउ ।
अत्थाणु सयलु बाहुबलितणउं, दूयागमि मणि मच्छरिउ घणउं ।
आंबलीय[1] भीमि दाढियहु लेवि, उत्ताणिय ददरहिं नयण बे वि ।
चउरंगुलु भूमिहिं निसढि भग्गु, अवलोइउ सीहिं निसिउ खग्गु ।
हत्थयलि अयलिं हउ धरणिवट्ठु, दमघोसिं दंतिहिं अहरु दट्ठु ।
भालयलिं सुवेगिं तविलि भग्ग, महसेणह छुरियहिं मुट्ठि लग्ग ।

प्रियबन्धुर्मम कनिष्ठो भ्राता बाहुबली न रोषयति यथा सुजात ! ।
प्रव्रजिता सहोदरा लघुका सापिद्वि अस्माभी राज न भ्रान्तिः ।
मम मन्यते सेवां स्नेहयुक्त उपभुनक्तु राज्यं प्रसन्नचित्तः ।
आदेशं भणित्वा यावल्लग्नो ऽपशकुनसहस्रप्रतिस्खलितमार्गः ।
आस्थाने कनिष्ठस्य प्रभोराज्ञां सर्वामपि निवेद्य कृतप्रमाणाम् ।
बाहुबलिं भणति भो भरतभ्रात ! मा बीभेहि भव स्थिरो .... ।
मुक्त्वा मुनिवरमन्यज्जिनमपरस्य न नमति मम शिरः ॥ ९ ॥
अत्रान्तरे राजप्रसादशोभिता चन्द्रोद्गमे जलनिधिजलमिव क्षुब्धा ।
आस्थानी सकला बाहुबलिसत्का दूतागमे मनसि मत्सरिता गाढम् ।
आवलिता भीमेन श्मश्रुलिप्ता उत्तानिते ददरेण नयने द्वेऽपि ।
चत्वाराङ्गुलं भूमौ निषधेन भग्नं, अवलोकितं शिखिना निशीतं खड्गम् ।
हस्ततलमचलेन हतं धरणिपट्टे, दमघोषेण दन्तैरधरौ दृष्टौ ।
भालतले सुवेगिना त्रिवलि र्भग्ना, महसेनस्य छूरिकायां मुष्टि र्लग्ना ।

---

१. आंबलिउ-रं० ।

फुडु पुप्फदंति फुरुफुरियहोट्टु[१], पहरणहुं पिहुहु कंपियं[२] पकोट्टु । य होट्टु
उब्भडभडभीसणसुहडवग्ग, अन्ने वि एम्व बोल्लणह लग्ग ॥
बहुसेन्नु भरहु कहि किर कवणु, बाहुबलिहि कुवियाणणह ? ।
परियारिउ हरिणु कहि किं कुणउ कुवियह पंचाणणहं ? ॥१०॥
अह सुवेगवयणिं रणकामय, दिन्नि वि भायर पायडनामय ।
रणसंभारखुहियसायरजल, सिंवासिबिहिं मिलिय महाबल ।
तो उदयाचलि चडियइ दिणयरि, पेच्छिउकामिं पणोसियं[३]तमभरि ।
अहो किर किं रिसहेसरजायहं, घरि वि विरोहु हुयउ दुहं भायहं ।
धिसि ! धिसि ! धिसि ! विसयह तुच्छत्तणु, धिसि ! धिसि ! धिसि ! कसायविरुयत्तणु ।
जाण कज्जि इंम्व[४] होइ जणक्खउ, यावहं ताहं कु दुंट्ठिम[५] लक्खउ ? ।
विसय दुरंतनरयदुहकारण[६], विसय सग्ग-अपवग्गह वारण[७] ।
विसय धम्मधिइवेयवियारण, विसय घरि वि इम्व[८] विहिय महारण ॥
जइ वि हु जणसम्मय, जइ वि मणोमय, तह वि हु खय गय विसयरइ ।
किउ वलिहि सुवन्नउं, जइ वि रवन्नउ, कन्नह छेयणु जं[९] करइ ॥११॥

स्फुटं पुष्पदन्तेन पोस्फुरितौष्ठं, प्रहरणेन पृथोः कम्पितः प्रकोष्टः ।
उद्भटभटभीषणसुभटवर्गा अन्येऽपीत्थं कथयितुं लग्नाः ।
बहुसैन्यो भरतः करिष्यति किल किम् बाहुबलेः कुपिताननस्य ? ।
परिवृत्य हरिणः क्व किं करोतु कुपितस्य पञ्चाननस्य ? ॥ १० ॥
अथ सुवेगवचनेन रणकामौ द्वावपि भ्रातरौ प्रकटनाम्नौ ।
रणसम्भारक्षुभितसागरजलः अतिवेगेन मिलितमहाबलः ।
तत उदयाचलमारोहति दिनकरे द्दष्टुकामे प्रणाशिततमोभारे ।
अहो ! किल किं ऋषभेश्वरजातयो गृहेऽपि विरोधो भवेद् द्वयो र्भ्रातरोः ।
धिग् ! धिग् ! धिग् ! विषयस्य तुच्छत्वम्, धिग् ! धिग् ! धिग् ! कषायविरुपत्वम् ।
येषां कार्ये इत्थं भवति जनाख्यातं यावत्तेषां को द्विषतां लक्ष्यतु ? ।
विषया दुरन्तनरकदुःखकारणम् विषयाः स्वर्गापवर्गस्य वारणम् ।
विषया धर्मधृतिवेदविदारणम् विषया गृहेऽपीत्थं विहितमहारणम् ।
यद्यपि खलु जनसम्मतं यद्यपि मनोमतं तथापि खलु क्षयगता विषयरतिः ।
किमु वल्याः सुवर्णं यद्यपि रमणीयं कर्णस्य छेदनं यत्करोति ? ॥ ११ ॥

---

१. हुट्ठ-रं० । २. कंपिउ-रं० । ३. ०सिउ तम० रं० । ४. इम रं० । ५. दिट्ठिम रं० । ६. कारणु रं० । ७. वारणु रं० । ८. इम रं० । ९. जइ रं० ।

निग्गइ तमभरि पयडिय नहंगणि, बहुभडभीसावणे समरंगणि ।
बिन्नि वि रणरहसिं सन्नद्धइं, बहुमच्छर अमरिसिं संकुद्धइं ।
बिन्नि वि जयसिरिसंगमलुद्धइं । .... ॥
बिन्नि वि नियसामियकज्जुज्जय, बिन्नि वि पयडपरक्कमदुज्जय ।
बिन्नि वि रणसंकडि अविसायइं, बिन्नि वि नियपहुलद्धपसायइं ।
बिन्नि वि रणकलसिक्खियसत्थइं, बिन्नि वि पउणीकियवहुसत्थइं ।
बिन्नि वि मिल्लियसिंहनिनायइं, बिन्नि वि सुद्धवंसगुणनायइं ।
बिन्नि वि निक्करुणइं निप्पट्टइ, बिन्नि वि रणरहसिं संघट्टइ ।
रवि(—) आगमि जिम्व चंदुग्गमि, रेल्लंतइं महियलु जलइं ।
पुव्वावरसिंधुहुं दोहिं वि बंधुहु, दुग्गाहइं मिलियइं बलइं ॥१२॥
अब्भिट्ट गयाहिव गयवराहं, गलगज्जिभरियभुवणंतराहं ।
संलग्ग तुरय जवसुंदराहं, तुरयह हयहेसियमणहराहं ।
संचोइय संदण रणि रहाहं, घरहररवपुरियसुरपहाहं ।
लल्लक्कमुक्कलक्कारवाहं, संलग्ग सुहड भडमाणवाहं ।

निर्गच्छति तमोभारे प्रकटितनभोङ्गणे बहुभटभीषणे समराङ्गणे ।
द्वावपि रणरभसे सन्नद्धौ बहुमत्सरामर्षौ सङ्क्रुद्धौ ।
द्वावपि जयश्रीसङ्गमलुब्धौ .... ।
द्वावपि निजस्वामिकार्योद्धतौ, द्वावपि प्रकटपराक्रमदुर्जयौ ।
द्वावपि रणसंकटे ऽविषादिनौ द्वावपि निजप्रभुलब्धप्रसादौ ।
द्वावपि रणकलाशिक्षितशस्त्रौ द्वावपि प्रगुणीकृतबहुशस्त्रौ ।
द्वावपि मिलितसिंहनिनादौ, द्वावपि शुद्धवंशगुणनायकौ ।
द्वावपि निष्करुणौ गाढौ द्वावपि रणरभसे संघट्टयतः ।
रव्यागमे यथा चन्द्रोद्गमे, प्लावयन्ति महितले जलानि ।
पूर्वापरसिन्धवो द्वयोरपि बन्ध्वो, दुर्ग्राह्यानि मिलितानि बलानि ।
प्रवृत्तो गजाधिपो गजवरेण, गलगर्जितभृतभुवनान्तरेण ।
संलग्नस्तुरगो जवसुन्दरेण, तुरगेण हयहेषितमनोहरेण ।
सञ्चोदितः स्यन्दनो रणे रथेन, घरघररवपूरितसुरपथेन ।
भयङ्करमुक्तपुत्कारवाहानां, संलग्नः सुभटो भटमानवाहानाम् ।

कडतल्लझलक्कियभीसणाहं, उक्खायखग्गगुरुनीसणाह ।
भलभलियसेल्लभासियनहाहं, मुग्गर-मुसुंढिपयडाउहाहं ।
लल्ल(क्क)चक्कचच्चक्कियाहं, नाणाविहहेइचमक्कियाहं ।
बाणावलिछाइयनहयलाहं संलग्गु जुज्झु दोहिं वि बलाहं ॥
इम्व[1] कायरनासण, सूरह तासण, घणजणमहणि महाबलइं ।
रिसहेसर जायहं, दोहि वि भायहं, अब्भिट्टइ वियडइं बलइं ॥१३॥
भिडंतरायनंदणं, भज्जंतभूरिसंदणं, किज्जंतसत्तुसद्दणं संपन्नवेरिमद्दणं ।
मरंतमत्तवारणं, पढंतचारुचारणं, विपक्खदिन्नदारुणं, महंतपावकारणं ।
पडंतसेयछत्तयं, भिज्जंतरायगत्तयं, दीसंतरत्तगत्तयं, संजायगिद्धभत्तयं[2] ।
छिज्जंतहत्थिसुंडयं, रुल्लंतरुंडमुंडयं, उड्डंतभूरिकंडयं, ... ॥
एवंविहु भीसणु, सुयहरिनीसणु, विम्हावियसुरनरनिवहु ।
जाय(उ) आओहणु, भडसंखोहणु, दंसियबहुविहुसत्तुवहु ॥१४॥
चित्तरहह नंदणु चित्ततेउ, हक्किउ नलि भडहमसज्झतेउ ।
ओरिं चलु कायर[3] म करि खेउ, जिं दंसेमि दुक्करु रणह भेउ ।

★कडतल्लदग्धभीषणानामुत्खातखड्गगुरुनिःस्वननाम् ।
भडभडितकुन्तभासितनभसां, मुद्गर-मुसुण्ढिप्रकटायुद्यानाम् ।
भयङ्करचक्रचर्चितानां, नानाविधहेतिचमत्कृतानाम् ।
बाणावलिच्छादितनभस्तलानां, संलग्नं युद्धं द्वयोरपि बलानाम् ।
एवं कातरनाशनं शूरत्रासनं घनजनमथनि महाबलानि ।
ऋषभेश्वरजातयो र्द्वयोरपि भ्रातरोः प्रवृत्तानि विकटानि बलानि ॥ १३ ॥
युध्यद्राजनन्दनं भज्जद्भूरिस्यन्दनं कुर्वत्छत्रुशब्दनं संपन्नवैरिमर्दनम् ।
म्रियमाणमत्तवारणं पठच्चारुचारणं विपक्षदत्तदारुणं महापापकारणम् ।
पतच्छ्वेतछत्रकं भिद्यद्राजगात्रकं, दृश्यद्रक्तगात्रकं सञ्जातगृध्रभक्तकम् ।
छिद्यद्धस्तिसुण्डकं, रोलद्रुण्डमुण्डकमुड्डयद्भूरिकण्डकं .... ॥
एवंविधं भीषणं श्रुतहरिनिःस्वनं विस्मापितसुरनरनिवहम् ।
जातमायोधनं भटसंक्षोभणं दर्शितबहुविधशत्रुवधम् ॥ १४ ॥
चित्ररथस्य नन्दनश्चित्रतेजा आकार्य नलेन भटमसाध्यतेजाः ।
समीपं चल कातर ! मा कुरु खेदं यद्दर्शयामि दुष्करं रणस्य भेदम् ।

---

१. इम-रं० । २. गिद्धछत्तयं-खं० । ३. कायरु-रं० । ★ (दे.) शस्त्रविशेषः

तिं वयणिं रंजिउ चेत्ततेउ, बोल्लणह लग्गु तुहु रणि अजेउ ।
महु सामिहिसेव करावणेण, नियलहुयभायनीसारणेण ।
तुह जणयह जाउं जं कलंकु, पइं[१] परिपक्खालिउ तउ विसंकु ।
पइं अप्पउं पयडिउ सुहडविंदि, पइं नाउं लिहाविउ धवलि चंदि ।
इय भणवि[२] परोप्पर जुज्झि लग्ग, बाणेहिं संछाइय गयणमग्ग ।
सरधारहिं[३] छाउय सूरतेय, वरसहि घण जिम्व नल चित्ततेय ॥
चित्तरहह नंदणि, कयकडमद्दणि, भरहह नंदणु अतुलबलु ।
बाणावलिघाइ, गरुयदुवाइ, पाडिउ तरुवरु जेम्व नलु ॥१५॥
नलि पडियइ दंडाहिवि पयंडि, आयड्डिय रढ कोदंडदंडि ।
सीहरहु सुसेणि इम्व सग्गव्वु, पडिभणिउ मुएविणु अवरु सव्वु ।
मइ समउं सुहड वरि जुज्झि लग्गु, करि धुणुहरु धरि अहवा वि खग्गु ।
नलु मारवि[४] गम्मई केत्थु[५] पाव, ए सयल देमि हउं तुम्ह ताव ।
इम्व भणिवि सरिउ मणिदंडरयणु, करि चडिउ तेइं भासंतु गयणु ।

तेन वचनेन रञ्जितश्चित्रतेजाः कथयितुं लग्नस्तव रणे ऽजेयः ।
मम स्वामिना सेवाकारितेन निजलघुकभ्रातानिःसारणेन ।
तव जनकस्य जातं यत्कलङ्कं त्वं परिप्रक्षालय तकं विशङ्कम् ।
त्वमात्मनः प्रकटयित्वा सुभटवृन्दं त्वं ज्ञात्वा लेखय धवलं चन्द्रम् ।
इति भणित्वा परस्परं योद्धुं लग्नौ बाणैः सञ्छाद्य गगनमार्गौ ।
शरधाराभिश्छादित सूर्यतेजसौ वर्षतो घनो यथा नल-चित्रतेजसौ ।
चित्ररथस्य नन्दनः कृतकटमर्दनो भरतस्य नन्दनोऽतुलबलः ।
बाणावलिधातेन गुरुकदुर्वातेन पातितस्तरुवरो यथा नलः ॥ १५ ॥
नले पतति दण्डाधिपे प्रचण्डे आकृष्य दृढकोदण्डदण्डे ।
सिंहरथः सुसेनमित्थं सगर्वं प्रतिभणितो मुक्त्वापरं सर्वम् ।
मम समं सुभट ! वरं युद्धे लग करे धनुर्धर ! धराथवापि खड्गम् ।
नलं मारित्वा गच्छति क्व पाप ! ए सकलं ददामि अयहं तुभ्यं तावत् ।
इत्थं भणित्वा स्मृत्वा मणिदण्डरत्नं करे आरुहय तेजसा भासमानगगनम् ।

---

१. (दे.) सर्वनाम युष्मद्. 'त्वं' । २. भणिवि-रं० । ३. ०धारिहि-रिं० । ४. मारिवि रं० । ५. केत्थ रं० ।

पविदंडि सुरवइ जेम्व गिरि, तिम्व सो वि सुसेणि पहउ सिरि ।

बाहुबलिसेन्नु निप्पहवयणु, संजाउ खणिण [1]मयलियनयणु ।

आवरिउ गयणु व दिणमणीए, अत्थमियइ भडचूडामणीए ।

बाहुबलिहि नंदणु भडआणंदणु, भरहसेन्नि सुहडह जुजउ ।

सुमरिवि रिसहेसरु, मणि परमेसरु, मरि समाहि सोहम्मि गउ ॥१६॥

॥ नलकुमार-सीहरहविणासणो नाम पढमो संधी ॥१॥

पहुपल्हायरायकुलसंभवु भवरिउमहणजिणमणो,

बहुबहुमाणविहियगुरुपयपउमपणमणो ।

बहिरंतरंगदुद्धयरिउगंजणु जणबहुस्सुउ ।

जिम्व हणुयंतु सुहडचूडामणि तिम्व निलवेउ विस्सुउ ॥१॥

अह निलवेउ समररसुब्भुडु रणि अन्नियंतु नारउ ।

निब्भरसुहडघडणरणसंकडदंसणकेलिकारउ ॥२॥

चिंतइ चरिणि चत्तउ सुयहरु, नहयलि नीरिं रहियउ जलहरु ।

पविदण्डी सुरपति र्यथा गिरि तथा सोऽपि सुसेनं प्रहतः शिरसि ।

बाहुबलिसैन्यं निष्प्रभवदनं सज्जातं क्षणेन मुकुलितनयनम् ।

आवार्य गगनमिव दिनमणौ, अस्तमिते भटचूडामणौ ।

बाहुबले र्नन्दनो भटानन्दनो भरतसैन्ये सुभटस्य दुर्जयः ।

स्मृता ऋषभेश्वरं मनसि परमेश्वरं मृत्वा समाधिना सौधर्मं गतः ॥ १६ ॥

॥ नलकुमार-सिंहरथ विनाशनो नाम प्रथमः सन्धी ॥ १ ॥

पृथुप्रहलादराजकुलसम्भवो भवरिपुमथनजिनमनाः ।

बहुबहुमानविहितगुरुपदपद्मप्रणमनः ।

बहिरन्तरङ्गदुर्जयरिपुगञ्जनो जनबहुश्रुतः ।

यथा हनुमान् सुभटचूडामणिस्तिथानिलवेगो विश्रुतः ॥ १ ॥

अथानिलवेगः समररसोद्भटो रणे ऽद्रश्यन्नारदम् ।

निर्भरसुभटघट्टनरणसंकटदर्शनकेलिकारकम् ॥ २ ॥

चिन्तयति चरणत्यक्तश्रुतधरं, नभस्तले नीररहितो जलधरः ।

---

१. मउलिय० ।

सुहरसलवणविहूणउं भोयणु, सुहसोहग्गविवज्जिउ जोयणु ।
तणु जिम्व[1] वयणविवज्जिउ दीणउं, वयणु व पम्हलनयणविहीणउं ।
गयणु व अत्थमियइ जिम्व[2] दिणमणि, हारु व हारियवरमज्झिममणि ।
सुहपरिणामविवज्जिउ मुणिमणु, सिंहकिसोरविहूणउं जिम्व वणु ।
रायहंसरहियउं जिम्व सरवरु, जिम्व[3] जणि रूवविवज्जिउ वहुवरु ।
विहवु व चत्तउ पत्तह दाणिं, दाणु व दूरीकिउ सम्माणिं ।
गीउ व वियलउं[4] सुमहुरवाणिं, पउमु व रहियउं भमरजुवाणिं[5] ॥
रिसहेसर जायह, चत्तविसायह, तेम्व रणंगणु .... ।
.... ॥१॥
.... ग धरणि पकिलामिउ ।
जम्मि लयहरहिं कीलंति विज्जाहरा, भमहिं गय-गवय-हरि-हरिण-रुरु-नाहरा ।
तासु सिरि दोन्नि सेढीओ जणवयवरा, एग जक्खिणहिं उत्तरहिं भणियाऽवरा ।
अत्थि तहिं नयरु नामेण रहनेउरं, सद्दरमणीउ गिरिसरिहिं नं[6] नेउरं ।

शुभरसलवणविहीनं भोजनं, सुखसौभाग्यविवर्जितं यौवनम् ।
तनुर्यथा वदनविवर्जितं दीनं, वदनमिव पक्ष्मलनयनविहीनम् ।
गगनमिवास्तमितं यथा दिनमणिं, हारमिव हारितवरमध्यममणिम् ।
शुभपरिणामविवर्जितं मुनिमनः, सिंहकिशोरविहीनं यथा वनम् ।
राजहंसरहितं यथा सरोवरं यथा जने रुपविवर्जितं वहुवरम् ।
विभव इव त्यक्तपात्रदानं दानमिव दूरीकृतसन्मानम् ।
गीतमिव विकलं सुमधुरवाणि पद्ममिव रहितं भ्रमरयुवतिम् ।
ऋषभेश्वर जातस्य त्यक्तविषादस्य तथा रणाङ्गण ....
.... ॥ ? ॥
.... ग धरणि प्रक्लामितम् ।
यस्मिल्लतागृहे क्रीडन्ति विद्याधराः भ्रमन्ति गज-गवय-हरि-हरिण-रुरु-नाहराः ।
तस्य शिरसि द्वे श्रेणी जनपदवरे एका दक्षिणे उत्तरे भणितापरा ।
अस्ति तत्र नगरं नाम्ना रथनुपूरं शब्दरमणीयं गिरिसरिद्भिरिव नुपूरम् ।

१-२. जिम रं० । ३. जिम जिणरूव रं० । ४. विज्जलउं रं० । ५. जुयाणि रं० । ६. १. नं-(दे.) इव ।

पयडपल्हाउ पल्हाउ तहिं नरवरो, रूवसोहग्गगुणकलिउ नं महिधरो ॥
तं पयडपरक्कमु, सम्मयसक्कमु, खग्गवसीकयरिउनिवहु ।
पालइ महिमालउ, वरुव हिमालउ धवलकित्तिगंगापवरु ॥२॥
नारयरिसि जायवि रायपासि, अज्झयणु पढेविणु गुरु पयासि ।
हउं बंभणु मग्गागमकिलंतु, महु भोयण दिज्जउ गुणमहंतु ।
किं कारणु उत्तावलउ भट्ट !, सो भणइ रिसहसुय गुरुमरट्ट ।
आभिट्टा संगरि बलपकिट्ठु, जाएवउं तहिं मइं गुणगरिट्ठ ! ।
भो भट्ट ! भुंजि तुह होउ भद्दु, मं करि वियत्त इम्व उच्चसद्दु ।
जाणिस्सइ वइयरु अनिलवेगु, पियपरिभवु मुणि एही सुवेगु ।
जा एय तत्थ आलाव हुंति, ता अनिलवेउ संपत्तु झत्ति ।
महु दिज्जउ किंपि हु सेन्नु देव !, मइं समरि करेवी तायसेव ॥
पुत्ति पभवंतिं, गुणेहिं महंतिं, ताय ! जणेरह गुण कवणु ? ।
मइं रणि पइसेवउं, निरु जुज्झे (उं), एम्व भणि चल्लिउ गुणभवणु ॥३॥

प्रकटप्राहलादः प्रह्लादस्तत्र नरवरो रुपसौभाग्यगुणकलित इव महिधरः ।
तं प्रकटपराक्रमं सम्मतशक्रं खड्गवशीकृतरिपुनिवहम् ।
पायलति महिमालं हर इव हिमालयं धवलकीर्त्तिगङ्गाप्रवाहम् ।
नारदर्षि र्याति राजपार्श्वे, अध्ययनं पाठयितुं गुरुप्रकाशिन् ।
अहं ब्राह्मणो मार्गागमक्लान्तो मह्यं भोजनं ददातु गुणमहत् ।
किं कारणे शीध्रता भट्ट ! स भणति ऋषभसुतौ ! गुरुगर्वौ: ।
प्रवृत्तौ सङ्गरे बलप्रकृष्टौ, यातव्यं तत्र मया गुणगरिष्ट ! ।
भो भट्ट ! भोजने तव भवतु भद्रं, मा कुरु व्यक्तमित्थमुच्चशब्दम् ।
जानिष्यति व्यतीकरमनिलवेगः पितृपरिभवो मुणित्वैष्यति सुवेगः ।
यावदेतत्तत्रालापं भवति तावदनिलवेगः सम्प्राप्तः झटिति ।
मम ददातु किमपि खलु सैन्यं देव ! मया समरे कर्तव्या तातसेवा ।
पुत्रे प्रभवति गुणै र्महति तात ! जनकस्य गुणः कः ? ।
मया रणे प्रविष्टव्यं निश्चित्तं योधितव्यमिति भणित्वा चलितो गुणभवनः ॥ ३ ॥

---

१. वेगु रं० ।

तं सुणिवि नेहिं भोलविउ ताउ, बोल्लणह लग्गु पल्हायराउ ।
तुहुं अज्ज वि बालउ सवह सज्झु, अन्नायचक्कहरजु(ज्झ) मज्झु ।
आयन्नवि तं निम्मलविवेउ, पभणिउ साहसधणु अनिलवेउ ।
हउं बालु अकारणु ताय ! एउ, जइ जियह फुरइ अप्पणउं तेउ ।
किं कुद्धउ सीहकिसोरबालु, निद्दलइ न गयकुलु कमकरालु ? ।
लहुयउ चिंतामणि जणि समत्थु, चिंतियउं पणामइ किं न वत्थु ? ।
किं नासियतमभरु फुरियतेउ, न पयासइ दीवउ गुरुनिकेउ ? ।
पज्जलियउ सिहिकणु अप्पयासि, किं न कुणइ तणभरु भासरासि ? ॥
बाहुबलिहि तायह, भरहह भायह, मइं साहेज्जु करेवउं ।
निच्छइं जोएवउं, रणि पइसेवउं, वइरिमाणु मलेवउं ॥४॥
दससहस समप्पिय मयगलाह, तत्तिय जि रहहं हयचंचलाहं ।
दसलक्ख हयह कयघणथडाह, सन्नद्धकोडि दुद्दमभडाह ।
इम्व विसइ कुमरु रणि बलमहंतु, भडसंकडि दढु मयवज्जु दिंतु ।

तत् श्रुत्वा स्नेहेन वञ्चित्वा तातं कथयितुं लग्नः प्रहलादराजा ।
त्वमद्यापि बालकः शपथसाध्यः, अज्ञातचक्रधरयुद्धमध्यः ।
आकर्ण्य तन्निर्मलविवेकः प्रभणितः साहसधनोऽनिलवेगः ।
अहं बालोऽकारणस्तात ! एतु यदि जयथ स्फुरति आत्मनस्तेजः ।
किं क्रुद्धः सिंहकिशोरबालो निर्दलयति न गजकुलं क्रमकरालम् ? ।
लघुकश्चिन्तामणि र्जने समर्थ श्चिन्तितमर्पयति किं न वस्तु ? ।
किं नाशिततमोभारः स्फुरिततेजो न प्रकाशति दिपको गुरुनिकेतम् ? ।
प्रज्वलितो शिखिकणोऽप्रकाशिनं किं न करोति तृणभारं भस्मराशिः ? ।
बाहुबलेस्तातस्य भरतस्य भ्रातु र्मया साहाय्यं कर्तव्यम् ।
निश्चयेन योक्तव्यं रणे प्रविष्टव्यं वैरेमानं मलितव्यम् ॥ ४ ॥
दशसहस्रं समर्प्य मदगलानां तावन्तं रथानां हयचञ्चलानाम् ।
दशलक्षं हयानाम् कृतघन समूहानां सन्नद्धकोटि दुर्दमभटानाम् ।
एवं विशति कुमारो रणे बलमहान् भटसंकटे दृढं [1]मज्जावज्रं ददन् ।

---

१. 'मय' - मज्जा - धातु विशेषः

परिकुविउ सणिच्छरु जिम्व नियंतु, उत्थरिउ नाइ कुद्धउ कियंतु ।
सायरजलु जिम्व महि रेल्लयंतु, सरधोरणिछाइयदहदियंतु ।
धणुगुणटंकारवभरिउ सयलु, बंभंडखंडु नं फुडइ वियलु ।
अच्चब्भुउ पेच्छवि तं समग्गु, भरहेसरु सइं बोल्लणह लग्गु ।
अहु भडहु एहु किं वरिसयालु ?, किं वा वि जुयक्खइ पलयकालु ? ॥
तहिं भरहह अक्खिउ, भडयणसक्खिउ, अनिलवेउ एहु वावरइ ।
साहिज्जइं आइउ, महिहिं न माइउ, जसु जसु तिहुयणु आवरइ ॥५॥
अह जाम्वेव तेण बलु काइउ, ता सुसेणु तसु सम्मुहु धाइउ ।
करयलकयदंडरयणु रोसुब्भडु । हक्कंतउ दुप्पिच्छु दप्पुब्भडु ।
ओरइं चलु रे निप्फलवग्गिय !, पाडमि तुह सिरि रोस निभग्गिय ! ।
ता गलगज्जइ मत्तउ मयगलु, ... ।
तो कुमरिं दंडाहिवु वुच्चइ, एहउ गव्वु महाभड मुच्चइ ।
कज्जदुवारि मुणिज्जइ भल्लउ, अप्पणि अप्पु न थुणइ महल्लउ ।
छुल्लुच्छलइ जं भायणु ऊणउं, रित्तउ पुणु कणकणइ निहीणउं ।

परिकुपितशनीश्वरमिव दृश्यन्, निस्सृतो ज्ञायते क्रुद्धः कृतान्तः ।
सागरजलमिव महीं प्लावयन् शरधोरणिच्छादितदशदिगन्तः ।
धनुर्गुणटङ्कारवभृतं सकलं बह्माण्डखण्डं न स्फुटति विचलम् ।
अत्यद्भूतं दृष्ट्वा तत्समग्रं भरतेश्वरस्स्वयं कथयितुं लग्नः ।
अहो भट एष किं वर्षाकालः ? किं वाऽपि युगक्षयी प्रलयकालः? ।
तदा भरतस्याख्यातं भटजनसाक्षिकमनिलवेग एष व्यापारयति ।
कथयत्यागत्य मह्यां न माति यस्य यशस्त्रिभुवनमावारयति ।
अथ यथैव तेन बलं कृतं तावत्सुसेनस्तस्य सम्मुखं धावितः ।
करतलकृतदण्डरत्नो रोषोद्भटः पुत्कारयन्दुष्प्रेक्ष्यो दर्पोद्भटः ।
समीपं चल रे निष्फलवर्गिक ! पातयामि तव शिरो रोषं निर्भाग्य ! ।
तावद् गलगर्जति मत्तो मदगलः, ... ।
ततो कुमारं दण्डाधिव उच्यते आगच्छ गर्वं महाभट ! मुञ्च ।
कार्यद्वारे मुण्यते कुन्ताः, आत्मानमात्मा न स्तौति महान् ।
छलोच्छलति यद्भाजनमुनकं रिक्तं पुनः क्वणक्वणति न्यूनम् ।

तरु निज्जीवु निरारिउ वज्जइ, निज्जलु जलहरु निप्फलु गज्जइ ॥

उवसप्पिवि वेइं, इंव निलवेइं, हियइ पण्हि अप्फालियउ ।

सुरवरहं नियंतहं, गयणि वहंतहं, दंडरयणु उद्दालियउ ॥६॥

भरहसेन्नु अवसक्किउ समरह, सुरिहिं मुक्क कुसुभइं सिरि कुमरह ।

भरहिं भणियउं करिबलनायग, अरि अरि अरि अरि वारिय सायग ।

रणि दुज्जउ एहु पावु निरारिउ, मयगलघडिहिं मेल्लि परिवारिउ ।

वयणाणंतरु तेण महायसु, मयगलधडहिं सु वेढिउ जउदिसु ।

जलहरु [1]मालइ जिम्व नहि दिणमणि, कम्मपरंपर जिम्व जिउ भववणि ।

कुमरु वि तं पेक्खिवि खुद्धउ मणि, सामवयणु संजायउ जिउ भववणि ।

सारहि चिंतइ एहु रणि भग्गउ प्राहिउ कुलु लज्जावइ लग्गउ ।

मइ धुरि थक्कइं होहि म कायरु, तुहुं भडु एहु सुसंगरसायरु ॥

तो कुमरिं सारहि, भणिउ महारहि !, हय हय वत्त म एय भणु ।

इम्व मइ जुज्झंतउ, रणि सुज्झंतउ, ताउ न पेच्छइ तिणि विमणु ॥७॥

तूर्यं निर्जीवं नितरां वाद्यति, निर्जलो जलधरो निष्फलं गर्जति ।

उपसर्प्य वेगेनेवानिलवेगः, हृदये पार्ष्णिमास्फाल्य ।

सुरवराणां पश्यतां गगने वहतां दण्डरत्नमुत्क्षिप्तम् ।

भरतसैन्यमपसृतं समरतः सुरभि र्मुक्तानि कुसुमानि शिरसि कुमारस्य ।

भरतेन भणितं करिबलनायक ! अरे अरे अरे अरे वारितसायका ! ।

रणे दूर्जय एष पापो नितरां मदगलघटिभि र्मुक्त्वा परिवार्यः ।

वचनानन्तरं तेन महायशसं मदगलघटिभिःसुवेष्ट्य चतुर्द्दिक्षु ।

जलधरो म्लायति यथा नभसि दिनमणिम्, कर्मपरम्परा यथा जीवं भववने ।

कुमारोऽपि तं प्रेक्ष्य क्षुब्धो मनसि श्यामवदनः सञ्जातस्तत्क्षणे ।

सारथी चिन्तयति एष रणे भग्नः प्रायः कुलं लज्जयति लग्नः ।

मयि धूरि श्रान्ते भव मा कातरस्तव भटः एष सुसङ्गरसागरः ।

ततः कुमारं सारथी भणति महारथी ! हत हत वार्तांमैतां भण ।

एवं मयि युध्यमाने ! रणे शुध्यति तातो न पश्यति तेन विमनाः ॥ ७ ॥

---

१. मालइ रं० ।

इम्व भणि निग्गउ जयसिरिमाणणु, गयघड भंजिवि जि (म्व) पंचाणणु ।
काइं असारइं इणि बलि भग्गइ, भरहिं सहुं वरि संगरि लग्गइ ।
सुहडि एक्कु सीहु वरि जोहिउ, हरिणसत्थु मं बहु उवरोहिउ ।
वरि हिल्लूर एक्क रयणायरि, मं छिल्लिरि अणुराउ दुहायरि ।
वरि नहु एक्कु हुयउ कप्पूरह, मं चंदणह सराउ असारह ।
तिसियइं अमयप्पुडु वरि परिपीयउ, जलघडि जम्मु वि खयह म नीयउ ।
जहिं बंदिणह सद्दु सुमणोहरु, जीसइ विलयसत्थु सुपओहरु ।
जहिं सुम्मइ वीणारवु मणहरु, धयमालाउलु जहिं थड्डु गुणहरु ।
तहिं रहवरु चोयहि, एम्व म जोयहि, निसिय खग्ग साहसजुयहं ।
बाहुबलिहि तणयह, वल्लह जणयह, पेक्ख परक्कमु मह भुयहं ॥८॥
एत्थंतरि जुज्झउ लग्गु बालु, भरहेसरिं सहु न पलयकालु ।
वरिसंतु निरंतरु नहि न ठाइ, सरधारहिं अहिणवु मेहु नाइ ।
भरहु वि आयड्ढियचावदंडु, बाणावलि मुंचइ बलपयंडु ।

एवं भणित्वा निर्गतो जयश्रीमाननो गजघटां भनक्ति यथा पञ्चाननः ।
किमसाराण्यनया बले भज्यन्ते भरतेन सह वरंसङ्गरे लग्यते ।
सुभट एकःसिंहो वरं योद्धुं हरिणसार्थं मा बहूपरोधितम् ।
वरं तरङ्ग एको रत्नाकरे माऽसारे ऽनुरागो द्विधाकारी ।
वरमेकं हूतं कर्पूरस्य मा चन्दनस्य सरागमसारस्य ।
तृषितेनामृतपूटं वरं परिपीतं जलघटं यस्मिन्नपि क्षयं मा नीतम् ।
यत्र बन्दिनः शब्दं सुमनोहरं दृश्यते वनितासार्थं सुपयोधरम् ।
यत्र श्रूयते वीणारवो मनोहरो ध्वजमालाकुलं यत्र समूहं गुणधरम् ।
तत्र रथवरं चोदयैवं मा योजय निशीतखड्गसाहसयुतम् ।
बाहुबलेस्तनयस्य वल्लभस्य जनकस्य प्रेक्षस्व पराक्रमं मम भुजयोः ॥ ८ ॥
अत्रान्तरे योद्धुं लग्नो बालो भरतेश्वरेण सहेव प्रलयकालः ।
वर्षन् निरन्तरं नभसि न तिष्ठति शरधाराभिरभिनवो मेघो ज्ञायते ।
भरतोऽपि आकृष्ट चापदण्डो बाणावलिं मुञ्चति बलप्रचण्डः ।

भरहेसरबाणह खलवि जाइ, खण[1] नहयलि खणि महिवीढि ठाई
खणि दीसइ करिवरि खण रहग्गि, खणि धणुहरि खणि भडनिसियखग्गि ।
खणि बाणि खणंतरि करिहि पुच्छि, खणि वियडि विलग्गइ रायवच्छि ।
जिम्व विज्जुपुंजु खणि दिट्ठनट्ठु, तिम्व भमइ रणंगमि गुणगरिट्ठु ।
न य छेपइ[2] भरहह सो सरेहिं, मुणिराउ व मयणह दुहयरेहिं ॥
नियधणुहरबाणिहिं, अगणियमाणिहिं, छाइउ सधउ सहउ[3] सरहु ।
जुज्झंतइं बालि, अइसुकुमालि, किउ विलक्खु संगरि भरहु ॥९॥
सो मंतिहिं वुत्तउ इम्व म तम्मु, एहु सव्वह सत्थह रणि अगम्मु ।
मणि चक्करयणु सरि सत्थरम्मु, एहु मारहि जइ पर मुयवि धम्मु ।
जं भरहिं निरुद्धउं जोगचक्कु, ... ।
तक्खणि मिलंतु जालावमालु, चउदिसिह फुरंत सिहिकणकरालु ।
करकमलि ठियउं तं चक्करयणु, पेक्खिवि कुमारु अक्खुहियवयणु ।
भरहेसरि वुच्चइ गुरुसिणेहिं, अज्ज वि जीवंतउ जाहि गेहि ।

भरतेश्वरबाणस्य स्खलनं याति क्षणं नभस्तले क्षणं महीपीठे तिष्ठति ।
क्षणं दृश्यते करिवरे क्षणं रथाग्रे क्षणं धनुर्धरे क्षणं भयनिशीतखड्गे ।
क्षणं बाणे क्षणान्तरे करिणः पृच्छे क्षणं विकटे विलगति राजवत्से ।
यथा विद्युत्पुञ्जं क्षणे दृष्टनष्टं तथा भ्रमति रणाङ्गणे गुणगरिष्ठः ।
न च स्पृशति भरतस्य स शरैर्मुनिराज इव मदनस्य द्विधाकरैः ।
निजधनुर्धरबाणैरगणितमानैश्छादितं सगजं सहयं सरथम् ।
युध्यमाने बालेऽतिसुकुमाले कृतो विलक्षः सङ्गरे भरतः ।
स मन्त्रिभिरुक्त इत्थं मा ताम्यतु, एष सर्वस्य शस्त्रस्य रणेऽगम्यः ।
मनसि चक्ररत्नं स्मर शस्त्ररम्यम्, एष मारिष्यते यदि परं मुञ्च धर्मम् ।
यद्भरतेन निरुद्धं योगचक्रं, ... ।
तत्क्षणे मिलज्ज्वालावमालम्, चतुर्दिशि स्फुरच्छिखिकणकरालम् ।
करकमले स्थितं तच्चक्ररत्नं, प्रेक्षते कुमारोऽक्षोभितवदनः ।
भरतेश्वर उच्यते गुरुस्नेहेनाद्यापि जीवन्याहि गृहे ।

---

१. खण रं० । २. छिप्पइ रं० । ३. सहसउ रं० ।

इह एही भवणि म होउ मज्झ, जसकित्तिहि नासण बालवज्झ ।
पभणिउ कुमारि करिलीलगामि, भज्जंतिहि रणि लज्जियइ सामि ! ।।
अज्जलमुहछायह, तासु सुवायह, मुक्क चक्कु जं वहु करइ ।
धिसि रज्जह हुंतह एम्व गुणवंतह, पुत्तह पिय जहिं ववहरइ ।।१०।।
आयंतह चक्कह चत्ततासु हू धणुहहत्थु सम्मुहउ तासु ।
दढबाणिहिं पहउ महाभुएण, अच्छोडिउ खग्गि बलजुएण ।
तह वि हु आगच्छइ तिक्खधारु, कम्मह विवागु जिम्व दुन्निवारु ।
संखुद्धउ माणसि मोक्खकामु, गउ वेगिं गयणि (सु) जहत्थनामु ।
जहिं जहिं नासंतउ जाइ बालु, तहिं तहिं [१]जि जाइ जालाकरालु ।
बहिरंग जिणेविणु मुक्कखग्गु, एवंतरंगरिउ जिणह लग्गु ।
ते धन्न पुन्न रिसहेसजाय, समभावरुद्धमण-वयण-काय ।
मज्झ वि संपन्नउ समउ भावु, पुमासणि संठिउ समियपावु ।
चउसरणि पवन्नउ, महिहिं निसन्नउ, निंदिय गरहिय दुकियगइ ।
सुमरिय परमेसरु, मणि रिसहेसरु, थुणहुं लग्गु एम्व सुद्धमइ ।।११।।

इहैहि भवने मा जाश्च भवतु मम यशकीर्तयो र्नाशनो बालवधः ।
प्रभणितः कुमार करिलीलागामी भज्जद्वीरणे लज्जति स्वामिन् ! ।
उज्वलमुखच्छायस्य तस्य सुवाचो मुक्त्वा चक्रं यद्वधं करोति ।
धिग्राज्यं भवदेवं गुणवतः पुत्रस्य पिता यत्र व्यवहरति ।। १० ।।
आयातश्चक्रस्य त्यक्तस्य खलु धनुकहस्तः सम्मुखं तस्य ।
दृढबाणैः प्रहतं महाभुजेनाच्छोट्य खड्गं बलयुतेन ।
तथापि खल्वागच्छति तीक्ष्णधारं कर्मविपाकं यथा दुर्निवारम् ।
संक्षुब्धो मनसि मोक्षकामो गतो वेगेन गगने यथार्थनाम ।
यत्र यत्र नश्यन् याति बालस्तत्र तत्रैव याति ज्वालाकरालम् ।
बहिरङ्गं जीत्वा मुक्तखङ्ग एवमन्तरङ्गरिपुं जेतुं लग्नः ।
ते धन्याः पुण्या ऋषभेशजाताः समभावरुद्धमनोवचनकायाः ।
ममापि सम्पन्नः समभावः पद्मासने संस्थाय समितपापः ।
चतुःशरणानि प्रपन्नो महीं निषण्णो निन्दित्वा गर्हित्वा दुष्कृतगतिम् ।
स्मृत्वा परमेश्वरं मनसि ऋषभेश्वरं स्तोतु लग्न एवं शुद्धमतिः ।। ११ ।।

---

१. जि (अ.) एवार्थे ।

जय जय रिसहेसर ! भुवणसामि !, मयमद्दण ! मयगललीलगामि ! ।
जय केवलवसविन्नायभाव !, पणमंतसत्त निम्महियताव ! ।
जय तिहुयणभवणपयासदीव !, भवजलहिपडंतासासदीव ! ।
जय लोयपयासियनीइसार !, परिवालियनिरुवमरज्जभार ! ।
जय तिहुयणभवणुद्धरणखंभ !, संरक्खिय दुद्धरसुद्धबंभ ! ।
जय सव्वसत्तसंजणियसोक्ख !, अट्ठावयपव्वयभाविमोक्ख ! ।
जय भवजलनिहिसंपत्तपार !, दुव्वहनिव्वाहियनियमभार ! ।
जय जिणवर ! निज्जियजम्म-मरणु !, महु तुहुं गइ (तुहुं मइ) तुहुं [1]जि सरणु ! ॥
इय थुय रिसहेसरु, नयजोगेसरु, अनिलवेउ दुन्नयविमुहु ।
चक्काउहि दद्धउ, हियइ विसुद्धउ, पत्तउ स मरियसिद्धिसुहु ॥१२॥
अह रणि सीहरहाहिय नेहह, सुयइ मरणि कुमरह निलवेयह ।
बिहिं पुत्तहं मरणि विद्दाणउ । सोइवि वहु तक्खसिलऽहिराणउ ।
भरहिं सहु असमत्थियसंगरु, पत्तउ रणभुइं [2]वड्डियमच्छरु ।

जय जय ऋषभेश्वर ! भुवनस्वामिन् ! मदमर्दन ! मदगललीलागामिन् ! ।
जय केवलवशविज्ञातभाव ! प्रणमत्सत्त्वनिर्मथितताप ! ।
जय त्रिभुवनभवनप्रकाशदीप ! भवजलधिपतदाश्वासद्वीप ! ।
जय लोकप्रकाशितनीतिसार ! परिपालितनिरुपमराज्यभार ! ।
जय त्रिभुवनभवनोद्धरणस्तम्भ ! संरक्षितदुर्धरशुद्धब्रह्म ! ।
जय सर्वसत्त्वसञ्जनितसौख्य ! अष्टापदपर्वतभाविमोक्ष ! ।
जय भवजलनिधिसम्प्राप्तपार ! दुर्वहनिर्वाहितनियमभार ! ।
जय जिनवर ! निर्जितजन्म-मरण ! मम तव गतिः [तव मतिः] तवैव शरणम् ।
इति स्तुत्वा ऋषभेश्वरं नययोगेश्वरमनिलवेगो दुर्नयविमुखः ।
चक्रायुधेन दग्धो हृदि विशुद्धः प्राप्तः स मृत्वा सिद्धिसुखम् ॥ १२ ॥
अथ रणे सिंहरथाधिकस्नेहस्य श्रुणोति मरणं कुमारस्यानिलेवेगस्य ।
द्वयोः पुत्रयो र्मरणं विज्ञाय शोचति बहु तक्षशिलाधिराजः ।
भरतेन सहासमर्थितसङ्गरः प्राप्तो रणभूमिं वर्धितमत्सरः ।

---

१. जि (अ.) एवार्थे । २. वड्डिउ रं ।

भणिउ भरहु बाहुबलि राइं, बहुजणि किं मारियइं वराइं ।
भणि जिणि जुज्झि जुज्झउ भायर !, पडिवन्नइ भरहेसि ! म कायर ।
दिट्ठिजुज्झि (जी) यउ भरहाहिवु, वइजुज्झि वि जित्तउ चक्काहिवु ।
बाहुजुज्झि[१] भग्गइ भरहेसरि, पुणु पडिवन्नइ दंडिहिं संगरि ।
पेच्छिवि उद्धियदंडु कणिट्ठउ, आयह पासह अज्जु विणट्ठउ ॥
नियमणि खलभलियउ, अइसइं बलियउ, चिंतइ किं एहु चक्कवइ ? ।
पडिभट्ठपइन्नइं, रणरसिखिन्नइं, कियउं चक्कु करि भरहवइ ॥१३॥ रसि खि
अह चिंतिउ लहुयइं लल्लक्कइं, भंजउ भडमरट्टु सहु चक्कइं ।
किं फलु तुच्छह विसयहं कारणि, आयह भट्ठपइन्नह मारणि ? ।
धिसि ! धिसि ! अहो ! किं अमर णिएही (?), नियकुलसंहारणि निन्नेही ।
आइं मह वल्लह सुय मारिय, लहुयसहोयर इणि नीसारिय ।
धिसि ! धिसि ! विसय अंगुसंतावह, धिसि ! धिसि ! विसय जि कारणु (पावह) ।
धिसि ! धिसि ! विसय हेउ संसारह, धिसि ! धिसि ! विसय नियाणु जि मारह ।

भणति भरतो बाहुबलि राजानं बहुजनानि किं मार्यन्ते वराकानि ।
भण येन युद्धेन युद्धं भ्रात ! प्रतिपद्यते भरतेश ! मा कातरः ।
दृष्टियुद्धेन जीतोभरताधिपो वाग्युद्धे ऽपि जीतश्चक्राधिपः ।
बाहुयुद्धे भज्जति भरतेश्वरे पुनः प्रतिपद्यते दण्डैः संगरम् ।
दृष्टवोद्विद्धदण्डं कनिष्ठमायातः पार्श्वस्याद्य विनष्टम् ।
निजमनसि क्षुब्धोऽतिशयेन बलिकश्चिन्तयति किमेष चक्रपतिः ? ।
प्रतिभ्रष्टप्रतिज्ञो रणरसखिन्नो न, कृत्वा चक्रं करे भरतपतिः ॥ १३ ॥
अथ चिन्तयित्वा लघुको ललकरोति[२] भङ्क्तुं भटमानं सह चक्रेण ।
किं फलं तुच्छस्य विषयस्य कारणम्, आयातो भ्रष्ट प्रतिज्ञस्य मारणम् ।
धिग्धिगहो ! किममरं[३] णिकै (?) र्निजकुलसंहारणं निस्नेहम् ।
अनेन मम वल्लभसुतो मारितो लघुसहोदरा अनेन निष्काषिताः ।
धिग्धिग्विषयोऽङ्गसन्तापकः धिग्धिग्विषयो यत्कारणं पापस्य ।
धिग्धिग्विषयो हेतुः संसारस्य धिग्धिग्विषयो निदानं यन्मारस्य ।

---

१. जुज्झिक्त उड्डाइय भरहेसरि रं । २. (दे.) 'ललकार' इति भाषायाम् । ३. 'अमरणिएहीं (?) पाठो सुष्ठु नावगम्यतेऽत्र ।

विसयासत्त न जिणु परियाणहिं, विसयासत्त न गुरुयणु माणहिं ।
विसयासत्त विडंबण पावहिं, एउ तिन्तेविणु वुत्तउं तावहिं ॥
अह [१]तुज्झु अतित्तह, विसयासत्तह, किंपि ज असरिउ तं सरउ ।
अहु तुहुं अहु मंडलु, अहु भूखंडलु, मुक्कउ टारु ससिंदूरउ ॥१४॥
कउ पंचहिं मुट्ठिहिं लोउ तेण, पुणरवि य[२] विचिंतिउ नियमणेण ।
उप्पन्ननाण महु लहुयभाय, किम्व नमणि करेवी मइं सवाय ? ।
उप्पन्ननाणि मइं तायपासि, जा[३]यवि पेक्खेवा गुणह रासि ।
ठिउ काउसग्गि संजमिय वाणि, मणि माणाहिट्ठिउ धम्मझाणि ।
तण-लयहि पवेढिउ अप्पमाणु, तसु [४]वरिसु जाव न यऽसणु न पाणु ।
रिसहेसरि पेसिय समयवाय, तहिं बंभी सुंदरि भणहिं भाय ! ।
हत्थिहि ओयरियह होइ नाणु, एउ भणइ ताउ सुरविहियमाणु ।
कहिं मज्झ हत्थि इह वणि पसत्थि ?, हुं नायउं एहु जि माणु हत्थि ॥
तो जिणवरु वंदउं, मुणि अभिनंदउ, सुहइ हुयइ परिणामि मणि ।
उप्पन्नइ केवलि, नासियकलिमलि, जिणह पासि गउ तम्मि खणि ॥१५॥

विषयासक्तो न जिनं परिजानाति, विषयासक्तो न गुरुजनं मानयति ।
विषयासक्तो विडम्बनां प्राप्नोति, एतच्चिन्तयित्वा वृत्तं तावत् ।
अथ तवातृप्तस्य विषयासक्तस्य किमपि यदस्मृतं तत्स्मर ।
अहो त्वमहो मण्डलमहो भुखण्डलं मुञ्चाश्वं सरज्जुम् ॥ १४ ॥
कृत्वा पञ्चमुष्ठिभिर्लोचं तेन पुनरपि च विचिन्त्य निजमनसा ।
उत्पन्नज्ञानानां मम लघुकभ्रातृणां कथं नमनं कर्तव्यं मया सपादम् ।
उत्पन्नज्ञानेन मया तातपार्श्वे गन्तव्यं प्रेक्षितव्या गुणानां राशयः ।
स्थित्वा कायोत्सर्गे संयम्य वाचां मनसि मानाधिष्ठितो धर्मध्याने ।
तृण-लताभिःप्रवेष्ट्याप्रमाणंतस्य वर्षं यावन्नाशनं न पानम् ।
ऋषभेश्वरेण प्रेषिते समयवाचा तत्र ब्राह्मीसुन्दरी भणतो भ्रात ! ।
हस्तिनोऽवतरतो भवति ज्ञानं एतद्भणति तातःसुरविहितमानः ।
क्व मम हस्तीह वने प्रशस्ते ? हुं ज्ञातमेष एव मानहस्ती ।
ततो जिनवरं वन्दित्वा मुनिवरमभिनन्दितुं शुभोभवति परिणामो मनसि ।
उत्पद्यते केवलं नाशितकलिमलं जिनस्य पार्श्वे गतस्तस्मिन् क्षणे ॥ १५ ॥

---

१. तुज्भक रं० । २. उ रं० । ३. जाइवि रं० । ४. वरिस रं० ।

भरहेसु वि भुंजइ एग छत्त, छक्खंडवसुह बहुरिद्धिपत्त ।
कइया वि हु निवु विलसिरअणंगु, सव्वालंकारविभूसियंगु ।
आयरिसगेहि गोयंकु वीरु, राढइं किर कइसउं महु सरीरु ? ।
एगंगुलि पेच्छइ ता मणुन्न, दुद्दंसण मुद्दारयणसुन्न ।
अवणेइ सव्व जी विगयमोहु, उच्चिणियपउम सरु जिम्व असोहु ।
चिंतइ सरूवि सव्वू असारु, मेल्लेवि धम्मगुणु निव्वियारु ।
सुहभावि मज्झिवि ठियउ घरहु, उप्पाडइ केवलुनाणु भरहु ।
देवयइं समप्पिय समणलिंगु, कयलोउ महिहिं विहरइ असंगु ॥
विहरिवि बहुवासइं, वज्जिउ हासइ, कम्मक्खयनिम्माणह ।
पडिवोहिय महियलु, नासियकलिमलु, भरहु गयउ निव्वाणह ॥१६॥

॥ भरताख्यानकं समाप्तम् ॥२३॥

इदानीमिलापुत्राख्यानकमारभ्यते । तद्यथा-

निरुवमनयरगुणेहिं पुहईए पत्तवद्धणत्तणओ । पत्तजहत्थभिहाणं अत्थि इलावद्धणं नयरं ॥१॥
तत्थेव य वत्थव्वो इब्भो भवणं महाविभूईए । सुद्धसहावो दक्खिन्नसायरो सुइसमायारो ॥२॥

भरतेशोऽपि भुनक्ति एकछत्रां षट्खण्डवसुधां बह्वर्द्धिप्राप्ताम् ।
कदापि खलु नृपो विलसदङ्गः सर्वालङ्कारविभूषिताङ्गः ।
आदर्शगृहे गोत्राङ्को वीरो विभूषयति किल कीदृशं मम शरीरम् ? ।
एकाङ्गुलीं पश्यति तावन्मनोज्ञां दुर्दर्शनां मुद्रारत्नशून्याम् ।
अपनयति सर्वं यथा विगतमोह उच्चिणितपद्मसर इवाशोभः ।
चिन्तयति स्वरुपं सर्वमसारं मोचयति धर्मगुणं निर्विकारम् ।
शुभभावेन मध्येऽपि स्थितो गृहे उत्पाद्यते केवलज्ञानं भरतः ।
देवतया समर्प्य श्रमणलिङ्गः कृतलोचो मह्यां विहरति असङ्गः ।
विहृत्य बहुवर्षाणि वर्जितो हास्येन कर्मक्षयनिर्मातः ।
प्रतिबोधित महितलो नाशितकलिमलो भरतो गतो निर्वाणम् ॥ १६ ॥

॥ भरताख्यानकं समाप्तम् ॥ २३ ॥

इलापुत्राख्यानकम् ।

निरुपमनगरगुणैः पृथिव्यां प्राप्तवर्धनत्वात् । प्राप्तयथार्थाभिधानमस्तीलावर्धनं नगरम् ॥ १ ॥
तत्रैव च वास्तव्य इभ्यो भवनं महाविभूतेः । शुद्धस्वभावो दाक्षिण्यसागरः शुचिसमाचारः ॥ २ ॥

रायाइपूयणिज्जो निच्चं नीसेसनिगमनिवहस्स । अग्गासणी गुणन्नू गुणिजणवग्गस्स गोरव्वो ॥३॥

एवं एयस्स महायणम्मि सव्वत्थ [1]सुत्थहियस्स । परमेगमवच्चदुहं जयम्मि जइ वा सुही नत्थि ॥४॥

मिउवयण-रूव-सोहग्गधारिणी धारिणी पिया तस्स । सइसुत्थिया वि नवरं, निरवच्चा पुत्तकामा य ॥५॥

तत्थ इलादेवीए, आययणं विज्जई जणपसिद्धं । तं च जणो कज्जत्थी पुत्ताइनिमित्तमच्चेइ ॥६॥

तं च पसिद्धिं सोउं देवीए तीए इब्भभज्जाए । पायवडियाए भणियं भयवइ ! जह तुह पसाएणं ॥७॥

मज्झ भविस्सइ पुत्तो ता तुह भवणे महाविभूईए । पइवरिसं कारिस्सं जत्ताइमहूसवं परमं ॥८॥

गोउलपमुहं वित्तिं वज्झारिस्सामि तुज्झ आययणे । किं वहुणा ? नामं पि हु सुयस्स तुह संतियं दाहं ॥९॥

तो तीए पभावेणं खओवसमणेणमंतरायस्स । पाउब्भूओ गब्भो तप्पभिई इब्भभज्जाए ॥१०॥

जाओ कालकमेणं वद्धावणयं पयट्टियं नयरे । वित्तम्मि सूइकम्मे संपत्ते बारसाहम्मि ॥११॥

जं जह भणियं तं तह सव्वं ओवाइयं विहेऊण । माणसु पाडिऊणं नामं दिन्नं इलापुत्तो ॥१२॥

गिरिकुंजसमल्लीणो सो चंपयपायवो व्व निरवाओ । वड्ढंतो अणुवरिसं संजाओ अट्ठवारिसिओ ॥१३॥

अम्मा-पियरेहिं तओ वियाणिऊणं कलागहणसमयं । न्हाओ कयबलिकम्मो धवलाहरणो धवलवेसो ॥१४॥

सुहदिवसे सुहमासे सुद्धे पक्खम्मि पंचमितिहीए । सुहजोगे सुमुहुत्ते गुरुवारे पुस्सनक्खत्ते ॥१५॥

सक्कारिऊण सम्माणिऊणमज्झावयं विसेसणं । महईए विभूईए लेहायरियस्स उवणीओ ॥१६॥

राजादिपूजनीयो नित्यं निःशेषनिगमनिवहस्य । अग्रासनि र्गुणज्ञो गुणिजनवर्गस्य गौरवः ॥ ३ ॥

एवमेतस्य महाजने सर्वत्र स्वच्छहृदयस्य । परमेकमपत्यदुःखं जगति यदि वा सुहृन् र्नास्ति ॥ ४ ॥

मृदुवदनरुपसौभाग्यधारिणी धारिणी प्रिया तस्य । सदासुस्थितापि नवरं निरपत्या पुत्रकामा च ॥ ५ ॥

तत्रेलादेव्या आयतनं विद्यते जनप्रसिद्धम् । तच्च जनः कार्यार्थी पुत्रादिनिमित्तमर्चयति ॥ ६ ॥

तां च प्रसिद्धिं श्रुत्वा देव्यास्तस्या इभ्यभार्यया । पादपतितया भणितं भगवति ! यदि तव प्रसादेन ॥ ७ ॥

मम भविष्यति पुत्रस्तदा तव भवने महाविभूत्या । प्रतिवर्षं कारयिष्यामि यात्रादिमहोत्सवं परमम् ॥ ८ ॥

गोकुलप्रमुखां वृत्तिं वर्धयिष्यामि तवायतने । किं बहुना ? नामापि खलु सुतस्य तव सत्कं दास्यामि ॥ ९ ॥

ततस्तस्याः प्रभावेन क्षयोपशमनेनान्तरायस्य । प्रादुर्भूतो गर्भस्तत्प्रभृतीभ्यभार्यायाः ॥ १० ॥

जातः कालक्रमेण वर्धापनकं प्रवर्तितं नगरे । वृत्ते सूतिकर्मे सम्प्राप्ते द्वादशाह्नि ॥ ११ ॥

यद्यथा भणितं तत्तथा सर्वमौपयाचितं विधाय । पादयोः पातयित्वा नाम दत्तमिलापुत्रः ॥ १२ ॥

गिरिकुञ्जसमालीनः स चम्पकपादप इव निरपायः । वर्धमानोऽनुवर्षं सञ्जातोऽष्टवार्षिकः ॥ १३ ॥

अम्मा-पितृभ्यां ततो विज्ञाय कलाग्रहणसमयम् । स्नातः कृतबलिकर्मो धवलाभरणो धवलवेशः ॥ १४ ॥

शुभदिवसे शुभमासे शुद्धे पक्षे पञ्चमीतिथौ । शुभयोगे सुमुहूर्ते गुरुवारे पुष्यनक्षत्रे ॥ १५ ॥

सत्कार्य सन्मान्याध्यापकं विशेषेण । महत्या विभूत्या लेखाचार्यस्योपनीतः ॥ १६ ॥

---

१. सुच्छ

जओ भणियं-

सव्वगुणसंजुओ वि हु विज्जाए विणा सुओ वरं कन्ना । गब्भे वि वरं नासो वंझा भज्जा वरं होउ ॥१७॥

वागरण-छंद-ऽलंकार-कव्व-सिद्धंत-वेयनिउणाणं । सुकुलुप्पन्नो वि हु पामरो व्व जोयइ मुहं मुक्खो ॥१८॥

अपरं च-

अजात-मृत-मूर्खेभ्यो, मृता-ऽजातौ वरं सुतौ । तौ किञ्चिच्छोकदौ पित्रोर्मूर्खस्त्वत्यन्तशोकदः ॥१९॥

तत्तो सजोगयाए जणयपयत्ता तहाभिओगाओ । अज्झावयस्स पत्तो कलाकलावस्स पारम्मि ॥२०॥

भवियव्वयानियोगा पायं विसएसु न रमइ मणो से । अम्मा-पिऊहिं तत्तो खित्तो दुल्ललियगोट्ठीए ॥२१॥

एत्थंतरम्मि मन्ने जेउमसत्तस्स तिहुयणं सयलं । मयणस्स सहायत्तं काउं पत्तो सरयसमओ ॥२२॥

तथा हि-

वित्थिन्नसरोवरवियसियाइं कुमुयाइं निम्मलनिसासु । तारानियरसमिद्धिं गयणगयं जम्मि पहसंति ॥२३॥

वीसुं पि दिसासु सरोवराइं सुइसच्छसलिलकलियाइं । जम्मि उ सरयसिरीए दप्पणलीलं विडंबंति ॥२४॥

हंसेहिं संचरंतेहिं सोहियं गुरुनहंगणं जम्मि । सुविसुद्धोभयपक्खेहिं अह व गरुया वि सोहंति ॥२५॥

जत्थ य पहिया सुहसालिगोवियासरसगीयपडिबद्धा । सम्मग्गाओ भस्संति अहव एवंविहा विसया ॥२६॥

सरसघणकालिमाए कलियाइं वि दिसिवहूण वयणाइं ।सुहयस्स जस्स संगे वियाससहियाइं जायाइं ॥२७॥

यतो भणितम् -

सर्वगुणसंयुक्तोऽपि खलु विद्यया विना सुतो वरं कन्या । गर्भेऽपि वरं नाशो वन्ध्या भार्या वंर भवतु ॥ १७ ॥

व्याकरण-छन्दालङ्कार-काव्य-सिद्धान्त-वेदनिपूणानाम् । सुकुलोत्पन्नोऽपि खलु पामर इव पश्यति मुखं मुर्खः ॥ १८ ॥

अपरं च -

अजात-मृत-मुर्खेभ्यो, मृता-ऽजातौ वरं सुतौ । तौ किञ्चिच्छोकदौ पित्रो मुर्खस्त्वत्यन्तशोकदः ॥ १९ ॥

ततः स्वयोग्यताया जनकप्रयत्नात्तथाभियोगात् । अध्यापकस्य प्राप्तः कलाकलापस्य पारे ॥ २० ॥

भवितव्यतानियोगात्प्रायं विषयेषु न रमते मनस्तस्य । माता-पितृभ्या ततः क्षिप्तो दुर्ललितगोष्ट्याम् ॥ २१ ॥

अत्रान्तरे मन्ये जेतुमसक्तस्य त्रिभुवनं सकलम् । मदनस्य सहायत्वं कर्तुं प्राप्तः शरदसमयः ॥ २२ ॥

तथाहि -

विस्तीर्णसरोवरविकसितानि कुमुदानि निर्मलनिशासु । तारानिकरसमृद्धिं गगनगतां यस्मिन् प्रहसन्ति ॥ २३ ॥

विश्वगपि दिक्षु सरोवराणि शुचिस्वच्छसलिलकलितानि । यस्मिंस्तु शरच्छ्रया दर्पणलीलां विडम्बयन्ति ॥ २४ ॥

हंसैः सञ्चरद्धिः शोभितं गुरुनभोङ्गणं यस्मिन् । सुविशुद्धोभयपक्षाभ्यामथ वा गुरुका अपि शोभन्ते ॥ २५ ॥

यत्र च पथिकाः शुभशालिगोपिकासरसगीतप्रतिबद्धाः । समग्रा भ्रश्यन्त्यथवैवंविधा विषयाः ॥ २६ ॥

सरसघनकालिमया कलितान्यपि दिग्वधूनां वदनानि । सुभगस्य यस्य सङ्गे विकाससहितानि जातानि ॥ २७ ॥

हिमसंकासो चंदो सवियासो सहइ जत्थ सविसेसं । सव्वत्थ वि वित्थरिओ सारयसिरिकित्तिपडउ व्व ॥२८॥
धवलिज्जइ दिसिवलयं जत्थ य कासेहिं ससहरसिएहिं । अइसरला सुहपव्वा सुविसुद्धा कं न धवलंति ? ॥२९॥
अनिलंदोलिरविलसिरकासा आसाविलासिणीखंधे । सरयनरेसरचामरकलावलीलं विडंबंति ॥३०॥
पेच्छऽच्छरीयबहुवायसंजुयं जिणमयं जए जयइ । सिहिणो विमणा हंसा य सहरिसा जम्मि संजाया ॥३१॥
सुयपंतीए फलयं पि भक्खिउं सालिरक्खिया सालिं । देइ न जमदायारे कुणंतु किं रत्तवयणा वि ? ॥३२॥
उय सालिरक्खियाए सुदूरमुड्डाविऊण सुयसेणिं । खित्ता किविणघरेसुं कुणंतु किं वा सपक्खा वि ? ॥३३॥
सउणेहिं संसियाओ सस्सइ ओसह (.......सह) लाओ । सस्सेहिं समं सोहंति जम्मि सुहछेत्तसीमाओ ॥३४॥
जम्मि सुविसिट्ठपरिपुट्ठिलट्ठगोविंदतड्डियमुहाओ । गोट्ठंगणभूमीओ भमंतगोवीओ रेहंति ॥३५॥
खत्तेहिं समलिणेहिं घणेहिं संगे गया वि मलिणत्तं । सुइसंगे सुज्झंती सारयगयणं व गरुया वि ॥३६॥
पेच्छह पयडपयावो अहिययरं सरयसंगमे वि रवी । निव्वडियपयावगुणा कुणंतु जे किंपि तह वि मुहा ॥३७॥
विमलियनहम्मि सरयम्मि ससहरो अहह ! पेच्छ सकलंको । अहवा निम्मलसंगे वि नऽन्नहा जायइ सहावो ॥३८॥
इय एरिसम्मि सरए पकामकामम्मि सो इलापुत्तो । कइया वि कीलिउं काणणम्मि निज्जाइ सवयंसो ॥३९॥
तत्थ ललंतो लीलाए लंखियं लहुललामलायन्नं । सोहग्ग-रूव-सुंदेरमंदिरं मयणधरणिं व ॥४०॥
नवजोव्वणरमणीयं नडधूयं नियइ मयणसबरस्स । जेउं जयं व विहिणा विणिम्मियं निसियभल्लिं व ॥४१॥

हिमसङ्काशश्चन्द्रः सविकाशः सहते यत्र सविशेषम् । सर्वत्रापि विस्तृतः शरदश्रीकीर्तिपट इव ॥ २८ ॥
धवलायते दिग्वलयं यत्र च काशैः शशधरसितैः । अतिसरलाः शुभपर्वाः सुविशुद्धः कं न धवलन्ति ? ॥ २९ ॥
अनिलान्दोलद्विलसत्काशा आशाविलासिनिस्कन्धे । शरदनरेश्वरचामरकलापलीलां विडम्बयन्ति ॥ ३० ॥
प्रेक्षस्वाश्चर्यबहुवादसंयुक्तं जिनमतं जगति जयति । शिखिनो विमना हंसाश्च सहर्षा यस्मिन् सञ्जाताः ॥ ३१ ॥
शुकपङ्क्त्या फलकमपि भक्षितुं शालिरक्षकाः शालिम् । ददति न यददारि कुर्वन्तु किं रक्तवदना अपि ? ॥ ३२ ॥
उत शालिरक्षिकाः सुदूरमुड्डापयित्वा शुकश्रेणीम् । क्षिप्ताः कृपणगृहेषु कुर्वन्तु किं वा सपक्षा अपि ? ॥ ३३ ॥
शकुनै शंसिता शस्यत्यौषधसफलाः । शस्यैः समं शोभन्ते यस्मिन् शुभक्षेत्रसीमानः ॥ ३४ ॥
यस्मिन् सुविशिष्टपरिपृष्टलष्टगोवृन्दविस्तृतमुखाः । गोष्टाङ्गणभूम्यो भ्रमद्गोप्यः शोभन्ते ॥ ३५ ॥
क्षत्रैः समलिनैः घनैः सङ्गे गता अपि मलिनत्वम् । शुचिसङ्गे शुध्यन्ति शारदगगनमिव गुरुका अपि ॥ ३६ ॥
पश्यथ प्रकटप्रतापोऽधिकतरं शरदसङ्गमेऽपि रविः । निष्पन्नप्रतापगुणाः कुर्वन्तु ये किमपि तथापि मुधा ॥ ३७ ॥
विमलितनभसि शरदि शशधरो ऽहह ! पश्य सकलङ्कः । अथवा निर्मलसङ्गेऽपि नान्यथा जायते स्वभावः ॥ ३८ ॥
इति एतादृशे शरदि प्रकामकामे स इलापुत्रः । कदापि क्रीडितुं कानने निर्याति सवयस्कः ॥ ३९ ॥
तत्र ललल्लीलया लङ्खिकां लघुललामलावण्याम् । सौभाग्य-रुप-सौन्दर्यमन्दिरां मदनगृहिणीव ॥ ४० ॥
नवयौवनरमणीयां नटदुहितरं पश्यति मदनशबरस्य । जेतुं जगदिव विधिना विनिर्मितां निशीतशल्यामिव ॥ ४१ ॥

पावो पेच्छइ मह पणइणिं तिं कामेण जायकोवेण । समगं सव्वंगं पि हु विद्धो पंचहि वि बाणेहिं ॥४२॥

ताहे अयकीलयकीलिउ व्व थिमिउ व्व चित्तलिहिउ व्व । लेप्पयमउ व्व मुच्छागउ व्व पाहाणघडिउ व्व ॥४३॥

जा तयवत्थो चिट्ठइ तो तग्गयमणवियप्पकुसलेहिं । हरिस-विसायाउलमाणसेहिं मित्तेहिं संलत्तो ॥४४॥

उस्सूरं संजायं महई वेला समागयाणऽम्हं । ता गच्छामो गेहं कल्ले पुणरागमिस्सामो ॥४५॥

तं पि हु ता परिसंतो मा किमवि सरीरकारणं होही । अम्मा-पियरो दूरं तुह अवसेरिं करिस्संति ॥४६॥

वारं वारं भणिओ वि जाव तग्गयमणो न चिंतेइ । बाहाए धेत्तूणं बला वि नीओ जणयगेहं ॥४७॥

तत्थ वि हसइ वियंभइ पलवइ रोवइ निरिक्खए सुन्नं । तत्तथले पक्खित्तो मच्छो व्व रई न पाउणइ ॥४८॥

जा कट्ठदसं पत्तो ताव य जणयस्स से निवेइन्ति । सो वि निसामिय वज्जाहउ व्व जाओ विसन्नमणो ॥४९॥

साणुणयं सप्पणयं सुजुत्तजुत्तिक्खमं खमासारं । परिफुसिय मुहं मुहरं भणियं सुण वच्छ ! मह वयणं ॥५०॥

पढियस्स तस्स सुणियस्स तस्स निरुवमकलाकलावस्स । सुहगुरुउवएसस्स य अवसाणं एरिसं वच्छ ॥५१॥

किंच-

लज्जिज्जइ जेण जणो मइलिज्जइ नियकुलक्कमो जेण । कंठट्ठिए वि जीए कुणंति न कया वि तं सुयणा ॥५२॥

अन्नं च निवो नाही सो मह सव्वस्सनिग्गहं काही । पउरजणो वि हु भणिही अकज्जमिमिणा समायरियं ॥५३॥

ता संति रूव-जोव्वण-लायन्नपवाहसारणीओ व्व । कुलबालियाओ ताओ वच्छस्स कए वरिस्सामि ॥५४॥

पापः पश्यति मम प्रणयिनीमिति कामेन जातकोपेन । समकं सर्वांगमपि खलु विद्धः पञ्चभिरपि बाणैः ॥ ४२ ॥

तदाऽयःकीलिकाकिलित इव, स्तिमित इव चित्रलिखित इव । लेप्यमय इव मूर्च्छागत इव पाषाणघटित इव ॥ ४३ ॥

यावत्तदवस्थस्तिष्ठति तावत्तद्गतमनोविकल्पकुशलैः । हर्षविषादाकुलमानसै र्मित्रैः संलप्तः ॥ ४४ ॥

उत्सूरं सञ्जातं महती वेला समागतानामस्माकम् । ततो गच्छामो गृहं कल्ये पुनरागमिष्यामः ॥ ४५ ॥

त्वमपि खलु तावत्परिश्रान्तो मा किमपि शरीरकारणं भविष्यति । माता-पितरौ दूरं तव चिन्तां करिष्यतः ॥ ४६ ॥

वारं वारं भणितोऽपि यावत्तद्गतमना न चिन्तयति । बाहुना गृहीत्वा बलादपि नीतो जनकगृहम् ॥ ४७ ॥

तत्रापि हसति विजृम्भति प्रलपति रोदिति निरीक्षते शून्यम् । तप्तस्थले प्रक्षिप्तो मत्स्य इव रतिं न प्राप्नोति ॥ ४८ ॥

यावत्कष्टदशां प्राप्तस्तावच्च जनकस्य तस्य निवेदयन्ति । सोऽपि निशम्य वज्राहत इव जातो विषण्णवदनः ॥ ४९ ॥

सानुनयं सप्रणयं सुयुक्तयुक्तिक्षमं क्षमासारम् । परिस्पृश्य मुखं मुखरं भणितं शृणु वत्स ! मम वचनम् ॥ ५० ॥

पठितस्य तस्य श्रुतस्य तस्य निरुपमकलाकलापस्य । सुगुरुपदेशस्य चावसानमीदृशं वत्स ! ॥ ५१ ॥

किंच -

लज्ज्यते येन जनो मलिन्यते निजकुलक्रमो येन । कण्ठस्थितायामपि यस्यां कुर्वन्ति न कदापि तं सुजनाः ॥ ५२ ॥

अन्यच्च नृपो ज्ञास्यति स मम सर्वस्वनिग्रहं करिष्यति । पौरजनोऽपि खलु भणिष्यत्यकार्यमनेन समाचरितम् ॥ ५३ ॥

ततः सन्ति रुप-यौवन-लावण्यप्रवाहसारण्य इव । कुलबालिकास्ता वत्सस्य कृते वरिष्यामि ॥ ५४ ॥

ता नीयाए किमेयाए वच्छ ! रूवाइगुणजुयाए वि । सीयं पि पओ मायंगकूवए पियइ किं विप्पो ? ॥५५॥

भणियं च तेण अहमवि ताय ! वियाणामि जं तए भणियं । किंतु मह कम्मपरिणइवसेण विसमं तहिं पेम्मं ॥५६॥

जओ भणियं-

धारिज्जइ इंतो जलनिही वि कल्लोलभिन्नकुलसेलो । न हु पुव्वजम्मनिम्मियसुहा-ऽसुहो कम्मपरिणामो ॥५७॥

अवरं च-

ता लज्जा ता माणो ता इह-परलोयचिन्तणे बुद्धी । जा न विवेयजियहरा मयणस्स सरा पहुप्पंति ॥५८॥

ताव परो वि हसिज्जइ कीरइ माणं थिरत्तणं लज्जा । जा विसमे न पडिज्जइ अत्थाहे पेम्मकूवम्मि ॥५९॥

सुयनिच्छयं वियाणिय मग्गामि तयंपि किं वियप्पेण ? । मा मह सुयस्स जीवियसमस्स अच्चाहियं होही ॥६०॥

गंतूण मग्गिओ सो सुवन्नतुलियं पयच्छ नियधूयं । भणियं तेण महायस ! सुवन्नअक्खयनिही एसा ॥६१॥

ता जइ कज्जं मज्झं मिलेउ सो तुह सुओ किमन्नेण ? गोरवअरिहस्स गिहागयस्स साहेमि कज्जमिणं ॥६२॥

आगंतूणं जणएण लंखियाजणयभासियं कहियं । सो वि य निसामिऊणं मणे विसन्नो वियप्पेइ ॥६३॥

जणएण जणविरूद्धं अकज्जमवि ववसियं मह निमित्तं । तं पि न जायं तम्हा धिरत्थु विवरीयमयणस्स ॥६४॥

जओ-

साहीणं मोत्तूणं जं जं जणगरहणिज्जमहियं च । तं तं महइ वराओ दुरन्तहयमयणवसवत्ती ॥६५॥

ततो नीचया किमनया वत्स ! रुपादिगुणयुतयापि । शीतमपि पयो मातङ्गकूपके पिबति किं विप्रः ? ॥ ५५ ॥

भणितं च तेनाहमपि तात ! विजानामि यत्त्वया भणितम् । किन्तु मम कर्मपरिणतिवशेन विषमं तत्र प्रेम ॥ ५६ ॥

यतो भणितम् -

धार्यत आयान् जलनिधिरपि कल्लोलभिन्नकुलशैलः । न खलु पूर्वजन्मनिर्मितशुभा-शुभः कर्मपरिणामः ॥ ५७ ॥

अपरं च -

तावल्लज्जा तावन्मानस्तावदिहपरलोकचिन्तने बुद्धिः । यावन्न विवेकजीवहरा मदनस्य शराः प्रभवन्ति ॥ ५८ ॥

तावत्परोऽपि हस्यते क्रियते मानं स्थिरत्वं लज्जा । यावद्विषमे न पत्यते अगाधे प्रेमकूपे ॥ ५९ ॥

सुतनिश्चयं विज्ञाय मार्गयामि तकामपि किं विकल्पेन ? । मा मम सुतस्य जीवितसमस्यात्याधिकं भविष्यति ॥ ६० ॥

गत्वा मार्गितः स सुवर्णतोलितां प्रयच्छ निजदुहितरम् । भणितं तेन महायश ! सुवर्णाक्षयनिधिरेषा ॥ ६१ ॥

ततो यदि कार्यं मम मिलतु स तव सुतः किमन्येन ? । गौरवार्हस्य गृहागतस्य कथयामि कार्यमिदम् ॥ ६२ ॥

आगत्य जनकेन लङ्खिकाजनकभाषितं कथितम् । सोऽपि च निशम्य मनसि विषण्णो विकल्पयति ॥ ६३ ॥

जनकेन जनविरुद्धमकार्यमपि व्यवसितं मम निमित्तम् । तदपि न जातं तस्माद् धिगस्तु विपरितमदनस्य ॥ ६४ ॥

यतः -

स्वाधीनं मुक्त्वा यद्यद् जनगर्हणीयमधिकं च । तत्तदिच्छति वराको दुरन्तहतमदनवशवर्ती ॥ ६५ ॥

भणियं च-

पेरिज्जंतो पुव्वक्किएहिं कम्मेहिं कहमवि वराओ । सुहमिच्छंतो दुल्लहजणाणुराए जणो पडइ ॥६६॥

अन्न च-

सच्छंदपयपहाविरदुल्लहलंभं जणं विमग्गंतो । आयासपएहिं भमंतहियय ! कइया वि भज्जिहिसि ॥६७॥

एगत्तो गुरुआणा अलंघणिज्जा कुलं च ससिविमलं । एत्तो य अपडियारो मणभवणं दहइ मयणग्गी ॥६८॥

ता कि वयामि देसं ? किं वा पाणे चयामि पावो हं ? । अहव मणवल्लहाए मिलामि जं होइ तं होउ ॥६९॥

जओ-

नासइ कुलाहिमाणो लज्जा परिगलइ पोरिसं पडइ । दूरे गुरूण सेवा नारीवसयाण भणियं च ॥७०॥

ताव फुरइ वेरग्गु चित्ति कुललज्ज वि तावहिं, ताव अकज्जह तणिय संक गुरुयणभउ तावहिं ।

ताविंदियइं वसाइं जसह सिरि हायइ तावहिं, रमणिहि मणमोहिणिहि वीसउ नरु होइ न जावहिं ॥७१॥

सुकयत्थु वियक्खणु सो सुहिउ, सुगइमग्गि सो संघडिउ । परमोहणमूलियसरिसियह जो बालियहं न पिडि पडिउ ॥७२॥

सो जणओ सा माया ते मित्ता तारिसो सयणवग्गो । एगपए च्चिय चत्तं अहह ! महामोहमाहप्पं ॥७३॥

इय सो मिलिओ नडपेडयस्स जाणियकलाकलाओ वि । चउवेयपारगो माहणो व्व मायंगगेहम्मि ॥७४॥

भणिओ समुच्छुगेणं सप्पणयं तेण लंखियाजणओ । देसु मम ताय ! धूयं, जमिमीए विणा न सक्केमि ॥७५॥

भणितं च -

प्रेर्यमाणः पूर्वकृतैः कर्मभिः कथमपि वराकः । सुखमिच्छन् दुर्लभजनानुरागे जनः पतति ॥ ६६ ॥

अन्यच्च -

स्वच्छन्दपदप्रभावदुर्लभलभ्यं जनं विमार्गयन् । आयासपदै र्भ्रमद्हृदय ! कदापि भङ्क्ष्यषि ॥ ६७ ॥

एकत्र गुर्वाज्ञाऽलङ्घनीया कुलं च शशिविमलम् । इतश्चाप्रतिकारो मनोभवनं दहति मदनाग्निः ॥ ६८ ॥

ततो किं व्रजामि देशं ? किं वा प्राणांस्त्यजामि पापोऽहम् ? । अथवा मनोवल्लभां मिलामि यद्भवति तद्भवतु ॥ ६९ ॥

यतः -

नश्यति कुलाभिमानो लज्जा परिगलति पौरुषं पतति । दूरे गुरुणां सेवा नारीवशगानां भणितं च ॥ ७० ॥

तावत्स्फुरति वैराग्यं चित्ते कुललज्जापि तावत् । तावदकार्यस्य तनुका शङ्का गुरुजनभयस्तावत् ॥ ७१ ॥

तावदिन्द्रीयाणि वशानि यशसः श्री र्हीयते तावत् । रमणिभि र्मनोमोहिनिभि र्वशं नरो भवति न यावत् ॥ ७२ ॥

सुकृतार्थो विचक्षणः स सुखी सुगतिमार्गे स संघटति । परमोहनमूलिकासदृश्या यो बालिकाया नाधीने पतितः ॥ ७३ ॥

स जनकः सा माता ते मित्रास्तादृशः स्वजनवर्गः । एकपद एव त्यक्तमहह ! महामोहमाहात्म्यम् ॥ ७३ ॥

इति स मिलितो नटपेटकस्य ज्ञातकलाकलापोऽपि । चतुर्वेदपारगो माहण इव मातङ्गगृहे ॥ ७४ ॥

भणित समुत्सुकेन सप्रणयं तेन लङ्खिकाजनकः । देहि मह्यं तात ! दुहितरं यदनया विना न शक्नोमि ॥ ७५ ॥

तेणुत्तं वच्छ ! तुमं असिक्खिओ सिक्खिया य मह धूया । अणूरूवो संजोओ[१] होइ ता सिक्ख विन्नाणं ।।७६।।
तो सो तह त्ति पडिवज्जिऊण तप्पभिइ सिक्खिउं लग्गो । अहवा वि किं न ववसइ ? किं न कुणइ लोहवसवत्ती ? ।।७७।।
तो सो मइपगरिसओ नच्चण-गंधव्वकरणपमुहासु । सव्वेसिमुवरिवत्ती संजाओ नाडयकलासु ।।७८।।
पुणरवि जणएणुत्तं सिक्खं पयडेसु विढवसु सुवन्नं । जेण महाभूईए करेमि वच्छस्स वीवाहं ।।७९।।
बिन्नायडम्मि नयरे नडपेच्छं मग्गिओ महाराया । निहओ य रंगभूमीए गरुयवंसो तयग्गम्मि ।।८०।।
फलिहम्मि उभयपासेसु कीलया तत्थ सो समारूढो । परिहियसछिद्ददारुमयपाउओ वंससिहरम्मि ।।८१।।
दाऊण खग्गखेडयविहत्थहत्थो विसिट्ठकरणाइं । पुरओमुहाइं पच्छामुहाइंपि हु सत्त सत्त तओ ।।८२।।
कीलेसु पाउयाओ खिविउं उद्धट्ठिओ निरुव्विग्गो । जा चिट्ठइ ता लोओ रंजियहियओ भणइ एवं ।।८३।।
अहह ! महच्छरियमहो ! इमस्स नीसेसनडसिरोमणिणो । जो एरिसम्मि दुग्गे आयासे कुणइ करणाणि ।।८४।।
ता जइ राया वियरइ पढमं किं पि हु इमस्स ता अम्हे । कुणिमो ईसरमेयं विभवपयाणेण किं बहुणा ? ।।८५।।
राया उ लंखियाए रूवाइगुणेहिं अक्खिवियहियओ । एईए उमो भत्ता पडिऊणं कहवि जइ मरइ ।।८६।।
ता एसा मम भज्जा पाणपिया हवइ इय विचिंततो । भणइ मए सच्चवियं न सम्ममेयस्स विन्नाणं ।।८७।।
ता पुणरवि मह दंसउ एयं चिय पत्थुयं सविन्नाणं । इय भणिए नरवइणा दक्खत्तणओ जणसमक्खं ।।८८।।

तेनोक्तं वत्स ! त्वमशिक्षितः शिक्षिता च मम दुहिता । अनुरुपः संयोगो न भवति तत शिक्षस्व विज्ञानम् ॥ ७६ ॥
तदा स तथेति प्रतिपद्य तत्प्रभृति शिक्षितुं लग्नः । अथवापि किं न व्यवसति ? किं न करोति लोभवशवर्त्ती ? ॥ ७७ ॥
ततः स मतिप्रकर्षान्नर्तन-गान्धर्वकरणप्रमुखासु । सर्वेषामुपरिवर्त्ती सञ्जातो नाटककलासु ॥ ७८ ॥
पुनरपि जनकेनोक्तं शिक्षां प्रकटयार्जय सुवर्णम् । येन महाभूत्या करोमि वत्सस्य विवाहम् ॥ ७९ ॥
बेन्नातटे नगरे नटप्रेक्ष्यं मार्गितो महाराजा । निहतश्च रङ्गभूम्यां गुरुकवंशस्तदग्रे ॥ ८० ॥
फलक उभयपार्श्वयोः कीलकास्तत्र स समारुढः । परिहितसच्छिद्रदारुमयपादुकः वंशशिखरे ॥ ८१ ॥
दत्वा खड्गखेटकविहस्तहस्तो विशिष्टकरणानि । पुरतोमुखानि पश्चान्मुखान्यपि खलु सप्त सप्त ततः ॥ ८२ ॥
कीलकेषु पादुके क्षिप्त्वोर्ध्वस्थितो निरुद्विग्नः । यावत्तिष्ठति तावल्लोको रञ्जितहृदयो भणत्येवम् ॥ ८३ ॥
अहह ! महाश्चर्यमहो ! अस्य निःशेषनटशिरोमणेः । य एतादृशे दुर्गे आयासे करोति करणानि ॥ ८४ ॥
ततो यदि राजा वितरति प्रथमं किमपि खल्वस्य तदा वयम् । कुर्म इश्वरमेनं विभवप्रदानेन किं बहुना ? ॥ ८५ ॥
राजा तु लङ्खिकाया रुपादिगुणैराक्षिप्तहृदयः । एतस्या अयं भर्ता पतित्वा कथमपि यदि म्रियेत ॥ ८६ ॥
तदैषा मम भार्या प्राणप्रिया भवतीति विचिन्तयन् । भणति मया दृष्टं न सम्यगेतस्य विज्ञानम् ॥ ८७ ॥
ततः पुनरपि मम दर्शयतु एवमेव प्रस्तुतं स्वविज्ञानम् । इति भणिते नरपतिना दक्षत्त्वेन जनसमक्षम् ॥ ८८ ॥

---

१. संजोगो रं० ।

किल सिक्खियस्स न हु किं पि दुक्करं तेण बद्धलक्खेण । लहुमेव वंससिहरे कयाणि पुण सत्त करणाणि ॥८९॥

जा पुणरवि मज्झत्थो नरनाहो नो पयंपए किं पि । पुणरुत्तमवुत्तेण वि कयाणि तावंति करणाणि ॥९०॥

एत्थंतरम्मि निवइम्मि तम्मि दिट्ठम्मि दाणनिरवेक्खे । अहह ! अजुत्तमजुत्तं जणेण हाहारवो विहिओ ॥९१॥

राया वि लंखियाए अणुरत्तो लक्खिओ वियड्ढेण । उवरिट्ठिएण तेण वि तह चेव इलाए पुत्तेण ॥९२॥

तो परिभावियमिमिणा नूणमिमो मज्झ मारणनिमित्तं । करणाणि कारवेई पुणरुत्तमिमीए रत्तमणो ॥९३॥

ता किं एसो लावन्नरूवकलिएसु नियकलत्तेसु । सायत्तेसु वि एईए नीयजाईए अणुरत्तो ? ॥९४॥

ता किं इमिणा ? जम्हा अहं पि एयारिसो जणो अहवा । पेच्छइ गिरिम्मि जलणं पजलंतं न उण पायतले ॥९५॥

तो मणयं संविग्गो वंसग्गगओ विवेयवसवत्ती । परिभाविउं पयत्तो सतत्तमेसो सवुद्धीए ॥९६॥

एयाए अहं रत्तो राया वि इमीए चेव वेलविओ । एयाए वि हु चित्तं चंचलचित्ताए दुग्गेज्झं ॥९७॥

तो पेच्छ मंदमइणा मए विमूढेण केरिसं विहियं ? पच्छायावपरद्धो स दूरमेवं विचिंतेइ ॥९८॥

भणियं च-

न तहा तवेइ तवणो न जलियजलणो न विज्जुनिग्घाओ । जं अवियारियकज्जं विसंवयंतं तवइ जंतुं ॥९९॥

हयमिह मह विन्नाणं हयमिणमो मज्झ मणुयमाहप्पं । जेण मए ससिविमले कुलम्मि मसिकुच्चओ दिन्नो ॥१००॥

अवगणिओ नियजणओ अवगणिओ तारिसो सयणवग्गो । अवहत्थिया पसत्था ते वि हु इहलोय-परलोया ॥१०१॥

किल शिक्षितस्य न खलु किमपि दुष्करं तेन बद्धलक्षेण । लघ्वेव वंशशिखरे कृतानि पुनः सप्त करणानि ॥ ८९ ॥

यावत्पुनरपि मध्यस्थो नरनाथो न प्रजल्पति किमपि । पुनरुक्तमनुक्तेनापि कृतानि तावन्ति करणानि ॥ ९० ॥

अत्रान्तरे नृपतौ तस्मिन् दृष्टे दाननिरपेक्षे । अहह ! अयुक्तमयुक्तं जनेन हाहारवो विहितः ॥ ९१ ॥

राजापि लङ्खिकायामनुरक्तो लक्षितो विदग्धेन । उपरिस्थितेन तेनापि तथा चैवेलायाः पुत्रेण ॥ ९२ ॥

ततः परिभावितमनेन नूनमयं मम मारणनिमित्तम् । करणानि कारयति पुनरुक्तमेतस्यां रक्तमनाः ॥ ९३ ॥

ततः किमेष लावण्यरुपकलितेषु निजकलत्रेषु । स्वायत्तेष्वपि एतस्यां नीचजात्यामनुरक्तः ? ॥ ९४ ॥

ततः किमनेन ? यस्मादहमप्येतादृशो जनोऽथवा । पश्यति गिरौ ज्वलनं प्रज्वलन्तं न पुनः पादतले ॥ ९५ ॥

ततो मनाक् संविग्नो वंशाग्रगतो विवेकवशवर्त्ती । परिभावयितुं प्रयतः स्वतत्त्वमेषः स्वबुध्या ॥ ९६ ॥

एतस्यामहं रक्तो राजापि एतया चैव वञ्चितः । एतस्या अपि खलु चित्तं चञ्चलचिताया दुर्ग्राह्यम् ॥ ९७ ॥

तत पश्य मन्दमतिना मया विभूढेन कीदृशं विहितम् ? । पश्चातापपीडितः स दूरमेवं विचिन्तयति ॥ ९८ ॥

भणितं च -

न तथा तपति तपनो न ज्वलित ज्वलनो न विद्युन्निर्घातः । यदविचारितकार्यं विसंवदन्तं तपति जन्तुः ॥ ९९ ॥

हतमिह मम विज्ञानं हतमिदं मम मनुष्यमाहात्म्यम् । येन मया शशिविमले कुले मषीकुर्चको दत्तः ॥ १०० ॥

अवगणितो निजजनकोऽवगणितस्तादृशः स्वजनवर्गः । अपहस्तिताः प्रशस्तास्तेऽपि खल्विहलोक-परलोकाः ॥ १०१ ॥

जमिमीए मोहिएणं केणइ जम्मंतराणुराएणं । ववसियमेयमकज्जं वियाणमाणेण जमिहुत्तं ॥१०२॥

अहो ! संसारजालस्य विपरीतः क्रियाक्रमः । न परं जलजन्तूनां धीवरस्यापि बन्धनम् ॥१०३॥

परमेत्तो वि हु एयं महंतमच्छेरयं जमेसो वि । राया कलत्तजुत्तो दढमणुरत्तो इमीए वि ॥१०४॥

अत्राप्युक्तं केनचिद् यथा-

सर्वाभिरपि नैकोऽपि तृप्यत्येकाऽपि नाखिलैः । द्वितीयं द्वावपि द्विष्टः कष्टः स्त्रीपुंसमागमः ॥१०५॥

ता अलमिमिणा परिदेविएण निच्चं नमोत्थु विसयाणं । वज्जिय कज्जमकज्जं कुणंति वसगा जमेयाणं ॥१०६॥

भणियं च-

विसयविसमोहियाणं सुधम्ममंदायराण सत्ताणं । अमुणियसाराऽसाराण गलइ हत्थट्ठियं अमयं ॥१०७॥

विसया किंपागफलं विसया हालाहलं विसं परमं । विसया विसमं सल्लं विसया आसीविसभुयंगो ॥१०८॥

विसया उक्कडपासो विसया कंदुज्जुओ नरयमग्गो । इय मुणिय विसयसंगं धीरा वज्जंति दूरेणं ॥१०९॥

विसयासत्ता सत्ता विडंबणं तं जयम्मि पावंति । जं कहिउं पि न तीरइ धूलीवुक्कावणामहं व ॥११०॥

तो विसयविरत्तो हं संपइ विसएसु मज्झ पज्जत्तं । दिट्ठो मालवदेसो खद्धा मंडा मए इण्हिं ॥१११॥

इय वेरग्गागएणं नयरीमज्झं निरूवयंतेण । दिट्ठा धणइब्भगिहं धम्मधणा साहुणो के वि ॥११२॥

पंचसमिया तिगुत्ता संजमजुत्ता दढव्वया धीरा । सुपसंता पविसंता सुविसिट्ठा भत्त-पाणट्ठा ॥११३॥

यदनया मोहितेन केनचिज्जन्मान्तरानुरागेण । व्यवसितमेतदकार्यं विजानता यदिहोक्तम् ॥ १०२ ॥

अहो ! संसारजालस्य विपरित: क्रियाक्रमः । न परं जलजन्तूनां धीवरस्यापि बन्धनम् ॥ १०३ ॥

परमितोऽपि खल्वेतन्महाश्चर्यं यदेषोऽपि । राजा कलत्रयुक्तो दृढमनुरक्त एतस्यामपि ॥ १०४ ॥

ततोऽलमनेन परिदेवितेन नित्यं नमोऽस्तु विषयेभ्यः । वर्जित्वा कार्यमकार्यं कुर्वन्ति वशगा यदेतेषाम् ॥ १०६ ॥

भणितं च -

विषयविषमोहितानां सुधर्ममन्दाचाराणां सत्त्वानाम् । अमुणितसारासाराणां गलति हस्तस्थितममृतम् ॥ १०७ ॥

विषयाः किम्पाकफलं विषया हलाहलं विषं परमम् । विषया विषमं शल्यं विषया आशीर्विषभुजङ्गः ॥ १०८ ॥

विषया उत्कटपाशो विषया कन्दुयुतो नरकमार्गः । इति ज्ञात्वा विषयसङ्गं धीरा वर्जयन्ति दूरेण ॥ १०९ ॥

विषयासक्ताः सत्त्वा विडम्बनां तां जगति प्राप्नुवन्ति । यत्कथयितुमपि न शक्यते धूलीमुष्टिप्रक्षेपमहरिव[१] ॥ ११० ॥

ततो विषयविरक्तोऽहं सम्प्रति विषयेषु मम पर्याप्तम् । दृष्टो मालवदेशः खादिता मण्डका मयेदानीम् ॥ १११ ॥

इति वैराग्यागतेन नगरीमध्ये निरुपयता । दृष्टा धनेभ्यगृहे धर्मधनाः साधवः केऽपि ॥ ११२ ॥

पञ्चसमितास्त्रिगुप्ताः संयमसंयुक्ता दृढव्रता धीराः । सुप्रशान्ताः प्रविशन्तः सुविशिष्टा भक्त-पानार्थाः ॥ ११३ ॥

---

१. जीस महोत्सव में धूल की मुट्ठी फेंकी जाती हैं ।

नवजोव्वणाहिं सिंगारियाहिं लायन्न-रूवकलियाहिं । पडिलाभिज्जंता धम्मियाहिं धणवइगिहवहूहिं ॥११४॥
दट्ठूणं मुणिवसभे दढमुल्लसिओ गुणाणुराएण । कयपुन्ना खलु एए विसयविरत्ता न उण अम्हे ॥११५॥
यि गुणिगुणाणुरागा खउवसमाओ चरित्तमोहस्स । उल्लसियविरियवसओ जाओ चारित्तपरिणामो ॥११६॥
अहियं विवाहबुद्धी हिययम्मि सयत्थचिंतणपरो य । ठियसकलत्तविराओ विसयविरत्तो सुथिरचित्तो ॥११७॥
अह सो महाणुभावो अपुव्वकरणेण वंसजट्ठीए । आरूढो तह चेव य गुरुईव खवगसेढीए ॥११८॥
सिवपुरदंसणमइणओ समणसमाहीए वट्टमाणस्स । लोया-ऽलोयपयासं संजायं केवलं नाणं ॥११९॥
एत्थंतरम्मि ओयरिय वंसभागाओ सो इलापुत्तो । रायाइजणसभाए धम्मं कहिउं समाढत्तो ॥१२०॥
भो भो भव्वा ! दुलहं लहिउं मणुयत्तमाइसामग्गिं । पडिवज्जह जिणधम्मं सम्मं सम्मत्तमायरह ॥१२१॥
विरमह विसएहिंतो सिग्घं सुहुमं पि दुच्चरिय जायं । वियडह सुगुरुसयासे माऽहमिव विडंबणं वयह ॥१२२॥
एत्थंतरम्मि भणियं रायाइसभाए विम्हियमणाए । भयवं कहमिव तुब्भे विडंबिया ? कहह निय चरियं ॥१२३॥
निसुणह एगग्गमणा इओ भवाओ अईयतइयभवे । अहमासि वसंतउरे छक्कम्मरओ दियप्पवरो ॥१२४॥
मह माहणी य भज्जा माहणकुलसंभवा पयइसोमा । दढमणुरत्तमणाइं परोप्परं तम्मि जम्मम्मि ॥१२५॥
समुदायकडा कम्मा समुदायफल त्ति इय सरंताइं । संविग्गमाणसाइं पव्वइयाइं गुरुसमीवे ॥१२६॥
रिउभावओ य भज्जा जाइमयं कुणइ तह मणे सुहुमो । सुगुरुसमीवे वऽम्हं नावगओ नेहपडिबंधो ॥१२७॥

नवयौवनाभि: श्रृङ्गारिताभि र्लावण्यरुपकलिताभि: । प्रतिलाभयन्तो धर्मिकाभि धर्नपतिगृहवधूभि: ॥ ११४ ॥
दृष्ट्वा मुनिवृषभान् दृढमुल्लसितो गुणानुरागेण । कृतपुण्या: खल्वेते विषयविरक्ता न पुनर्वयम् ॥ ११५ ॥
इति गुणीगुणानुरागात्क्षयोपशमाच्चारित्रमोहस्य । उल्लसितवीर्यवशतो जातश्चारित्रपरिणाम: ॥ ११६ ॥
अधिकं विवाहबुद्धि र्हृदये सदर्थचिन्तनपरश्च । स्थितसकलत्रविरागो विषयविरक्त: सुस्थिरचित्त: ॥ ११७ ॥
अथ स महानुभावोऽपूर्वकरणेन वंशयष्टीम् । आरुढस्तथा चैव च गुर्व्वीं क्षपकश्रेणीम् ॥ ११८ ॥
शिवपुरदर्शनमते: श्रमणसमाधौ वर्तमानस्य । लोकाऽलोक प्रकाशं सञ्जातं केवलं ज्ञानम् ॥ ११९ ॥
अत्रान्तरे अवतीर्य वंशभागात् स इलापुत्र: । राजादिजनसभायां धर्मं कथयितुं समारब्ध: ॥ १२० ॥
भो भो भव्या: ! दुर्लभां लब्ध्वा मनुष्यत्वादिसामग्रीम् । प्रतिपद्यध्वं जिनधर्मं सम्यक् सम्यक्त्वमाचरत ॥ १२१ ॥
विरमत विषयेभ्य: शीघ्रं सूक्ष्ममपि दुश्चरितं जातम् । प्रकटयथ सुगुरुसकाशे माऽहमिव विडम्बनं व्रजथ ॥ १२२ ॥
अत्रान्तरे भणितं राजादिसभायां विस्मितमनसा । भगवन् ! कथमिव यूयं विडम्बिता: ? कथयथ निजं चरितम् ॥ १२३ ॥
निश्रृणुतैकाग्रमनस इतो भवादतीततृतीयभवे । अहमासीद्वसन्तपुरे षट्कर्मरतो द्विजप्रवर: ॥ १२४ ॥
मम माहणी च भार्या माहणकुलसम्भवा प्रकृतिसौम्या । दृढमनुरक्तमनसौ परस्परं तस्मिन् जन्मनि ॥ १२५ ॥
समुदायकृतानि कर्माणि समुदायफलानीत्येवं स्मरन्तौ । संविग्नमानसौ प्रव्रजितौ गुरुसमीपे ॥ १२६ ॥
ऋजुभावाच्च भार्या जातिमदं करोति तथा मनसि सूक्ष्मम् । सुगुरुसमीपे वास्मद्द्वयां नावगत: स्नेहप्रतिबन्ध: ॥ १२७ ॥

तं सुहुममणालोइय तहेव पत्ताइं देवलोगम्मि । तत्तो इह जायाइं तुम्हाणं चेव पच्चक्खं ॥१२८॥

तो जाइमएणेसा संजाया निंदियाए जाईए । अहमवि तन्नेहेणं विडंबणं एवमणुपत्तो ॥१२९॥

तो भो महाणुभावा ! सुगुरुसमीवम्मि सल्लमुद्धरह । कुणह य विसयविरमणं जइ सम्मं महह सिवसोक्खं ॥१३०॥

इय निसुणिऊण राया तहाऽवरा लंखिया महादेवी । संजायकेवलाइं चउरो वि गयाइं मोक्खम्मि ॥१३१॥

॥ इलापुत्राख्यानकं समाप्तम् ॥२५॥

इय असुहो परिणामो जाओ दमगस्स दुगइनिमित्तं । भरह-इलापुत्ताणं सुहो य सिवसोक्ख संजणओ ॥१॥

तह अन्नाण वि जायइ दुग्गइ-सुगईण साहओ एसो । ता वज्जिऊणमसुहं सुहपरिणामं सया कुणह ॥२॥

यद्वत् शुभो लवणरूपरसो रसेषु, चिन्तामणिर्मणिषु यद्वदिह प्रशस्यः ।
तद्वच्च धर्मशुभकर्मणि शुद्धभावस्तस्मात् तमेव भजताशुभभावहानात् ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे भावनोपवर्णनो नाम पञ्चमोऽधिकारः समाप्तः ॥५॥

तत्सूक्ष्ममनालोच्य तथैव प्राप्तौ देवलोके । तत इह जातौ युष्माकमेव प्रत्यक्षम् ॥ १२८ ॥

ततो जातिमदेनैषासञ्जाता निन्दितायां जात्याम् । अहमपि तत्स्नेहेन विडम्बनामेवमनुप्राप्तः ॥ १२९ ॥

ततो भो महानुभावाः ! सुगुरु समीपे शल्यमुद्धरत । कुरुत च विषयविरमणं यदि सम्यगिच्छत शिवसौख्यम् ॥ १३० ॥

इति निश्रुत्य राजा तथाऽपरा लङ्खिका महादेवी । सञ्जातकेवलाश्चत्वारोऽपि गता मोक्षे ॥ १३१ ॥

॥ इलापुत्राख्यानकं समाप्तम् ॥ २४ ॥

इत्यशुभः परिणामो जातो द्रमकस्य दुर्गतिनिमित्तम् । भरतेलापुत्रयोः शुभश्च शिवसौख्यसञ्जनकः ॥ १ ॥

तथान्येषामपि जायते दुर्गति-सुगत्योः साधक एषः । ततो वर्जयित्वाशुभं शुभपरिणामं सदा कुरुत ॥ २ ॥

• • •

[६. सम्यक्त्वगुणवर्णनाधिकारः ।]

व्याख्यातो भावनारूपश्चतुर्थो धर्मभेदः । तद्व्याख्यानात् समर्थितश्चतुर्विधोऽपि दानादिधर्मः । अयं च सम्यक्त्वनिश्चलतायां सम्यक् फलदायी भवति । अतः सम्यकत्वस्वरुपमेवाह –

भवचारयवासहरं तह सम्मद्दंसणं सुगइमूलं ।
ता सेणिय-सुलसा इव सम्मत्ते निच्चला होह ॥ ११ ॥

व्याख्या - 'भवचारकवासहरं' संसारकारागारावस्थानविनाशनं 'तथा' इति समुच्चये 'सम्यगदर्शनं' समयक्त्वं 'सुगतिमूलं' सुदेवत्व-सुमानुषत्वादिसुखप्राप्तिबीजम् 'तस्मात्' कारणात् श्रेणिक-सुलसे इव सम्यक्त्वे 'निश्चलाः' स्थिरा भवत इत्यक्षरार्थः ॥ ११ ॥

भावार्थस्त्वाख्यानकाभ्यामवसेयः । ते चामू । तत्र श्रेणिकाख्यानकं सेडुवकाख्यानके कथयिष्यते ।

सुलसाख्यानकं त्विदम्-

मगहामंडलअक्खंडमंडले आसि रायगिहनयरे । नयरेहिरो नरिंदो सेणियनामो ससोहो वि ॥१॥
तस्सऽत्थि पवरभूसो सुभद्दजाई सुदाणललियकरो । पउमालंकियदेहो रहिओ नागो व्व नागो त्ति ॥२॥
जीवा-ऽजीवाइविऊ परियाणियपुन्नपावपरिणामा । सिरिवीरचरणतामरसमहुयरी सीलकुलभवणा ॥३॥
तस्स सुलसाभिहाणा भज्जा वज्जियअवज्जसंसग्गी । चंदकरनियरनिम्मलनिच्छलसम्मत्तसंजुत्ता ॥४॥

सुलसाख्यानकम् - ॥ २५ ॥

मगधामण्डलाखण्डमण्डल आसीद्राजगृहनगरे । नयराजमाननरेन्द्रः श्रेणिकनाम सशोभोऽपि ॥ १ ॥
तस्यास्ति प्रवरभूषः सुभद्रजातिः सुदानललितकरः । पद्मालङ्कितदेहो रथिको नाग इव नाग इति ॥ २ ॥
जीवाजीवादिविदुः परिज्ञातपुण्यपापपरिणामः । श्रीवीरचरणतामरसमधुकरी शीलकुलभवना ॥ ३ ॥
तस्य सुलसाभिधाना भार्या वर्जितावद्यसंसर्गी । चन्द्रकरनिकरनिर्मलनिश्चलसम्यक्त्वसंयुक्ता ॥ ४ ॥

अन्नोन्ननेहनिब्भरमणाण जिणथवणकरणपवणाण । अइकमइ ताण कालो विसयसुहं भुंजमाणाणं ॥५॥

एत्तो य विहरमाणो गामा-ऽऽगर-नगरमंडियं वसुहं । वसु-हरि-नरिंद-मुणिवरभत्तिब्भर[1]नमियकमकमलो ॥६॥

कमलोलकणयनिम्मियकमलोवरिनिहियरुइररुइचरणो । चरणरुइचारुमुणिवरमाणससंजणियगुरुहरिसो ॥७॥

हरिसोयामणिविप्फुरियतेयपब्भारनिहयतमजाओ । तमजाइरहियसन्नाणफलयखलियंगयप्पसरो ॥८॥

पसरंतचरणनहमणिमयूहविच्छुरियसयलमहिवलओ । वलओहकलियसुरवइसमूहथुव्वंतगुणनियरो ॥९॥

नियरोस-रायरिउघडसमरंगणविजयसयलसिद्धत्थो । सिद्धत्थसुओ सिरिवद्धमाणसामी समोसरिओ ॥१०॥

चंपाए परिसरम्मी असुरा-ऽमरनिम्मिए समोसरणे । सीहासणे [2]निविट्ठो धम्मकहं कहिउमाढत्तो ॥११॥

एत्थंतरे तिदंडय-गणित्तिया-भिसिय-छत्तछन्नालो । [3]अम्मडनामो सड्ढो तत्थ परिव्वायगो पत्तो ॥१२॥

काउं पयाहिणतियं पणमइ महिमंडले मिलियभालो । थोऊण जिणं भत्तीए तयणु खणमेक्कमुवविट्ठो ॥१३॥

तो पणमिउं पयट्टो रायगिहे पुरवरम्मि ता एसो । सुलसाए मह पउत्तिं साहसु जगबंधुणा भणिओ ॥१४॥

इच्छं ति पभणिऊणं उप्पइओ गवलसामले गयणे । रायगिहे संपत्तो चित्ते चिंतेइ तो एवं ॥१५॥

पेच्छ कह वीयराओ सुर-नरमज्झम्मि विहियसुपसंसो । केण गुणेणं सुलसाए ? तं परिक्खेमि गुणमहयं ॥१६॥

इय चिंतिऊण तत्तो संपत्तो तीए गेहमचिरेण । मग्गइ भोयणमेसो देइ न धम्मत्थमेसा वि ॥१७॥

अन्योन्यस्नेहनिर्भरमनसो र्जिनस्तवनकरणप्रवणयोः । अतिक्रामति तयोः कालो विषयसुखं भुञ्जनयोः ॥ ५ ॥

इतश्च विहरन् ग्रामाऽऽकर-नगरमण्डितां वसुधाम् । वसु-हरि-नरेन्द्र-मुनिवरभक्तिनिर्भरनतक्रमकमलः ॥ ६ ॥

क्रमलोलकनकनिर्मितकमलोपरिनिहितरुचिररुचिचरणः । चरणरुचिचारुमुनिवरमानससञ्जनितगुरुहर्षः ॥ ७ ॥

हरिसौदामिनीविस्फुरिततेजःप्राग्भारनिहततमोजातः । तमोजातिरहितसज्ञानफलकस्खलिताङ्गदप्रसरः ॥ ८ ॥

प्रसरच्चरणनखमणिमयूरविच्छुरितसकलमहिवलयः । वलयौघकलितसुरपतिसमूहस्तुवद्गुणनिकरः ॥ ९ ॥

निजरोषरागरिपुघटसमराङ्गणविजयसकलसिद्धार्थः । सिद्धार्थसुतः श्रीवर्धमानस्वामी समवसृतः ॥ १० ॥

चम्पायाः परिसरे असुराऽमरनिर्मिते समवसरणे । सिंहासने निविष्ठो धर्मकथां कथयितुमारब्धः ॥ ११ ॥

अत्रान्तरे त्रिदंडक-[4]गणेत्रिका-भिसिया-छत्र-छन्नालः । अम्बडनाम श्राद्धस्तत्र परिव्राजकः प्राप्तः ॥ १२ ॥

कृत्वा प्रदक्षिणात्रिकं प्रणमति महिमण्डले मिलितभालः । स्तुत्वा जिनं भक्त्या तदनु क्षणमेकमुपविष्टः ॥ १३ ॥

ततः प्रणभ्य प्रवृतो राजगृहे पुरवरे तावदेषः । सुलसाया मम प्रवृत्तिं कथय जगबन्धुना भणितः ॥ १४ ॥

इच्छामीति प्रभण्योत्पतितो गवलश्यामले गगने । राजगृहे संप्राप्तश्चित्ते चिन्तयति तदैवम् ॥ १५ ॥

पश्य कथं वीतरागः सुर-नरमध्ये विहितसुप्रशंसः । केन गुणेन सुलसायाः ? तं परीक्षे गुणमहान्तम् ॥ १६ ॥

इति चिन्तयित्वा ततः सम्प्राप्तस्तस्या गृहमचिरेण । मार्गयति भोजनमेष ददाति न धर्मार्थमेषापि ॥ १७ ॥

---

१. ब्भरनिब्भरनमिय रं० । २. निसन्नो रं० । ३. ओम्बड० रं० । ४. गणेत्तिया - रुद्राक्षमाला (दे.), भिसिय - आसनविशेषः (दे.), छन्नाल - तिपाई संन्यासियोका एक उपकरण (दे.)

तो नयरपरिसरम्मी पुव्वपओलीदुवारदेसम्मि । विरयइ विरिंचिरूवं चउवयणं पंकयनिविट्ठं ॥१८॥
सियबंभसुत्त-सावित्ति-हंस-जड-मउड-अक्खमालाहिं । परिकलियं धम्मकहासमुज्जयं जाणिउं तत्तो ॥१९॥
आगच्छइ पउरजणो तो सुलसा सहियणेण आहूया । दंभो त्ति पभणिऊणं न गया तव्वंदणट्ठाए ॥२०॥
तत्तो स बीयदिवसे दाहिणदेसे विउव्वए कण्हं । गय-संख-चक्क-सारंग-गरूड-लच्छीहिं परिकलियं ॥२१॥
तेण वि न रंजिया सा तो तइयदिणम्मि पच्छिमदिसाए । कुणइ सिरिकंठरूवं नयणत्तय-भूइभासुरयं ॥२२॥
आबद्धजडामउडं चंदकलालंकियं वसहसोहं । अद्धंगगउरि-डमरुय-खट्टंगगणेण संजुत्तं ॥२३॥
तत्थ वि न गया सुलसा तो उत्तरगोउरे विणिम्मविउं । वररयण-कणय-कलहोयकलियपायारतियसहियं ॥२४॥
तियसहियसमवसरणं कंकेल्लितलम्मि चउसरीरो सो । सिंहासणे निविट्ठो अट्ठमहापाडिहेरजुओ ॥२५॥
तो जिणनाहं नाउं नयरजणो नरवरिंदपज्जन्तो । तव्वंदणवडियाए विणिग्गओ नो गया सुलसा ॥२६॥
तो अंबडेण एसा भणाविया जिणवरस्स नमणत्थं । सुलसाए तओ भणियं नएस सिरिवीरजिणनाहो ॥२७॥
तेण वि भणाविया सा पणुवीसइमो इमो जिणो मुद्धे ! । सा आह न हुंति जिणा पणुवीसं भरहखेत्तम्मि ॥२८॥
किंतु कयकूडकवडो कोइ इमो सासणं विडंबेइ । तो अम्मडो वि चिंतइ थिरसम्मत्ता अहह ! एसा ॥२९॥
उप्पन्नविमलकेवलनाणीभयवं पि जं पसंसेइ । सा सुलसा जयउ जए निच्चलसम्मत्तवररयणा ॥३०॥
जं खोभिउं न सक्को सक्को वि हु सासणाओ सुरसहिओ । सा सुलसा जयउ जए निच्चलसम्मत्तवररयणा ॥३१॥

तदा नगरपरिसरे पूर्वप्रतोलीद्वारदेशे । विरचयति विरञ्चिरुपं चतुर्वदनं पङ्कजनिविष्टम् ॥ १८ ॥
श्वेतब्रह्मसूत्र-सावित्रि-हंस-जटा-मुकुटाक्षमालाभिः । परिकलितं धर्मकथासमुद्यतं ज्ञात्वा ततः ॥ १९ ॥
आगच्छति पौरजनस्ततः सुलसा सखिजनेनाहूता । दम्भ इति प्रभण्य न गता तद्वन्दनार्थाय ॥ २० ॥
ततः स द्वितीयदिवसे दक्षिणदिशि विकुर्वति कृष्णम् । गदा-शङ्ख-चक्र-सारङ्ग-गरुड-लक्ष्मीभिः परिकलितम् ॥ २१ ॥
तेनापि न रञ्जिता सा ततस्तृतीयदिने पश्चिमदिशि । करोति श्रीकण्ठरुपं नयनत्रय-भूतिभासुरकम् ॥ २२ ॥
आबद्धजटामुकुटं चन्द्रकलालङ्कितं वृषभशोभम् । अर्द्धाङ्गगौरी-डमरुक-खट्वाङ्गगणेन सङ्युक्तम् ॥ २३ ॥
तत्रापि न गता सुलसा तत उत्तरगोपूरे विनिर्माय । वररत्न-कनक-कलधौतकलितप्राकारत्रिकसहितम् ॥ २४ ॥
त्रिदशाधिपसमवसरणं कङ्केलितले चतुःशरीरः सः । सिंहासने निविष्टोऽष्टमहाप्रातिहार्ययुतः ॥ २५ ॥
तदा जिननाथं ज्ञात्वा नगरजनो नरवरेन्द्रपर्यन्तः । तद्वन्दनप्रत्ययाद् विनिर्गतो नो गता सुलसा ॥ २६ ॥
ततोऽम्बर्डेनैषा भाणिता जिनवरस्य नमनार्थम् । सुलसया ततो भणितं नैष श्रीवीरजिननाथः ॥ २७ ॥
तेन वि भाणिता सा पञ्चविंशतितमोऽयं जिनो मुग्धे ! । साऽऽह न भवन्ति जिनाः पञ्चविंशति र्भरतक्षेत्रे ॥ २८ ॥
किन्तु कृतकूटकपटः कोऽयं शासनं विडम्बयति । ततोऽम्बडोऽपि चिन्तयति स्थिरसम्यक्त्वाऽहह ! एषा ॥ २९ ॥
उत्पन्नविमलकेवलज्ञानी भगवानपि यां प्रशंसति । सा सुलसा जयतु जगति निश्चलसम्यक्त्ववररत्ना ॥ ३० ॥
यां क्षोभितुं न शक्यः शक्रोऽपि खलु शासनात् सुरसहितः । सा सुलसा जयतु जगति निश्चलसम्यक्त्ववररत्ना ॥ ३१ ॥

देवा वि हु सन्निज्झं कुणंति जीए गुणेहिं अक्खित्ता । सा सुलसा जयउ जए निच्चलसम्मत्तवररयणा ।।३२।।

इय संहरिउं सव्वं सुलसागेहम्मि अंबडो गंतुं । कुणइ निसीहियसद्दं सोउं अब्भुट्ठए सा वि ।।३३।।

भणइ य निसीहियाए सागयमह कुणइ उचियपडिवत्तिं । वंदावइ गिहचेइयबिंबे एसोऽभिवंदइ य ।।३४।।

सासय-असासयाइं वंदावइ चेइयाइं सो सुलसं । सा वि धरलुढियसीसा वंदइ उब्भिन्नरोमंचा ।।३५।।

पुणरवि य सो पयंपइ सकयत्था तं सि पुच्छए जीए । सिरिवद्धमाणसामी कुसलपउत्तिं समवसरणे ।।३६।।

निसुणित्तु तयं सुलसा भत्तिभरुब्भिन्नरुइररोमंचा । महिमंडलमिलियनिडालमंडला पणमइ जिणिंदं ।।३७।।

तो तेण पुणो भणिया भद्दे ! हर-हरि-हिरन्नगब्भाणं । वक्खाणे सह लोएण नाऽऽगया किं तुमं ? कहसु ।।३८।।

किं भद्द ! तुमं जंपसि अयाणमाणो व्व ? जंपए सुलसा । वीरं मोत्तुं न रमइ मज्झ मणो इयरदेवेसु ।।३९।।

तथा हि-

जो अइरावयगंडयलगलियमयरंदपरिमलग्घविओ । सो वियसियं पि न रमइ पिचुमंदं महुयरजुवाणो ।।४०।।

भरुयच्छकच्छवच्छुच्छलंतमयरंदगुंडियंगस्स । भमरस्स करीरवणे मणयं पि मणो न वीसमइ ।।४१।।

जो माणसम्मि वसिओ वियसियसयवत्तमासलामोए । सो किं फुल्लपलासे सविलासं छप्पओ छिवइ ? ।।४२।।

जो नासियधवगंगं गंगं धवलुज्जलं जलं लिहइ । गयसोहं सो हंसो किं सेसनईपयं पियइ ? ।।४३।।

जो कयसीयलतीरे नीरे तेवाए मज्जइ जहिच्छं । सो किं इयरे वियरे गओ गओ देइ दिट्ठिं पि ? ।।४४।।

देवा अपि खलु सांनिध्यं कुर्वन्ति यस्या गुणैराक्षिप्ता । सा सुलसा जयतु जगति निश्चलसम्यक्त्ववररत्ना ॥ ३२ ॥

इति संहृत्य सर्वं सुलसागृहे ऽम्बडो गत्वा । करोति निषिधिकाशब्दं श्रुत्वाऽभ्युत्तिष्ठति सापि ॥ ३३ ॥

भणति च निषीधिकायाः स्वागतमथ करोत्युचितप्रतिपत्तिम् । वन्दापयति गृहचैत्यबिम्बानेषोऽभिवन्दते च ॥ ३४ ॥

शाश्वताऽशाश्वतानि वन्दापयति चैत्यानि स सुलसाम् । सापि धरालुठितशीर्षा वन्दते उद्भिन्नरोमाञ्चा ॥ ३५ ॥

पुनरपि च स प्रजल्पति सकृतार्था त्वमसि पृच्छति यस्याः । श्रीवर्धमानस्वामी कुशलप्रवृत्तिं समवसरणे ॥ ३६ ॥

निःश्रुत्य तकं सुलसा भक्तिभरोद्भिन्नरुचिररोमाञ्चा । महिमण्डलमिलितनिडालमण्डला प्रणमति जिनेन्द्रम् ॥ ३७ ॥

ततस्तेन पुन र्भणिता भद्रे ! हर-हरि-हिरण्यगर्भाणाम् । व्याख्याने सह लोकेन नागता किं त्वं ? कथय ॥ ३८ ॥

किं भद्र ! त्वं जल्पसि अज्ञायमान इव ? जल्पति सुलसा । वीरं मुक्त्वा न रमते मम मन इतरदेवेषु ॥ ३९ ॥

तथाहि -

य ऐरावतगण्डतलगलितमकरन्दपरिमलार्घ्यापितः । स विकसितमपि न रमते पिचुमन्दं मधुकरयुवा ॥ ४० ॥

भृगुकच्छकच्छवत्सोच्छलन्मकरन्दगुण्डिताङ्गस्य । भ्रमरस्य करीरवने मनागपि मनो न विश्राम्यति ॥ ४१ ॥

यो मानसे उषितो विकसितशतपत्रमांसलाभोगे । स किं फुल्लपलासान्सविलासं षट्पदः स्पृशति ? ॥ ४२ ॥

यो नाशितधवगङ्गं गङ्गं धवलोज्ज्वलं जलं लेढि । गतशोभं स हंसः किं शेषनदीपयः पिबति ? ॥ ४३ ॥

यः कृतशीतलतीरे नीरे रेवाया मज्जति यथेच्छम् । स किमितरे वितरे गतो गजो ददाति दृष्टिमपि ? ॥ ४४ ॥

जो घणलयसामलए मलए मयरंदवासिए वसिओ । सारंगो सारंगो सो किं इयरे धरे रमइ ? ॥४५॥

जो गंतुज्जितनए नए नओ भवइ वसइ वरवच्छे । सो नीलगलो विगलो किं विगयतरुं मरुं सरइ ? ॥४६॥

जो पोढपुरंधिरए रओ पकामं पकामकाममि । सो किं मोहियमोरे खोरे कामे मणं कुणइ ? ॥४७॥

इय सिरिवीरजिणेसरनिरुवमपयपंकयं नयं जेहिं । सो हरि-हराण किं सुहसमूहमहणे कमे नमइ ? ॥४८॥

इय जो जिणिंदनिरुवमवयणामयपाणपियणदुल्ललिओ । सो सेसकुनयमयकंजिएसु न य निव्वुइं लहइ ॥४९॥

आउच्छिऊण सुलसं तओ गओ अम्बडो नियट्ठाणे । सुलसा वि य पज्जंते कमेण संलेहणं काउं ॥५०॥

सुमरंती वीरजिणं खामंती सयलसत्तसंघायं । गरिहंती दुच्चरियं पभणंती पंचनवकारं ॥५१॥

मरिऊण गया सग्गे तत्तो चविऊण भरहवासम्मि । उववज्जिही जिणिंदो पनरसमो निम्ममत्तजिणो ॥५२॥

॥ सुलसाख्यानकं समाप्तम् ॥२५॥

जह एएहिं विसुद्धं सम्मत्तं पालियं सुगइमूलं । तह अन्नेणविएयं पालेयव्वं पयत्तेण ॥१॥

यद्वन्मनुष्यनिवहेषु जिनः प्रधानः, स्वर्णाचलो गिरिवरेषु यथा वरेण्यः ।

तारागणेष्वपि यथा शशभृत् प्रशस्यः, सम्यक्त्वमेवमिह धर्मविधौ वदन्ति ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचित्तवृत्तावाख्यानकमणिकोषे सम्यक्त्वगुणवर्णनः षष्ठोऽधिकारः समाप्तः ॥६॥

यो घनलताश्यामले मलये मकरन्दवासिते उषितः । सारङ्गः सारङ्गः स किमितरे गृहे रमते ? ॥ ४५ ॥

यो गत्वोज्जयन्ते नगे नगो भवति वसति वरवत्से । स नीलगजो विकलः किं विगततरुं मरुं स्मरति ? ॥ ४६ ॥

यः प्रौढपुरन्ध्र्यां रतः प्रकामं प्रकामकामे । स किं मोहितमोरे खोरके कामे मनः करोति ? ॥ ४७ ॥

इति श्री वीरजिनेश्वरनिरुपमपदपङ्कजं नतं यैः । स हरि-हरयोः किं सुखसमूहमथनौ क्रमौ नमति ? ॥ ४८ ॥

इति यो जिनेन्द्रनिरुपमवदनामृतपानपीतनदुर्ललितः । स शेषकुनयमृतकाञ्जिकेषु न च निवृत्तिं लभते ॥ ४९ ॥

आपृच्छ्य सुलसां ततो गतोऽम्बडो निजस्थाने । सुलसापि च पर्यन्ते क्रमेण संलेखनां कृत्वा ॥ ५० ॥

स्मरन्ती वीरजिनं क्षमयन्ती सकलसत्वसङ्घातम् । गर्हन्ती दुश्चरितं प्रभणन्ती पञ्चनमस्कारम् ॥ ५१ ॥

मृत्वा गता स्वर्गे ततश्च्युत्वा भरतवर्षे । उत्पत्तिष्यति जिनेन्द्रः पञ्चदशमो निर्ममत्वजिनः ॥ ५२ ॥

॥ सुलसाऽऽख्यानकं समाप्तम् ॥ २५ ॥

यथैतै विशुद्धं सम्यक्त्वं पालितं सुगतिमूलम् । तथान्येनाप्येतत्पालयितव्यं प्रयत्नेन ॥ १ ॥

• • •

[७. जिनबिम्बदर्शनफलाधिकारः ।]

व्याख्यातं सम्यक्त्वम् । इदं च प्राप्तमपि जिनबिम्बदर्शनादेर्बोधिसद्भावाद् विशुद्धिमासादयति इत्यनेन सम्बन्धेनाऽऽयातं जिनबिम्बदर्शनं व्याख्यातुकाम आह –

जिणबिंबदंसणाओ लहुकम्मा केइ इत्थ बुज्झंति ।

जह सेज्जंभवभट्टो अद्दयकुमरो य संबुद्धा ॥ १२ ॥

व्याख्या – 'जिनबिम्बदर्शनात्' सर्वज्ञप्रतिमालोकनात् 'लघुकर्माणः' स्वल्पीभूतज्ञानावरणीयादिकर्ममलाः 'केचन' न सर्वे 'अत्र' भवे 'बुध्यन्ते' अवगततत्त्वा भवन्ति । द्रष्टान्ताभिधानायाह – 'यथा' येन प्रकारेण 'शय्यम्भवभट्ट' प्रभवसूरिशिष्य 'आर्द्रककुमारश्च' सम्बुद्धौ इति गाथाक्षरार्थः ॥ १२ ॥

भावार्थस्त्वाख्यानकाभ्यामवसेयः । ते चामू । तत्र तावदादौ शय्यम्भवभट्टाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

वीरजिणेसरदिन्नं निययपयं पालिउं सुहम्मम्मि । सिद्धिं गयम्मि तत्तो तस्स पयं जंबुणामम्मि ॥१॥

परिपालिऊण मोक्खं संपत्ते तप्पयं पभवसूरी । परिपालइ परियरिओ निरुवमगुणसाहुनियरेण ॥२॥

परगच्छ-सगच्छेसु वि निउणं पि निरिक्खियं[१] पुरिसरयणं । कत्थइ अपेच्छमाणो नियगच्छधुराधरणधवलं ॥३॥

जा उवओगं पुव्वेसु देइ ता नियइ रायगिहनयरे । पारद्धमहाजन्नं सेज्जं[२]भवमाहणं तत्तो ॥४॥

॥ शययम्भवभट्टाख्यानकम् ॥ २६ ॥

वीरजिनेश्वरदत्तं निजकपदं पालयित्वा सुधर्मणि । सिद्धिं गते ततस्तस्य पदं जम्बुनाम्नि ॥ १ ॥

परिपाल्य मोक्षं सम्प्राप्ते तत्पदं प्रभवसूरिः । परिपालयति परिकरितो निरुपमगुणसाधुनिकरेण ॥ २ ॥

परगच्छ-स्वगच्छेष्वपि निपुणमपि निरीक्षितं पुरुषरत्नम् । कुत्रचिदप्रेक्षमाणो निजगच्छधूराधरणधवलम् ॥ ३ ॥

यावदुपयोग पूर्वेषु ददाति तावत्पश्यति राजगृहनगरे । प्रारब्धमहायज्ञं शय्यंभवमाहणं ततः ॥ ४ ॥

---

१. क्खिउं पुरि० रं० । २. सिज्जंभव० रं० । एवमग्रेऽपि कथासमाप्ति यावद् ज्ञेयम् ।

सिरिरायगिहे नयरे सूरी पत्तो तओ य मज्झन्हे । संपेसइ सिक्खविउं मुणिजुयलं जन्नवाडम्मि ॥५॥

गंतुं सेज्जंभवबंभणस्स पुरओ उरालसद्देण । तुब्भेहि तिन्नि वाराओ एरिसं तत्थ भणियव्वं ॥६॥

अहो ! कष्टं (अहो ! कष्टम्) तत्त्वं न ज्ञायते ।

तो ते इच्छं ति पयंपिऊण सेज्जंभवस्स जन्नम्मि । गंतूण भणंति तयं तं सोउं चिंतइ दिओ वि ॥७॥

जंपंति सया सच्चं एए सव्वन्नुपुत्तया तत्तो । तत्तमिह किं पि अन्नं होही पुच्छामि ओज्झायं ॥८॥

तो पुट्ठो उज्झाओ वेया तत्तं परूवियं तेण । जम्हा [1]अपोरिसेया पुरिसुत्तं किर विसंवयइ ॥९॥

पुणरवि पुट्ठो तत्तं स इओ जंपइ तइज्जवाराए । संजायमहाकोवो उक्खायनिसायकरवालो ॥१०॥

जंपइ जइ न हु इण्हिं तत्तं अक्खसि तओ विणासिस्सं । तो संभंतो संतो जंपइ एरिसमुवज्झाओ ॥११॥

सच्चं पि सिरच्छे एतत्तं अक्खिज्जए त्ति तो कहइ । पुव्वा-ऽपराविरुद्धो धम्मो जिणदेसिओ तत्तं ॥१२॥

तो माहणो पयंपइ दंससु मह [2]एत्थ पच्चयं किं पि । सो जंपइ पूइज्जइ जन्नछलेणं इहं अरिहा ॥१३॥

इय भणिय जन्नखोडिं खणिउं सिरिरिसहसामिणो पडिमा । उवसंत-कंतरूवा पयासिया तस्स सो तुट्ठो ॥१४॥

पणमइ पडिमं तत्तो मुणिणो वि गया गुरूण पासम्मि । निव्वत्तिऊण जन्नं सयलं सेज्जंभवेण तओ ॥१५॥

दिण्णं च बंभणाणं दाणं तत्तो गुरूण पासम्मि । गुणसिलयचेइयम्मि पत्तो गरुयाए भत्तीए ॥१६॥

श्रीराजगृहे नगरे सूरिः प्राप्तस्ततश्च मध्याह्ने । सम्प्रेषयति शिक्षित्वा मुनियुगलं यज्ञवाटके ॥ ५ ॥

गत्वा शय्यंभवब्राह्मणस्य पुरत उदारशब्देन । युष्माभ्यांस्त्रीन् वारानेतादृशं तत्र भणितव्यम् ॥ ६ ॥

ततस्ते इच्छाम इति प्रजल्प्य शय्यंभवस्य यज्ञे । गत्वा भणन्ति तकं तत् श्रुत्वा चिन्तयति द्विजोऽपि ॥ ७ ॥

जल्पन्ति सदा सत्यमेते सर्वज्ञपुत्रकास्ततः । तत्त्वमिह किमप्यन्यद्भविष्यति पृच्छाम्युपाध्यायम् ॥ ८ ॥

तदा पृष्ट उपाध्यायो वेदास्तत्त्वं प्ररुपितं तेन । यस्मादपौरुषेया पुरुषोक्तं किल विसंवदति ॥ ९ ॥

पुनरपि पुष्टस्तत्त्वं स इतो जल्पति तृतीयवारया । सञ्जातमहाकोप उत्खातनिशीतकरवालः ॥ १० ॥

जल्पति यदि न खल्वीदानीं तत्त्वमाख्यासि ततो विनङ्क्ष्यामि । ततः सम्भ्रान्तः सन् जल्पतीदृशमुपाध्यायः ॥ ११ ॥

सत्यमपि शिरच्छेदे तत्त्वमाख्यायत इति ततः कथयति । पूर्वापराविरुद्धो धर्मो जिनदेशितस्तत्त्वम् ॥ १२ ॥

तदा माहणः प्रजल्पति दर्शय ममात्र प्रत्ययं किमपि । स जल्पति पूज्यते यज्ञच्छलेनेहार्हन् ॥ १३ ॥

इति भणित्वा यज्ञखोडि खनित्वा श्रीऋषभस्वामिनः प्रतिमा । उपशान्त-कान्तरुपा प्रकाशिता तस्य स तुष्टः ॥ १४ ॥

प्रणमति प्रतिमां ततो मुनयोऽपि गता गुरुणां पार्श्वे । निर्वर्त्त्य यज्ञं सकलं शय्यंभवेन ततः ॥ १५ ॥

दत्तं च ब्राह्मणेभ्यो दानं ततो गुरुणां पार्श्वे । गुणशिलकचैत्ये प्राप्तो गुरुकया भक्त्या ॥ १६ ॥

---

१. ओपरोसेया खं० रं० । २. इत्थ रं० ।

पणिमिय गुरुकमकमलं उवविट्ठो जोडिऊण करजुयलं । गुरुणो वि गहिरसद्देण देसणं काउमारद्धा ॥१७॥

नभस्तलतरङ्गिणीजलविलासलोला: श्रिय:, कुरङ्गनयनेक्षणभ्रमणभङ्गुरं यौवनम् ।

विलोललवलीदलालि (....) चलाचलं जीवितं, समस्तमपि गत्वरं जगति जैनधर्मं विना ॥१८॥

तत्तो सो पडिबुद्धो गुरुचरणे पममिउं भणइ एवं । जइ अत्थि जोग्गया मे ता दिक्खं देह मह भयवं ॥१९॥

तो दिक्खिओ भयवया चउदसपुव्वी कमेण संजाओ । ठविओ य पभवसूरीहिं नियपए सो महासत्तो ॥२०॥

तत्तो य पभवसूरी घेत्तूणं अणसणं समाहीए । मरिऊण समुप्पन्नो सुरालए सुंदरो अमरो ॥२१॥

सेज्जंभवसूरी वि य मुणिगणपरिवारिओ पसंतप्पा । तिहुयणगुरुणो सिरिवद्धमाणतित्थं पभाविंतो ॥२२॥

पंचविहं आयारं समायरंतो तहा परूविंतो । सम्मत्तमूलधम्मं साहूणं सावयाणं पि ॥२३॥

पडिबोहंतो सूरु व्व भवियकमलाइं[१] विहरइ महप्पा । गामा-ऽऽकर-पुर-कब्बड-मडंब-खेडाइठाणेसु ॥२४॥

एत्तो य तस्स भज्जा तं पव्वइयं सुणित्तु सयणेहिं । पुट्ठा किं पि हु उयरे तुह अत्थि ? उयाहु न हु अत्थि ? ॥२५॥

तीए पयंपियमेयं मणयं लक्खिज्जए अह कमेण । विद्धिं पत्तो गब्भो जाओ य सुओ सुहमुहुत्ते ॥२६॥

गब्भे गयम्मि एयम्मि तीए मणयं ति जंपियं आसि । ता होउ मणयनामो एसो तो तं कयं नामं ॥२७॥

जाओ पवड्ढमाणो कमेण सो अट्ठवरिसदेसीओ । अह अन्नया य जणणी पुट्ठा मह अंब ! कत्थ पिया ? ॥२८॥

तो तीए तस्स कहियं सेज्जंभवबंभणो पिया तुज्झ । पव्वइओ तं सोउं सो चिंतइ सुंदरं विहियं ॥२९॥

प्रणम्य गुरुक्रमकमलमुपविष्टो योजयित्वा करयुगलम् । गुरुणापि गम्भीरशब्देन देशनां कर्तुमारब्धा ॥ १७ ॥

ततः स प्रतिबुद्धो गुरुचरणे प्रणम्य भणत्येवम् । यद्यस्तियोग्यता मम ततो दिक्षां ददत मम भगवन् ! ॥ १९ ॥

ततो दिक्षितो भगवता चतुर्दर्शपूर्वी क्रमेण सञ्जातः । स्थापितश्च प्रभवसूरिभि र्निजपदे स महासत्त्वः ॥ २० ॥

ततश्च प्रभवसूरिर्गृहीत्वानशनं समाधिना । मृत्वा समुत्पन्नः सुरालये सुन्दरोऽमरः । ॥ २१ ॥

शय्यंभवसूरिरपि च मुनिगणपरिवारितः प्रशान्तात्मा । त्रिभुवनगुरुश्रीवर्धमानतीर्थं प्रभावयन् ॥ २२ ॥

पञ्चविधमाचारं समाचर्रंस्तथा प्ररुपयन् । सम्यक्त्वमूलधर्मं साधूनां श्रावकाणामपि ॥ २३ ॥

प्रतिबोधयन् सूर्य इव भविककमलानि विहरति महात्मा । ग्रामाऽऽकर-पुर-कर्बट-मडम्ब-खेटादिस्थानेषु ॥ २४ ॥

इतश्च तस्य भार्या तं प्रव्रजितं श्रुत्वा स्वजनैः । पृष्टा किमपि खलूदरे तवास्ति ? उदाहु न खल्वस्ति ? ॥ २५ ॥

तया प्रजल्पितमेतन्मनाक् लक्ष्यत अथ क्रमेण । वृद्धिं प्राप्तो गर्भो जातश्च सुतः शुभमुर्हूते ॥ २६ ॥

गर्भे गते एतस्मिंस्तया मनागिति जल्पितमासीत् । ततो भवतु मनकनामैष ततो तत्कृतं नाम ॥ २७ ॥

जातःप्रवर्धमानः क्रमेण सोऽष्टवर्षदेशीयः । अथान्यदा च जननी पृष्टा ममाम्ब ! कुत्र पिता ? ॥ २८ ॥

ततस्तया तस्य कथितं शय्यम्भवब्राह्मणः पिता तव । प्रव्रजितस्तत् श्रुत्वा स चिन्तयति सुन्दरं विहितम् ॥ २९ ॥

---

१. ०कमलसंडाइं विह० रं० ।

जं पव्वइओ अहमवि करेमि पव्वज्जमिइ विचिंतेउं । अकहंतो नीहरिओ गओ य चंपाए नयरीए ॥३०॥

भिक्खावेलासमए गोयरचरियं गएसु साहूसु । सूरी सरीरचिन्ताए आगओ एगगो तत्थ ॥३१॥

तो तेहिं इमो दिट्ठो दिट्ठो तेणावि सूरिणो तत्तो । जाओ महासिणेहो परप्परं ताण दुंण्हं[१] पि ॥३२॥

जओ-

नयणाइं नूण जाईसराइं वियसंति वल्लहे दिट्ठे । कमलाइं व रविकरबोहियाइं मउलंति वेसम्मि ॥३३॥

मणएण तओ पणयं कमकमलं ताण भत्तिजुत्तेण । तो सूरिणा स पुट्ठो को सि तुमं भद्द ! सो भणइ ? ॥३४॥

रायगिहे सेज्जंभवबंभणपुत्तोऽहमेत्थ संपत्तो । मह जणओ पव्वइओ तप्पासे पव्वइस्सामि ॥३५॥

तो गुरुणा भणियमिणं तुह जणओ मह सरीरसमरूवो । तो पव्वयसु तओ सो सुमुहुत्ते दिक्खिओ तेहिं ॥३६॥

एयस्स जीवियव्वं कित्तियमेत्तं ? ति जाव उवओगं । पुव्वेसु देइ सूरी तो छम्मासे नियइ तस्स ॥३७॥

उद्धरिऊणं आगमसमुद्दमज्झाओ किं पि थेवसुयं । विरएमि इमस्स जहा जायइ सिग्घं पि उवयारो ॥३८॥

जम्हा चउदसपुव्वी निज्जूहइ कारणम्मि जायम्मि । निज्जूहामि अहं पि हु कारणमेयं जओ मज्झ ॥३९॥

सो नियमा निज्जूहइ जो दसपुव्वीण होइ पच्छिमओ । इय चिंतिय सेज्जंभवसूरी निज्जूहिउं लग्गो ॥४०॥

निज्जूढा य वियालियवेलाए तओ य तस्स सत्थस्स । दसवेयालियनामं जायं भणियं च सूरीहिं ॥४१॥

यत्प्रव्रजितोऽहमपि करोमि प्रव्रज्यामिति विचिन्त्य । अकथयन्निःसृतो गतश्च चम्पायां नगर्याम् ॥ ३० ॥

भिक्षावेलासमये गोचरचर्यां गतेषु साधुषु । सूरिः शरीरचिन्तयाऽऽगत एककस्तत्र ॥ ३१ ॥

ततस्तैरयं दृष्टो दृष्टास्तेनापि सूरयस्ततः । जातो महास्नेहः परस्परं तयो र्द्वयोरपि ॥ ३२ ॥

यतः -

नयनानि नूनं जातिस्मराणि विकसन्ति वल्लभे दृष्टे । कमलानीव रविकरबोधितानि मुकुलयन्ति वेशे ॥ ३३ ॥

मनकेन ततः प्रणतं क्रमकमलं तेषां भक्तियुक्तेन । ततः सूरिणा स पृष्टः कोऽसि त्वं भद्र ! ? स भणति ॥ ३४ ॥

राजगृहे शय्यंभवब्राह्मणपुत्रोऽहमत्र सम्प्राप्तः । मम जनकः प्रव्रजितस्तत्पार्श्वे प्रव्रजिष्यामि ॥ ३५ ॥

ततो गुरुणा भणितमिदं तव जनको मम शरीरसमरुपः । ततः प्रव्रजः ततः स सुमुर्हूते दिक्षितस्तैः ॥ ३६ ॥

एतस्य जीवितव्यं कियन्मात्रमिति ? यावदुपयोगम् । पूर्वेषु ददाति सूरिस्ततः षण्मासान् पश्यति तस्य ॥ ३७ ॥

उद्धृत्यागमसमुद्रमध्यात् किमपि स्तोकश्रुतम् । विरचयाम्येतस्य यथा जायते शीघ्रमप्युपकारः ॥ ३८ ॥

यस्माच्चतुर्दशपूर्वी निर्यूहति कारणे जाते । निर्युञ्जामि अहमपि हु कारणमेतद्यतो ममः ॥ ३९ ॥

स नियमा निर्यूहतिनक्ति यो दशपूर्वी भवति पश्चिमः । इति चिन्तयित्वा शय्यंभवसूरि निर्युहितुं लग्नः ॥ ४० ॥

निर्यूढा च वैकालिकवेलायां ततश्च तस्य शास्त्रस्य । दशवैकालिकनाम जातं भणितं च सूरिभिः ॥ ४१ ॥

---

१. दोराहं रं० ।

मणगं पडुच्च सेज्जंभवेण निज्जूहिया दसऽज्झयणा । वेयालियाए ठवियं तम्हा वेयालियं नाम ॥४२॥

तत्तो छहिं मासेहिं पढिउं[1] मणओ गो य सुरलोयं । जाओ अंसुनिवाओ सूरीणमवच्चनेहेण ॥४३॥

दट्ठूण तयं सेज्जंभवाण थेराण मोहवसयाण । पुट्ठं जसभद्देणं अच्छरियमिणं जओ भणियं ॥४४॥

तुम्हारिसा वि वरपहु ! मोहपिसाएण जइ छलिज्जंति । तो साह तुमं चिय धीर ! धीरिमा कं समल्लियउ ? ॥४५॥

तत्तो कहिओ तेसिं निययविणेयाणऽवच्चसंबंधो । न उणो निवेइओ तुम्ह निज्जरा होउ एयस्स ॥४६॥

॥ सेज्जंभवाख्यानकं समाप्तम् ॥२६॥

इदानीमार्द्रककुमाराख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

सिरिरायगिहे नयरे जुंबुद्दीवु व्व सेणिओ राया । आसि गुरुगोत्त-वाहिणि-विजयालंकारपरियरिओ ॥१॥

तस्साऽभयाभिहाणो पुत्तो सुइ-सुद्धगुणसमिद्धस्स । हारस्स व मंतिगणस्स नायगो तम्मि रज्जसिरिं ॥२॥

आरोविय विसयसुहं उवभुंजइ चेल्लणा-सुनंदाहिं । राया हरो व्व सुपओहराहिं गंगा-गिरिसुयाहिं ॥३॥

एत्तो य जलहिमज्झे अद्दसम्मि अद्दयं नयरं । तत्थ य अद्दयराया रिउकरिमहणो मइंदो व्व ॥४॥

नियनयणविजियहरिणी घरिणी तस्सऽत्थि अद्दया नाम । अद्दयनामो कुमरो तीए सिरीए व्व रइनाहो ॥५॥

अह अन्नया नरिंदो उब्भडभडकोडिसंकडऽत्थाणे । करकलियकणयदंडेण दारवालेण विन्नत्तो ॥६॥

मनकं प्रतीत्य शय्यम्भवेन निर्यूढा दशाध्ययना: । वैकालिकायां स्थापितं तस्माद्वैकालिकं नाम ॥ ४२ ॥

तत: षड्भि र्मासैः पठित्वा मनको गतश्च सुरलोकम् । जातोऽश्रुनिपात: सूरीणामपत्यस्नेहेन ॥ ४३ ॥

दृष्ट्वा तकं शय्यम्भवानां स्थविराणां मोहवशगानाम् । पृष्टं यशोभद्रेणाश्चर्यमिदं यतो भणितम् ॥ ४४ ॥

युष्मादृशा अपि वरप्रभो ! मोहपिशाचेन यदि छल्यन्ते । तत: कथय त्वं चैव धीर ! धीरिमा कं समालीनातु ? ॥ ४५ ॥

तत: कथितस्तैर्निजकविनेयानामपत्यसम्बन्ध: । न पुन र्निवेदितो युष्मान्निर्जरा भवत्वेतस्य ॥ ४६ ॥

॥ शय्यंभवाख्यानकं समाप्तम् ॥ २६ ॥

आर्द्रकुमाराख्यानकम् ॥ २७ ॥

श्रीराजगृहे नगरे जम्बूद्वीप इव श्रेणिको राजा । आसीद्गुरुगोत्रवाहिनिविजयालङ्कारपरिकरित: ॥ १ ॥

तस्याभयाभिधान: पुत्र श्रुतिशुद्धगुणसमृद्धस्य । हारस्येव मन्त्रिगणस्य नायकस्तस्मिन् राज्यश्रियम् ॥ २ ॥

आरोप्य विषयसुखमुपभुनक्ति चेल्लणा-सुनन्दाभ्याम् । राजा हर इव सुपयोधराभ्यां गङ्गा-गिरिसुताभ्याम् ॥ ३ ॥

इतश्चजलधिमध्ये आर्द्रकदेशे आर्द्रकं नगरम् । तत्र चार्द्रकराजा रिपुकरिमथनो मृगेन्द्र इव ॥ ४ ॥

निजनयनविजितहरणी गृहिणी तस्यास्त्यार्द्रका नाम । आर्द्रकनाम कुमारस्तस्या: श्रिया इव रतिनाथ: ॥ ५ ॥

अथान्यदा नरेन्द्र उद्भटभटकोटिसंकटास्थाने । करकलितकनकदण्डेन द्वारपालेन विज्ञप्त: ॥ ६ ॥

---

१. पढियं रं० ।

देव ! दुवारे सेणियमंती तुह चरणदंसणं महइ । संजाओ से हरिसो पुलएण समं इमं सोउं ॥७॥
भद्द ! पवेसय सिग्घं ति जंपिए सो पवेसिओ तेण । नरनाहचरणकमलं पणमिय उवणेइ तो मंती ॥८॥
कंबल-सोवच्चल-निंबपत्त-बरवत्थपभिइ कोसल्लं । तो संतुट्ठो राया सेणियकुसलं पपुच्छेउं ॥९॥
पभणइ को एयारिसमहग्घमोल्लाणि मज्झ वत्थूणि । मोत्तुं सेणियनिवइं पेसइ ? तो अद्दयकुमारो ॥१०॥
जंपइ को देव ! इमो सेणियराओ ? त्ति भणइ तो राया । वच्छ ! न याणसि मगहामंडलसामिं महारायं ? ॥११॥
अम्हाण तेण सद्धिं नेहो नियकुलकमागओ तत्तो । अद्दयकुमरो पुच्छइ सेणियमंतिं जहा तस्स ॥१२॥
सेणियनिवस्स कुमरो रज्जमहाभरधुराधरणधीरो । अत्थि ? त्ति तओ मंती पभणइ किं न हु तए नाओ ? ॥१३॥
बंधुरबुद्धिसमिद्धो धरणिपसिद्धो सुधम्मसद्धालू । धीरो वीरजिणेसरकमकमले रायहंसो व्व ॥१४॥
इच्चाइगुणगणजुओ अभयकुमारो त्ति तस्स वरकुमरो । तत्तो अद्दयकुमरो नरेसरं भणइ सपणामो ॥१५॥
ताय ! जहा तुम्हाणं नेहो अवरोप्परं तहऽम्हे वि । इच्छामो तो जंपइ नरेसरो पुत्त ! जुत्तमिणं ॥१६॥
पालिज्जइ निच्चं पि हु नियपुरिसपरंपरागओ नेहो । वच्छ ! जओ गुरुएहिं वि सुहासियं एरिसं भणियं ॥१७॥
उड्डइ सणियं सणियं वंसे संचरई गाढमणुलग्गो । थेरो व्व सुयणनेहो न वि भज्जइ बिउणओ होइ ॥१८॥
ते धन्ना सप्पुरिसा जाण सिणेहो अभिन्नमुहराओ । अणुदियहवड्ढमाणो रिणं व पुत्तेसु संकमइ ॥१९॥

देव ! द्वारे श्रेणिकमन्त्री तव चरणदर्शनं काङ्क्षति । सञ्जातस्तस्य हर्षः पुलकेन सममिदं श्रुत्वा ॥ ७ ॥
भद्र ! प्रवेशय शीघ्रमिति जल्पिते स प्रवेशितस्तेन । नरनाथचरणकमलं प्रणम्योपनयति तदा मन्त्री ॥ ८ ॥
कम्बल-सोवञ्चल-नींबपत्र-वरवस्त्रप्रभृतिकौशल्यम्[१] । ततः सन्तुष्टो राजा श्रेणिककुशलं प्रपृच्छय ॥ ९ ॥
प्रभणति न एतादृशमहार्घ्यमूल्यानि मम वस्तूनि । मुक्त्वा श्रेणिकनृपतिं प्रैषयति ? तत आर्द्रककुमारः ॥ १० ॥
जल्पति को देव ! अयं श्रेणिकराजा ? इति भणति ततो राजा । वत्स ! न जानासि मगधमहामण्डलस्वामिनं महाराजानम् ? ॥ ११ ॥
अस्माकं तेन सार्द्धं स्नेहो निजकुलक्रमागतस्ततः । आर्द्रककुमारः पृच्छति श्रेणिकमन्त्रि यथा तस्य ॥ १२ ॥
श्रेणिकनृपस्य कुमारो राज्यमहाभारधुराधरणधीरः । अस्तीति ? ततो मन्त्री प्रभणति किं न खलु त्वया ज्ञातः ? ॥ १३ ॥
बन्धुरबुद्धिसमृद्धो धरणिप्रसिद्धः सुधर्मश्रद्धालुः । धीरो वीरजिनेश्वरक्रमकमले राजहंस इव ॥ १४ ॥
इत्यादिगुणगणयुतोऽभयकुमार इति तस्य वरकुमारः । तत आर्द्रककुमारो नरेश्वरं भणति सप्रणामः ॥ १५ ॥
तात ! यथा युष्माकं स्नेहः परस्परं तथावयोरपि । इच्छावः तदा जल्पति नरेश्वरः पुत्र ! युक्तमिदम् ॥ १६ ॥
पाल्यते नित्यमपि खलु निजपुरुषपरम्परागतः स्नेहः । वत्स ! यतो गुरुभिरपि सुभाषितमीदृशं भणितम् ॥ १७ ॥
उत्तिष्ठति शनैः शनैः वंशे सञ्चरति गाढमनुलग्नः । स्थविर इव स्वजनस्नेहो नापि भनक्ति द्विगुणको भवति ॥ १८ ॥
ते धन्याः सत्पुरुषा येषां स्नेहोऽभिन्नमुखरागः । अनुदिवसवर्धमानर्णमिव पुत्रेषु सङ्क्रामति ॥ १९ ॥

---

१. उपहार इत्यर्थः

तो कुमरेण अमच्चो भणिओ ताओ जया विसज्जेइ । तइया मह मिलियव्वं एवं ति तओ भणइ मंती ॥२०॥
अह अन्नदिणे सम्माणिऊण मंतिं निवो समप्पेइ । सिरिखंड-रयण-विद्दुम-कप्पूरप्पभिइ कोसल्लं ॥२१॥
तत्तो विसज्जिओ सो निवेण नियपवरपुरिसपरियरिओ । पत्तो कुमरसयासे तेण वि सम्माणिओ सम्मं ॥२२॥
वज्जिदनील-मरगय-मुत्ताहलपमुहरायरयणाणि । अभयकुमारनिमित्तं समप्पिऊणं इमं भणिओ ॥२३॥
मज्झ वयणेण अभओ भणियव्वो जह तए समं पीइं । काउं वंछइ अद्दयकुमरो त्ति तओ विसज्जेइ ॥२४॥
अणवरयपयाणेहिं संपत्तो सो पुरम्मि रायगिहे । पडिहारकयपवेसो पणमइ नरनाहमत्थाणे ॥२५॥
तो अद्दयनिवइनरेहिं राइणो ढोयणीयमुवणीयं । अभयकुमारस्स पुणो अद्दयकुमरस्स रयणाणि ॥२६॥
तत्तो दट्ठुं रयणाणि रायपमुहो असेससामंता । विम्हियहियया जाया कहंति तो ते कयपणामा ॥२७॥
अद्दयकुमारपेसियपाहुडयं अभयमंतितिलयस्स । तं सोउं जिणवयणामलमइणा चिंतियं तेण ॥२८॥
नूणं ईसिविराहियसामन्नोऽणारियम्मि उप्पन्नो । कोवि इमो लहुकम्मो ता[1] होही सिद्धिपुरगामी ॥२९॥
वंछइ पीइं काउं मए समाणं तओ इमो नियमा । ता परमबंधवत्तं पडिबोहिय तं पयासेमि ॥३०॥
जओ-
भव[2]गिहमज्झम्मि पमायजलणजलियम्मि मोहनिद्दाए । उट्ठवइ जो सुयंतं सो तस्स जणो परमबंधू ॥३१॥

ततः कुमारेणामात्यो भणितस्तातो यदा विसर्जयति । तदा मम मिलितव्यमेवमिति ततो भणति मन्त्री ॥ २० ॥
अथान्यदिने सन्मान्य मन्त्रि नृपः समर्पयति । श्रीखण्ड-रत्न-विद्रुम-कर्पूरप्रभृति कौशल्यम् ॥ २१ ॥
ततो विसर्जितः स नृपेण निजप्रवरपुरुषपरिकरितः । प्राप्तः कुमारसकाशे तेनापि सन्मानितः सम्यक् ॥ २२ ॥
वज्रेन्द्रनील-मरकत-मुक्ताफलप्रमुखराजरत्नानि । अभयकुमारनिमित्तं समर्प्येदं भणितः ॥ २३ ॥
मम वचनेनाभयो भणितव्यो यथा त्वया समं प्रीतिम् । कर्तुं वाञ्छत्यार्दककुमार इति ततो विसर्जति ॥ २४ ॥
अनवरतप्रयाणैः सम्प्राप्तः सः पुरे राजगृहे । प्रतिहारकृतप्रवेशः प्रणमति नरनाथमास्थाने ॥ २५ ॥
तत आर्द्रकनृपतिनरै राज्ञे ढौकनीयमुपनीतम् । अभयकुमारस्य पुनरार्द्रककुमारस्य रत्नानि ॥ २६ ॥
ततो दृष्ट्वा रत्नानि राजप्रमुखा अशेषसामन्ताः । विस्मितहृदया जाताः कथयन्ति तदा ते कृतप्रणामाः ॥ २७ ॥
आर्द्रककुमारप्रेषितप्राभृतकमभयमन्त्रितिलकस्य । तत् श्रुत्वा जिनवचनामलमतिना चिन्तितं तेन ॥ २८ ॥
नूनमिषद्विराधितश्रामण्योऽनार्ये उत्पन्नः । कोऽप्ययं लघुकर्म तावद्भविष्यति सिद्धिपुरगामी ॥ २९ ॥
वाञ्छति प्रीतिं कर्तुं मया समानं ततोऽयं नियमा । ततः परमबान्धवत्वं प्रतिबोध्य तं प्रकाशयामि ॥ ३० ॥
यतः -
भवगृहमध्ये प्रमादज्वलनज्वलिते मोहनिद्रायाः । उत्थापयति यः स्वपन्तं स तस्य जनः परमबन्धुः ॥ ३१ ॥

---

१. ता सेद्धी सिद्धि० खं० । ता सेई सिद्धि० रं० । २. भवगयम० खं० रं० ।

ता मा कयाइ जिणबिंबदंसणे जायजाइसरणो सो । पडिबुज्जइ इय चिंतिय कारावइ सव्वरयणमयं ।।३२।।

उवसंतकंतरूवं पडिमं सिरिरिसहनाहदेवस्स । संगोविउं समुग्गे मंजूसामज्झायारम्मि ।।३३।।

धूयकडच्छुय-घंटिय-आरत्तिय-मंगलप्पईवाइ । पक्खिविय तत्थ तालं दाउं मुद्दइ तओ अभओ ।।३४।।

राएण जया अद्दयनरिंदपुरिसा विसज्जिया दाउं । कोसल्लं उवणीया तइया अभएण मंजूसा ।।३५।।

भणियं च जहा अद्दयकुमरेणेगागिणा तहेगंते । एसा निरिक्खियव्व त्ति जंपिउं ताण सम्माणं ।।३६।।

काउं विसज्जिया ते पत्ता य कमेण अद्दए नयरे । काउं पुव्वकमेणं जहोचियं तो कुमारगिहे ।।३७।।

कहियं सव्वं पि जहा संदिट्ठं अभयमंतिणा तस्स । तत्तो अद्दयकुमरो गंतुं भवणस्स मज्झम्मि ।।३८।।

पिहिउं भवणकवाडे उग्घाडइ जा तयं स मंजूसं । ताव पहापडलेणं पराभवंती तरणिबिंबं ।।३९।।

दिट्ठा जिणिंदपडिमा तत्तो अच्चब्भुयं तयं दट्ठुं । विम्हियहियओ चिंतइ अहो वराभरणमेयं ति ।।४०।।

ता किं नियसिरकमले ? अहवा कंठे ? उयाहु वच्छयले ? । अहव भुए ? अह चरणे परिहेमि ? न किं पि जाणामि ।।४१।।

किंतु इमं किं पि मए कत्थ वि दिट्ठं सुयं व पडिहाइ । इय ईहापोहपरस्स जाइसरणे समुप्पन्नं ।।४२।।

मुच्छानिमिलियनेत्तो धस त्ति महिमंडले गओ कुमरो । गिहभित्तिमत्तवारणपवणेण सचेयणो जाओ ।।४३।।

पेच्छइ य जाइसरणेण नियभवे जह इओ तइज्जभवे । गामे वसंतपुरए आसि कुडुंबी जणपसिद्धो ।।४४।।

ततो मा कदाचिज्जिनबिम्बदर्शने जातजातिस्मरण: स: । प्रतिबुध्यत इति चिन्तयित्वा कारयति सर्वरत्नमयाम् ।। ३२ ।।

उपशान्तकान्तरुपां प्रतिमां श्रीऋषभनाथदेवस्य । संगोप्य समुद्गके मञ्जूषामध्ये ।। ३३ ।।

धूप-कडच्छुय-घण्टिकारात्रिक-मङ्गलप्रदिपादय: । प्रक्षिप्य तत्र तालकं दत्वा मुद्राति ततोऽभय: ।। ३४ ।।

राज्ञा यदाऽऽर्द्रकनरेन्द्रपुरुषा विसर्जिता दत्वा । कौशल्यमुपनीतास्तदाभयेन मञ्जूषा ।। ३५ ।।

भणितं च यथार्द्रककुमारेणैकाकिना तथैकान्ते । एषा निरीक्षितव्येति जल्पित्वा तेषां सन्मानम् ।। ३६ ।।

कृत्वा विसर्जितास्ते प्राप्ताश्च क्रमेणार्द्रके नगरे । कृत्वा पूर्वक्रमेण यथोचितं तत: कुमारगृहे ।। ३७ ।।

कथितं सर्वमपि यथा संदिश्याभयमन्त्रिणा तस्य । तत आर्द्रककुमारो गत्वा भवनस्य मध्ये ।। ३८ ।।

पिधाय भवनकपाटानुद्धाटयति यावत्तकं स मञ्जूषाम् । तावत्प्रभापटलेन पराभवन्ती तरणिबिम्बम् ।। ३९ ।।

दृष्टा जिनेन्द्रप्रतिमा तत आश्चर्यभूतं तकं दृष्ट्वा । विस्मितहृदयश्चिन्तयत्यहो ! वराभरणमेतदिति ।। ४० ।।

तत: किं निजशिर:कमले? अथवा कण्ठे? उदाहु वक्ष: स्थले? । अथवा भूजे? अथ चरणे परिदधामि ? न किमपि जानामि ।।४१।।

किन्त्विदं किमपि मया कुत्रापि दृष्टं श्रुतं वा प्रतिभाति । इतीहापोहपरस्य जातिस्मरणं समुत्पन्नम् ।। ४२ ।।

मूर्च्छानिमिलितनेत्रो धसेति महिमण्डले गत: कुमार: । गृहभित्तिमत्तवारणपवनेन सचेतनो जात: ।। ४३ ।।

पश्यति च जातिस्मरणेन निजभवान् यथेतस्तृतीयभवे । ग्रामे वसन्तपुरक आसीत्कुटुम्बी जनप्रसिद्ध: ।। ४४ ।।

---

१. इय ऊहा० रं० ।

सामाइउ त्ति नामेण बंधुरा पणइणी वि बंधुमई । अह सकलत्तो सुत्थियसूरिसयासम्मि पव्वइओ ॥४५॥
अब्भसियदुविहसिक्खो विहरिय संविग्गसाहुजणजुत्तो । पत्तो कम्मि वि नयरे समागया साहुणी वि तहिं ॥४६॥
दट्ठूणं बंधुमई तीए समं पुव्वकीलियं सरिउं । जाओ मे अणुराओ कहिओ य दुइज्जसाहुस्स ॥४७॥
तेण वि पवत्तिणीए कहिओ तीए वि बंधुमइए वि । एसा तओ विचिंतइ अहो ! महामोहमूढत्तं ॥४८॥
जइ एरिसो वि संविग्गमाणसो मुणियसयलसुत्तत्थो । एयारिसं विचिंतइ मुणिवरसरणिं परिच्चइउं ॥४९॥
ता जाव बलक्कारेण कुणइ न हु सीलखंडणं मज्झ । अक्खंडियसीलवया पाणे हं ता परिचयामि ॥५०॥
उक्तंच-
वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनं, न चापि भग्नं चिरसञ्चितं व्रतम् ।
वरं हि मृत्युः सुविशुद्धकर्मणो, न चापि शीलस्खलितस्य जीवितम् ॥५१॥
इय चिंतिउं पवत्तिणिपासे घेत्तूण अणसणं अज्जा । उब्बंधिय मरिऊण उववन्ना देवलोगम्मि ॥५२॥
अहमवि एयं नाउं एसा एवं मय त्ति सविसाओ । अइयारमणालोइय कयसन्नासो मरेऊण ॥५३॥
भासुरसरीरधारी जाओ अमरोऽमरालए तत्तो । दुच्चिंतियमेत्तेण वि उप्पन्नोऽणारिए देसे ॥५४॥
पडिबोहिओ य अहयं अभएणं परमबंधुणा इण्हिं । संपेसिय रयणमयं पडिमं सिरिरिसिंहसामिस्स[1] ॥५५॥
ता एस परममित्तो परमगुरू परमबंधवो मज्झ । जेण अणारियदेसे एवं उप्पाइया बोही ॥५६॥
ता तत्थ इओ गंतु आरियदेसे करेमि जिणधम्मं । पेच्छामि अभयकुमरं ति चिंतिऊणं समुट्ठेइ ॥५७॥

सामायिक इति नाम्ना बन्धूरा प्रणयिन्यपि बन्धुमती । अथ सकलत्रः सुस्थितसूरिसकाशे प्रव्रजितः ॥ ४५ ॥
अभ्यासितद्विविधशिक्षो विहृत्य संविग्नसाधुजनयुक्तः । प्राप्तः कस्मिन्नपि नगरे समागता साध्वी अपि तत्र ॥ ४६ ॥
दृष्ट्वा बन्धुमतीं तस्याः समं पूर्वक्रीडितं स्मृत्वा । जातो मे ऽनुरागः कथितश्च द्वितीयसाधोः ॥ ४७ ॥
तेनापि प्रवर्त्तिन्याः कथितस्तयापि बन्धुमत्या अपि । एषा ततो विचिन्तयत्यहो ! महामोहमूढत्वम् ॥ ४८ ॥
यदीदृशोऽपि संविग्नमानसो मुणितसकलसूत्रार्थः । एतादृशं विचिन्तयति मुनिवरसरणिं परित्यज्य ॥ ४९ ॥
ततो यावद्बलात्कारेण करोति न खलु शीलखण्डनं मम । अखण्डितशीलव्रता प्राणानहं तावत्परित्यजामि ॥ ५० ॥
इति चिन्तयित्वा प्रवर्तिनिपार्श्वे गृहीत्वानशनमार्या । उद्बध्य मृत्वोत्पन्ना देवलोके ॥ ५२ ॥
अहमप्येतज्ज्ञात्वैषैवं मृतेति सविषादः । अतिचारमनालोच्य कृतसंन्यासो मृत्वा ॥ ५३ ॥
भासुरशरीरधारी जातोऽमरोऽमरालये ततः । दुश्चिन्तितमात्रेणाप्युत्पन्नोऽनार्ये देशे ॥ ५४ ॥
प्रतिबोधितश्चाहमभयेनपरमबन्धुनेदानीम् । सम्प्रेष्य रत्नमयां प्रतिमां श्रीऋषभस्वामिनः ॥ ५५ ॥
तत एष परममित्रः परमगुरुः परमबन्धु र्मम । येनानार्यदेश एवमुत्पादिता बोधिः ॥ ५६ ॥
ततस्तत्रेतो गत्वार्यदेशे करोमि जिनधर्मम् । पश्याम्यभयकुमारमिति चिन्तयित्वा समुत्तिष्ठति ॥ ५७ ॥

---

१. ०रिसहनाहस्स रं० ।

घेत्तूण सुरहिपुप्फप्पभिई पूओवगरणमइरम्मं । विरइयपडिमापूओ तओ गओ रायअत्थाणे ॥५८॥

विन्नवइ कयपणामो देव ! सिणेहोऽभएण सह मज्झं । जाओ तो ताय ! अहं पलोइउं तं समीहेमि ॥५९॥

भणिओ तओ नरिंदेण वच्छ ! अम्हाण तेहिं सह नेहो । अद्दंसणेण निच्चं ता तत्थ तए न गंतव्वं ॥६०॥

तयणंतरं कुमारो साममुहो चत्तसयलसिंगारो । गमणेक्कमणो दिट्ठो अह अन्नदिणे नरिंदेण ॥६१॥

नायं च जहा एसो नियमेण गमिस्सइ त्ति एगंते । भणइ तओ पंचसए सामंताणं जहा कुमरो ॥६२॥

तुम्हाणमुवरि जइ एस जाइ तत्तो समग्गसामंता । वच्चंति कुमरपासं जीवस्स व सुकय-दुकियाइं ॥६३॥

नायं च कुमारेणं एए मह रक्खणे नरिंदेण । आउट्ठा ता कहवि हु वंचिय नियमेण गच्छिस्सं ॥६४॥

तो तुरयवाहियाली पारद्धा तेण ताण छलणत्थं । वज्जइ दूरे कुमरो सिग्घतुरंगेण ते चइउं ॥६५॥

अणुवासरं पि एवं दूरे गंतुं समेइ उस्सरे । इयरे पुण परिसंता वणसंडेसुं विलंबंति ॥६६॥

अह अन्नया कुमारो पडिमं रयणाणि जाणवत्तम्मि । पुव्वं चडाविऊणं पच्छा सयमेव आरुहिउं ॥६७॥

पत्तो आरियदेसे पेसइ सिरिरिसहपडिममभयस्स । कारियजिणिंदमहिमो पव्वइउमणो महासत्तो ॥६८॥

कयपंचामुट्ठिलोओ पभणइ सामाइयं इमो जाव । तो आगासे ठाउं भणियमिणं देवयाए जहा ॥६९॥

मा गिण्हसु पव्वज्जं भोगफलं कम्ममत्थि तुह भद्द ! । किं काही मह कम्मं ? ति जंपिउं गहियपव्वज्जो ॥७०॥

गामा-ऽऽगर-नगर-मडंब-खेड-कव्बडसुसंकडं वसुहं । विहरंतो संपत्तो कमेण नयरे वसंतपुरे ॥७१॥

गृहीत्वा सुरभिपुष्पप्रभृतिपूजोपकरणमतिरम्यम् । विरचितप्रतिमापूजस्ततो गतो राजास्थाने ॥ ५८ ॥

विज्ञापयति कृतप्रणामो देव ! स्नेहोऽभयेन सह मम । जातस्ततस्तात ! अहं प्रलोकितुं तं समीहे ॥ ५९ ॥

भणितस्ततो नरेन्द्रेण वत्स ! अस्माकं तैः सह स्नेहः । अदर्शनेन नित्यं ततस्तत्र त्वया न गन्तव्यम् ॥ ६० ॥

तदनन्तरं कुमारः श्याममुखस्त्यक्तसकलशृङ्गारः । गमनैकमना दृष्टोऽथान्यदिने नरेन्द्रेण ॥ ६१ ॥

ज्ञातं च यथैष नियमेन गमिष्यतीत्येकान्ते । भणति ततः पञ्चशतान् सामन्तानां यथा कुमारः ॥ ६२ ॥

युष्माकमुपरि यद्येष याति ततः समग्रसामन्ताः । व्रजन्ति कुमारपार्श्वं जीवस्येव सुकृत-दुष्कृतानि ॥ ६३ ॥

ज्ञातं च कुमारेणैते मम रक्षणे नरेन्द्रेण । आदिष्टास्ततः कथमपि खलु वञ्चयित्वा नियमेन गमिष्यामि ॥ ६४ ॥

ततस्तुरगवाह्याली प्रारब्धा तेन तेषां छलनार्थम् । व्रजति दूरे कुमारः शीघ्रं तुरङ्गेण तान् त्यक्त्वा ॥ ६५ ॥

अनुवासरमप्येवं दूरे गत्वा समैत्युत्सूरे । इतरे पुनः परिश्रान्ता वनखण्डेषु विलम्बयन्ति ॥ ६६ ॥

अथान्यदा कुमारः प्रतिमां रत्नानि यानपात्रे । पूर्वमारोह्य पश्चात्स्वयमेवारुहय ॥ ६७ ॥

प्राप्त आर्यदेशे प्रेषति श्रीऋषभप्रतिमामभयस्य । कारितजिनेन्द्रमहिमा प्रव्रजितुमना महासत्त्वः ॥ ६८ ॥

कृतपञ्चमुष्टिलोचः प्रभणति सामायिकमयं यावत् । तदाकाशे स्थित्वा भणितमिदं देवतया यथा ॥ ६९ ॥

मा गृहाण प्रव्रज्यां भोगफलं कर्मास्ति तव भद्र ! । किं करिष्यति मम कर्म ? इति जल्पित्वा गृहीतप्रव्रज्यः ॥ ७० ॥

ग्रामाकर-नगर-मडम्ब-खेट-कर्बट-सुसङ्कटां वसुधाम् । विहरन् सम्प्राप्तः क्रमेण नगरे वसन्तपुरे ॥ ७१ ॥

कम्मि वि देवाययणे काउस्सग्गेण संठिओ तत्थ । एत्तो य देवलोगाओ पुव्वभवभारिया तस्स ।।७२।।
बंधुमई चविऊणं उप्पन्ना देवदत्तसेट्ठिस्स । धणवइपणइणिकुच्छिंसि दारिया सिरिमई नाम ।।७३।।
पुरबालियाहिं सद्धिं समागया सा वि तम्मि देवउले । पइवरणेहिं कीलिउमारद्धा तयणु अवराहिं ।।७४।।
वरिया अवरकुमारा साहू पुण सिरिमईए ता देवी । जंपइ गयणयलठिया अहो ! सुवरियं सुवरियं ति ।।७५।।
गज्जि काउं गयणंगणाओ विप्फुरियकिरणरयणाणं । जाया वुट्ठी तत्तो संभंता बालिया नट्ठा ।।७६।।
अइघोरगज्जिभीया गंतूणं सिरिमई मुणिंदस्स । कमकमलम्मि विलग्गा अहोऽणुकूलो ममुवसग्गो ।।७७।।
इय चिंतिउं मुणिंदो अन्नत्थ गओ इओ य नरनाहो । सुणिऊण रयणवुट्ठिं आगंतुं गिण्हए जाव ।।७८।।
ता फुंक्कार[1]करालासमुट्ठिया कालदारुणा कसिणा । वियडफडाडोय[2]जुया फणिणो विसजलणकणभीमा ।।७९।।
तो देवयाए गयणे भणियं वरणम्मि बालियाए मए । दिन्नं दविणं तत्तो संगहियं तीए जणएण ।।८०।।
आगच्छंति अणुदिणं वरया तो तीए पुच्छिओ जणओ । ताय ! किमेए सो भणइ तुज्झ वरया इमे वच्छे ! ।।८१।।
ताय न जुत्तं उत्तमवंसुब्भवसुपुरिसाण सा भणइ । एगस्स सुयं दाउं दिज्जइ जं सा दुइज्जस्स ।।८२।।
नीतावप्युक्तम्-
सकृज्जल्पन्ति राजानः, सकृज्जल्पन्ति साधवः । सकृत् कन्यां प्रदीयन्ते, त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ।।८३।।
दिन्ना य अहं तुब्भेहिं तस्स तइया जया दविणनियरो । देवीदिन्नो गहिओ ता ताय ! वरेसि कहमन्नं ? ।।८४।।
सो च्चिय गइ इहभवे भवंतरे मह मयाए सो चेव । तो भणइ तीए जणओ पुत्ति ! कहं तं वियाणेसि ? ।।८५।।

कस्मिन्नपि देवतायतने कार्योत्सर्गेन संस्थितस्तत्र । इतश्च देवलोकात् पूर्वभवभार्या तस्य ॥ ७२ ॥
बन्धुमती च्युत्वोत्पन्ना देवदत्तं श्रेष्ठिनः । धनवती प्रणयिनिकुक्षौ दारिका श्रीमती नामा ॥ ७३ ॥
पुरबालिकाभिः सार्धं समागता सापि तस्मिन्देवकुले । पतिवरणैः क्रीडितुमारब्धा तदन्वपराभिः ॥ ७४ ॥
वृता अपरकुमाराः साधुः पुनः श्रीमत्या ततो देवी । जल्पति गगनतलस्थिताहो ! सुवृत्तं सुवृतमिति ॥ ७५ ॥
गर्जि कृत्वा गगनाङ्गनाद्विस्फुरितकिरणरत्नानाम् । जाता वृष्टिस्ततः सम्भ्रान्ता बालिका नष्टा ॥ ७६ ॥
अतिघोरगर्जिभीता गत्वा श्रीमती मुनीन्द्रस्य । कमकमले विलग्नाऽहोऽनुकूलो ममोपसर्गः ॥ ७७ ॥
इति चिन्तयित्वा मुनीन्द्रोऽन्यत्र गत इतश्च नरनाथः । श्रुत्वा रत्नवृष्टिमागत्य गृह्णाति यावत् ॥ ७८ ॥
तावत्फुत्कारकरालाः समुत्थिताः कालदारुणाः कृष्णाः । विकटफटाटोपयुताः फणिनो विषज्वलवनकणभीमाः ॥ ७९ ॥
ततो देवतया गगने भणितं वरणे बालिकाया मया । दत्तं द्रविणं ततः सङ्गृहीतं तस्या जनकेन ॥ ८० ॥
आगच्छन्त्यनुदिनं वरकास्ततस्तया पृष्टो जनकः । तात ! किमेते स भणति तव वरका इमे वत्से ! ॥ ८१ ॥
तात ! न युक्तमुत्तमवंशोद्भवसुपुरुषाणां सा भणति । एकस्य सुतां दत्वा दीयते यत्सा द्वितीयस्य ॥ ८२ ॥
दत्ता चाहं युष्माभिस्तस्य तदा यदा द्रविणनिकरः । देवीदत्तो गृहीत ततस्तात ! वरषि[3] कथमन्यम् ? ॥ ८४ ॥
स एव गतिरिहभवे भवान्तरे मम मृतायाः स चैव । तदा भणति तस्या जनकः पुत्रि ! कथं तं विजानासि ? ॥ ८५ ॥

---

१. वुक्कार० खं० रं० । २. डोवजुया रं० । ३. वरना - पसंद करना ।

भणियं च तीए तइया भीयाए गहिरगज्जिसद्दाओ । तक्कमकमले लग्गाए एरिसं लंछणं दिट्ठं ॥८६॥
तेण वियाणेमि तयं तो भणियं सेट्ठिणा तुमं वच्छे ! । भिक्खयराणं दाणं वियरसु मा सो वि कइया वि ॥८७॥
महिमंडलं भमंतो आगच्छइ सा पयंपए एवं । एत्तो य दुवालसवच्छरम्मि भवियव्वयवसेण ॥८८॥
दिसिमोहिओ समाणो संपत्तो तत्थ अद्दयमुणिंदो । परियाणिओ य तीए तओ इमं भणिउमाढत्ता ॥८९॥
हा नाह ! ममं मोत्तुं दुहियं तं कत्थ एत्तियं कालं ? । परिभमिओ मणवल्लह ! मज्झ मणं तं हरेऊण ॥९०॥
पियवरणदिणप्पभिई, संजाओ जाव एत्तियं कालं । मणयं पि न मज्झ मणे मणोरहो वि य वरे अवरे ॥९१॥
ता सामि ! मयणमग्गणजलणेणुत्तावियं मह सरीरं । इण्हिं तु नियसंगमसीयलसलिलेण निव्ववसु ॥९२॥
सोऊण तयं सेट्ठी समगओ नरवई वि वाहरिओ । पणमिय मुणिकमकमलं भणियमिणं तो नरिंदेण ॥९३॥
सुपुरिस ! भणिया वि इमा न कुणइ सुविणे वि अवरपरिणयणं । जंपइ एरिसवयणं न मणं मह रमइ अन्नत्थ ॥९४॥
भणइ य मज्झ सरीरे लग्गइ सो सिरिसकुसुमसुकुमालो । अहवा पज्जलिकरालजालमालो चियाजलणो ॥९५॥
तो पडिवज्जसु संपइ पाणिग्गहणं इमाए अणुकंपं । काऊण तओ अद्दयमुणीसरो चिंतए एवं ॥९६॥
एयं तं भोगफलं समागयं देवयाए जं कहियं । ता एयस्स न नासो जायइ एवं विचिंतेउं ॥९७॥
तेसिं च निबंधेणं परिणीया तेण तयणु तीए समं । पंचप्पयारविसए विलसइ अह अन्नसमयम्मि ॥९८॥
संजाओ से पुत्तो पवड्ढिओ जाव कइवि वरिसाइं । तो तेण इमा भणिया तुह एस दुइज्जओ होही ॥९९॥

भणितं च तथा तदा भीतया गम्भीरगर्जिशब्दात् । तत्क्रमकमले लग्नयेदृशं लाञ्छनं दृष्टम् ॥ ८६ ॥
तेन विजानामि तकं तदा भणितं श्रेष्ठिना त्वं वत्से ! । भिक्षाचराणां दानं वितर मा सोऽपि कदापि ॥ ८७ ॥
महिमण्डलं भ्रमन्नागच्छति सा प्रजल्पत्येवम् । इतश्च द्वादशवर्षे भवितव्यतावशेन ॥ ८८ ॥
दिङ्मोहितस्सन् सम्प्राप्तस्तत्रार्द्रकमुनीन्द्रः । परिजानीतश्च तया तत इदं भणितुमारब्धा ॥ ८९ ॥
हा नाथ ! मां मुक्त्वा दुःखितां त्वं कुत्रैतावन्तं कालम् ? । परिभ्रान्तो मनोवल्लभ ! मम मनस्त्वं हृत्वा ॥ ९० ॥
प्रियवरणदिनप्रभृति सञ्जातो यावदेतावन्तं कालम् । मनागपि न मम मनसि मनोरथोऽपि च वरेऽपरे ॥ ९१ ॥
ततः स्वामिन् ! मदनमार्गणज्वलनेनुत्तापितं मम शरीरम् । इदानीं तु निजकसङ्गमशीतलसलिलेन निर्वापय ॥ ९२ ॥
श्रुत्वा तकं श्रेष्ठी समागतो नरपतिरपि व्याहृतः । प्रणम्य मुनिक्रमकमलं भणितमिदं ततो नरेन्द्रेण ॥ ९३ ॥
सुपुरुष ! भणितापीमा न करोति स्वप्ने ऽप्यपरपरिणयनम् । जल्पतीदृशवचनं न मनो मम रमतेऽन्यत्र ॥ ९४ ॥
भणति च मम शरीरे लगति स शिरीषकुसुमसुकुमालः । अथवा प्रज्वलित करालज्वालामालश्चिताज्वलनः ॥ ९५ ॥
ततः प्रतिपद्यस्व सम्प्रति पाणिग्रहणमेतस्यामनुकम्पाम् । कृत्वा तत आर्द्रकमुनीश्वरश्चिन्तयत्येवम् ॥ ९६ ॥
एतत्तं भोगफलं समागतं देवतया यत्कथितम् । तत एतस्य न नाशो जायत्येवं विचिन्त्य ॥ ९७ ॥
तेषां च निर्बन्धेन परिणीता तेन तदनु तस्याः समम् । पञ्चप्रकारविषयान् विलसत्यथान्यसमये ॥ ९८ ॥
सञ्जातस्तस्य पुत्रः प्रवर्धितो यावत्कत्यपि वर्षाणि । तदा तेनेमा भणिता तवैष द्वितीयो भविष्यति ॥ ९९ ॥

पव्वज्जामि अहं तो तज्जाया जायजाणणनिमित्तं । चत्तं गहाय कत्तिउमारद्धा तो सुएण इमं ॥१००॥
भणिया किं अंब ! इमं इयरमहेलाण उचियमायरसि । तो सा जंपइ पुत्तय ! पइपरिचत्ताण जुत्तमिमं ॥१०१॥
किं अंब ! इमममंगलरूवं जंपसि जियंतए ताए । भणिए सुएण जंपइ तज्जणणी जाय ! तुह जणओ ॥१०२॥
पव्वइउमणो पुत्तो वि भणइ तमहं धरामि बंधेउं । तो जणणिकरयलाओ चत्तं घेत्तूण नियजणओ ॥१०३॥
चरणेसु चत्ततंतूहिं बंधिउं तो पयंपिया जणणी । वीसत्था अंब ! तुमं चिट्ठसु बद्धो मए ताओ ॥१०४॥
गच्छिस्सइ न हु कत्थइ तो तस्स सुणित्तु मम्मणुल्लावे । गाढं बद्धो अद्दयकुमरो नवनेहनिगडेहिं ॥१०५॥
चिंतइ य पेच्छ एयस्स (बालयस्स) वि सिणेहआसंघो । ता जत्तियतंतूहिं बद्धो हं तत्तिए वरिसे ॥१०६॥
चिट्ठामि तओ गणिया बारस ते तंतुणो तयणु सो वि । वरिसाइं ठिओ बारस उवभुंजंतो विविहविसए ॥१०७॥
तत्तोऽइक्कंतेसुं वरिसेसु दुवालसेसु रयणीए । चरिमपहरम्मि चिंता जाया एयारिसा तस्स ॥१०८॥
पेच्छ जहा विसयासापिवासिएणं मए महापावं । विहियं जं घेत्तूणं विराहियं सव्वविरइवयं ॥१०९॥
पुव्वभवे दुच्चिंतियमेत्तेण अहं अणज्जदेसेसु । संजाओ इण्हिं पुण वयभंगे कत्थ गच्छिस्सं ! ॥११०॥
परियाणियपरमत्थेण जं मए विहियमेरिसमजुत्तं । तं नूणं भमियव्वं भीमम्मि भवाडवीमज्झे ॥१११॥
ता इण्हिं चिय अज्ज वि करेमि अउदुक्करं तवच्चरणं । जम्हा सिद्धंतवियाणएहिं भणियं इमं वयणं ॥११२॥

प्रव्रजाम्यहं तदा तज्जाया जातजानननिमित्तम् । चत्तं[1] गृहीत्वा कर्त्तितुमारब्धा ततः सुतेनेदम् ॥ १०० ॥
भणिता किमम्ब ! इदमितरमहिलानामुचितमाचरसि । तत सा जल्पति पुत्रक ! पतिपरित्यक्तानां युक्तमिदम् ॥ १०१ ॥
किमम्ब ! इदममङ्गलरुपं जल्पसि जीवति ताते । भणिते सुतेन जल्पति तज्जननी जात ! तव जनकः ॥ १०२ ॥
प्रव्रजितुमनाः पुत्रोऽपि भणति तमहं धारयामि बद्ध्वा । ततो जननीकरतलाच्चत्तं गृहीत्वा निजजनकः ॥ १०३ ॥
चरणेषु चत्ततन्तुभि र्बद्ध्वा ततो प्रजल्पिता जननी । विश्वस्ताम्ब ! त्वं तिष्ठ बद्धो मया तातः ॥ १०४ ॥
गमिष्यति न खलु कुत्रचित्ततस्तस्य श्रुत्वा मर्मनोल्लापान् । गाढं बद्ध आर्द्रककुमारो नवस्नेहनिगडैः ॥ १०५ ॥
चिन्तयति च पश्यैतस्या [बालस्या]पि स्नेहासन्धः । ततो यावत्तन्तुभि र्बद्धोऽहं तावतो वर्षान् ॥ १०६ ॥
तिष्ठामि ततो गणिता द्वादश ते तन्तवस्तदनु सोऽपि । वर्षाणि स्थितो द्वादशोपभुञ्जन् विविधविषयान् ॥ १०७ ॥
ततोऽतिक्रान्तेषु वर्षेषु द्वादशसु रजन्याम् । चरमप्रहरे चिन्ता जातेतादृशा तस्य ॥ १०८ ॥
पश्य यथा विषयाशापिपासितेन मया महापापम् । विहितं तद्गृहीत्वा विराधितं सर्वविरतिव्रतम् ॥ १०९ ॥
पूर्वभवे दुश्चिन्तितमात्रेणाहमनार्यदेशेषु । सञ्जात इदानीं पुन र्व्रतभङ्गे कुत्र गमिष्यामि ? ॥ ११० ॥
परिज्ञातपरमार्थेन यन्मया विहितमीदृशमयुक्तम् । तन्नूनं भ्रान्तव्यं भीमे भवाटवीमध्ये ॥ १११ ॥
तत इदानीमेवाद्यापि करोम्यतिदुष्करं तपश्चरणम् । यस्मात्सिद्धान्तविजानकै र्भणितमिदं वचनम् ॥ ११२ ॥

---

१. 'चरखो' इति भाषायाम्

पच्छा वि ते पयाया खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं । जेसिं पिओ तवो संजमो य खंती य बंभचेरं च ॥११३॥
तत्तो पभायसमए संभासिय पणइणिं गहियचरणो । नीहरिओ नियभवणाओ पत्थिओ रायगिहनयरे ॥११४॥
तत्तो तयंतराले सामंतसयाणि जाणि पंच तया । तस्सेव रक्खणकए तज्जणएणं निउत्ताणि ॥११५॥
दिट्ठाणि अडविमज्झे धाडी (ए) कुणंतयाणि नियविर्त्ति । ताणऽवि तं परियाणिय पणामपुव्वं पयंपंति ॥११६॥
सामि ! जया इह तुब्भे अम्हे वंचिय समागया तइया । तुम्ह गवेसणकज्जे एत्तियभूमिं वयं पत्ता ॥११७॥
तुम्ह पउत्ती लद्धा न हु कत्थ वि ता कहं अकयकज्जा । रन्नो नियमुहमम्हे दंसिस्सामो ? त्ति लज्जाए ॥११८॥
न गया रायसमीवं अनिव्वहंता इहाडईमज्झे । धाडिं पाडिय नियपाणवत्तणं सामि ! कप्पेमो ॥११९॥
तो भयवया पयंपियमेयं भो भो ! महन्नवजलम्मि । गलियरयणं व दुलहं मणुयत्तं पाविऊण तओ ॥१२०॥
कायव्वो बुद्धिमया धम्मम्मि य होइ उज्जम्मो नियमा । ता परिहरिय पमायं उज्जमह जिणिंदधम्मम्मि ॥१२१॥
तो तेहिं बद्धकरयलकोसेहिं पयंपियं जहा भयवं ! । जइ अत्थि जोग्गया ता अम्हाणं देहि पव्वज्जं ॥१२२॥
अह भयवया पयंपियमेयं पव्वयह तो असेसा वि । दिन्नवया तेण समं संचलिया तयणु गोसालो ॥१२३॥
पत्तेयबुद्धमद्दयमुणीसरं वद्धमाणसामिस्स । वंदणनिमित्तमागच्छइ त्ति नाउं तओ वायं ॥१२४॥
दाउं समुट्ठिओ सो उत्तर-पच्चुत्तरेहिं निज्जिणिओ । अद्दयरिसिणा तत्तो पुणो पयट्टो पहम्मि मुणी ॥१२५॥
तो हत्थितावसामसमभूमिं पत्तो तवस्सिणो ते वि । मारिय गरुयगइंदं भुंजंति पभूयदिवसाइं ॥१२६॥

पश्चादपि ते प्रयाता: क्षिप्रं गच्छन्त्यमरभवनानि । येषां प्रियस्तप: संयमश्च क्षान्तिं च ब्रह्मचर्यं च ॥ ११३ ॥
तत: प्रभातसमये सम्भाष्य प्रणयिनीं गृहीतचरण: । नि:सृतो निजभवनात्प्रस्थितो राजगृहे नगरे ॥ ११४ ॥
ततस्तदन्तराले सामन्तशतानि यानि पञ्च तदा । तस्यैव रक्षणकृते तज्जनकेन नियुक्तानि ॥ ११५ ॥
दृष्टान्यटवीमध्ये घाट्या कुर्वन्ति निजवृत्तिम् । तेऽपि तं परिज्ञाय प्रणामपूर्वं प्रजल्पन्ति ॥ ११६ ॥
स्वामिन् ! यदेह यूयमस्मान् वञ्चित्वा समागतास्तदा । युष्मद्गवेषणकार्ये एतावद्भूमिं वयं प्राप्ता: ॥ ११७ ॥
युष्मत् प्रवृत्ति र्लब्धा न खलु कुत्रापि तावत्कथमकृतकार्या: । राज्ञो निजमुखं वयं दर्शयिष्याम ? इति लज्जया ॥ ११८ ॥
न गता राजसमीपमनिर्वहन्त इहाटवीमध्ये । घाटिं पातयित्वा निजप्राणवर्तनं स्वामिन् ! कल्पामहे ॥ ११९ ॥
ततो भगवता प्रजल्पितमेतद्भो भो ! महार्णवजले । गलितरत्नमिव दुर्लभं मनुष्यत्वं प्राप्य तत: ॥ १२० ॥
कर्तव्यो बुद्धिमता धर्मे च भवत्युद्यमो नियमा । तत: परिहृत्य प्रमादमुद्यमत जिनेन्द्रधर्मे ॥ १२१ ॥
ततस्तै र्बद्धकरतलकोशै: प्रजल्पितं यथा भगवन् ! यदि अस्ति योग्यता ततोऽस्माकं देहि प्रव्रज्याम् ॥ १२२ ॥
अथ भगवता प्रजल्पितमेतत्प्रव्रजत तदाशेषा अपि । दत्तव्रतास्तेन समं सञ्चलितास्तदनु गोशाल: ॥ १२३ ॥
प्रत्येकबुद्धमार्द्रकमुनीश्वरं वर्धमानस्वामिन: । वन्दननिमित्तमागच्छतीति ज्ञात्वा ततो वादम् ॥ १२४ ॥
दातुं समुत्थित: स उत्तर-प्रत्युत्तरै: निर्जित: । आर्द्रकर्षिणा तत: पुन: प्रवृत्त: पथि मुनि: ॥ १२५ ॥
ततो हस्तितापसाश्रमभूमिं प्राप्तस्तपस्विनस्तेऽपि । मारयित्वा गुरुकगजेन्द्रं भुञ्जन्ति प्रभुतदिवसानि ॥ १२६ ॥

जंपंति य किमिह विणासिएहिं बीयाइबहुयजीवेहिं ? । वरमेक्ककरिं मारिय किज्जइ वित्ती सपाणाणं ॥१२७॥

तत्थाऽऽणीओ अइगरुयगयवरो बंधिउं तवस्सीहिं । लोहग्गलाहिं चउदिसि अग्गलिउं निगडिओ गाढं ॥१२८॥

तो इरियासमिइपरो समागओ तत्थ अद्दयमुणिंदो । तं दट्ठूण गइंदो सामंतमुणीहिं संजुत्तं ॥१२९॥

जा बंदिउमभिवंछइ उच्छलियअतुच्छभत्तिपब्भारो । ता तडयड त्ति तुट्टा नियडा लोहग्गलाहिं समं ॥१३०॥

उड्ढकयसुंडदंडो दोघट्टो झत्ति साहुणो समुहं । संचलिओ तो लोगो पलाइओ मुणिवरं मोत्तुं ॥१३१॥

तत्तो कुंभी कुंभत्थलेण पणमित्तु साहुणो चरणे । आवलियखंधरो सो तं पेच्छंतो गओ रन्ने ॥१३२॥

दट्ठुं रसिणो अइसयमेयं तत्तो तवस्सिणो सव्वे । विहियामरिसा वाए समुट्ठिया तेण निज्जिणिया ॥१३३॥

पडिबोहिऊण सव्वे वि पेसिया सामिणो समोसरणे । ते गंतूणं सिरिवीरनाहपासम्मि पव्वइया ॥१३४॥

एत्तो य सेणियनिवो सोउं सिंधुरविमोयणच्छरियं । वंदणहेउं अद्दयमुणिस्स अभएण सह पत्तो ॥१३५॥

तो तिपयाहिणपुव्वं मुणिणो पयपंकयं पणमिऊण । भणइ निवो अच्छरियं भयवं ! निययप्पभावेण ॥१३६॥

जं मोइओ गइंदो बद्धो वि हु निबिडनियडनियरेण । तो गंभीरसरेण पयंपियं साहुणा एवं ॥१३७॥

न दुक्करं बंधणपासमोयणं, गयस्स मत्तस्स वणम्मि रायं । जहा उ चत्तावलिएण तंतुणा, सुदुक्करं मे पडिहाइ मोयणं ।१३८।

तं सोउं नरवइणा भणियं भयवं ! किमेयमह मुणिणा । नियवुत्तंतो सव्वो पयासिओ पुहइपालस्स ॥१३९॥

जल्पन्ति च किमिह विनाशितैः बीजादिबहुकजीवैः ? । वरमेककरिं मारयित्वा क्रियते वृत्ति स्वप्राणानाम् ॥ १२७ ॥

तत्रानीतोऽतिगुरुकगजवरो बद्ध्वा तपस्विभिः । लोहार्गलाभिश्चतुर्दिशि अर्गल्य निगडितो गाढम् ॥ १२८ ॥

तत इर्यासमिति परः समागतस्तत्रार्द्रकमुनीन्द्रः । तं दृष्ट्वा गजेन्द्रः सामन्तमुनिभिः संयुक्तम् ॥ १२९ ॥

यावद्वन्दितुमभिवाञ्छति उच्छल्यातुच्छभक्तिप्राग्भारः । तावत्तऽतडेति त्रुटिता निगडा लोहार्गलाभिः समम् ॥ १३० ॥

उर्ध्वकृतसुण्डदण्डो हस्ती शीघ्रं साधोःसंमुखम् । सञ्चलितस्तदा लोकः पलायितो मुनिवरं मुक्त्वा ॥ १३१ ॥

ततः कुम्भी कुम्भस्थलेन प्रणम्य साधोश्चरणे । आवलितस्कन्धः स तं पश्यन् गतोऽरण्ये ॥ १३२ ॥

दृष्ट्वा ऋषिणोऽतिशयमेतत्ततस्तपस्विनः सर्वे । विहितामर्शा वादे समुत्थितास्तेन निर्जिताः ॥ १३३ ॥

प्रतिबोध्य सर्वानपि प्रेषिताः स्वामिनः समवसरणे । ते गत्वा श्रीवीरनाथपार्श्वे प्रव्रजिताः ॥ १३४ ॥

इतश्च श्रेणिकनृपः श्रुत्वा सिन्धुरविमोचनाश्चर्यम् । वन्दनहेतुमार्द्रकमुनेरभयेन सह प्राप्तः ॥ १३५ ॥

ततस्त्रिप्रदक्षिणापूर्वं मुनेः पदपङ्कजं प्रणम्य । भणति नृप आश्चर्यं भगवन् ! निजकप्रभावेन ॥ १३६ ॥

यन्मोचितो गजेन्द्रो बद्धोऽपि खलु निबिडनिगडनिकरेण । ततो गम्भीरस्वरेण प्रजल्पितं साधुनैवम् ॥ १३७ ॥

न दुष्करं बन्धनपाशमोचनं गजस्य मत्तस्य वने राजन् ! । यथा तु चतवलिकेन तन्तुना सुदुष्करं मे प्रतिभाति मोचनम् ॥ १३८ ॥

तत् श्रुत्वा नरपतिना भणितं भगवन् ! किमेतदथ मुनिना । निजवृत्तान्तः सर्वः प्रकाशितः पृथिवीपालस्य ॥ १३९ ॥

ता भो नरिंद ! ते चत्ततंतुणो बालएण जे बद्धा । दुक्खं[1] ण मए ते मोहतंतुणो तोडिया तइया ।।१४०।।

एएण कारणेणं गयबंधणमोयणाओ ते मज्झ । दुम्मोया पडिहासंति तो मए एरिसं पढियं ।।१४१।।

सोऊण तयं बहवे पडिबुद्धा पाणिणो भवुव्विग्गा । संतुट्ठो[2] नरनाहो अभ ल ईएण समं मुणिं नमिउं ।।१४२।।

संपत्तो नियठाणे मुणी वि सिरिवीरनाहकमकमलं । रोमंचंचियदेहो भत्तीए संथवेऊण ।।१४३।।

विहरिय उग्गविहारेण तिव्वतरवारिधारसमघोरं । काऊण तवच्चरणं उप्पाडिय केवलं नाणं ।।१४४।।

तो भवियजणं पडिबोहिउण बहुकालमद्दयमुणिंदो । निट्ठवियसेसकम्मो सासयसुहमोक्खमणुपत्तो ।।१४५।।

।। आर्द्रककुमाराख्यानकं समाप्तम् ।।२७।।

एयाण पुन्नवंताण दंसणं जिणवरिंदबिंबस्स । जह जायं बोहिफसलं तह अन्नस्स वि भवइ एयं ।।१।।

चिन्तामणिं जयदनङ्गजितो जिनस्य, बिम्बं जरत्तरतृणीयितकामधेनु ।

निस्सारकामघटमल्पितकल्पवृक्षं, कल्याणकृत् कृतधियो ह्यवलोकयन्ति ।।१।।

।। इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे जिनबिम्बदर्शनफलवर्णनः सप्तमोऽधिकारः समाप्तः ।।७।।

ततो भो नरेन्द्र ! ते चत्ततन्तवो बालकेन ये बद्धाः । दुःखेन मया ते मोहतन्तवस्त्रोटितास्तदा ।। १४० ।।

एतेन कारणेन गजबन्धनमोचनात्ते मम । दुर्मोचाः प्रतिभासन्ते ततो मयेदृशं पठितम् ।। १४१ ।।

श्रुत्वा तकं बहवः प्रतिबुद्धः प्राणिनो भवोद्विग्नाः । सन्तुष्टो नरनाथोऽभयेन समं मुनिं नत्वा ।। १४२ ।।

सम्प्राप्तो निजस्थाने मुनिरपि श्रीवीरनाथक्रमकमलम् । रोमाञ्चाञ्चितदेहो भक्त्या संस्तुत्य ।। १४३ ।।

विहृत्य उग्रविहारेण तीव्रतरवारिधारसमघोरम् । कृत्वा तपश्चरणमुत्पाद्य केवलं ज्ञानम् ।। १४४ ।।

ततो भविकजनं प्रतिबोध्य बहुकालमार्द्रकमुनीन्द्रः । निष्ठापिताशेषकर्मा शाश्वतसुखमोक्षमनुप्राप्तः ।। १४५ ।।

।। आर्द्रकुमाराख्यानकं समाप्तम् ।। २७ ।।

एतेषां पुण्यवतां दर्शनं जिनवरेन्द्रबिम्बस्य ।

यथा जातं बोधिफलं तथान्यस्यापि भवत्येतत् ।। १ ।।

● ● ●

---

१. दुक्खेण-खं० रं० । २. संबुद्धो नर० रं० ।

પૂજ્યપાદ્ આચાર્યદેવ ૐકારસૂરીશ્વરજી મહારાજ જ્ઞાનમંદિર ગ્રંથાવલીમાં પ્રાપ્ય પુસ્તકો...

પૂ. આચાર્યદેવ મુનિચન્દ્રસૂરિજી મ. સંપાદિત - સંકલિત પ્રેરિત ગ્રંથો

- વીર નિર્વાણ સંવત ઔર જૈન કાલગણના : લે. પં.શ્રી કલ્યાણવિજયજી ગણિ
- શ્રમણ ભગવાન મહાવીર : પં. શ્રી કલ્યાણવિજયજી ગણિ (હિન્દી)
- જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઈતિહાસઃ લે. મોહનલાલ દેસાઈ
- જૈન સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઈતિહાસ ભાગ ૧-૨-૩ : લે. હીરાલાલ ર. કાપડિયા
- પાઈઅ ભાષાઓ અને સાહિત્ય - હીરાલાલ કાપડિયા
- વ્યવહાર સૂત્ર ભાગ-૧ થી ૬, વ્યવહાર સૂત્ર પ્રતાકારે ભાગ-૧ થી ૭
- દસ વૈકાલિક સૂત્ર : પૂ. આ. ભદ્રંકરસૂરિજી મ.સા.ના વિવેચન સાથે
- પ્રસંગવિલાસ ■ પ્રસંગ અંજન ■ प्रसंगसिद्धि (हिन्दी) ■ પ્રસંગ રંગ ■ પ્રસંગ સરીતા ■ प्रसंगकिरण (हिन्दी)
- પ્રસંગ કલ્પલત્તા ■ હીર સૌભાગ્ય (સટીક) ■ પ્રવચન સારોદ્ધાર વિષમપદ વ્યાખ્યા
- દસસાવગચરિયં ■ ધર્મરત્નકરંડક ■ કથારત્નાકર ■ પ્રભાવકચરિત્ર (ગુજરાતી ભાષાંતર)
- ઉપમિતિ કથોદ્ધાર કર્તા : પં. શ્રી હંસરત્નવિજયજી ગણિ ■ ઉવાઈયસુત્તમ્ ■ પ્રસંગયાત્રા ■ પ્રસંગ સરિતા
- સુરસુંદરી ચરિયં (સંસ્કૃત છાયા સાથે) - સંપાદિકા સા. મહાયશાશ્રીજી મ.,
- પ્રમાણનયતત્વાલોક (વિવેચન સા. મહાયશાશ્રીજી મ.)
- ચૈત્યવંદન ચતુર્વિંશતિકા - સંપાદિકા સા. મહાયશાશ્રીજી મ.,
- કર્મગ્રંથ : ઉપશમ શ્રેણિ, ક્ષપક શ્રેણિ, શાંતિનાથ ચરિત્ર સાનુવાદ, દાનોપદેશ-માલા સવિવેચન રમ્યરેણુ,

પૂ. આચાર્યદેવ યશોવિજયસૂરીશ્વરજી મહારાજની વાચનાઓ...

- દરિસણ તરસિએ ભાગ ૧-૨
- આપ હિ આપ બુઝાય
- મેરે અવગુણ ચિત્ત ન ધરો
- પરમ ! તારા માર્ગે
- અનુભૂતિનું આકાશ
- ધ્યાન અને કાયોત્સર્ગ
- પ્રવચન અંજન જો સદ્ગુરુ કરે
- સમાધિશતક ભાગ-૧ થી ૪
- બિછુરત જાયે પ્રાણ
- પ્રગટ્યો પૂરન રાગ
- ઋષભ જિનેશ્વર પ્રિતમ માહરો
- આત્માનુભૂતિ
- રોમે રોમે પરમ પર્શ
- માણ્યું તેનું સ્મરણ
- એકાન્તનો વૈભવ
- સમુંદ સમાના બુંદ મેં
- સો હિ ભાવ નિર્ગ્રંથ
- આતમજ્ઞાની શ્રમણ કહાવે
- પ્રભુનો પ્યારો સ્પર્શ
- અસ્તિત્વનું પરોઢ
- પ્રભુના હસ્તાક્ષર
- રસો વૈ સઃ
- સાધનાપથ

: સંપર્ક :

- આ. શ્રી ૐકારસૂરિ આરા. ભવન ગોપીપુરા, સુરત ૧, ટેલી : ૨૪૨૬૫૩૧
- શ્રી વિજય ભદ્ર ચે. ટ્રસ્ટ, ભીલડીયાજી, ૩૮૫૫૩૦, ટેલી : ૦૨૭૪૪/૨૩૩૧૨૯
- આ. શ્રી ૐકારસૂરિ જ્ઞાનમંદિર, વાવપથકની વાડી, દશા પોરવાડ સોસા., પાલડી, અમદાવાદ, ૩૮૦૦૦૭, ટેલી : ૨૬૫૮૬૨૯૩.

■ ■ ■

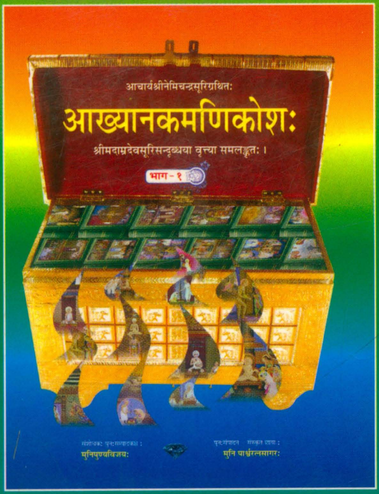

KIRIT GRAPHICS : 079-25330095